सेवकाई और अगुआई प्रशिक्षण कोर्स

स्तर : सवक

अध्ययन पुस्तक क्रमांक : 13

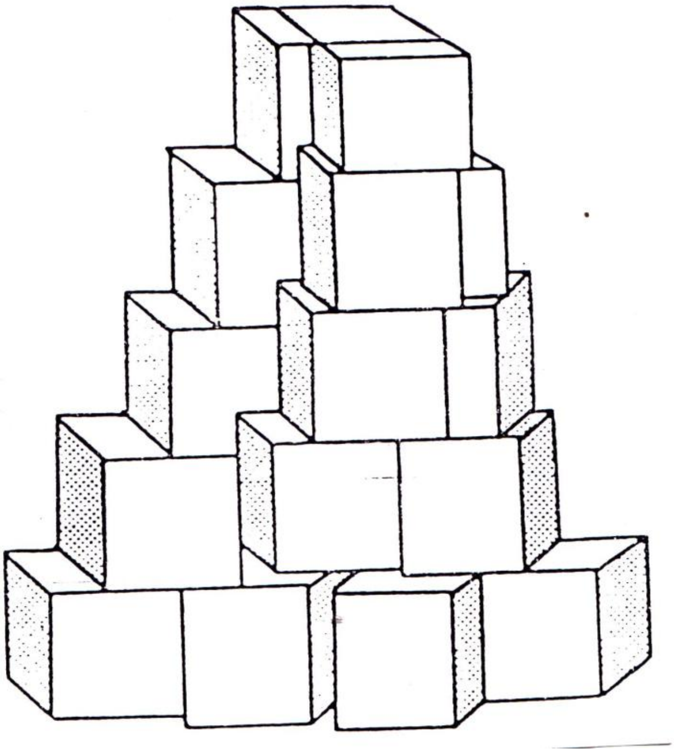

स्तरः

5. सवक
4. अगुवा / पास्टर
3. समूह या सेल अगुवा
2. चेला
1. नौसिखिया

मसीह में हर विश्वासी को एक सेवक बनाते हुए आत्मिक परिपक्वता में विकसित होने और एक प्रभावशाली और कुशल सेवकाई में बढ़ने के लिए बाइबल अध्ययन कोर्स !!!

स्वयं-अध्ययन और दूसरों को सिखाने के लिए सरलता से इस्तेमाल करने योग्य !!!

2026

सेवकाई और अगुआई प्रशिक्षण कोर्स

उद्देश्य:

- उसे जानना, जो एक मात्र सच्चा परमेश्वर है

(विकसित होना / परिपक्व होना)

- यहोशू 1:8 "व्यवस्था की यह पुस्तक तेरे चित से कभी न उतरने पाए, इसी में दिन रात ध्यान दिए रखना, इसलिए कि जो कुछ उस में लिखा है उसके अनुसार करने को तू चौकसी करे; क्योंकि ऐसा ही करने से तेरे सब काम सफल होंगे, और तू प्रभावशाली होगा।"

- 2 पतरस 3:18 "पर हमारे प्रभु और उद्धारकर्त्ता यीशु मसीह के अनुग्रह और पहचान में बढ़ते जाओ। उसी की महिमा अभी भी हो, और युगानुयुग होती रहे। आमीन।"

- 2 तीमुथियुस 2:15 "अपने आप को परमेश्वर का ग्रहणयोग्य और ऐसा काम करनेवाला ठहराने का प्रयत्न कर, जो लज्जित होने न पाए, और जो सत्य के वचन को ठीक रीति से काम में लाता हो।"

- कुलुस्सियों 1:27-28 "मसीह जो महिमा की आशा है तुम में रहता है, जिसका प्रचार करके हम हर एक मनुष्य को चेतावनी देते हैं और सारे ज्ञान से हर एक मनुष्य को सिखाते हैं, कि हर एक व्यक्ति को मसीह में सिद्ध करके उपस्थित करें।"

- और उसके बारे में दूसरों को बताएँ!

(गुणा / पुनरुत्पादन)

- 2 तीमुथियुस 2:2 "और जो बातें तू ने बहुत से गवाहों के सामने मुझ से सुनी हैं, उन्हें विश्वासी मनुष्यों को सौंप दे; जो दूसरों को भी सिखाने के योग्य हों।"

- 2 तीमुथियुस 3:16-17 "सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र परमेश्वर की प्रेरणा से रचा गया है और उपदेश, और समझाने, और सुधारने, और धर्म की शिक्षा के लिए लाभदायक है, ताकि परमेश्वर का जन सिद्ध बने, और हर एक भले काम के लिए तत्पर हो जाए।"

- इफिसियों 2:10 "क्योंकि हम उसके बनाए हुए हैं, और मसीह यीशु में उन भले कामों के लिए सृजे गए जिन्हें परमेश्वर ने पहले से हमारे करने के लिए तैयार किया।"

- 2 पतरस 1:8 "क्योंकि यदि ये तुम में वर्तमान रहें और बढ़ती जाएँ, तो तुम्हें हमारे प्रभु यीशु मसीह की पहचान में निकम्मे और निष्फल न होने देंगी।"

सिद्धान्त : "क्योंकि उसी की ओर से, और उसी के द्वारा, और उसी के लिए सब कुछ है।" (रोमियों 11:36)

(ज्ञान में बढ़ना; चरित्र में परिपक्व होना; आत्मिक वरदान इस्तेमाल करना)

सूची अध्ययन पुस्तक नं.: 13

पृष्ठ

क्रमाँक

- सेवाएँ कैसे गुणा हो सकती हैं (4 अध्याय) 2029
  (कलीसिया की बढ़त और कलीसिया की स्थापना, छोटे समूहों का बाइबल का विचार, यीशु ने चेले कैसे बनाए, कलीसिया स्थापकों की प्रशिक्षण कक्षाएँ)
- संचारः प्रभावकारिता और स्पष्टता की आवश्यकता 2047
- दर्शन का महत्त्वः चालन शक्ति 2058
- कार्यकुशल होने के लिए समय प्रबंध 2071
- अगुआई की तीन शैलियों का मूल्याँकनः आप कहाँ ठीक बैठते हो ? 2076
- प्रेरणा के सिद्धान्त 2078
- प्रगति और सफलता को प्राप्त करने के लिए भक्तिपूर्ण प्रेरणा की आवश्यकता 2091
- मसीह के अधीन एक अगुवे के रूप में अधिकार 2103
- एक कार्यकुशल और शक्तिशाली संगठित सेवा का दल कैसे बनाएँ 2115
- दल में सेवाः विचार और सामर्थ्य 2121
- नए नियम में दल में सेवा 2125
- सफलता के बारह मूल दल के सिद्धान्त 2134
- अधिकार सौंपने और उत्तरदायित्व की कला 2138
- अनुग्रह और अभिषेक – दोनों की आवश्यकता 2150
- व्यक्ति के जीवन और सेवा में पवित्र आत्मा का अभिषेक 2160
- सेवकपन, अगुवों के जीवन भर पालन करने का एक नमूना 2172
- समस्याओं और दबावों से निपटना 2174
- अगुआई में क्षमा की आत्मा की आवश्यकता 2185
- झगड़ों से निपटने के कुछ पवित्रशास्त्र की कुंजियाँ 2187
- कलीसिया का अनुसासनः कब, क्यों और कैसे 2190
- बदलाव की चुनौती का सामना करना 2202
- बदलाव की सूची 2213

सेवाएँ कैसे गुणा हो सकती हैं

अध्याय एक – कलीसिया की बढ़त और कलीसिया की स्थापना

इन दो विषयों का एक दूसरे के साथ करीबी संबंध है और परमेश्वर के हृदय में एक विशेष स्थान रखते हैं, क्योंकि दोनों का काम लोगों को मसीह में उद्धार में लाना है। कलीसिया की बढ़त और कलीसिया की स्थापना दोनों का काम लोगों को परमेश्वर के पास लाना और मसीह की देह में जोड़ना है। यह प्रमाणित सच्चाई है कि मजबूत, सफल कलीसियाएं छोटी संघर्ष कर रही कलीसियाओं की तुलना में नई मण्डलियों की स्थापना करने की बेहतर स्थिति में होती हैं। उनके पास लोगों और पैसे के अधिक साधन होते हैं और क्योंकि उनके पास परमेश्वर का राज्य बढ़ाने का दर्शन और इच्छा होती है, वे ऐसा करने की मजबूत स्थिति में होते हैं।
इसलिए, परमेश्वर के अधीन हर पास्टर और कलीसिया में, उनकी मण्डलियों को संख्या और आत्मा में बढ़ते और इसके सदस्यों और साधनों को नई मण्डलियाँ स्थापित करने में लगा हुआ देखने की इच्छा और उद्देश्य होना चाहिए। एक मण्डली की परिपक्वता का एक सबसे अच्छा संकेत यह है जब वह मण्डली नई मण्डलियाँ स्थापित करती है, और तब तक उनकी देखभाल करती है जब तक वे परिपक्व न हो जातीं और अपने को सम्भालने योग्य नहीं हो जातीं।

1. बढ़त की कुंजी पास्टर और अगुवे हैं

मैं इस तथ्य पर अधिक जोर नहीं दे सकता। प्रकट है कि बेदारी, कलीसिया की बढ़त और कलीसिया की स्थापना में परमेश्वर अनिवार्य तत्त्व है। उसकी सहायता और आशीष के बिना हमारे सारे प्रयास व्यर्थ होंगे। “मैं ने लगाया, अपुल्लोस ने सींचा, परन्तु परमेश्वर ने बढ़ाया” (1 कुरिं. 3:6)। फिर भी, सुसमाचार के काम में, परमेश्वर ने मनुष्य के द्वारा कार्य करने का चुनाव किया है और इस महत्त्वपूर्ण काम के लिए वह हम पर निर्भर होता है कि हम उसके साथ कार्य करें। जैसे किसी ने ठीक ही कहा है, “परमेश्वर के बिना हम नहीं कर सकते और हमारे बिना परमेश्वर नहीं करेगा।”
इसलिए, हर कलीसिया के अगुवे की उस प्रकार की अगुआई और प्रेरणा प्रदान करने की जिम्मेवारी है जो कलीसियाओं को उनकी गवाही और सुसमाचार को फैलाने में सक्रिय और प्रभावशाली होने के लिए प्रोत्साहन देगा। जैसे हम इस सच्चाई पर विचार करते हैं तो हमें स्पष्ट अनुभव होता है कि परमेश्वर ने हर पास्टर और अगुवे को कितना बड़ा सौभाग्य और कितनी बड़ी जिम्मेवारी दी है। एक जिम्मेवारी जिसे हम तब ही पूरा करना आरंभ कर सकते हैं जब हम सम्पूर्ण रूप से उस सामर्थ्य और प्रेरणा पर निर्भर होते हैं जो परमेश्वर हमें प्रदान करता है।
हम बहुत की निर्णायक समयों में जी रहे हैं जो मनुष्यजाति को परख रहे हैं। परमसंकट और तीव्र दबाव के दिन जब पुरुष और स्त्रियाँ उत्तरों और समाधानों के लिए अपने से परे खोज रहे हैं। यह परमेश्वर के राज्य के लिए भी फसल का समय है। कई देश सुसमाचार के लिए ऐसे खुल रहे हैं जैसे पहले कभी नहीं हुआ है। यीशु मसीह की कलीसिया कई देशों में, विशेषकर एशिया के कुछ देशों में तेजी से बढ़ रही है। परमेश्वर पुरुषों और स्त्रियों पर सेवा का बोझ डाल रहा है और उन्हें अपनी पीढ़ी के पास यीशु का उद्धारकर्त्ता, प्रभु और राजा के रूप में संदेश लेकर जाने में बड़े सामर्थी तरीके से इस्तेमाल कर रहा है।

2. अगुवों को उनके सहयोगियों को प्रेरित करना चाहिए

मुझे निश्चित है कि सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली काम जो कोई भी अगुवा कर सकता है वह है अपने आप-पास एक अगुआई समूह खड़ा करना, उन्हें एक दल के रूप में कार्य करने के लिए हर सम्भव तरीके से तैयार करना। कोई भी व्यक्ति एक सेवा की सब जिम्मेवारियों से पूर्ण रूप से निपट नहीं सकता है। इसमें एक व्यक्ति से कहीं अधिक की आवश्यकता है। इसलिए किसी भी अगुवे के लिए प्रार्थनापूर्वक वफादार सहयोगियों का एक दल इकट्ठा करना प्रमुख काम है। उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य उन अगुवों को पास्टर करना है। उसे उन्हें भर्ती करना, उन्हें सिखाना और प्रशिक्षण देना, उन्हें प्रेरित करना और उन्हें कुछ जिम्मेवारियाँ और कार्य सौंप देना है। यदि वह अपने सेवा के दल की प्रभावशाली तरीके से देखभाल करेगा, तो वे बदले में मण्डली की देखभाल कर सकेंगे। इस तरीके से वरिष्ठ पास्टर अपनी प्रभावकारिता को गुणा कर सकता है और बहुत अधिक लोगों तक पहुँच सकता है जो वह अकेले नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त, वे ‘अधीन-चरवाहे’ सेवा के विभिन्न पहलुओं में बहुमूल्य अनुभव प्राप्त कर रहे हैं ताकि जब उनके लिए सेवा की जिम्मेवारी लेने का समय आएगा तो वे बेहतर तैयार और अनुभवी होंगे।

ऐसा एक सेवा का दल जितनी जल्दी बनाना आरंभ कर सकें उतना अच्छा होगा। आदर्शतः यह प्रक्रिया उसी समय आरंभ हो जानी चाहिए जब मण्डली स्थापित होती है। तब भी जब मण्डली की संख्या काफी कम है और एक पास्टर सब काम आप कर सकता है। अगुवे को अपने आप-पास एक दल बनाने का लक्ष्य बनाना चाहिए और सम्भावित अगुवों को कुछ जिम्मेवारियाँ देना आरंभ करना चाहिए। उसे मुख्य रूप से एक मजबूत और वफादार सेवा का दल बनाने पर ध्यान लगाना चाहिए और विश्वास करना चाहिए कि वे विश्वासियों की मण्डली की प्रभावशाली तरीके से देखभाल कर सकेंगे।
कार्यभार को सौंपने और बाँटने की प्रक्रिया ऐसी ही थी जिसे मूसा ने बहुत प्रभावशाली पाया था। उसके ससुर, यित्रो ने उसे उनके जंगल के भ्रमण के प्रारंभिक दिनों में ऐसी एक नीति की बुद्धि के विषय में मनवा लिया था। जब मूसा सेवा के कुछ कठिन सबक सीखने लगा था। मूसा ने पाया था कि बुद्धिमान और प्रभावशाली सौंपने के द्वारा वह कहीं अधिक लोगों की देखभाल कर सकता है और अपने को नष्ट होने से बचा सकता है।

3. **सुसमाचार सुनाने के महत्त्व पर लगातार जोर देते रहो**

सेवा में सब प्रकार के जोर और जिम्मेवारियों में उलझ जाना इस हद तक आसान होता है कि सबसे महत्त्वपूर्ण चीजों को अनदेखा कर दिया जाए। यीशु इस संसार में खोए हुओं को खोजने और उनका उद्धार करने आया था। यह उसका प्रमुख कार्य था। जीवते और मरे हुए दोनों के लिए यह उसका अन्तिम उद्देश्य था। सबकुछ जो उसे किया इसी लिए था। उसी प्रकार आज भी विश्वासियों के लिए यह सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य होना चाहिए। कलीसिया संसार को परमेश्वर के प्रेम और उसकी उद्धार की अदभुत योजना के बारे में बताने के लिए है।
कोई भी दूसरा काम जिसे हम महत्त्वपूर्ण समझें, परन्तु सबसे महत्त्वपूर्ण, मूल और बुनियादी काम सारी मनुष्यजाति को परमेश्वर के प्रेम और उनके अनन्त भविष्य के लिए उसके प्रबंध के बारे में बताना है। दुर्भाग्यवश कई कलीसियाएँ अन्तर्दर्शी हो गई हैं। संसार को मसीह के बारे में बताने के कार्य के बजाय, उनकी कलीसिया के कार्यक्रम और क्रियाएँ उनके लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हो गई हैं। हमें इस मूल दर्शन को कभी नहीं भूलना है कि यीशु इस संसार में पापियों को बचाने आया था। उसने पतरस को भी बताया था कि यदि वह उसके पीछे आएगा तो वह उसे मनुष्यों को पकड़नेवाला मछुवा बनाएगा। लूका 5:10
इस उद्देश्य को प्रभावशाली तरीके से प्राप्त करने के लिए, पास्टर को न केवल इसे सिखाना और प्रचार करना है बल्कि इसे करके दिखाना भी है। उसे एक प्रेरक आदर्श बनना चाहिए, जो मसीह को संसार में लाने के लिए वचनबद्ध है। सेवा के इस पहलू के महत्त्व पर जोर देते हुए आओ मैं आपको याद रखने के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बात बता दूँ। "संसार को मसीह के पास लाने से मसीह को संसार के पास लाना अधिक महत्त्वपूर्ण है।" आरंभ में इन दो विचारों में शायद ही कोई अन्तर नज़र आए परन्तु असल में एक बहुत बड़ा अन्तर है।

मसीह को संसार के पास लाने में, हम मसीह से आरंभ करते हैं। हम अपने विचार और ध्यान उस पर लगाते हैं। हम उसके साथ समय बिताते हैं। हम उसकी बाट जोहते हैं। हम अपने जीवनों में उसके महत्त्व पर जोर देते हैं। हम उस पर अपनी सम्पूर्ण निर्भरता को स्वीकार करते हैं। कुछ भी और सबकुछ जो हम करने का प्रयास करते हैं उससे आरंभ होता है। वह हमारा केन्द्र है, हमारे जीवन उसके इर्द-गिर्द धूमते हैं। हमारे हृदय और मन, हमारे जीवन और शक्ति, सब उस पर केन्द्रित हैं। वह हमारे सब प्रयत्नों का आरंभ बिन्दु है और ऐसा कुछ भी नहीं किया जाता जो वह आरंभ नहीं करता।

संसार को मसीह के पास लाने का विचार काफी भिन्न है। यह प्रयत्न हमारा ध्यान मसीह पर नहीं, परन्तु संसार पर केन्द्रित करता है। हम प्रारंभ से संसार के बारे में इसकी सारी समस्याओं और मनोव्यथाओं के साथ सोचते हैं। आरंभ से ही अपना ध्यान इस पर लगाने के कारण हम अपना ध्यान मसीह के बजाय संसार और लोगों की भीड़ पर लगाते हैं। एक पुराना मुहावरा है, हम "गाड़ी को घोड़े के आगे लगा रहे" हैं। हम पीछे से आगे लगा रहे हैं। यीशु संसार के बारे में जानता है। वह मनुष्यजाति के लिए जीने और मरने आया था। उसने सब लोगों के लिए उद्धार खरीदा है। जैसे हम मसीह में बने रहते हैं और उसके साथ रोजाना संगति का आनन्द लेते और उसकी शक्ति और सामर्थ्य को पाते हैं, तो वह हमें उन तक ले चलेगा जिनकी सेवा वह चाहता है हम करें। इस प्रकार हमारे सारे प्रयास और प्रयत्न उसमें आरंभ होते हैं और आखिरकार उसे हम में और हमारे आस-पास संसार में लाते हैं।

4. **हर कलीसिया की सभा में उद्धार पर जोर दो**

हर कलीसिया का लक्ष्य एक मनुष्यों को जीतनेवाला केन्द्र बनना होना चाहिए। हर समय जब हम इकट्ठे हों तो हमें पता होना चाहिए कि हमारे अस्तित्व का यही असली कारण है। यीशु हमें उसके राज्य में लाया है ताकि हम दूसरों को उसके राज्य में लाएँ। इसलिए, चाहे यह कैसा भी दिन क्यों न हो या हमारे इकट्ठे होने का कोई भी कारण क्यों न हो, हमें मसीह के दावों को लोगों तक लाने और उसे उद्धारकर्त्ता और प्रभु के रूप में स्वीकार करने का अवसर देने की सम्भावना के बारे में सदा सतर्क रहना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें हर सभा में बड़ी मेहनत के साथ एक "सुसमाचार का संदेश" देना चाहिए या सारी सभा को अविश्वासियों के लिए बनाना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि हमारे इकट्ठे होने का कोई भी कारण क्यों न हो हम कुछ समय बिता सकते हैं कि मसीह को उद्धारकर्त्ता के रूप में प्रस्तुत करें और कुछ लोगों को प्रतिक्रिया दिखाने और यीशु में विश्वास के द्वारा परमेश्वर के साथ मेल करने के लिए समय दें।
यह एक प्रार्थना सभा या प्रभु भोज की सभा में हो सकता है। यह एक विवाह की सभा या अन्तिम संस्कार की सभा में हो सकता है। एक बार जब हम लोगों को मसीह के लिए जीतने के विचार से परिचित हो जाएँगे तो हम आश्चर्य करेंगे कि कितने सारे अवसर हमारे सामने आते हैं।

5. हर कलीसिया का सदस्य एक गवाह होना चाहिए

एक पास्टर अकेले एक समाज को नहीं जीत सकता है। उसे समाज में प्रभावशाली तरीके से पहुँचने के लिए सहायकों और सहयोगियों की आवश्यकता है। हर कलीसिया के सदस्य को गैर-मसीहियों के बारे में जानकारी दी जानी और संवेदनशील बनाना चाहिए। उन्हें उन लोगों के साथ बातचीत करना सिखाया और प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिन्होंने अभी मसीह पर भरोसा नहीं किया है। हमें उन्हें अविश्वासियों तक संवेदनशीलता और तरस के साथ पहुँचने के लिए हर प्रकार से प्रोत्साहित करना चाहिए। मसीह के लिए हमारी गवाही उन्हें केवल प्रचार करने से कहीं अधिक होनी चाहिए। हमें विश्वास करना है कि परमेश्वर हमारे हृदयों में पापियों के लिए प्रेम डालेगा। हर विश्वासी को उन लोगों तक जो अभी भी मसीह से दूर हैं प्रेम और कृपा के साथ पहुँचना सिखाया और प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। जब देह का हर जोड़ और हर भाग मिलकर प्रभावशाली तरीके से कार्य करता है तब देह उन्नति करती और अपने पूरे डील-डौल में बढ़ती है। (इफि. 4:16)

6. हर सभा को जितना आकर्षित हो सके बनाओ

कम्प्यूटर के संसार ने हमें कुछ बहुत अच्छे वाक्यांश दिए हैं, उनमें से एक है "user friendly", जो संकेत देता है कि कम्प्यूटर और इसका कार्यक्रम उपयोग करने के लिए सरल है। नए लोगों को डरने की आवश्यकता नहीं है, यह समझने के लिए आसान और उपयोग करने के लिए आसान है। इस सहायक वाक्यांश को हमारी कलीसियाओं में लाया जाना चाहिए और हमें अपनी कलीसिया की सभाओं और कार्यक्रमों को जितना मित्रभाव वाले हो सकता है बनाना चाहिए। उन्हें नए लोगों के लिए जितना दोस्ताना और आमंत्रित वाले हो सकता है बनाएँ।

हमें सदा पता होना चाहिए कि हम, कभी-कभी बिना जाने, अपनी जीवन शैली में बहुत "धार्मिक" बन गए हैं। यह गुण अकसर हमारी कलीसिया के कार्यक्रमों में चले आते हैं और हम एक धार्मिक प्रकार की संस्कृति बना लेते हैं जो गैर-मसीहियों के लिए अजीब और विदेशी लगती है। कई कलीसियाओं को गलतफहमी है कि ऐसे संस्कृतिक फंदे पवित्र हैं। उन्होंने यह विचार बना लिया है कि परमेश्वर धर्म और धार्मिक नित्यक्रमों की इच्छा करता और सम्मान करता है। परन्तु, ऐसी चीजें परमेश्वर या गैर-मसीहियों को प्रभावित नहीं करती हैं। ये धार्मिक क्रियाएँ गैर-मसीहियों के लिए अकसर घबरा देनेवाली होती हैं। यदि हम अधिक स्वाभाविक प्रकट हों तो हम लोगों के साथ अधिक सरलता और प्रभावशाली तरीके से संबंध बना और बातचीत कर पाएँगे।
हमारी कलीसिया की सभाएँ सकारात्मक, आनन्दमय, दोस्ताना, और आसानी से समझनेयोग्य होनी चाहिए। कलीसिया, इसकी आराधना और उत्सव की सभाओं में, शहर की सबसे खुश जगह होनी चाहिए। एक स्थान जहाँ लोग जब उन्हें शान्ति, प्रोत्साहन और समर्थन की आवश्यकता होती है आएँगे। एक स्थान जहाँ बोझ उठाए जाते और निराश हृदय आनन्द से भर जाते हैं। एक स्थान जिसमें टूटे-हृदयवाले चंगाई और सम्पूर्णता पाने के लिए आ सकते हैं, ऐसे लोगों के बीच जो यीशु के तरस से भरे हुए हैं और दिखाते हैं।

7. अपने सदस्यों को लोगों को जीतने और काउन्सलिंग में प्रशिक्षण दो

अधिकाँश मसीह परमेश्वर के लिए कुछ करना चाहते हैं परन्तु अनिच्छुक या डरते हैं क्योंकि उनमें निपुणता, अनुभव और विश्वास की कमी है। क्यों न एक प्रशिक्षण कक्षा की योजना बनाई जाए, जो वर्ष में दो बार या तीन महिने में एक बार चलाई जाए, जिसमें आप सदस्यों को लोगों को मसीह में लाना, प्रार्थना - काउंसलिंग करना और उनका फालो-अप करना और उनके नए विश्वास में उन्हें प्रोत्साहित करना सिखा सकते हैं।
जितने अधिक लोग आपकी मण्डली में से इन क्रियाओं में प्रशिक्षित किए जाएंगे, उतनी अधिक सम्भावना कलीसिया की बढ़ने की होगी। बहुत सारे प्रशिक्षित कार्यकर्त्ताओं के होने से डरो मत। जितने अधिक होंगे उतना अच्छा होगा। एक बार जब उन्हों प्रशिक्षण पा लिया है तब उन्हें जितना अधिक सार्थक सेवा में शामिल हो सके करने का प्रयत्न करो।

8. सुसमाचार प्रचार की क्रियाओं को अपनी कलीसिया की दिवारों के बाहर उपयोग करो

हम हमारी कलीसियाओं और कार्यक्रमों को जितना आकर्षित और "user friendly" हो सकता है बनाने की बात कर रहे थे। परन्तु, मुझे सुसमाचार प्रचार के कार्यक्रमों को आपकी सभा के स्थान की दीवारों से बाहर प्रोत्साहित करने और आयोजित करने और स्थानीय समाज में पहुँचने के महत्त्व पर जोर देना चाहिए।
इसे करने का एक सबसे प्रभावशाली तरीका घर की सभाओं को स्थापित करने का है जहाँ आपकी कलीसिया के सदस्य एक क्षेत्र में अनौपचारिक रूप से उनके किसी एक घर में मिल सकते हैं। निश्चित करो कि ये सभाएँ एक दूसरी "कलीसिया की सभा" न बन जाएँ। घर की सभाएँ कलीसिया की सभाओं की तुलना में काफी अनौपचारिक हो सकती हैं। कई लोग जो शायद एक कलीसिया की सभा में न जाते हों एक घर की सभा में आएँगे इसलिए आपको अनौपचारिकता के वातावरण को बनाए रखना है जो एक घर को "कलीसिया" से अलग करता है। एक अनौपचारिक, दोस्ताना, परिवार जैसा वातावरण बनाए रखो। बहुत सारी धार्मिक क्रियाओं और बहुत अधिक औपचारिकता से बचो। उन तरीकों का पता लगाओ जिनके द्वारा आप घर सभा में आए विभिन्न लोगों की आवश्यकताओं को पूरा कर सको। पड़ोसियों और स्थानीय क्षेत्र के पहचान वाले लोगों को बुलाओ। एक संगति भोज अकसर एक ऐसी घटना होती है जिसका लोग आनंद लेते हैं और जहाँ वे विश्राम अनुभव करते और बातचीत और सामाजिक सम्पर्क का आनंद लेते हैं।
घर की सभाओं के अलावा, और भी असंख्य तरीके हैं जिनके द्वारा मसीही गवाही बताई जा सकती है। सब सदस्यों को उनके सोच-विचार और योजना में प्रार्थनापूर्वक रचनात्मक होने के लिए प्रोत्साहित करो। पवित्र आत्मा से आपको उन विभिन्न तरीकों को बताने को कहो जिनके द्वारा साथानीय समाज में सुसमाचार सुनाया जा सकता है।

9. कलीसिया स्थापना के दर्शन पर जोर दो

कलीसिया स्थापना के दर्शन पर जोर देना आरंभ करना न तो बहुत जल्दी है और न ही बहुत देर हो चुकी होती है। तब भी जब एक मण्डली नई है और शायद काफी छोटी है, लोगों को बताना कि भविष्य के लिए आपके दर्शन में और कलीसियाएँ स्थापित करना शामिल है। जब एक मण्डली इस विचार के साथ बढ़ने लगती है तब वे बिना-सोचे भी इसके लिए तैयार होते हैं। तब सम्भावित अगुवे प्रशिक्षण और अनुभव पाएँगे जो उन्हें दर्शन में भाग लेने और इसकी पूर्ति का एक अनिवार्य भाग होने के योग्य करेंगे।
प्रार्थनापूर्वक किसी भी संकेत की ओर सतर्क रहो कि परमेश्वर आपको एक नई मण्डली आरंभ करने की ओर ले जा रहा है। आपको आपकी कलीसिया में कई लोग मिलेंगे को आपकी कलीसिया से कुछ दूरी पर एक दूसरे के करीब रहते हैं। वहाँ पर एक नई मण्डली आरंभ करने की सम्भावना पर विचार करो। या शायद आपकी कलीसिया के करीब एक नई बस्ती बन रही है। प्रार्थनापूर्वक विचार करो कि किस प्रकार वहाँ सुसमाचार सुनाया जाए और एक नई मण्डली आरंभ की जाए।

10. एक अगुवा प्रशिक्षण कक्षा आयोजित करो

हर अगुवे के लिए उसके सम्भावित अगुवों को सिखाना, प्रशिक्षण देना और विकसित करना एक बड़ी प्राथमिकता होनी चाहिए। इसे प्रोत्साहित और लागू करने का सबसे अच्छा तरीका नियमित प्रशिक्षण कक्षाएँ है। आपको स्वयं इस कार्यक्रम को प्रोत्साहन देना चाहिए और इसमें लगातार शामिल रहना चाहिए। इससे आपको सम्भावित अगुवों के साथ आपका दर्शन और उत्साह बाँटने का अवसर मिलता रहेगा। यह आपको आपका जीवन आपकी अगुआई में उँडेल देने का अवसर देता है। अगुआई की कुशलताएँ "सिखाई" और "पकड़ी" भी जाती हैं।

यह कक्षाएँ भारी आध्यात्मिक अध्ययन की कक्षाएँ नहीं होनी चाहिए, परन्तु विषय आत्मिक, बाइबल संबंधी और उपयोगी होने चाहिए। इसे मसीही अगुआई की मूल कुशताओं पर जोर देना और मनुष्यों को जीतने, कलीसिया की बढ़त और कलीसिया की स्थापना पर विशेष जोर देना चाहिए। एक सन्तुलित कोर्स का पता लगाओ जो आपको क्या क्या सिखाना है और सुसमाचार प्रचार और कलीसिया स्थापना के चुनौतीपूर्ण कार्य के लिए अपने अगुवों को कैसे तैयार करना है उसका कुछ उपयोगी विचार देगा। आप बाद में विषय वस्तु को बढ़ा सकते हैं, और विभिन्न दूसरे वियष शामिल कर सकते हैं जो साधारण सेवकों और उभर रहे अगुवों के लिए जो सम्भावित कलीसिया स्थापक हैं, सहायक होंगे। आगे के अध्यायों में, मैं आपको इसे प्रभावशाली तरीके से करने के लिए कई सहायक मार्गदर्शन दूँगा।

अध्याय दो – छोटे समूहों का बाइबल का विचार

कलीसिया की बढ़त और कलीसिया की स्थापना की असली कुंजी पुरुषों और स्त्रियों को चेला बनाने और उनकी सेवा के वरदानों को विकसित करने के द्वारा सेवाओं को गुणा करने की है। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह कितना भी योग्य या गुणी क्यों न हो, उन सारे कार्यों को जो असली बढ़त और विस्तार प्राप्त करने के लिए अवश्य हैं नहीं कर सकता है। पास्तरीय, सुसमाचार प्रचार और कलीसिया की स्थापना की सेवाओं को प्रभावशाली कार्य के लिए बहुत विभिन्न वरदानों की आवश्यकता होती है किसी भी एक व्यक्ति के पास यह सब वरदान नहीं हैं। यदि किसी व्यक्ति के पास ऐसे वरदान हुए भी, तब भी वह एक व्यक्ति के काम से अधिक नहीं कर सकता है। दस व्यक्तियों का काम स्वयं करने के बजाय, एक काम के लिए दल व्यक्तियों को भर्ती करना, प्रशिक्षण देना और काम पर लगाना कहीं बेहतर है।

सेवा के वरदानों के विकास के लिए जिस प्रकार के प्रशिक्षण और तैयारी की आवश्यकता होती है वह एक छोटे समूह के संदर्भ में अच्छे से हो सकता है। ऐसा एक समूह सहायक होता हैः

- व्यक्तियों के एक चुने हुए दल,
- सम्बंध बनाने के बेहतर अवसर,
- व्यक्तियों को ध्यान देने के अधिक अवसर, और
- भाग लेने और मेल-मिलाप करने के अधिक अवसर के लिए।

पुरुषों और स्त्रियों को चेला बनाने और उन्हें सेवा के लिए तैयार करने में कई मूल आवश्यकताएँ शामिल होती हैं जिनमें से कुछ नीचे दी गई हैं:

अः जीवन बनाने और चरित्र का निर्माण करना।

जीवन "सेवाओं" से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जीवन और चरित्र के गुण करिश्मा या व्यक्तित्व से कहीं अधिक आवश्यक हैं। एक व्यक्ति जो वह "है" उससे जो वह "कर" सकता है कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। चरित्र वरदानों से अधिक देर तक बना रहता है।

आः सेवाओं की तैयारी।

हालाँकि सेवा के लिए अन्तर्भूत परमेश्वर देता है, उन्हें प्रभावशाली तरीके से उपयोग करने की योग्यता विकसित की जा सकती है। लोगों को सेवा के विभिन्न पहलुओं में प्रशिक्षण दिया जा सकता है, जैसे कि, प्रचार करना, आराधना में अगुआई, काउन्सलिंग, अगुआई की निपुणता, और दल का प्रबंध आदि।

इः आत्मा की प्रेरणा।

हमें पवित्र आत्मा के सामर्थ्य के लिए खुले होना चाहिए। एक व्यक्ति बोलने, सिखाने, आराधना की अगुआई आदि में चाहे कितना भी निपुण और योग्य बन जाए, उस सेवा पर परमेश्वर का नया स्पर्श सारा अन्तर लाता है। हम इसे अकसर "आत्मा का अभिषेक" कहते हैं। एक सेवा में से प्रवाहित हो रहा परमेश्वर का आत्मा ही व्यक्ति के भीतर उसके आत्मा

तक पहुँचता है। यदि हम अपनी बुद्धि से सेवा करेंगे तो हम अपने सुननेवालों की बुद्धि को प्रभावित कर पाएँगे। यदि हम हृदय से सेवा करेंगे तो हम हृदयों को छू पाएँगे। परन्तु यदि हम पवित्र आत्मा द्वारा सेवा करेंगे तो हम पुरुषों और स्त्रियों की आत्माओं तक पहुँच पाएँगे।

हम इस प्रकार की शिष्यता कभी भी प्राप्त नहीं कर पाएंगे यदि हम पहले छोटे समूहों की शिष्यता की नीतियों के महत्त्व को पहचानते नहीं, क्योंकि छोटे समूहों में ही इस प्रकार का प्रशिक्षण सबसे प्रभावशाली तरीके से प्राप्त किया जा सकता है। आओ हम छोटे समूहों के महत्त्व पर संक्षेप में विचार करें।

1: परमेश्वर आप एक "छोटा समूह" है

"छोटे समूहों" का विचार बाइबल की पहली आयत में बताया गया है, अर्थात् "आदि में परमेश्वर ने आकाश और पृथ्वी की रचना की" (उत्पत्ति 1:1)। परमेश्वर के लिए यहाँ उपयोग किया गया इब्रानी शब्द उत्पत्ति के पहले सोलह अध्यायों में बार-बार उपयोग किया गया है। हालाँकि यह शब्द ऐसे अनुवाद किया गया है जैसे कि एकवचन हो, परन्तु असल में यह शब्द बहुवचन है, जो एक से अधिक व्यक्तियों का संकेत देता है।

हम मसीहियों ने "त्रिएक" शब्द परमेश्वर के लिए उसके बहुल अस्तित्व का वर्णन करने के प्रयास में बहुत सरल तरीके से उपयोग किया है। परमेश्वर असल में अपने में एक "छोटा समूह" है। परन्तु वह छोटा समूह इस प्रकार एक साथ जुड़ा हुआ है कि वे असल में एक हैं। यह एकता हमारे लिए एक सबसे उत्तम चित्र पेश करती है कि मसीह की देह कैसी होनी चाहिए। "इसलिए कि एक ही रोटी है तो हम भी जो बहुत हैं, एक देह हैं।" (1 कुरिं. 10:17)

2: परमेश्वर ने इस्राएल में छोटे समूह आरंभ किए थे

अ: राष्ट्र

इस्राएल का देश की उत्प. 12:2 में योजना बनाई गई थी और निर्गमन 19:5-6 में सिनै पर्वत पर आरंभ हुआ था। वे एक चुने हुए लोग थे, जो पृथ्वी के दूसरे सारे देशों से अलग किए गए थे। व्यवस्था 7:6। वे एक विशेष देश बने थे जिसे "इस्राएल का घराना" कहा जाता है। (निर्गमन 40:38)

आ: गोत्र, उत्प. 49

इस्राएल का देश बारह गोत्रों से बना था, (उत्प. 49:28) जो याकूब के बारह बेटों से निकले थे।
उत्प. 35:22-26

इ: कुल, गिनती 26:21-49

बारह गोत्र आगे 50 से भी अधिक कुलों या उप-गोत्रों में बाँटे गए थे, जिनमें याकूब के बारह बेटों के बच्चे, पोते-पोतियाँ और पर-पोते/पोतियाँ थे।

ई: परिवार

परिवार का ढाँचा समाज और एक देश का मूल तत्त्व है। इसे परमेश्वर ने मनुष्य की सृष्टि से नियुक्त किया था (उत्प. 1:26-28)। इसने इस्राएल के देश का मूल ढाँचा बनाया था। ये परिवार असल में फैले हुए परिवार थे जिनमें माता और पिता, बच्चे और पोते-पोतियां, सेवकों और आश्रितों के साथ थे।

3: यीशु ने छोटे समूहों पर ध्यान लगाया था

अपनी सेवा आरंभ करने पर, पहला काम जो यीशु ने किया था, वह अपने बारह चेलों को अपने पास बुलाना था। अपनी सेवा के तीन वर्षों में उसने अपना अधिकाँश समय उनमें अपना जीवन उँडेलने में बिताया था। इन छोटे समूहों के संदर्भ और वातावरण में उसने उनके जीवन अपने जीवन के अनुसार बनाए थे।

छोटे समूहों या सेल के ढाँचे ने उसके अपने जीवन पर आधारित जीवनों को बनाने का उचित वातावरण प्रदान किया था।

ऐसे छोटे समूहों के बिना, लोगों को उनके जीवन मसीह पर बनाते देखना यदि नामुमकिन नहीं तो बहुत ही कठिन है। यीशु को विभिन्न समयों पर देखा गया था:

- भीतरी तीन, पतरस, याकूब, यूहन्ना (मत्ती 17:1),
- बारह (लूका 9:1), और
- सत्तर (लूका 10:1) के साथ काम करते।

4: उसने अपना अधिकाँश समय बारह के साथ बिताया

अ: उसने व्यक्तिगत सम्बंधों को प्रधानता दी

चेलों का जो समूह यीशु ने बनाया था व्यक्तिगत और अत्यावश्यक बने रहने के लिए उचित रूप से छोटा था। यह व्यक्तियों का एक समूह था जिनके जीवन इतने घुल-मिल गए थे कि वे एक संयुक्त अस्तित्व बने थे।

आ: उसने अपना जीवन उनके साथ बाँटा

यीशु उसके चेलों को मंच के पीछे से सप्ताह में दो बार एक उपदेश नहीं दिया करता था। उसने अपना जीवन उनके मध्य जीया था, अपना जीवन उनके साथ हर पहलू से बाँटा था। वह उनके साथ चला, बातें कीं, सिखाया, खाया, आराम किया, हँसा और रोया था। उसने अपने बोझ बाँटने के लिए उनकी ओर देखा और उनके बोझ उठाने की पेशकश भी की थी। उसने अपने आप को उनसे अलग नहीं रखा था जैसे आज कई पास्टर उनके सहयोगियों से अपने आप को दूर रखते हैं।

इ: उसने अपनी सेवा को उनके लिए आदर्श बनाया

यीशु ने अपनी सार्वजनिक सेवा उसके चेलों के साथ आरंभ की थी। "यीशु और उसके चेले भी उस विवाह में निमन्त्रित थे" (यूहन्ना 2:2)। इसी अवसर पर यीशु ने अपना पहला चमत्कार किया था। (यूहन्ना 2:11)। उसके चेले इसे और इसे उसने किस प्रकार किया था देखने के लिए वहाँ थे।

ई: उसने उन्हें शिक्षा देकर और कार्य करके सिखाया

"हे थियुफिलुस, मैं ने पहली पुस्तक में उन सब बातों के विषय में लिखा जो यीशु आरम्भ से करता और सिखाता रहा" (प्रेरितों 1:1)। यीशु अपना काम और सेवा अपने चेलों के सामने करता रहा था। उन्होंने उसे सबकुछ करते हुए देखा और जैसे वे उसे देखते थे उसने उन्हें करना सिखाया भी था। सिखाने की यह विशेष शैली यीशु उपयोग करता रहा था और यह आज भी सिखाने का सबसे प्रभावशाली तरीका है।

उ: उसने सेवा के लिए तैयार किया

तीन वर्षों से अधिक समय तक यीशु इसी घनिष्ठ तरीके से उसके चेलों के साथ रहा और उनके जीवन अपनी उपस्थिति, शिक्षा और उदाहरण द्वारा बनाए थे। उस अवधि के अन्त तक वे कलीसिया के आरंभ और सेवा के लिए तैयार हो गए थे जिसे परमेश्वर ने चाहा था वे पूरा करें।

5: प्रारंभिक कलीसिया ने छोटे समूह बनाए

"घर-घर रोटी तोड़ते" (प्रेरितों 2:46)।

"वे प्रतिदिन मन्दिर में और घर-घर में उपदेश करते, और इस बात का सुसमाचार सुनाने से कि यीशु ही मसीह है न रुके।" (प्रेरितों 5:42)

"जो-जो बातें तुम्हारे लाभ की थीं, उनको बताने और लोगों के सामने और घर-घर सिखाने से कभी न झिझका।" (प्रेरितों 20:20)

इन घर की सभाओं के वातावरण में ही प्रेरितों ने प्रारंभिक कलीसिया की नींव रखी थी। कलीसिया की इमारतें जैसे हम उन्हें आज जानते हैं, कलीसिया के जन्म और सारे संसार भर में इसके फैलाव के 300 वर्षों तक नहीं दिखाई दी थीं।

प्रेरितों का जोर

"मन फिराओ, और तुम में से हर एक अपने अपने पापों की क्षमा के लिए यीशु मसीह के नाम से बपतिस्मा ले; तो तुम पवित्र आत्मा का दान पाओगे।" (प्रेरितों 2:38)

अ. मन फिराओ। यूनानी: "Mentanoia" का अर्थ है: अपने विचार, जीवन शैली आदि बदलो।

आ. बपतिस्मा लो। अपना पुराना जीवन गाड़ दो।

इ. पवित्र आत्मा पाओ। आपका नया जीवन।

ई. मसीह की प्रभुता के अधीन हो जाओ। प्रेरितों 2:36-38। "यीशु मसीह प्रभु है"।

6: जिन्होंने उद्धार पाया था, नीचे दी चीजों में लौलीन रहे:

(i) प्रेरितों की शिक्षा – "जीवन शैली"

नए नियम के वातावरण में "शिक्षा" शब्द वही विचार नहीं देता है जो हमारे आज के संदर्भ में मिलता है। आज हम अकसर इसका अर्थ हमारे विश्वास का सिद्धान्त समझते हैं। हम सिद्धान्त का अध्ययन एक बौद्धिक खोज समझते हैं। बाइबल में यह एक कहीं अधिक उपयोगी इस्तेमाल बताता है, जो है जीने का एक तरीका, या जीवन शैली। प्रेरितों ने यीशु की जीवन शैली सीख ली थी। अब उन्होंने इसे उनके चेलों के साथ बाँटा था जो बदले में उनके चेलों के साथ बाँटने वाले थे। हमें यीशु के साथ करीबी सम्बंध बनाए रखना चाहिए और उसमें से अपने चेलों के साथ।

(ii) प्रेरितों की संगति – यूनानी: "कोइनोनिया" = सम्बंध और साझेदारी

जैसे सिद्धान्त ने हाल के वर्षों में एक भिन्न अर्थ अपना लिया है, उसी प्रकार संगति के विचार ने भी किया है। इसने एक बहुत ही बनावटी चित्र अपना लिया है जैसे कि मिलकर चाय पीना या पिकनिक पर जाना। परन्तु बाइबल में इसका अर्थ एक गंभीर साझेदारी था, जिसके लिए विवाह या एक व्यवसाय में साझेदारी एक आदर्श नमूना होगा।

इसलिए प्रेरितों की एक साझेदारी थी जिसमें वे सब एक दूसरे के साथ गहराई से वचनबद्ध थे। उन्होंने नए मसीहियों को इस सम्बंध के विषय में सिखाया और अपनी शिक्षा के द्वारा उन्हें इसमें लाने का प्रयत्न किया।

(iii) रोटी तोड़ना, वाचा का सम्बंध और सामाजिक क्रिया

"घर-घर रोटी तोड़ते" का संदर्भ एक साथ प्रभु भोज में भाग लेने की ही बात नहीं करता है। न यह केवल मिलकर खाना खाने और अतिथि-सत्कार की बात करता है। रोटी तोड़ना और मिलकर भोजन करना एक दूसरे के साथ वाचा में बँधने का प्रतीक था। वे मिलकर एक "मजबूत मित्रता की वाचा" में बँधे थे। उनके वाचा के सम्बंध के संदर्भ में वे एक साथ अच्छा समय बिताते थे जिसमें विश्राम के समय होते थे जो उनके सम्बंध को बढ़ाते और गहरा करते थे।

(iv) प्रार्थनाएँ, आत्मिक जीवन, बातचीत का आदान-प्रदान

यह महत्त्व की बात है कि प्रार्थनाएँ सिद्धान्त, संगति और वाचा के बाद आई थीं। इन मजबूत सम्बंधों के कारण ही वे सामूहिक प्रार्थना में एक हो सके थे। वे न केवल एक ही स्थान में थे, वे "एक मन" भी थे।

7: नया नियम का नमूना

जैसे ही पिन्तेकुस्त के दिन नए नियम की कलीसिया आरंभ हुई थी, हम एक नमूना स्थापित होता हुआ देखते हैं जिसमें छोटे समूहों में इकट्ठे होने का नियम शामिल है। "वे प्रतिदिन एक मन होकर मन्दिर में इकट्ठे होते थे, और घर-घर रोटी तोड़ते हुए आनन्द और मन की सीधाई से भोजन किया करते थे।" (प्रेरितों 2:46)

इन छोटे समूहों में जो हर दिन उनके घरों में इकट्ठा हुआ करते थे, उनके विश्वास की नींव रखी गई थी। यहीं पर शिष्यता की प्रक्रिया ने कार्य किया और उनके नए नियम के सम्बंध बने थे। संगति के इसी करीबी संदर्भ में "कोइनोनिया" बन्धन बना और विकसित हुआ था जिसने बाद में उनके लिए "भाइयों के लिए प्राण देना" (1 यूहन्ना 3:16) संभव किया था।

एक दूसरे की ओर रवैये जिनकी छोटे समूहों या सेल में आवश्यकता होती है:

देह के दूसरे सदस्यों के साथ हमारे सम्बंधों का बनना और कार्य करना, विशेषकर उनके साथ जिनके साथ हमें एक "जोड़" बनना है (इफि. 4:16), हमारे व्यक्तिगत जीवन को एक प्रभावशाली और जिम्मेवार परमेश्वर के सेवक में परिपक्व होने में सहायता करेगा। अपने साथी सदस्यों के साथ देने, लेने, सेवा करने, और बलिदान करने में हमारी भीतरी प्रतिक्रियाएं हमारे जीवन और सेवा को गहरा और घना करेंगी और बढ़ाएँगी।

अः **एक दूसरे को स्वीकार करो**, **रोमियों** 15:7

"इसलिए, जैसा मसीह ने परमेश्वर की महिमा के लिए तुम्हें ग्रहण किया है, वैसे ही तुम भी एक दूसरे को ग्रहण करो।" मसीह ने हमें जैसे हम थे, स्वेच्छा से, प्रेमपूर्वक स्वीकार किया है। यीशु ने हमें इसलिए स्वीकार नहीं किया क्योंकि हमने उसकी कोई माँगें पूरी की थीं, बल्कि उसने हमें जैसे हम थे प्रेम किया और स्वीकार किया। बिलकुल इसी कारण से क्योंकि मसीह ने हमें इतने मुक्त भाव से स्वीकार किया है, हमें भी उसी प्रकार एक दूसरे को स्वीकार करना चाहिए।

आः **एक दूसरे को क्षमा करो**, **इफि.** 4:32

"एक दूसरे पर कृपालु और करुणामय हो, और जैसे परमेश्वर ने मसीह में तुम्हारे अपराध क्षमा किए, वैसे ही तुम भी एक दूसरे के अपराध क्षमा करो।" पौलुस कहता है, (रोमियों 14:1) कि जब हम एक दूसरे को स्वीकार करते हैं तो यह "शंकाओं पर विवाद करने के लिए नहीं" होना चाहिए, अर्थात्, हमें एक दूसरे को थोड़ा या शर्त के साथ नहीं बल्कि पूरी तरह और बिना शर्त स्वीकार करना है।

इः **एक दूसरे की चिन्ता करो**, 1 **कुरिं.** 12:25–26

"अंग एक दूसरे की बराबर चिन्ता करें, इसलिए यदि एक अंग दुख पाता है, तो सब अंग उसके साथ दुख पाते हैं; और यदि एक अंग की बड़ाई होती है, तो उसके संग सब अंग आनन्द मनाते हैं।" यीशु मसीह अपनी देह के सदस्यों की देखभाल करना चाहता है और वह इसे अपनी देह के सदस्यों के द्वारा करना चाहता है। वह अपनी देखभाल अपने नाम में अपनी देह के हर सदस्य के लिए चाहता है। इसे अगुआई से आरंभ होकर सब सदस्यों तक पहुँचना चाहिए। अगुवे एक दूसरे से प्रेम करते दिखने चाहिए, क्योंकि यीशु ने अपने चेलों के विषय में कहा, "इससे सब लोग जानेंगे कि तुम मेरे चेले हो, क्योंकि तुम एक दूसरे से प्रेम रखते हो।"

ईः **एक दूसरे की उन्नति करो**, 1 **थिस्स.** 5:11

"इस कारण एक दूसरे को शान्ति दो और एक दूसरे की उन्नति का कारण बनो, जैसा कि तुम करते भी हो।" बाइबल में इसका विशेष उपयोग लोगों को उनके विश्वास में - बौद्धिक, नैतिक और आत्मिक रूप से, निर्माण करने का है। यह नष्ट करने का उलटा है। एक दूसरे को झगड़े, आलोचना और द्वेष से नष्ट करने के बजाय, हमें एक दूसरे को आशीष देनी, शक्ति प्रदान करनी और उन्नति करनी है।

उः **एक दूसरे के बोझ सहो**, **गलातियों** 6:2

"तुम एक दूसरे का भार उठाओ, और इस प्रकार मसीह की व्यवस्था को पूरी करो।" यह वचन एक भाई को जो "किसी अपराध में पकड़ा" गया है पुनःस्थापित करने के उपदेश के संदर्भ में पाया जाता है। प्रकट है कि इसका संकेत ऐसी घटनाओं और दूसरे दुखद अनुभवों से पैदा हुए बोझों को सहने में सहायता के बारे में है। इसका संकेत उन बोझों को एक दूसरे की सहने में सहायता के बारे में भी है जो जीवन हम पर डाल देता है। एक भाई को अकेले संघर्ष में छोड़ देने के बजाय हमें जीवन की माँगों को पूरा करने में एक दूसरे की सहायता करनी है।

ऊः **एक दूसरे की ओर अर्पित रहो**, **रोमियों** 12:10

"भाईचारे के प्रेम से एक दूसरे से स्नेह रखो; परस्पर आदर करने में एक दूसरे से बढ़े चलो।" जब कुछ परमेश्वर को दिया जाता था, तो यह परमेश्वर को "अर्पित" होता था। एक बार जब कोई चीज उसे अर्पित की जाती थी, तो फिर उसे कभी भी वापस नहीं लिया जा सकता था। उसे "प्रभु के लिए पवित्र" माना जाता था। और सदा के लिए उसकी होती थी।

परमेश्वर चाहता है कि हम एक दूसरे की ओर अर्पित हों। अपने आप को वाचा के सम्बंध में देह के उन सदस्यों को दे दें जिनके साथ परमेश्वर ने हमें बाँधा है। ऐसे सम्बंधों को बनाने के लिए हमें अपने भाइयों के साथ "भाईचारे के प्रेम से स्नेह और परस्पर आदर में बढ़े चलने" के द्वारा करीबी संबंध बनाने की आवश्यकता है।

ए: एक दूसरे से प्रेम करो, 1 **यूहन्ना** 4:11

"हे प्रियो, जब परमेश्वर ने हम से ऐसा प्रेम किया, तो हम को भी आपस में प्रेम रखना चाहिए।" बाइबल का प्रेम जिसका पवित्रशास्त्र में हम पर आदेश दिया गया है, किसी भी मानव प्रेम से ऊँचा, भरपूर, गहरा, अधिक अर्थपूर्ण है। मानव प्रेम की विविध अभिव्यक्तियाँ हैं जैसे कि मानसिक, भावात्मिक, रोमानी और शारीरिक।

जिस प्रेम को यीशु ने दिखाया और समर्थन किया इन सब से भिन्न और श्रेष्ठ है। "अगापे" (agape) जिसे यीशु ने दिखाया था मानव, रोमानी, भावुक, शारीरिक प्रेम से जो अकसर दिखाया जा सकता है फिर भी बनावटी और अविश्वसनीय होता है, कहीं श्रेष्ठ था। यह एक प्रेम है जो भावुकता या भावना से किसी गहरी चीज पर आधारित है। यह परमेश्वर द्वारा दिया प्रेम है जिसे पवित्र आत्मा द्वारा हमारे हृदयों में उँडेला जाता है। यह ऐसा प्रेम है जो हमें अपने आप को दूसरों के लिए बलिदान करने देता है। (रोमियों 5:5)। यह हमारे भीतर मसीह का प्रेम है जिससे हम "प्रभु के प्रेम के साथ" एक दूसरे से प्रेम कर सकते हैं।

ऐ: एक दूसरे से प्रेम करो, 1 **पतरस** 4:10

"जिसको जो वरदान मिला है, वह उसको परमेश्वर के नाना प्रकार के अनुग्रह के भले भण्डारियों के समान एक दूसरे की सेवा में लगाएँ।" सेवकपन की सेवा आज एक कुछ-कुछ तुच्छ और उपेक्षित सेवा है, फिर भी बाइबल का "सेवक": "नौकर" है। यीशु ने सेवकपन की सेवा को दिखाया और अपने चेलों के लिए एक नमूना पेश किया। एक प्रभावशाली सेवक होने के लिए सच्ची दीनता की आवश्यकता होती है, दीनता जो दुर्भाग्यवश कई सेवकों में नहीं है।

इसी दीन सेवक के रवैये का वर्णन फिलि. 2:5 में किया गया है, जहाँ हमें "जैसा मसीह यीशु का स्वभाव था वैसा ही तुम्हारा भी स्वभाव हो" उपदेश दिया गया है। जब तक हम में यह रवैया न होगा मसीह जैसे स्वभाव की कुछ भी मात्रा पाना असंभव होगा, और इसकी वास्तविकता बढ़ती और शुद्ध होता जाती है जब हम मसीह की देह में एक दूसरे की सेवा दीनता से करना चुनते हैं।

ओः एक दूसरे को भले कामों में उकसाओ, **इब्रानियों** 10:24

"और प्रेम, और भले कामों में उकसाने के लिए एक दूसरे की चिन्ता किया करो।" उकसाना शब्द का अर्थ नकारात्मक और सकारात्मक दोनों है। नया नियम स्पष्ट शिक्षा देता है कि हमें एक दूसरे को नकारात्मक, अर्थात्, क्रोध या बुराई के लिए नहीं चिढ़ाना है, परन्तु हमें एक दूसरे को प्रेम और भले कामों में उकसाना (उत्तेजित करना) है।

यह ही एक प्रकार की उत्तेजना है जिसमें हम मसीहियों को मन लगाने दिया जाता है। उत्तेजना जिसके द्वारा हम एक दूसरे को भले काम करने के लिए प्रोत्साहित, प्रेरित और उत्तेजित करते हैं जिसके द्वारा प्रभु के नाम को आदर मिलता है।

छोटे समूहों की प्रकृति और उद्देश्य

मैं बड़े की तुलना में छोटा शब्द उपयोग कर रहा हूँ। प्रारंभिक कलीसिया छोटे या सेल और बड़े समूहों दोनों में सभा के अवसर और उद्देश्य के अनुसार इकट्ठे हुआ करते थे। बड़े समूह मन्दिर या किसी खुले स्थान में एक सामूहिक गवाही के उद्देश्य से इकट्ठे होते थे। छोटे समूह अकसर घरों में शिक्षा, परस्पर संबंध और एक दूसरे की देखभाल के उद्देश्य से इकट्ठे होते थे। यीशु के स्थापित किए नमूने से हम कह सकते हैं कि शिष्यता के एक समूह के उद्देश्य के लिए बारह लोग एक अच्छी संख्या है। फिर भी, यह कोई स्थिर संख्या नहीं है और परिस्थिति के अनुसार कम या अधिक हो सकती है। कुछ समूहों में केवल दो या तीन लोग हो सकते हैं। यीशु ने "दो या तीन मेरे नाम पर इकट्ठा होते" की बात की थी। (मत्ती 18:20)

फिर भी, एक छोटे समूह को बहुत बड़ा नहीं होने दिया जाना चाहिए ऐसा न हो कि यह छोटे समूह की घनिष्ठता और परस्पर संबंध के लाभ को खो दे।

<u>छोटे समूह विभिन्न तरीकों से कार्य कर सकते हैं:</u>

- एक ग्रह कलीसिया। कलीसिया समूह एक घर में इकट्ठे होने के लिए काफी छोटा।
- सेल समूह। एक बड़ी देह का एक भाग, छोटी संख्या, अकसर बारह, में स्थानीय रूप से इकट्ठा होना।
- विशेष रुचि समूह। उदाहरणार्थ, संगीत सेवा, भेंट सेवा, मिशन समिति।
- शिष्यता समूह। अगुवे तैयार करना।

छोटे समूह नीचे दी चीजों के लिए हैं:

अ: संगति (Koinonia)

मसीह की देह के सदस्यों के रूप में हमारे सम्बंध की प्रकृति की गहरी जानकारी विकसित करना। यीशु मसीह की कलीसिया कोई क्लब नहीं है कि कोई व्यक्ति दूसरे सदस्यों को समृद्ध करने की इच्छा या मनसा रखे बिना जुड़ना चाहे। यह एक देह है जिसमें हर अंग और जोड़ एक सहानुभूति-शील तंत्रिका-तन्त्र द्वारा जुड़ा हुआ है और जो निश्चित करता है कि जब एक सदस्य दुखी होता है तो हम सब दुखी होते हैं। जैसे देह का कोई भी अंग अपने लिए नहीं जी सकता है बल्कि तब ही उपयोग का है जब दूसरे अंगों के साथ उचित रूप से जुड़ा और संबंध रखता है, उसी प्रकार हमें भी मसीह की देह और इसके अनेक सदस्यों के साथ उचित रूप से जुड़े होना चाहिए।

आ: एक दूसरे की उन्नति, निर्माण

एक दूसरे को प्रोत्साहित करना और एक दूसरे को विश्वास और आत्मिक वरदानों के विकास और उपयोग में निर्माण करना सीखना। इफिसियों 4:12-16 हमें बताता है कि मसीह की देह उससे जो "हर एक जोड़ की सहायता से" निर्माण होती, मजबूत होती, उन्नति करती, बढ़ती है। एक जोड़ वह स्थान है जहाँ एक या अधिक सदस्य किसी विशेष कार्य और उद्देश्य के होने के लिए सुव्यवस्थित एकता में एक साथ जुड़ते हैं जैसे कि, घुटने का जोड़, जिसके बिना हम ठीक से चल नहीं सकते हैं।

उसी प्रकार मसीह की देह के विभिन्न सदस्यों को सही सम्बंध में एक साथ जुड़ना है ताकि मिलकर कलीसिया उन्नति कर सके।

इ: मसीह की समानता विकसित करना

यीशु पिता परमेश्वर के "तत्त्व की छाप" है (इब्रा. 1:3)। वह स्वर्गीय पिता का मानवीकरण है, उसी के स्वरूप और समानता में है। इसलिए वह परमेश्वर का सच्चा पुत्र है। पवित्र आत्मा की अन्तिम इच्छा उसी स्वरूप को हम में जो परमेश्वर के उद्धार पाए लोग हैं विकासित करना और सिद्ध करना है। यह विस्मयकारी काम तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक सही वातावरण नहीं प्रदान किया जाता। उस वातावरण का एक भाग उस सम्बंध में पाया जाता है जो एक कार्य कर रहे "कोइनोनिया" की स्थिति में पाया जाता है। यीशु को स्पष्ट रूप से एक सच्चे सेवक के रूप में चित्रित किया गया है (फिलि. 2:1-7) और जब तक हम में वही रवैया न हो हम सच्ची मसीह-समानता को प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

ई: शिक्षा

शिक्षा और निर्देश हमारे जीवन, चरित्र और सेवा के उपयुक्त और सम्पूर्ण विकास के लिए एक आवश्यकता भी हैं। यह शिक्षा उससे जो एक मंच पर से एक औपचारिक वातावरण में दी जाती है से कहीं अधिक उपयुक्त होनी चाहिए। जो शिक्षा जीवन और सेवाओं को बनाती है वाचा की वचनबद्धता और असली जीवन में सेवा के वातावरण के संदर्भ में दी जानी और स्वीकार की जानी चाहिए।

उ: भागीदारी

जिस प्रकार के वातावरण का हम समर्थन कर रहे हैं वही है जिसमें सक्रिय भागीदारी अनिवार्य है। इसे आरंभ में कार्यशालाएँ आयोजित करके प्राप्त किया जाता है जिसमें विद्यार्थियों से सक्रिय भागीदारी अवश्य होती है। इसमें सेवा की घटनाओं जैसे कि, आराधना की अगुआई, प्रचार, काउन्सलिंग और प्रार्थना द्वारा लोगों की सेवा, में असली भागीदारी भी शामिल होती है। यह प्रशिक्षण की शैली है जिसे हम "काम करते हुए प्रशिक्षण" कहते हैं। शिक्षा जो मात्र शैक्षिक या मनोवैज्ञानिक नहीं है, बल्कि उपयोगी प्रकृति की है जो असली कार्य करने के संदर्भ में ही प्रदान की जाती और सोखी जाती है।

ऊ: सेवाओं का बीड़ा उठाना और पूरा करना

असली काम करने का स्थान कुछ और नहीं ले सकता है। सारी शिक्षा और प्रशिक्षण जो विद्यार्थी पाते हैं, और कार्यशाला प्रकार की क्रियाओं में उनकी भागीदारी के अतिरिक्त, उन्हें असली सेवा के करने में उचित अभिव्यक्ति भी दी जानी चाहिए। उन्हें अवसर प्रदान किए जाने चाहिए जिनमें वे, किसी अधिक अनुभवी व्यक्ति की निगरानी में, सेवा के असली कार्य कर सकें।

हम यीशु को इस शैली को उपयोग करते हुए देखते हैं जब उन्होंने पहले बारहों और फिर सत्तर को भेजा था। उसने उन्हें स्पष्ट अधिकार और विस्तार से कार्य का विवरण दिया था।

अध्याय तीन – यीशु ने चेले कैसे बनाए

स्वर्ग में जाने से पहले अपने अन्तिम शब्दों में, यीशु ने अपने चेलों को यह अधिकार दिया:

* सारे संसार में जाओ और सुसमाचार का प्रचार करो। मरकुस 16:15
* सारे संसार में जाओ और चेले बनाओ। मत्ती 28:19

ऐसे करने में उसने अपनी (और हमारी होने वाली) सर्वोत्तम प्राथमिकताओं पर जोर दिया, अर्थात्:

अ - सुसमाचार प्रचार करना; खोए हुओं को जीतना।

आ - चेले बनाना। विश्वासियों के जीवनों को पोषण देना और बनाना।

उसने पतरस को इन दो चीजों पर चुनौती दी थी।

1: "मनुष्यों के मछुवे" मत्ती 4:19

2: "मेरी भेड़ों को चरा" यूहन्ना 21:17

अधिकाँश सेवाएँ सुसमाचार प्रचार करती हैं परन्तु अपेक्षाकृत कम ही चेले बनाते हैं जैसे यीशु ने हमें आज्ञा दी है।

यीशु ने उद्धार की योजना को आरंभ किया था।

यीशु संसार में "खोए हुओं को ढूँढने और उनका उद्धार करने आया" था (लूका 19:10)। उसके पहले शब्द "मन फिराओ और सुसमाचार पर विश्वास करो" (मरकुस 1:15) थे। उसका सर्वश्रेष्ठ मिशन गिरी हुई मावनजाति को पुनःस्थापित करना था। इसी के लिए वह आया, जीया, मरा और जी उठा। उसने अपना विशाल मिशन चेलों को चुनने, बुलाने और प्रशिक्षण देने के द्वारा आरंभ किया। "गलील की झील के किनारे किनारे जाते हुए, उसने शमौन और उसके भाई अन्द्रियास को झील में जाल डालते देखा; क्योंकि वे मछुवे थे। यीशु ने उनसे कहा, 'मेरे पीछे आओ; मैं तुम को मनुष्यों के मछुवे बनाऊँगा।'" मरकुस 1:16-17

अ: उसने उन्हें चुना

यीशु ने अपने चेलों को चुना, उनके पास गया, और भर्ती किया। उसने एक खुला निमन्त्रण नहीं दिया। यूहन्ना 15:13-17 में दिए उनको बुलाने के कुछ सिद्धान्तों पर ध्यान दो। "इससे बड़ा प्रेम किसी का नहीं कि कोई अपने मित्रों के लिए अपना प्राण दे। जो आज्ञा मैं तुम्हें देता हूँ, यदि उसे मानो तो तुम मेरे मित्र हो। अब से मैं तुम्हें दास नहीं कहूँगा, क्योंकि दास नहीं जानता कि उसका स्वामी क्या करता है; परन्तु मैं ने तुम्हें मित्र कहा है, क्योंकि मैं ने जो बातें अपने पिता से सुनीं, वे सब तुम्हें बता दीं। तुम ने मुझे नहीं चुना परन्तु मैं ने तुम्हें चुना है और तुम्हें नियुक्त किया कि तुम जाकर फल लाओ और तुम्हारा फल बना रहे, कि तुम मेरे नाम से जो कुछ पिता से माँगो, वह तुम्हें दे। इन बातों की आज्ञा मैं तुम्हें इसलिए देता हूँ कि तुम एक दूसरे से प्रेम रखो।"

इस परिच्छेद में से नीचे दी बातों पर ध्यान दो:

-आय. 13अ उसकी पसन्द प्रेम से प्रेरित थी। अपने पिता के लिए प्रेम। अपने चेलों के लिए प्रेम। संसार के लिए प्रेम जिसकी सेवा वे करेंगे।

-आय. 13ब वह उन्हें चेला बनाने के लिए बलिदान करने को (अपना जीवन देना) तैयार था।

-आय. 14 उसने उन्हें दास नहीं, मित्रों के रूप में देखा।

-आय. 15 उसने उन्हें “जो बातें अपने पिता से सुनीं” सिखाई थीं।
-आय. 16 उसने उन्हें चुना, उन्होंने उसे नहीं चुना।
-आय. 16 उसने उन्हें फल लाने के लिए नियुक्त किया।
-आय. 16 उसने चाहा कि उनका “फल बना रहे।”

“यीशु फिलिप्पुस से मिला और कहा, ‘मेरे पीछे हो ले।’” यूहन्ना 1:43
उसने उन्हें उनकी सम्भावना के लिए चुना उनके पहले के कीर्तिमानों के कारण नहीं।
उसने बड़े विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों को चुना। मछुवे, डॉक्टर, महसूल लेनेवाले आदि।

आ: उसने उन्हें बुलाया

उसने उन्हें नाम से बुलाया। उदाहरणार्थ, यूहन्ना 1:42, “तू शमौन है।”
उसने उन्हें उसके पीछे चलने की चुनौती दी। सीखो, आज्ञापालन करो, अपने जीवन उसके जैसे बनाओ। यूहन्ना 1:43
उसने एक सम्पूर्ण, बलिदानवाले उत्तर की माँग की, उदाहरणार्थ “उन्होंने सबकुछ छोड़ा और उसके पीछे हो लिए।”
उसने हर एक के साथ सम्बंध बनाया।
उसने अपना जीवन हर एक में अलग-अलग लगाया।

इ: अपना जीवन और सेवा उनके सामने नमूना बनाया

यीशु अपने चेलों के लिए आदर्श बना।
उसने उनके साथ अच्छा समय बिताया।
उसने अगुआई की सबसे अच्छे गुण दिखाए।
उसने चरित्र, अखण्डता, दीनता और आज्ञापालन का नमूना पेश किया।
उसने आत्मिक नवीणीकरण की निरन्तर आवश्यकता दिखाई।
उसने विश्राम और मनोरंजन की आवश्यकता दिखाई।

ई: उसने उन्हें सिखाया

यीशु का सिखाने का विशेष तरीका था।
उसने चेलों के साथ संबंध में, घुल-मिलकर सिखाया।
उसने उदाहरण द्वारा सिखाया।
उसने करने और शिक्षा के तरीके से सिखाया। प्रेरितों 1:1
उसने केवल जानकारी देने के बजाय जीवन बनाए।
उसने सेवा का कार्य करने के लिए सज्जित किया।
इफिसियों 4:11-13, “उसने कुछ को प्रेरित नियुक्त करके, और कुछ को भविष्यद्वक्ता नियुक्त करके, और कुछ को सुसमाचार सुनानेवाले नियुक्त करके, और कुछ को रखवाले और उपदेशक नियुक्त करके दे दिया, जिस से पवित्र लोग सिद्ध हो जाएँ और सेवा का काम किया जाए और मसीह की देह उन्नति पाए, जब तक कि हम सब के सब विश्वास और परमेश्वर के पुत्र की पहचान में एक न हो जाएँ, और एक सिद्ध मनुष्य न बन जाएँ और मसीह के पूरे डील-डौल तक न बढ़ जाएँ।”
ध्यान दो कि मसीह ने कलीसिया को सेवक दिए (आय. 11), ताकि वे सेवा के काम के लिए सन्तों को सिद्ध, प्रशिक्षित, तैयार करें जो मसीह की देह को उन्नत करेगा।

उसने जैसे सिखाया उसकी एक साधारण तस्वीर यह है:
- मैं करता हूँ, तुम देखो (मैं काम का नमूना बनता हूँ)
- मैं करता हूँ, तुम सहायता करो (मैं सिखाता हूँ)
- तुम करो, मैं सहायता करता हूँ (मैं देखता हूँ)
- तुम करो, कोई और देखता है। (तुम किसी और के लिए नमूना बनो और सिखाओ)

उ: उसने उन्हें प्रेरित किया। तुम हो...तुम बनोगे।

"तुम शमौन हो, तुम पतरस बनोगे।" – "तुम एक पत्थर हो, तुम एक चट्टान बनोगे।" यीशु ने पतरस को उसकी अन्त:शक्ति तक पहुँचने और वह बनने जो परमेश्वर ने उसे बनाया था के लिए प्रेरित और प्रोत्साहित किया। उसने अपने हर चेले के साथ व्यक्तिगत सम्बंध बनाया और अपने सम्पर्क को उन्हें सिखाने, प्रशिक्षित करने और उनके जीवन बनाने के लिए उपयोग किया। वह हमें अपने आत्मा के द्वारा उसका दर्शन दिखाता है जो हमें बनना है। फिर वह हमें उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हर प्रकार से सहायता करता है।

ऊ: उसने उन्हें काम और जिम्मेवारियाँ दीं

"इन्हें खाने को दो", मत्ती 14:16। यीशु उन्हें इस घड़ी के लिए सावधानी से तैयार कर रहा था जब वह उन्हें एक काम देगा जो उन्होंने पहले न तो करने का प्रयास किया था और न ही किया था। यह एक ऐसा काम था जिसे वे परमेश्वर की सहायता के बिना करने के बिलकुल अयोग्य थे। वे उसके सामर्थ्य के लिए पूरी तरह उस पर निर्भर थे।

ए: उसने उपयुक्त अधिकार दिया – लूका 10:19

ध्यान दो कि यीशु ने उन्हें अधिकार देने से पहले जिम्मेवारी दी। यीशु में हमारा अधिकार एक विशेष उद्देश्य से दिया गया है। हमारी सनकों और इच्छाओं को संतुष्ट करने के लिए नहीं बल्कि उस काम को पूरा करने के लिए जो उसने हमें दिया है। हम किसी भी क्षेत्र में जहाँ हम चाहें इस अधिकार को उपयोग नहीं कर सकते हैं। यह अधिकार हमें "उस काम को पूरा करने के लिए जो उसने हमें दिया है" दिया गया है।

ऐ: उसने उन्हें नियुक्त किया

"फिर उसने बारहों को बुलाकर उन्हें सब दुष्टात्माओं और बीमारियों को दूर करने की सामर्थ्य और अधिकार दिया, और उन्हें परमेश्वर के राज्य का प्रचार करने और बीमारों को अच्छा करने के लिए भेजा।" लूका 9:1,2। "इन बातों के बाद प्रभु ने सत्तर और मनुष्य नियुक्त किए, और जिस-जिस नगर और जगह को वह आप जाने पर था वहाँ उन्हें दो-दो करके अपने आगे भेजा।" लूका 10:1।

ओ: उसने समीक्षा की और उनका समर्थन किया

"फिर प्रेरितों ने लौटकर जो कुछ हुआ था , उसको बता दिया।" लूका 9:10। "वे सत्तर आनन्द करते हुए लौटे और कहने लगे, हे प्रभु, तेरे नाम से दुष्टात्मा भी हमारे वश में हैं।" लूका 10:17।

उस मिशन से लौटने पर जिस पर यीशु ने चेलों को भेजा था, उन्होंने अपने सारे अनुभवों का विवरण उसे दिया। यीशु उनके साथ उनकी सफलता में खुश हुआ परन्तु उसने उन्हें सुधारा और व्यवस्थित भी किया, उदाहरणार्थ, "इससे आनन्दित मत हो कि आत्मा तुम्हारे वश में हैं, परन्तु इससे आनन्दित हो कि तुम्हारे नाम स्वर्ग पर लिखे हैं।" लूका 10:20

औ: उसने उनके आदेश में फेर-बदल किया

लूका 9:1-6; लूका 10:1-16

लूका 9 और लूका 10 की नियुक्ति में कई और छोटे-बड़े परिवर्तन हैं। हम इन भिन्नताओं का विशलेषन या विचार नहीं करेंगे परन्तु केवल इसलिए उनकी बात करेंगे क्योंकि महान नियुक्ति को करने में हमारे कार्यों में कभी-कभार कुछ परिवर्तन और सुधार लाने पड़ते हैं। कभी-कभी जिन लोगों को भेजा जाता है, या जिन लोगों के पास भेजा जाता है और उनके वातावरण और परिस्थिति के अनुसार तरीके और भूमिकाओं को व्यवस्थित करने की आवश्यकता होती है। हमें परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर व्यवस्थित करने और परिवर्तन करने से डरना नहीं चाहिए।

अं: उसने उन्हें पुन:नियुक्त किया

मरकुस 16:15; मत्ती 28-19

कुछ तरीकों से, महान नियुक्ति का देना चेलों की पुन:नियुक्ति दिखाता है। उनका आदेश जो उन्हें लूका 9 और 10 में मिला था उससे कुछ बदल गया है। उसी प्रकार हमारी नियुक्ति और भूमिका भी समय-समय पर व्यवस्थित की जा सकती है। एक पास्टर को एक शिक्षक के काम में, या एक सुसमाचार प्रचारक को एक मिशनरी के काम में बदला जा सकता है। हमें उस विशेष बुलावे और अनुग्रह में जो परमेश्वर हमारे जीवन में लाता है कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए।

अ:: वह न्याय आसन के सामने उनका पुररीक्षण करेगा

"क्योंकि अवश्य है कि हम सब का हाल मसीह के न्याय आसन के सामने खुल जाए, कि हर एक व्यक्ति अपने अपने भले बुरे कामों का बदला जो उसने देह के द्वारा किए हों पाए।" (2 कुरिं. 5:10)। एक दिन हम मसीह के न्याय आसन के सामने अपने भण्डारीपन का हिसाब देने के लिए खड़े होंगे। उस विस्मयकारी अवसर की तैयारी के लिए हमें प्रभु के साथ करीबी और अत्यावश्यक सम्पर्क बनाए रखना है ताकि हम उसकी आवाज सुन सकें। उसकी टिप्पणियाँ, और कभी-कभी उसके सुधार। हमें उसके सामने अपने हृदय खुले और सच्चे रखने की आवश्यकता है ताकि हम निरन्तर उसके मूल्यांकन को जानते हों। इस प्रकार हम अपने जीवन और काम उसके सामने बनाए रख सकते हैं जो उसे खुश करता है और जिससे वह बहुत संतुष्ट होता है।

हर कार्यकर्त्ता के लिए यह अच्छी बात है कि वह एक साथी सेवक की ओर उत्तरदायी हो। इससे हमारे जीवन और सेवा में सही-सही निगाह रखी जा सकती है। मसीह के हर सेवक को कम से कम एक साथी की आवश्यकता है जो उसके जीवन में ईमानदारी से और खुलकर बोल सकता है। इससे सुधार और व्यवस्था के लिए अच्छा अवसर मिलता है जिसकी हम सबको समय-समय पर आवश्यकता पड़ती है।

अध्याय चार – कलीसिया स्थापकों की प्रशिक्षण कक्षा

हम ने महान अधिकार की दो प्राथमिकताओं का जिक्र किया है।
1 – सुसमाचार फैलाना। "मनुष्यों के मछुवे" बनना।
2 - चेले बनाना। परमेश्वर की भेड़ों को चराना।

चेले बनाने का सबसे प्रभावशाली तरीका छोटे समूहों में है।

- यह बाइबल का तरीका है।
- यह यीशु का भी तरीका था।
- यह तरीका प्रारंभिक कलीसिया ने भी प्रयोग किया था।
- यह आज भी प्रभावशाली है। उदा. फुल गास्पल चर्च, स्यूल, दक्षिण कोरिया। (750,000 सदस्य!)

1: हर पास्टर के पास शिक्षार्थी (चेले) होने चाहिए

यीशु के अपने चेले थे। तीन, बारह और सत्तर।
प्रेरितों के अपने चेले थे, उदा., पौलुस और तीमुथियुस।
तीमुथियुस ने दूसरे "विश्वासयोग्य पुरुषों" को चेला बनाया।
2 तीमु. 2:2 "और जो बातें तू ने बहुत से गवाहों के सामने मुझ से सुनी हैं, उन्हें विश्वासी मनुष्यों को सौंप दे; जो दूसरों को भी सुनाने के योग्य हों।"

पौलुस
I
तीमुथियुस
I
विश्वासयोग्य पुरुष
I
दूसरे भी

इस शैली की आज भी आवश्यकता है।

2: **कोई भी कलीसिया स्थापना कार्यक्रम या सेवा अगुआई प्रशिक्षण कोर्स इसे करने में आपकी सहायता कर सकता है**

यह स्थानीय कलीसिया में प्रयोग के लिए बनाया गया है।
यह छोटे समूहों में प्रयोग के लिए बनाया गया है।
यह इरादा किया गया है कि स्थानीय पास्टर प्राध्यापक हो।
इसका जोर सम्बन्धी न कि शैक्षिक होना चाहिए।
इसका जोर है: मनुष्यों को जीतने, कलीसिया की बढ़त, कलीसिया स्थापना पर।
इस संदर्भ में चेला बनाया गया व्यक्ति स्थानीय कलीसिया में अधिक उपयोगी बनेगा।
हर पास हुआ व्यक्ति सेल या ग्रह-कलीसिया या एक नई शाखा कलीसिया आरंभ करने के लिए एक पास्तरीय प्रत्याशी बनेगा।

3: **अपने सम्भावित अगुवों को चुनना**

सामान्यतः अपने मण्डली के सदस्यों में से।
नेकनामी पुरुष। मण्डली में उदाहरण।
व्यक्ति जिन्होंने कुछ हद तक अपने को प्रमाणित किया है। नवदीक्षित या नए विश्वासी नहीं।
व्यक्ति जो सिखानेयोग्य, आज्ञाकारी, अनुकूल, उपलब्ध है।
व्यक्ति जिनका एक अच्छा, खुश और विश्वासयोग्य, दीन, ईमानदार रवैया है।

4: **उन्हें प्रार्थनापूर्वक चुनो**

प्रार्थनापूर्वक ध्यान देने से आपको सम्भावना का पता लगाने में सहायता मिलती है जो स्वाभाविक तौर से प्रत्यक्ष न होगी।

5: **उन्हें सावधानी से चुनो**

उनके पास जाने से भी आप एक प्रकार की वचनबद्धता बना रहे हो।
बाद में वापस लेने से अच्छा है उनके पास जाओ ही मत।
आरंभ में उनके साथ हो जाओ। उन्हें जानो।
उन्हें चेला बनाने के लिए वचनबद्ध होने से पहले उनकी कीमत जान लो।

6: **निश्चित कर लो कि वे अनुकूल हैं**

आपके, आपके दर्शन और आपकी अगुआई की शैली के साथ।
आपकी कलीसिया के दर्शन और कार्यक्रम के साथ।
उस समूह के साथ जिसके वे अंग बनेंगे।
आप तब ही उन्हें चेला बना पाएँगे जब वे आपकी कदर करते, भरोसा करते और सहयोग देते हैं।

7: **निश्चित करो कि वे शिक्षणीय हैं**

क्या वे सीखना चाहते हैं ?
क्या वे सीखने के इच्छुक हैं ?
क्या वे ऐसे प्रशिक्षण की कीमत देंगे ?
कीमत सच्ची वचनबद्धता, बलिदान, अनुशासन और कड़े परिश्रम की है।

8: **क्या वे सच में "मजदूर" हैं ?**

यीशु ने हमें "मजदूरों" के लिए प्रार्थना करने को कहा था। (लूका 10:2)
परमेश्वर को ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो उसके साथ काम करने को समर्पित हैं।
परमेश्वर को ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो काम से डरते नहीं हैं।
परन्तु उनकी भी जो स्पष्ट जानते हैं कि, "यदि घर को यहोवा न बनाए, तो उसके बनानेवालों का परिश्रम व्यर्थ होगा।"

9: चरित्रवान् लोगों को चुनो

चरित्र व्यक्तित्व से अधिक महत्त्व का है, परन्तु दोनों को पाना सम्भव है।
चरित्र है जो आप हैं, व्यक्तित्व है जो आप करते हैं।
चरित्र अन्दरूनी है, व्यक्तित्व बाहरी है।
चरित्र अन्दर गहराई में है, व्यक्तित्व ऊपरी है।
मसीही चरित्र आत्मा के फल का प्रमाण और विश्वासी के जीवन में इसका विकास और परिपक्वता है।

10: एक अच्छे रवैये का महत्त्व

रवैया हमारा स्वभाव, संयम, ढंग है। यह जो "आत्मा" हम में है। ऐसे व्यक्तियों को चुनने का प्रयत्न करो जिनका एक अच्छा, स्वस्थ्य, सकारात्मक दृष्टिकोण है। लोग जो संयम और स्वभाव में काफी सन्तुलित हैं। "आत्मा के फल" (गलातियों 5:22-23) के विकास का व्यक्ति के स्वभाव पर सीधा प्रभाव पड़ता है। एक खराब रवैया एक ऐसे चरित्र का संकेत देता है जो पूरी तरह परमेश्वर की ओर अर्पित और समर्पित नहीं है। वहाँ सदा अपनी इच्छा और विद्रोह का आभास होता है।

11: ऐसे पुरुषों को चुनो जिनका घर व्यवस्थित है – (1 तीमु. 3:4)

परमेश्वर चाहता है कि उसके सेवक कम से कम उनके अपने परिवारों और घरानों को ठीक से और प्रशंसनीय तरीके से चलाने के योग्य हों। वह कहता है कि यदि सेवा के लिए एक प्रत्याशी अपने परिवार को ही ठीक से नियंत्रित नहीं कर सकता है, तो उससे एक मण्डली का ठीक से शासन करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है।
एक पुरुष के चरित्र के अनेक दिलचस्प और अत्यावश्यक पहलू जिस तरीके से वह अपनी पत्नी और परिवार के साथ बर्ताव करता है प्रकट होते हैं। यदि एक पुरुष उसकी पत्नी से उचित रूप से प्रेम और देखभाल नहीं कर सकता है, तो वह एक मण्डली से प्रेम और देखभाल कैसे करेगा? यदि एक पुरुष अपने घराने का कार्यकुशलता के साथ प्रबंध और देख-रेख नहीं कर सकता है तो वह एक विस्तारित परिवार की जो एक मण्डली है उचित रूप से देख-रेख कैसे कर सकेगा? यदि आप जानना चाहते हैं कि जिस व्यक्ति का आप सेवा के लिए विचार कर रहे हैं वह कैसा व्यक्ति है, तो उसकी पत्नी और परिवार पर एक नज़र डालना एक अच्छा विचार होगा क्योंकि वे उसकी पास्तरीय कुशलता के परिणाम हैं।

12: हर एक से अलग-अलग बात करो

अपना दर्शन, उद्देश्य और योजना बताओ।
अपना हृदय और परमेश्वर और उसके राज्य के लिए इसके उत्साह के बारे में बताओ।
उनकी प्रतिक्रिया की उत्तमता का पता लगाओ।
आत्मा की सदृशता पर ध्यान दो।

13: समूह के साथ इकट्ठे बात करो

प्रस्तावित योजना समझाओ।
इसकी सम्पूर्ण रूप से चर्चा करो।
सबसे उपयुक्त प्रबंधों का पता लगाओ।
कब? कहाँ? कितनी-कितनी बार? कितनी देर?
इन मामलों पर मिलकर फैसले करने का प्रयत्न करो।

14: सबसे उपयुक्त स्थान

कलीसिया भवन का कोई भाग, यदि उपलब्ध है तो, सबसे अच्छा होगा।
यह कार्यक्रम को स्थानीय कलीसिया की क्रियाओं से जोड़ता है।
उपयुक्त साज-समान को उपलब्ध कराता है, जैसे कि, ओएचपी आदि।
कोई भी स्थान जहाँ एकान्तता मिल सकती है स्वीकार्य है, जैसे कि, एक भाड़े का छोटा कमरा।

15: सबसे उपयुक्त समय

यह सबसे अधिक आपके विद्यार्थियों की नौकरी-धंधे पर निर्भर करता है, विशेषकर यदि वे विवाहित, परिवारिक लोग हैं। उस समय का पता लगाना जो आपके अधिकाँश विद्यार्थियों के लिए सबसे उपयुक्त होगा फैसले में सहायता करेगा।

16: सबसे प्रभावशाली शिक्षण शैलियाँ

सम्बंध बनाओ।
वचनबद्धता की माँग करो।
कुछ बलिदानों की अपेक्षा करो।
अपने शिक्षण के सिद्धान्तों को आदर्श बनाओ।
अपने विद्यार्थियों को सम्मिलित करो। कार्यशालाएँ, भागलेना, अभ्यास।
एक समूह बनाओ जिसमें परस्पर आदर और वफादारी हो।

वार्तालापः प्रभावकारिता और स्पष्टता की आवश्यकता

मूल विचारः "बुद्धिमान लोग बातें करने से ज्ञान को फैलाते हैं, परन्तु मूर्खों का मन ठीक नहीं रहता।" (नीतिवचन 15:7)

परिचय

वार्तालाप की परिभाषा हो सकती है: 'भाषा और संकेतों का प्रयोग; व्यक्तियों के बीच विचारों / जानकारी का एक ऐसी भाषा में संचारण जिसे दोनों जानते हैं; व्यवहार प्रभावित करने का एक साधन; विचारों, ज्ञान, आदि का प्रदान करना, व्यक्त करना या आदान-प्रदान करना (बोलकर, लिखकर, या संकेत द्वारा); या सामान्य भागीदारी।'
वक्तव्यः 'वार्तालाप की शक्ति अगुआई करने की शक्ति है', बिलकुल सच है। फिर भी, प्रभावशाली वार्तालाप शब्दों को बोलने, किसी को बताने कि क्या बोला/सोचा जाए, या एक व्यक्ति से काम करवाने से अधिक है – यह एक से दूसरे व्यक्ति को समझ संचार करना और सुरक्षित करना है। याद रहे कि समझ केवल कुछ जानने से काफी दूर है – यह व्याप्ति है (या उसी अर्थ को बताना है)। उदाहरणार्थ, यदि हम किसी व्यक्ति को कुछ निर्देश देते हैं तो हम चाहते हैं कि वह व्यक्ति वही करे जो हम ने चाहा था वह करे (अर्थात्, हम चाहते हैं कि वह उसे समझे जो हम चाहते हैं करना है, जैसा हम समझते हैं वह समझे)।

"इसी प्रकार यदि निर्जीव वस्तुएँ भी जिनसे ध्वनि निकलती है, जैसे बाँसुरू या बीन, यदि उनके स्वरों में भेद न हो तो जो फूँका या बजाया जाता है, वह कैसे पहचाना जाएगा? और यदि तुरही का शब्द साफ न हो, तो कौन लड़ाई के लिए तैयारी करेगा? ऐसे ही तुम भी यदि जीभ से साफ-साफ बातें न कहो, तो जो कुछ कहा जाता है वह कैसे समझा जाएगा? तुम तो हवा में बातें करनेवाले ठहरोगे। जगत में कितने ही प्रकार की भाषाएँ क्यों न हों, परन्तु उनमें से कोई भी बिना अर्थ के न होगी। इसलिए यदि मैं किसी भाषा का अर्थ न समझूँ, तो बोलनेवाले की दृष्टि में परदेशी ठहरूँगा और बोलनेवाला मेरी दृष्टि में परदेशी ठहरेगा।" (1 कुरिन्थियों 14:7-11)

वार्तलाप को असल में प्रभावशाली होने के लिए, से दिल से दिल, आत्मा से आत्मा, और मन से मन तक होना चाहिए। इसलिए जो लोग प्रभावशाली तरीके से वार्तलाप करना चाहते हैं उन्हें वास्तविक और जानकार होना हैः वे कौन हैं (और वे दूसरों के सामने कैसे पेश करते हैं); वार्तलाप का संदर्भ; और दूसरे व्यक्ति/लोगों की ओर। असल में, उन्हें उनकी ओर खुले होना है जिनके साथ वे बातचीत करने का प्रयत्न कर रहे हैं।

अच्छे संचारक लचीले और प्रभावनीय होते हैं। वे सदा उनको देखते रहते हैं जिनके साथ वे बातचीत कर रहे हैं और, परिणामस्वरूप, जो वे कहते और करते हैं उस में परिवर्तन करते रहते हैं। वे विभिन्न संदर्भ/अवसर/लोकाचार/स्पर्श/लोग/मूड को ध्यान में रखते हैं। वे जानते हैं कि वे केवल शब्दों से ही नहीं, बल्कि जो वे कर रहे और जो वे हैं उससे भी वार्तलाप करते हैं।

वार्तलाप का नमूना

'एक अच्छे विचार जैसा कुछ भी अदभुत नहीं है; एक अच्छा विचार जिसे बताया नहीं जा सकता है कुछ भी दुखद नहीं है।'
नीचे एक सरल परन्तु प्रभावशाली नमूना दिया गया है जिसका यदि आप अध्ययन करें तो वार्तलाप की प्रक्रिया को बेहतर समझ सकेंगे।

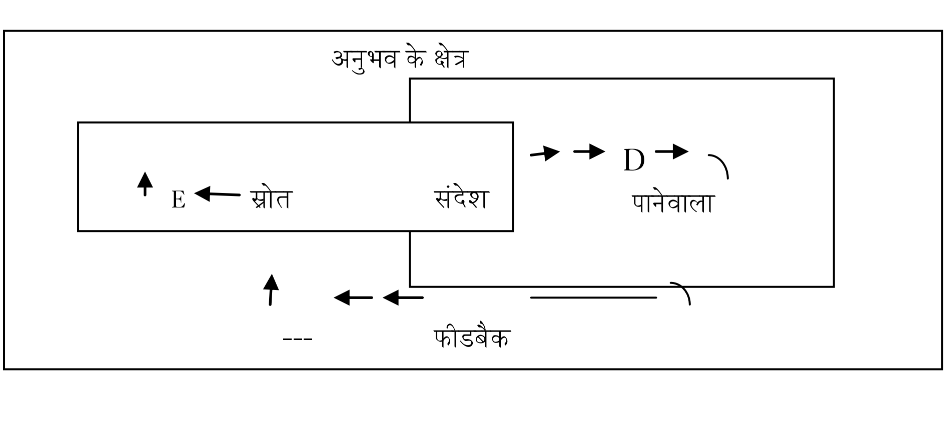

स्रोत: अर्थात्, संचारक का मन। यहीं पर बतानेवाला विचार आरंभ होता है। (नोट: एक विचार जो स्रोत के मन में ही रहता है किसी दूसरे के कोई मूल्य का नहीं है।)

E = कूट बनाना: इस प्रक्रिया से स्रोत द्वारा तय किया गया संदेश बोला या प्रतीक के रूप में समझाया जाता है ताकि किसी दूसरे को बताया जा सके। (यहाँ खतरे हो सकते हैं, जैसे कि अनाप-शनाप; नारे; अस्पष्टता; अपर्याप्त अभिव्यक्ति; और जो हमारा अर्थ है वह नहीं कहना या जो कहते हैं वह अर्थ नहीं था।)

पानेवाला: अर्थात्, व्यक्ति जिसके लिए संदेश है।

D = कूट खोलना: यह प्रक्रिया है जिसके द्वारा पानेवाला संदेश को पाता और समझता है। (नोट: वार्तलाप एक ऐसे प्रकार से होना चाहिए जिससे पानेवाला समझ सके।)

फीडबैक: इससे स्रोत को जानने में सहायता मिलती है कि संदेश पानेवाले को मिला था और वह समझा था या नहीं (उदा. संदेश से उठ रहा एक अनुबोधक प्रश्न, या एक व्यक्ति का उठना और चले जाना)। संचारकों को फीडबैक को प्रोत्साहन देना चाहिए पता लगाने के लिए कि उनका उद्देश्य पूरा हो रहा है। आप कितने लोगों को जानते हैं जो नहीं जानते कि उनका दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, अर्थात्, जो वे कहते और जैसे वे जीते हैं उसके द्वारा। याद रहे, मिल रहे फीडबैक से संचारक को भावी संदेशों (विशेषकर फीडबैक देनेवाले व्यक्तियों को दिए जाने वाले संदेश) को बेहतर कूट बनाने में सहायता मिलनी चाहिए।

अनुभव के क्षेत्र: यह संदर्भ/वातावरण है जिसमें कोई संदेश दिया और/या पाया जाता है। जब आप किसी से वार्तलाप कर रहे होते हैं तो आप सारे अनुभव के क्षेत्र को लेकर दूसरे व्यक्ति के अनुभव के क्षेत्र के साथ गूथ रहे होते हैं। कूट बनाने और कूट खोलने दोनों के वार्तालाप के स्तरों में इसे ध्यान में रखना होता है। एक परिपक्व, आत्मिक रूप से बुद्धिमान मसीही दूसरों के साथ बातचीत में उसके अपने और दूसरों के अनुभव के क्षेत्रों को ध्यान में रखेगा। इस क्षेत्र में ध्यान में रखने वाले कुछ तत्त्वों में शामिल हैं: एक व्यक्ति कौन है (क्योंकि इसका वे जो सुनने वाले हैं उस पर असर पड़ेगा); समय; मूड; पाने/समझने की योग्यता; और वातावरण।

व्यक्तिगत वार्तालाप अपने भीतर से कुछ लेकर उसे किसी दूसरे के भीतर रखना है। यह मात्र शब्द नहीं हैं। असल में, शब्द बिजली की तार का केवल भाग हैं जो यह सब ले जाता है। प्रभावशाली तरीके से वार्तालाप करने के लिए, संदेश का कूट खोलना होता है जो स्रोत पर निर्भर होता है। तब इसे दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाना और उसे कूट खोलना होता है। जिस हद तक पानेवाला संदेश को स्पष्ट रूप से कूट खोलेगा उसी हद तक प्रभावशाली वार्तालाप हो सकेगा। अनेक बार विभिन्न तत्त्व जैसे कि, परिस्थितियाँ, मूड, भावनाएँ आदि, कूट बनाने या कूट खोलने की प्रक्रिया में हस्तक्षेप करते हैं और प्रभावशाली वार्तालाप को रोकते/बाधा डालते हैं।

प्रभावशाली वार्तालाप प्राप्त करना अकसर कठिन होता है। व्यक्ति से व्यक्ति संदेश तब आरंभ होता है जब स्रोत कुछ कहना चाहता है। फिर इसमें जो स्रोत वास्तव में कहना चाहता है (अर्थात्, शब्द या प्रतीक जो वे दूसरे व्यक्ति से वार्तालाप करने में प्रयोग करते हैं) उससे अकसर (कुछ हद तक) परिवर्तन होता है। तब पानेवाला संदेश को कुछ बिगाड़ देता है क्योंकि वे उसे जो कहा गया था उसे सुन नहीं पाते; या जो स्रोत ने कहा था उससे कुछ भिन्न समझते हैं (सम्भवत: क्योंकि वे कुछ और सुनना चाहते हैं, या क्योंकि वार्तालाप में का किसी शब्द का अर्थ जो स्रोत समझता है उसका अर्थ है उससे भिन्न अर्थ समझते हैं)। प्रभावशाली वार्तालाप का रहस्य इन विकृतियों को कम करना है, ताकि पानेवाला समझता है जो स्रोत कहना चाहता था।

वार्तालाप का प्रभाव

वार्तालाप दो-तरफा प्रक्रिया है, अर्थात् संचारण और प्रतिक्रिया, जिसे रवैया, क्रिया और समझ को प्रोत्साहन देने के लिए बनाया है। नीचे एक सूची दी गई है जो वार्तालाप कर सकता है:

सूचित करना	प्रदान करता है	उत्तर/गुप्त बातों को निकालता है
प्रेरणा देना	प्रदान करता है	प्रेरणा/दर्शन
हटाना	प्रदान करता है	राहत (उदा. चोटों से, आदि)
शिक्षा देना	प्रदान करता है	सहायता
सुधारना	प्रदान करता है	अनुशासन
स्पष्ट करना	प्रदान करता है	स्पष्टीकरण/दिशा
व्याख्या करना	प्रदान करता है	अन्तर्दृष्टि
जोड़ना	प्रदान करता है	सामान्य आधार
मिलाना	प्रदान करता है	सम्बंध
संतुष्ट करना	प्रदान करता है	भागीदारी
सामना करना	प्रदान करता है	चुनौती/संकल्प
शामिल करना	प्रदान करता है	संगति

वार्तालाप के साधन

वार्तालाप के दो मूल साधन हैं - औपचारिक और अनौपचारिक

(अ) **औपचारिक वार्तालाप**

यह है जब हमारे विचारों/सोच/भावनाओं को दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए शब्दों या पत्रों का प्रयोग किया जाता है। यह मेमो बनाना, पत्र लिखना है, प्रचार/शिक्षा देते समय जो शब्द हम प्रयोग करते हैं, या एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक संदेश, विचार और सोच भेजने की एक प्रक्रिया है। इस प्रकार के वार्तालाप को शाब्दिक कहा जा सकता है।

(आ) **अनौपचारिक (बिना-शब्द) वार्तालाप**

यह वार्तालाप की एक महत्त्वपूर्ण किस्म है जिसे मानसदर्शन कहा जाता है। हालाँकि बातचीत करने के शब्द मुख्य साधन होते हैं फिर भी बिना-शब्द वार्तालाप के अनेक तत्त्व हैं जिन पर विचार किया जाना चाहिए। हमारे बारे में सबकुछ वार्तालाप करता है (इसलिए हमें उस सब पर विचार करना चाहिए जो हम बोलते हैं)! असल में, हमारे द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों में कई व्यक्तिक तत्त्व जैसे कि हमारा मनोभाव, हमारी भावनाएँ, और हमारा संदर्भ प्रकट करता है। वार्तालाप जो हम बोलते हैं उससे कहीं अधिक है।

एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने लिखा, 'कुछ मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि शारीरिक भाषा इतनी महत्त्वपूर्ण है कि किसी भी संदेश का भावात्मिक प्रभाव 55% चेहरे और शरीर का होता है, 38% स्वर-शैली, और केवल 7% शब्दों का प्रयोग होता है (अर्थात् 93% प्रस्तुतिकरण और केवल 7% शब्द)। इसका अर्थ यह है कि हमारे शरीर अकसर हमारे शब्दों से ऊँचा बोलते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि यदि हमारे शरीर हमारे शब्दों के विपरीत होते हैं तो जिनसे हम बातचीत कर रहे हैं उन्हें हमारे शब्दों को समझने या विश्वास करने में कठिनाई होगी। अनौपचारिक वार्तालाप में सम्मिलित कुछ तत्त्वों में सम्मिलित है:

- हम कुछ कैसे कहते हैं, उदाहरणार्थ, कठोर/नम्र/घीमे/रुकते/छोड़ देते।
- हमारी मुद्रा, अर्थात् हम शरीर से कैसे प्रस्तुत करते हैं सकारात्मक/नकारात्मक अभिव्यक्ति प्रकट करता है।
- हमारे चेहरे की अभिव्यक्ति, उदाहरणार्थ, मुस्कराहट और मुँह बनाना।
- हम अपने हाथों और पैरों के साथ क्या करते हैं, उदाहरणार्थ, अंगुलियाँ बजाना, पैरों से थपथपाना, परेशान चहल-कदमी।
- जिस प्रकार हम चलते हैं/हमारा प्रस्तुतिकरण और हमारी मुद्रा, उदाहरणार्थ, भरोसे के साथ, संकोच के साथ, आदि।

- छूना, उदाहरणार्थ, गले लगाना, हाथ मिलाना, पीठ थपथपाना।
- जिस प्रकार हम कपड़े पहनते हैं।
- हमारे कार्य और जिस प्रकार हम जीते हैं (क्योंकि वे हमारे शब्दों से अधिक जोर से बोलते हैं)।
- आँखें मिलाना।
- हमारी रुचियाँ/अवरुचियाँ।
- हमें हमारे ईर्द-गिर्द कितनी जगह चाहिए।
- हमारी उपस्थिति/अनुपस्थिति।

व्यक्ति से व्यक्ति वार्तालाप

"मनुष्य के मन की युक्ति अथाह तो है, तौभी समझवाला मनुष्य निकाल लेता है।" (नीतिवचन 20:5)

बहुत से लोग जो वे अपने अन्दर अनुभव करते हैं या जो विचार उनके मन में हैं आदि दूसरे लोगों को समझाना चाहते हैं (या शब्दों में डालना चाहते हैं)। मनुष्य के अन्दर एक जीवित पुस्तक होती है जो चाहती है कि उसे लिखा जाए। हम में से अधिकाँश को जो ऐसा करने से रोकता है वह यह है कि हम में इन विचारों को व्यक्त करने का साहस, स्पष्टता या क्षमता की कमी होती है। महान विचारक अकसर वे लोग होते हैं जिनके पास जो उनके अन्दर है उसे व्यक्त करने का वरदान होता है। व्यक्ति से व्यक्ति वार्तालाप में दो पहलू सम्मिलित होते हैं: अन्तःव्यक्तिक और अन्तर-व्यक्तिक संबंध।

अन्तःव्यक्तिक सम्बंध: यह बताता है जो हमारे अन्दर, विचार करने, अनुभव करने, व्यक्त करने वाले लोगों के समान हो रहा है। हमें अपने अन्दर जो हो रहा है उसे नियंत्रण में करना है, तब ही हम जो किसी दूसरे के अन्दर हो रहा है उसे नियंत्रण में करने के योग्य हो सकेंगे।
अन्तर-व्यक्तिक सम्बंध: यह बताता है जो हमारे और दूसरे लोगों के बीच हो रहा है जैसे हम दूसरे लोगों के साथ व्यवहार करते हैं। इसे दो भागों में बाँटा जा सकता है; हम और दूसरा व्यक्ति।

(अ) हम

"मसीही सेवा के संदर्भ में, इससे पहले कि संतोषजनक और लाभप्रद समतल सम्बंध विकसित किए और बनाए रखे जाएँ कलीसिया के सिर के रूप में मसीह के साथ एक उचित सीधा सम्बंध अत्यावश्यक है।"
हमें जानना है कि हम अपने हृदय में स्वतंत्र हैं इससे पहले हम दूसरे लोगों के साथ स्वतंत्र हो सकें। हमें इस स्थिति में होना है, क्योंकि इससे पहले हम किसी दूसरे के साथ वार्तालाप कर सकें हमें अपने अन्दर सही स्थिति में होना आवश्यक है। प्रभावशाली वार्तालाप के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों में सम्मिलित है:

- जाने जाओ और हम जानेंगे।
- हमारे अन्दर हल नहीं किए गए तनाव अच्छे वार्तालाप को बहुत प्रभावित करते हैं, उदाहरणार्थ, चिन्ता, डर, क्रोध, झूठी तुलनाएँ, क्षमा नहीं करना, गलत रवैये, छुपाना, गलतफहमियाँ, उलझन, परेशानी, अन्यथा-कथन आदि।
- थकान प्रभावशाली वार्तालाप को प्रभावित करता है, मुख्य रूप से हम दूसरे व्यक्ति को ठीक से सुन नहीं पाते हैं।
- व्यक्तित्व की समस्याएँ जैसे कि लज्जा। हमें अपने गुणों और कमज़ोरियों को पहचानना है और, यदि आवश्यक हो तो सहायता लेनी है।
- पूर्व-विचार।
- दूसरे व्यक्ति/परिस्थिति की ओर रवैया। हमें पूर्वग्रह पता होने चाहिए।
- माध्यम को प्रक्रिया से उलझाना। केवल इसलिए कि आपने शब्द इस्तेमाल किए हैं, उपदेश दिया है, एक पत्र लिखा है आदि, इसका अर्थ यह नहीं है कि आपने प्रभावशाली वार्तालाप प्राप्त किया है। असल में, हो सकता है आपने जो आशा की थी उससे बिलकुल विपरीत ही प्राप्त करें।

जब हम प्रभावशाली तरीके से वार्तालाप करने का प्रयत्न कर रहे होते हैं तो कुछ मूल सिद्धान्त जिनमें हम सम्मिलत होते हैं, उनमें हमें होने की आवश्यकता है:

- खुला (जब तक हम खुलते नहीं, कोई भी प्रभावशाली वार्तालाप नहीं हो सकता है)।
- ईमानदार (हमें कभी भी बढ़ा-चढ़ाकर बातें नहीं करनी या छुपाना नहीं है)।
- स्पष्ट (जो हम कहते हैं वह नहीं, जो वे सुनते हैं वह है)।
- जानकारी हो (अपनी और दूसरे लोगों की)।
- छेद्य (कभी-कभी, हमें स्वीकार करने की आवश्यकता है कि हम गलत/अनजान/जरूरत में/आदि थे)।
- ग्रहणशील (हमें कम से कम उतना सुनना चाहिए जितना हम बोलते हैं)।

(आ) व्यक्तिगत घटक जो हमारे वार्तालाप को प्रभावित करते हैं

जबकि हमें कहने की आवश्यकता है कि मसीही के लिए माध्यम संदेश नहीं है, फिर भी, समय होते हैं जब माध्यम संदेश को प्रतिकूल तरीके से प्रभावित करता है। दूसरी ओर, ऐसे समय भी होते हैं जब हमारा व्यक्तिगत रूप-रंग आदि अच्छे वार्तालाप को योग्य बनाता है। सेवा और सार्वजनिक वार्तालाप में जीवन के अनुशासन और व्यक्तिगत प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है; और यह चीजें खुले में नहीं परन्तु हमारे जीवनों के निजि क्षेत्रों में आरंभ होती हैं। नीचे कुछ और निजि घटक दिए गए हैं जो अच्छे अन्तर-व्यक्तिक वार्तालाप में बाधा डाल सकते/सहायता कर सकते हैं:

- रूप-रंग: आजकल इतने विभिन्न प्रकार की पसन्द और शैलियाँ हैं कि इन क्षेत्रों में सुनिश्चित मार्गदर्शन देना असम्भव है। फिर भी मुख्य रूप से उन मसीहियों से जो लोगों के साथ व्यवहार करते हैं साफ-सफाई और एक सामान्य अच्छी व्यक्तिगत प्रस्तुतिकरण की आशा की जा सकती है। कपड़ों की शैली जैसी बातों पर नियम बनाना कठिन है, परन्तु ऐसे कपड़े पहनना जो सब जगह स्वीकार किए जाते हैं और सब संदर्भों में उचित हों सहायक होगा। बेशक, कभी-कभी आपको उस प्रकार के कपड़े पहनने होंगे जिस संदर्भ में आप जा रहे हैं। याद रहे, जो आप पहन रहे हैं किसी प्रकार की बात बताने वाले हैं। क्या पहनना है का चुनाव करते समय कुछ तत्त्वों को ध्यान में रखा जा सकता है, जैसे कि:
    - जिस प्रकार के कपड़े पहनने का आप चुनाव कर रहे हैं उनका आपके और जिनके साथ आप वार्तालाप करने वाले हैं उनकी मनोदशा पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
    - जिस संदर्भ में आप वार्तालाप करने वाले हैं वहाँ का कपड़ों का नियम क्या है (याद रहे, समाज कपड़ों को उसके नियमों को लागू करने और व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए इस्तेमाल करता है)?
    - आप जो पहन रहे हैं उसका आपकी मुद्रा और चाल पर क्या प्रभाव पड़ेगा?
    - जो आप पहन रहे हैं परमेश्वर को महिमा लाता है, और क्या यह आपकी सेवा में बाधा डालता है या उसे बढ़ाता है (अर्थात् क्या यह मसीह के साथ आपके सम्बंध का गवाह/प्रतिबिम्ब है)?
    - स्त्रियों के लिए, वस्त्र और मेक-अप के बारे में संकोच और संतुलन आवश्यक हैं।

- निजि स्वास्थ्य: सेवा और सार्वजनिक वार्तालाप में लोगों के करीब जाना पड़ता है। गंदी साँस, सड़े दाँत, शरीर की गंध, बदबूदार कपड़े, चिकट या बिखरे बाल, उड़ते कालर, बड़े-बड़े और गंदे नाखून आदि लोगों को दूर धकेलते हैं और प्रभावशाली वार्तालाप को बहुत कम कर देते हैं। इन क्षेत्रों में ही आपकी कुछ आदतों पर नज़र पड़ेगी। धूम्रपान एक विशिष्ठ उदाहरण है। साँस में सिगरेट की बदबू परस्पर वार्तालाप की सफलता को नष्ट कर देता है। यह भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है कि निजि स्वास्थ्य में हम दूसरे सिरे पर न जाएँ (एक चलते-फिरते सुगन्धशाला या दवाइयों की दुकान के साथ सफलतापूर्वक वार्तातालाप करना कठिन होता है)।

- व्यक्तित्व की विशेषताएँ: हम सब में होते हैं! महत्त्वपूर्ण बात उन्हें खुद में पहचानना और उन्हें अपने वार्तालाप में, एक बाधा के बजाय, एक सहायक तत्त्व बनाने का (परमेश्वर की सहायता से) प्रयत्न करना है। ध्यान दो कि मूल चरित्र की कमियों या विशेषताओं से निपटना या निकालना अकसर काफी कठिन होता है। सबसे अच्छा उन्हें पहचानना और अनुशासित करना है ताकि सेवा में उन्हें सफलतापूर्वक लगाया जा सके।

- निवास-स्थान: एक व्यक्ति का निवास-स्थान अकसर व्यक्ति का प्रतिबिम्ब होता है। उनके घर, आफिस, मेज या कमरे पर नज़र डालो और आप व्यक्ति के जीवन का एक लघु जगत देखोगे। निवास-स्थान में अस्तव्यस्तता या गंदगी, वार्तालाप/सेवा के संदर्भ में व्यक्ति के प्रस्तुतिकरण के विषय में कुछ कहेगी। पूर्ण समय सेवकों के लिए

एक महत्त्वपूर्ण निवास उनका आफिस है। हर व्यक्ति जो उसमें आएगा बिना कोई शब्द कहे बातें किया जाता पाएगा (अर्थात्, क्या यह अनौपचारिक, विश्रामदेह, अस्तव्यस्त, अलग, अधिकारवादी, आदि है?)। मसीही अगुवों को उनके आफिस व्यवस्थित रखना सीखना है ताकि वे वहाँ होने वाले किसी भी प्रकार के वातावरण से सही परिणाम पाने के लिए तुरन्त सही वातावरण प्रदान कर सकते हैं (उदाहरणार्थ, मेज के पीछे बैठ सकें जिससे पता चलता है कि यह व्यवसायिक सभा है जिसमें समय सीमित है; या मेज से परे कुर्सी पर मिलने आए व्यक्ति के साथ बैठ सकें जिससे पता चलता है कि यह एक अनौपचारिक मुलाकात है या आप एक लम्बे समय के लिए उपलब्ध हैं)।

(इ) दूसरा व्यक्ति

हमें सदा याद रखने की आवश्यकता है कि हम शून्य में वार्तालाप नहीं करते हैं -- हम एक दूसरे व्यक्ति के साथ वार्तालाप करते हैं जो बिलकुल हमारे समान है। जो हम कहते हैं उसे दूसरे व्यक्ति के अनुभव, क्षमता, परिस्थितियों, मनोदशा, पूर्वग्रहों और पूर्वधारणाओं की जाली में से पाया जाता है। इसलिए हमें फीडबैक को प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे दूसरे व्यक्ति को जाना जा सके और पता चले कि हमारे वार्तालाप का क्या प्रभाव पड रहा है। व्यक्ति से व्यक्ति वार्तालाप में हमें दूसरे व्यक्ति की इन बातों पर विचार करना है:

- व्यक्तिक सन्तुलन (अर्थात् हमें क्या लगता है वार्तालाप के समय उनकी अन्दरूनी स्थिति कैसी है)।
- पूर्वग्रह जाली (अर्थात् वे भावात्मक, सामाजिक, सिद्धान्त, तत्त्व-ज्ञान आदि के रूप से क्या विश्वास करते हैं)।
- समझने की क्षमता (अर्थात् जब हम कुछ शब्द, चित्र, भाषा आदि इस्तेमाल करते हैं तो क्या दूसरा व्यक्ति उन्हें वैसा ही समझता है)।
- पूर्वकल्पित विचार (अर्थात् क्या दूसरा व्यक्ति वही सुनेगा जो आप कह रहे हो)।
- प्रासंगिक वातावरण (अर्थात् क्या ऐसे तत्त्व हैं जो प्राप्ति को प्रभावित करेंगे, उदाहरणार्थ, बहुत गर्मी है या बच्चों का शोर है)।
- स्रोत/भेजनेवाले के रूप में हमारी ओर रवैया (उदाहरणार्थ, वे हमारे बारे में क्या सोचते हैं और वार्तालाप के समय उनकी हमारी ओर प्रतिक्रिया कैसी है)।
- नाम (क्योंकि बहुत से लोग दूसरे लोगों को उनके नाम इस्तेमाल करते सुनना चाहते हैं)।

(ई) मार्ग

"वार्तालाप बताना नहीं है। वार्तालाप पूछना, बताना, सुनना और फिर समझ उत्पन्न करना है।"

जो हम वार्तालाप करना चाहते हैं और जो हम दूसरे व्यक्ति के विषय में जानना चाहते हैं उनके बीच एक सीधा संबंध है। मामला जितना पेचीदा हो दो पक्षों के बीच उतनी अधिक समझ की आवश्यकता होती है। उदाहरण के तौर पर, 'कृपया दरवाजा बंद करो!', इसके लिए दूसरे व्यक्ति के विषय में अधिक जानकारी की आवश्यकता नहीं है, जबकि काऊन्सलिंग के समय आवश्यकता पड़ सकती है।

जब एक अगुवा भाषण कर रहा या प्रचार कर रहा होता है, तब भी इसे कभी भी एकालाप नहीं मानना चाहिए। सभा/मण्डली/कक्षा में बैठे हुए सब को आप के साथ भाग लेना चाहिए। असल में, केवल वही जो करते हैं, आप जो कह रहे हैं उसका पूरा लाभ उठा पाएँगे। अच्छे संचारक उनके सुननेवालों से सदा एक प्रतिक्रिया की तलाश में होते हैं। वे सदा पता लगा रहे होते हैं कि जो वे कह रहे हैं सुननेवालों के साथ संबंध बना रहा है या नहीं (उनके शरीर की भाषा पर ध्यान देकर, आदि) और, वे अकसर अपने आप से और उनसे जिनसे वे वार्तालाप करने का प्रयत्न कर रहे हैं पूछते रहते हैं (उदाहरणार्थ, क्या ये लोग मुझ पर भरोसा कर रहे हैं या क्या वे किसी चालबाजी/अनुचित चीज को अनुभव कर रहे हैं?)।

व्यक्ति से व्यक्ति वार्तालाप में प्रश्न पूछना बहुत आवश्यक है। एक संचारक को कुछ हद तक दूसरे व्यक्ति के मन को जानना आवश्यक होता है इससे पहले कि कोई सफल वार्तालाप सम्भव हो सके। इसका कारण यह है कि संचारक को जानना आवश्यक है कि जो शब्द वह वार्तालाप में इस्तेमाल करेगा उन्हें दूसरा व्यक्ति समझ सकेगा। याद रहे कि दूसरे

व्यक्ति की समझ इन चीजों से भी प्रभावित होती है कि, उनका जन्म कहाँ हुआ था, उनका पालन-पोषण कैसा हुआ था, उनकी स्थिति, शिक्षा और उसका स्तर, नौकरी आदि।

वार्तालाप की प्रक्रिया में एक संचारक विभिन्न प्रकार के प्रश्न इस्तेमाल कर सकता है:

- जानकारी (इनमें आँकड़े/तथ्य/आदि पूछे जाते हैं, और साधारणतः बिना आपत्ति के होते हैं)।
- वैचारिक (इनमें विचार/सोच/सुझाव आदि पूछे जाते हैं, और वे भी अकसर अहानिकर होते हैं)।
- मूल्याँकन (वे आत्मगत मूल्य न्याय/निर्धारण/आदि के होते हैं, और यदि समझदारी के साथ न पूछे गए तो सावधानी या अन्यसंक्रामण उत्पन्न करते हैं)।
- खुले (ये व्यक्ति को स्वतन्त्र विचार व्यक्त करने का निमंत्रण देते हैं, उदा. "आप इस स्थिति में क्या करेंगे?")
- बन्द (ये दूसरे व्यक्ति को एक विचार स्वीकार करने पर विवश करते हैं जो उसका अपना नहीं है, उदा. "इस क्रिया से तुम्हारी उन्नति की सम्भावना को हानि पहुँच सकती है, इसलिए तुम इसे नहीं करना चाहोगे, है ना?")
- अगुआई करना (वे उत्तर को दिशा देते हैं परन्तु उसे सीमित नहीं करते हैं, उदा. "आपने यह निर्णय कैसे लिया?")।
- भरा हुआ (वे आत्मरक्षा की भावना लाते हैं क्योंकि प्रश्न का उत्तर देने का एक ही तरीका होता है जिसे पूछनेवाला सुनना चाहता है, उदा. 'आपने कैसे सोच लिया कि आपने सही निर्णय लिया है?')
- शान्त (ये तर्क को आकर्षित करते हैं और भावनाओं को जितना कम हो सके सम्मिलित करते हैं, उदा. 'हमारी अगली कार्रवाही क्या होनी चाहिए?')।
- तीव्र (यह हमारी भावनाओं को प्रकट करते हैं और सुननेवालों में नकारात्मक भावनाएँ उत्पन्न करते हैं, उदा. 'मैं ने बता दिया है मैं इस निर्णय के विषय में क्या सोचता हूँ, तो तुम क्या कहते हो हमें करना चाहिए?')

"जीभ के वश में मृत्यु और जीवन दोनों होते हैं, और जो उसे काम में लाना जानता है वह उसका फल भोगेगा।" (नीतिवचन 18:21)।

(उ) वार्तालाप की प्रक्रिया

व्यक्तिक वार्तालाप की प्रभावशाली शैली में तीन कदम हैं। पहला कदम व्यक्ति का ध्यान खींचना है (अर्थात् उन्हें आपको सुनने के लिए तैयार करना। दूसरा कदम जो आप कहना चाहते हैं और जो व्यक्ति सुनना चाहता है के बीच पुल बनाना। इसे करने के लिए आपको समझना है कि आप कहाँ हैं और आपके संबंध में व्यक्ति कहाँ पर है (अर्थात् सामाजिक, शैक्षिक, बौद्धिक आदि रूप से); आपको इसके अनुसार अपने वार्तालाप के लिए शब्द चुनने हैं (अर्थात् इससे वह व्यक्ति समझ सकेगा जो आप चाहते हैं वह समझे)। याद रहे, बेकार के शब्दों से वार्तालाप में बाधा न पड़े। अन्त में, आपको उपयुक्त क्रिया की माँग करनी चाहिए (सारी बात तो यही है)।

(ऊ) वर्तालाप में सुनने का स्थान

एक अगुवे के लिए सुननेवाले कान का विकास बहुत ही आवश्यक है क्योंकि उसके वार्तालाप का 45% सुनने में होता है (औसतन 30% बोलना, 9% लिखना और 16% पढ़ना होता है)। एक दिन का लगभग 80% किसी प्रकार के वार्तालाप में बीतता है और, इसलिए, इस वार्तालाप को उत्तम समय बनाना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

सुनने को इस प्रकार बताया जा सकता है: 'सुनने का सचेत प्रयत्न करना; ध्यान से सुनना; स्वर के प्रतीकों में अर्थ जोड़ने का प्रयत्न; बोलनेवाले के कूट बनाए हुए संदेश का कूट खोलना; या ध्वनियों को पाना, मूल्याँकन करना और समझना।' सुनना वार्तालाप की प्रक्रिया का एक अत्यावश्यक अंग है, क्योंकि सफल होने के लिए, संचारकों को सामान्यतः पता लगाना पड़ता है कि जो कहा गया था उसमें से सुननेवालों/पानेवालों ने असल में क्या समझा है। असल में, अनेक लोग प्रभावशाली तरीके से वार्तालाप नहीं करते, क्योंकि वे मान लेते हैं कि वे समझ गए हैं और वे पता लगाने के लिए सुनते नहीं। सुनना फीडबैक की प्रक्रिया है, और यह संचारक को ठीक करने/सुधारने/पुष्टि करने देता है (जब आवश्यक हो) और इसलिए सुननेवाले में सही समझ लाता है। सुनना वार्तालाप की प्रक्रिया के आरंभ में महत्त्वपूर्ण है (जैसे हम ने पहले देखा है), क्योंकि संचारकों को पता लगाना है कि जिस व्यक्ति के साथ वे वार्तालाप करने वाले हैं वह कैसा है (और, इसलिए, किस प्रकार के शब्द इस्तेमाल करने हैं आदि)। याद रहे, सुनने के समय, किसी छिपे अर्थ के बारे में सावधान

और परिक्षमी रहो, और ठीक-ठीक सुनने का प्रयत्न करो। मसीही अगुवों को भी ध्यानपूर्वक विचार करना है कि वे क्या सुन रहे हैं और उसे कैसे सुनते हैं (मरकुस 4:24; लूका 8:18)।

अच्छे सुननेवाले जिनकी ओर और जिनके लिए वे उत्तरदायी हैं दोनों को सुनते हैं (नीतिवचन 12:15; नीतिवचन 13:18)। इसका अर्थ यह है कि उन्हें कभी-कभी काऊन्सल/सलाह को, और कभी-कभी सुधार या ताड़ना को सुनना होगा। दुर्भाग्यवश, बहुत से अगुवे सुनना बन्द कर देते हैं, क्योंकि वे घमण्डी बन जाते हैं और सोचते हैं कि उनके पास सब सही उत्तर हैं। परमेश्वर एक अच्छा सुननेवाला है और वह चाहता है कि उसके अनुयायी उसका एक अच्छा उदाहरण बनें (अर्थात् पहले उसे सुनकर और फिर लोगों को भी, याकूब 1:19।

नीचे कुछ उपयोगी संकेत दिए गए हैं जो परमेश्वर के अगुवों की उनके लोगों को बेहतर सुननेवाले बनने में सहायता कर सकते हैं।

कम सुननेवाला | **अच्छा सुननेवाला**

1.	उन विषयों को निकाल देते हैं जो उन्हें रुचिकर नहीं लगते।	1.	हर सम्भव तरीके से जानकारी पाने का प्रयास करते है, जिससे उन्हें दूसरे लोगों की सहायता करने में मदद मिलती है।
2.	उनका न्याय करते हैं जो उनके बाहरी रूप-रंग या शैली से बोलते हैं।	2.	जो कहा गया था, न कि किसने कहा था या कैसे कहा था बाहरी तौर से उसका न्याय करते हैं।
3.	वक्ता के एक विचार पर अधिक उत्तेजित हो जाते हैं जिससे वे बाकी पर जो कहा गया था ध्यान नहीं दे पाते।	3.	जब तक वक्ता ने सबकुछ जो कहा है उसे समझ नहीं लेते उनकी भावनाओं को थामे रखते हैं।
4.	चाहे कोई भी वक्ता हो, एक ही तरीके से लिखते हैं।	4.	उनके लिखने की शैली में लचीले होते हैं और हर वक्ता के अनुसार शैली अपना लेते हैं।
5.	वक्ता पर थोड़ी या कुछ भी शक्ति नहीं खर्च नहीं करते।	5.	सुनने में काफी शक्ति लगाते और परिश्रम करते हैं।
6.	ध्यान भंग से सरलता से प्रभावित हो जाते हैं या स्वयं उन्हें उत्पन्न करते हैं।	6.	जहाँ तक सम्भव हो सम्भावित ध्यान भंग को कम करते या अनदेखा करते हैं।
7.	नई चिनौतियों से दूर रहते हैं और वक्ता द्वारा दिखाए जाने वाले विभिन्न क्षेत्रों का मूल्य नहीं जानते।	7.	सारी बातों को उनकी विविधता में सुनते हैं और उन सब में कुछ महत्त्व देखने का प्रयत्न करते हैं।
8.	एक बन्द मन से मूल्याँकन करते हैं और स्थिति के ध्यानपूर्वक मूल्याँकन में भावुक शब्दों को हस्तक्षेप करने देते हैं।	8.	एक खुले मन से कार्य करते हैं और जो कहा गया है उसकी विषय-वस्तु, संदर्भ और सम्पूर्ण अर्थ पर ध्यानपूर्वक विचार करते हैं।
			तब भी ध्यानपूर्वक सुनते हैं जब जो वे सुन रहे हैं अरुचिकर या अप्रिय है।
			समझने और दूसरे व्यक्ति के साथ अधिक

9.	असहमत होने या विवाद की बातों को खोजने के लिए सुनते हैं।	9.	प्रभावशाली तरीके से वार्तालाप करने के लिए सुनते हैं।
10.	वही सुनते हैं जो वे सुनना चाहते हैं।	10.	

एक अच्छी सुननेवाली वार्ता के लिए:

- वक्ता को पूरा ध्यान दो, क्योंकि नहीं तो वार्ता का एक बड़ा हिस्सा खो जाएगा।
- सुनते समय उचित प्रतिक्रिया दिखाओ (अर्थात् सिर हिलाओ, उनकी आँखों में देखो, शब्दों से प्रोत्साहित करो, आगे बढ़ानेवाले प्रश्न पूछो आदि), क्योंकि भावशून्य सुननेवाला वक्ता की किसी भी वार्ता को बन्द कर देगा।
- असली संदेश/अर्थ को सुनो (अर्थात् शब्दों/इशारों/भावनाओं/विराम/आदि के पीछे, व्यक्ति असल में क्या कहने का प्रयत्न कर रहा है।
- बहुत अधिक बोलनेवाले व्यक्ति को रोको, क्योंकि इससे व्यक्ति के साथ हमारा क्रियाशील सम्बंध कल के लिए बहुत खराब हो जाएगा (अर्थात् खुद से पूछो कि जो वक्ता कह रहा है आपके क्षेत्र के अधिकार/योग्यता/जिम्मेवारी के अन्दर है, और यदि नहीं है तो, व्यक्ति को किसी दूसरे के पास जो उनकी सहायता कर सकता है/करनी चाहिए उसके पास भेज दो।
- वक्ता को बोलने दो जो वह बोलना चाहता है और तब ही रोको जब उपयुक्त है।
- सुनने के समय को वक्ता के विषय में जितना जान सकते हैं जानने में लगाओ, अपने विषय में (जिस प्रकार वे वक्ता की ओर और वार्ता में कुछ चीजों की ओर प्रतिक्रिया दिखाते हैं), और वक्ता के साथ सम्बंध के बारे में (जिससे वे व्यक्ति के साथ सबसे प्रभावशाली तरीके से वार्ता कर सकें)।

(ए) छः मूल प्रश्न

नीचे दिए प्रश्न प्रभावशाली वार्ता के लिए अमूल्य सहायक हो सकते हैं। पहले तीन प्रश्न हम पर लागू होते हैं:

- हम क्या कहना या लिखना चाहते हैं ?
- हम असल में क्या कहते या लिखते हैं, कभी-कभी हमारे अच्छे इरादों के बावजूद?
- जो हम कहते या लिखते हैं उसका पानेवालों पर क्या भावात्मक प्रभाव पड़ सकता है ?

दूसरे तीन प्रश्न उस व्यक्ति/व्यक्तियों पर लागू होते हैं जिनसे हम वार्ता करना चाहते हैं:

- व्यक्ति क्या सुनना या पढ़ना चाहता है ?
- व्यक्ति असल में क्या सुनेगा या पढ़ेगा, कभी-कभी, जो वास्तव में कहा या लिखा गया है उसके बावजूद ?
- जो सुना या पढ़ा गया है उसके विषय में व्यक्ति क्या अनुभव करेगा ?

वार्ता का लक्ष्य दूसरे व्यक्ति को समझना है जो हम चाहते हैं वह समझे।

<u>इसलिए, वक्ताओं को अनुवाद करने की आवश्यकता है, जो:</u>

- उनके लिए अर्थवान् है, ताकि यह पानेवाले के लिए स्वीकार्य होगा (क्योंकि यदि यह स्वीकार्य नहीं है तो संदेश अस्वीकार किया जाएगा)।
- उनके लिए महत्त्व का है, ताकि यह पानेवाले के लिए अर्थपूर्ण होगा (पानेवाले की शर्तो पर, न कि वक्ता की शर्तो पर)।
- संचारक के लिए अर्थपूर्ण ताकि उसका पानेवाले पर वही प्रभाव पड़ेगा जो वे चाहते हैं।

यदि यह तीन शर्ते नहीं पूरी होती हैं तो, संचारक सीमित रहेगा। याद रहे, यह सुननेवाला/पानेवाला है जो बताता है कि किस प्रकार की वार्ता की ओर वे प्रतिक्रिया करेंगे।

(ऐ) **व्यक्ति से व्यक्ति वार्तालाप के तीन लक्ष्य**

जब मसीही के रूप में सार्वजनिक वार्ता करते हो तब, आपको तीन सामान्य लक्ष्य सामने रखने चाहिएः

- उनके मनों पर प्रकाश डालना। शैतान का लक्ष्य अविश्वासियों के मनों को बन्द करना है (विश्वासियों के भी, यदि सम्भव हो) ताकि मसीह की ज्योति उन पर न चमके (2 कुरिन्थियों 4:4)। मसीहियों को सत्य सुनाना है क्योंकि सत्य ज्योति लाता है और ज्योति स्वतन्त्रता लाती है।
- उनकी भावनाओं को उत्तेजित करना। लोगों में भावनाओं का बड़ा डर है, विशेष कर मसीहियों में। सच्चाई यह है कि भावनाओं को परमेश्वर ने बनाया है और वह चाहता है कि मसीही वक्ता लोगों की गहरी भावनाओं को सही-सही बाहर निकालें जिससे परमेश्वर उन लोगों को अपनी ओर खींच सके। असल में, तर्क की तुलना में भावनाओं को सरलता से अपील किया जा सकता है, क्योंकि पहला लोगों को पकड़ लेता है और उन्हें सुनाता है। फिर भी ध्यान दो कि मसीही वक्ताओं को भावुकता को इस्तेमाल करके लोगों को फँसाना नहीं है (अर्थात् लोगों को भावनाओं द्वारा नियंत्रित करना), क्योंकि यह मसीह में गलत है।
- उनकी इच्छा-शक्ति को प्रेरित करना। विश्वास की ओर पहला कदम इच्छा-शक्ति की क्रिया है। लोगों को फैसला करना है। परमेश्वर ने उन्हें सृष्टि की अपनी प्रक्रिया के एक अंश के रूप में यह योग्यता दी है। वह इच्छा-शक्ति को अपील करता है ताकि व्यक्ति अपने पुराने जीवन को छोड़ दे (मन फिराए) और उसमें नए जीवन में चलने लगे।

मसीही वार्तालाप की असफलता के कारण

- संचारक स्पष्ट, सरलता और समझ के साथ बोलने में असफल रहता है। उन शब्दों को इस्तेमाल करने का कोई लाभ नहीं जिन्हें सुननेवाला नहीं समझता है (उदाहरणार्थ, एक फावड़ा को खेती-बाड़ी का औजार कहना)। इसलिए वार्ता की योजना बनाना सबसे अच्छा है (जब सम्भव हो), अर्थात् अपने विचारों को सुस्पष्ट और तर्कसंगत बनाना (जब आपको ऐसा करने के लिए सब सथ्य/जानकारी मिल गई है)। हम संचारक को इस्तेमाल करने की सही सलाह देते हैं: 'अपरिचित शब्द के स्थान पर परिचित शब्द इस्तेमाल करना; सामान्य के स्थान पर निश्चित शब्द; लम्बे के स्थान पर छोटा शब्द; और कई शब्दों के स्थान पर एक शब्द इस्तेमाल करना।' संचारक को स्थिति में वही परिणाम पाने के लिए जो वह चाहता है सही शब्द इस्तेमाल करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए उन्हें, जहाँ सम्भव हो, सुननेवाले की भाषा इस्तेमाल करनी चाहिए; और उन शब्दों के इस्तामल से बचना चाहिए जिन्हें केवल कुछ सीमित लोग ही समझते हैं (यदि वक्ता सीमित लोगों से ही वार्ता करने का प्रयत्न कर रहा है)। याद रहे, शब्द उनके अर्थ शब्दकोश से नहीं परन्तु बोलनेवाले और सुननेवाले उन्हें कैसे समझते हैं उनसे पाते हैं (और इसमें बहुत अन्तर हो सकता है)।
- संचारक चाहता है कि उसके शब्द सुन्दर सुनाई दें और इसलिए वार्ता को ऊनी बनाता है। ऐसा शब्दों को इस्तेमाल करना जो एक स्पष्ट चित्र पेश करते हैं ठीक है (असल में, सही वार्तालाप तब ही प्राप्त होता है जब यह किया जाता है), परन्तु वार्ता को लच्छेदार भाषा से भर देना गलत होगा जिसे सुननेवाला अर्थ को समझ न सके।
- मसीही वक्ता उसी प्रकार वार्ता करने का प्रयत्न करता है जैसे कोई प्रदर्शन व्यवसाय में करेगा, और भूल जाता है कि वह एक पात्र है जिसके द्वारा परमेश्वर अपने लोगों की अगुआई/बोलना चाहता है। याद रहे, परमेश्वर के अगुवों को पवित्र आत्मा पर निर्भर रहना है और जो वह उन्हें परमेश्वर के लिए करने के योग्य करता है उस पर; और प्रभावशाली वार्ता, व्यक्तिक आकर्षण, जोश, चालबाजी या प्रबंध पर नहीं।
- संचारक भावात्मक बाधाओं पर विचार करने में असफल होता है। अनेक लोग अपने में इतने व्यस्त या ध्यान भंग होते हैं कि वे सुन नहीं पाते जो एक व्यक्ति कहना चाहता है, उदाहरणार्थ, वे बीमार, पीड़ा में, उनकी परिवारिक स्थिति से परेशान, या किसी ने जो किया/कहा उससे चोट खाए होते हैं। जब प्रभावशाली तरीके से वार्ता करने का प्रयत्न होता है, तो हमें ध्यान में रखना है कि हम भावात्मक प्राणियों से निपट रहे हैं और इसलिए हमें हमदर्द/तदनूभूत-पूर्ण/शिष्ट होने की आवश्यकता है। हमें अपने को दूसरे व्यक्ति के स्थान पर रखने का प्रयत्न करना है और संकट के चिन्हों को खोजना या दूसरे व्यक्ति के ध्यान न दे पाने/सुन न पाने की अयोग्यता को खोजना है।

- वार्तालाप की शैली रोबीली या छा जाना/चालाकी से फँसाने का प्रयास है। दूसरे लोग अन्त में थक जाते हैं और किसी भी वार्तालाप की ओर जो वक्ता उनकी ओर भेजता है उपयुक्त प्रतिक्रिया नहीं दिखा पाते हैं (इस प्रकार उस व्यक्ति की अगुआई को व्यर्थ करते हैं।
- मसीही वक्ता का जीवन उसके शब्दों (अर्थात् उनका प्रचार/काऊन्सलिंग आदि) का खण्डन करता है। इसलिए जो वे कहते हैं उसका कम ही मूल्य होता है और चाहे वे कितना भी समय तैयारी में लगाएँ, लोगों के हृदयों को नहीं छू पाता। आखिरकार, हमारा सबसे बड़ा संदेश हमारी जीवन-शैली है।
- मसीही वक्ता उस माध्यम को जिसे वे वार्तालाप के लिए उपयोग करते हैं वार्तालाप समझ बैठते हैं, उदाहरणार्थ, वे सोचते हैं कि कुछ कहना वार्तालाप है।

दर्शन का महत्त्वः प्रेरक शक्ति

"जहाँ दर्शन की बात नहीं होती, वहाँ लोग निरंकुश हो जाते हैं, और जो व्यवस्था को मानता है, वह धन्य होता है।" (नीतिवचन 29:18)

परिचय

"दर्शन जीवित रहने के लिए अनिवार्य है। यह विश्वास से पैदा होता, आशा से बना रहता, कल्पना से ज्वलित होता और उत्साह से मजबूत होता है। यह दृष्टि से बड़ा, स्वपन से गहरा, एक विचार से चौड़ा है। दर्शन बताए जा सकने, सुरक्षित और अपेक्षित के क्षेत्र के बाहर बड़े-बड़े दृश्यों को भर देता है। कोई आश्चर्य नहीं हम इसके बिना नष्ट हो जाते हैं!"

परमेश्वर के लिए कोई अर्थवान् जीवन नहीं जीया जा सकता है, और न ही परमेश्वर के लिए कोई अर्थवान् कार्य किया जा सकता है, जब तक यह आत्मिक दर्शन की वास्तविकता में दृढ़ता के साथ आधारित नहीं होता। परमेश्वर द्वारा दिया गया दर्शन मसीही को साधारण के स्तर से ऊपर उठाता है और उसे परमेश्वर के लिए बड़े-बड़े कार्य करने के योग्य बनाता है। परमेश्वर से दर्शन ने बाइबल के प्रमुख पात्रों की दिशा को बदल दिया था, उदाहरणार्थ, मूसा, अब्राहम, दाऊद, यशायाह, यिर्मयाह, पौलुस, आदि। बाइबल के इन पुरुषों की परमेश्वर से मुठभेड़ हुई जो व्यक्तिगत प्रकाशन से अधिक था, उन्हें परमेश्वर से एक शब्द मिला जिसने उनके जीवन में ऐसी जड़ पकड़ी कि परमेश्वर के लिए सेवा और दिशा का फल लाया। सब लोगों की जिन्हें परमेश्वर ने बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया है उसके साथ जीवन बदलनेवाली मुठभेड़ हुई थी। यह लगभग ऐसा था कि परमेश्वर इन लोगों का ध्यान खींच रहा था ताकि वे उसकी सुनेंगे और अपने बाकी के सारे जीवन भर उसके आज्ञाकारी बने रहेंगे। ऐसा कहा जा सकता है कि जो आत्मिक दर्शन इन लोगों को परमेश्वर से मिलता है उन्हें जकड़ लेता है और जीवन भर के लिए बना देता है – वे बस इतना ही कर सकते हैं कि उस दर्शन की सेवा करें जो परमेश्वर ने उन्हें दिया है।

दो स्तर के आत्मिक दर्शन हैं जिन पर हम इस अध्ययन में ध्यान लगाएँगे। पहला व्यक्तिगत दर्शन है, अर्थात् आत्मिक दर्शन जिसे परमेश्वर हमें अपने लिए देता है। दूसरा सामूहिक दर्शन है, अर्थात् आत्मिक दर्शन जो एक व्यक्ति में आरंभ होता हो, परन्तु जो उस व्यक्ति के जीवन से अधिकों के जीवन प्रभावित करता है। असल में, एक व्यक्तिगत दर्शन होना अवश्य है जो सामूहित दर्शन में बैठता है, क्योंकि परमेश्वर केवल उनके अपने लिए अपने सेवकों को कम ही सेवा में बुलाता है।

व्यक्तिगत दर्शन

व्यक्तिगत दर्शन वह रहस्यवादी अनुभव नहीं है जिसे अनेक लोगों ने युगों से यीशु के दिव्य-दर्शन के रूप में या ऐसा ही कुछ पाया है। यह परमेश्वर के आत्मा का व्यक्ति के जीवन में कार्य करना है जो मानव/ईश्वरीय मुठभेड़ में होता है, उदाहरणार्थ, धर्मांतरण के समय या जब परमेश्वर हमें सेवा के लिए बुलाता है, आदि। व्यक्तिगत दर्शन इसके साथ न केवल परमेश्वर के आत्मा का जीवन लाता है बल्कि उस घड़ी से लेकर व्यक्ति के जीवन के लिए परमेश्वर के इरादों का बीज लाता है। इसलिए व्यक्तिगत दर्शन इसके साथ अपना आदेश लाता है। इसके विषय में कुछ निदेशक होता है, हालाँकि व्यक्ति इसके विवरणों को स्पष्ट रूप से कुछ समय के लिए न देख सके।

परमेश्वर से एक दर्शन की बात कुछ ऐसी है जिसे अनेक उनके मसीही अनुभव से अलग करते हैं। वे केवल खुश हैं कि वे एक मसीही बने हैं और, इसलिए, उन्होंने उनके जीवनों में परमेश्वर के काम को छोटा किया है। उन्होंने मसीहियत को उनके हृदयों और मनों में प्रकटीकरण के जीवित परमेश्वर के काम के बजाय, एक छोटे व्यक्तिगत धर्मांतरण के अनुभव के स्तर पर कर दिया है।

उद्धार में उस दर्शन का बीज है जो परमेश्वर के पास हमारे लिए है, अर्थात् हमारे जीवनों के लिए परमेश्वर का दर्शन मसीह के उद्धार के सामर्थ्य के हमारे अनुभव में छिपा है। वह हमें अपने प्रिय पुत्र के राज्य में लाकर अन्धकार से हमारा उद्धार करता है। वह हमें "भले कामों के लिए...जिन्हें परमेश्वर ने पहले से हमारे करने के लिए तैयार किया" (इफि. 2:10) में लाकर निरूद्देश्य जीवन से हमारा उद्धार करता है। उद्धार के समय, हम वह पात्र बन जाते हैं जिन में से परमेश्वर के उद्देश्य प्रवाहित हो सकते हैं। परमेश्वर चाहता है कि हम उन उद्देश्यों को पढ़ें और समझें जो उसके पास हमारे जीवनों के लिए हैं, और आज्ञापालन और विश्वास के द्वारा उस योजना को अपने रोजाना के अनुभव में साकार होता हुआ देखें। यह एक स्वाचालित प्रक्रिया नहीं है, क्योंकि इस बीज के परिपक्व होने के लिए समय के साथ कितने सारे दूसरे तत्त्व कार्य करते हैं। हाँ बीज वहाँ है, और यह परमेश्वर की इच्छा है कि यह बढ़े और उसके लिए कुछ उपयोगी और सुन्दर बन जाए।

सामूहिक दर्शन

सब मसीही मिशन संस्थाएँ, कलीसियाएँ, दल सेवाएँ - असल में, परमेश्वर का हर कार्य - एक सामूहिक दर्शन या परमेश्वर से एक प्रकटीकरण पर आधारित होना चाहिए। सामूहिक आत्मिक दर्शन एक व्यक्ति पा सकता है, परन्तु यह उस एक व्यक्ति तक सीमित नहीं है। इसे परमेश्वर देता है ताकि लोगों का एक समूह उसकी इच्छा पूरी करें (याद रहे, परमेश्वर का अधिकाँश काम लोगों के समूह करते हैं अकेल व्यक्ति नहीं करते हैं)। परमेश्वर एक व्यक्ति को अपना दर्शन देता है और दूसरे लोगों को उसमें जोड़ देता है ताकि दर्शन पूरा हो सके।

परमेश्वर सम्भव है आरंभ में एक दर्शन एक व्यक्ति में डाले, परन्तु वह साधारणतः लोगों का एक दल बुलाता है ताकि उस व्यक्ति का दर्शन पूरा हो सके। यह सदा ऐसा नहीं होता है क्योंकि किसी दर्शन के लिए केवल एक या कुछ लोगों की ही आवश्यकता होती है। परन्तु जब एक दर्शन को पूरा करने के लिए लोगों का एक बड़ा समूह लगा होता है तब परमेश्वर अपने दर्शन के निरीक्षण के लिए अगुवों का एक दल खड़ा करता है। तब परमेश्वर अकसर अपना सारा दर्शन अगुवों के उस समूह को प्रकट करता है।
किसी भी कलीसिया/संस्था में, एक ही समय में विभिन्न प्रकार के कार्य/दर्शन परमेश्वर के लिए काम कर रहे होते हैं, अर्थात् परमेश्वर ने व्यक्तियों को उसके लिए विशेष कार्य करने के लिए दर्शन से भरा होता है। इन अलग-अलग दर्शन से भरे व्यक्तियों को परमेश्वर कलीसिया या संस्था के विस्तृत दर्शन के अंश होने के लिए बुलाता है, अर्थात् परमेश्वर ने उन्हें कलीसिया/संस्था के विस्तृत दर्शन के भीतर उनके दर्शन को कार्य में लाने के लिए बुलाया है। जब ऐसा होता है तब विस्तृत दर्शन के अगुवों को व्यक्तियों के रूप में उनकी कलीसिया/संस्था के लिए सारा दर्शन बिरले ही दिया जाता है। बदले में, अगुवों का दल निरन्तर छोटी पहेली के टुकड़ों को मिलाने का प्रयत्न कर रहे होते हैं जो जब पूरा हो जाता है तब लोगों के उस समूह के लिए परमेश्वर का सम्पूर्ण दर्शन प्रकट करता है। जबकि वे ऐसा कर रहे होते हैं तो उन्हें वह सब करते रहना है जो परमेश्वर ने उन्हें सम्पूर्ण दर्शन के लिए जो सही है पहले ही दिखाया है।

एल्डरों (या जो भी विस्तृत दर्शन का निरीक्षण कर रहा है) को प्रभु को खोजने और उसकी दिशा को पाने के लिए निरन्तर इकट्ठे होना है, ताकि सारा कार्य जिसके लिए वे जिम्मेवार हैं सही दिशा की ओर बढ़ता रहे। असल में, अगुवों/निरीक्षकों का सारा समूह जिस दिशा में दर्शन को जाना चाहिए उसके लिए सहमत होना चाहिए। वैसे भी, परमेश्वर ने ही उन्हें अगुआई की भूमिका के लिए बुलाया होगा और उसके पास समूह के जाने के लिए एक ही दिशा होगी; इसलिए परमेश्वर के मार्ग का पता लगाना और उसके विषय में सम्पूर्ण एकता में होना सम्भव है। फिर भी याद रहे, एकता उतनी ही विस्तृत हो जितना समूह का परमेश्वर में अधिकार है। तब एकता परमेश्वर से एक वरदान बनता है जब हर एक इकट्ठे उसके मन का पता लगाता है।

एक मनुष्य के दर्शन में खतरे

ऐसे अगुवे हैं जो एक सामूहिक दर्शन के लिए योगदान और आत्मिक निरीक्षण के एक मात्र स्रोत होना चाहते हैं। परन्तु एक मनुष्य के दर्शन में कई खतरे हैं। उनमें सम्मिलित हैं: परमेश्वर में प्रामाणिकता की जाँच की कमी; कुछ क्षेत्रों में अधिक सन्तुलन रखने की प्रवृति जो अनदेखी हो सकती है या जिसका विरोध खत्म कर दिया या निकाल दिया जाता है; परिदृश्य सीमित होता है; और सम्भव है दर्शन अधूरा ही हो, दूसरो लोग जो सम्पूर्ण दर्शन के अंश हैं उनकी नहीं सुनी जाती है। बेशक, ऐसे समय होते हैं जब एक दर्शन जिसमें अनेक लोग सम्मिलित होते हैं एक व्यक्ति में ही आरंभ होता है, उदाहरणार्थ, मूसा; परन्तु यह अकसर नहीं होता है।

अकसर, व्यक्तिगत दर्शन हमें एक सामूहिक दर्शन में अपना भाग पूरा करने को देता है, परन्तु यह ऐसा नहीं है जिसे लेकर हम अकेले भाग लें। सामूहिक दर्शन अकसर एक व्यक्ति द्वारा प्रेरित और आरंभ किया गया होता है, परन्तु अकसर यह उससे बढ़ जाता है। सामूहिक दर्शन की प्रामाणिकता, सन्तुलन बनाए रखने के लिए, और परमेश्वर का सम्पूर्ण उद्देश्य पता लगाने के लिए एक सामूहिक अधिकार की आवश्यकता होती है। फिर भी, जब परमेश्वर एक दर्शन के निरीक्षण के लिए अगुवों का एक दल खड़ा करता है, अकसर एक व्यक्ति होता है जो अधिकाँश प्रेरणा, योगदान और दिशा लाता है। यह व्यक्ति अकसर वह है जो दर्शन लाया था या जिसने तब से दर्शन को पा लिया है। याद रहे, यदि बहुत से लोग दर्शन के भागीदार होने वाले हैं तो हम बातों से लोगों को अन्दर नहीं ला सकते हैं। यदि लोग देखते हैं कि अगुआई जो कर रही है उसमें परमेश्वर के होने का स्पष्ट प्रमाण है, अर्थात् जो अगुआई कहती है परमेश्वर कलीसिया/दल/संस्था के द्वारा करना चाहता है वह उसे आकार दे रहा है, तो लोग हमारे साथ दर्शन के भागीदार होना चाहेंगे।

दल का दर्शन

किसी भी मसीही संस्था/कलीसिया/दल में परमेश्वर का दिया हुआ दर्शन होना चाहिए। असल में, दल के सब सदस्यों को उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए जो परमेश्वर से सामूहिक दर्शन लाता है सहयोग देना है और इकट्ठे बंधना है, क्योंकि उसका दर्शन व्यक्ति से बड़ा है। दल के सदस्यों को परमेश्वर से दर्शन की ओर समर्पित होना और पालन करना है, किसी 'गुरू' या शक्तिशाली अगुवे के नहीं। एक बार जब वे दर्शन के अधीन हो गए हैं तो उन सबको जीवन के सामान्य स्वीकृत नियमों का पालन करना है। असल में, उन्हें परमेश्वर और एक दूसरे के लिए उनकी सेवा के उचित स्थान का पता लगाना है; और परमेश्वर और एक दूसरे का साथ उचित सम्बंध में भी रहना है, ताकि उसका दर्शन पूरा हो सके।
एक दल/कलीसिया के अगुवों के लिए आवश्यक है कि हर बार जब एक नया सदस्य (या नया धर्मांतरित) दल/कलीसिया में जुड़ता है वे परमेश्वर के दर्शन को दोबारा बोलें। नए सदस्यों को पता चलना चाहिए कि वे परमेश्वर में किस चीज के लिए समर्पित हो रहे हैं। दल या कलीसिया के अगुवे दर्शन का नियमित मूल्याँकन भी करें (अर्थात् एक वर्ष में तीन-चार बार)। यहाँ उन्हें इन चीजों की चर्चा करनी चाहिए जैसे कि दल की आवश्यकताएँ; कहाँ दरारें हैं और क्या उनसे छूट रहा है; और विभिन्न चिन्ताओं के विषय में प्रभु उनसे क्या कह रहा है।

हम परमेश्वर का दर्शन कैसे पाते हैं?

परमेश्वर द्वारा दिया गया दर्शन परमेश्वर का हम में कार्य करने का फल है। वह दर्शन उत्पन्न करता है और हम केवल उसे अपने में ले लेते हैं। यह तब एक जुट, या एक लक्ष्य बन जाता है, जिसकी ओर हम उसके लोग चलते हैं। दर्शन वह नहीं जो हमें लगता है करने की आवश्यकता है या जो हम करना चाहते हैं, परन्तु यह परमेश्वर द्वारा दिया गया निर्देश है जिसकी ओर हम प्रतिक्रिया दिखाते हैं और क्रिया करते हैं। परमेश्वर से दर्शन हमें बुलाता है!

परमेश्वर से दर्शन देखा, सुना, अनुभव किया, व्यक्तिगत और भविष्यसूचक होता है। परमेश्वर के अगुवों को इस तथ्य में भरोसा होना चाहिए कि परमेश्वर ने उसका मन और इच्छा उसके सेवकों पर प्रकट करने का इरादा किया है। इसलिए उन्हें परमेश्वर से मिलने और उसके सामने उनके जीवन (और आत्मिक कान) खोलने के लिए समय बिताना चाहिए। एक बार जब उन्होंने उसे सुना है, तब उन्हें जो उसने कहा है करने की आवश्यकता है (नहीं तो उनको दिया परमेश्वर का वचन सूखने लगेगा)। यदि व्यक्ति परिश्रम के साथ उसे खोजता है तो परमेश्वर उसे उसका भाग जो उसे निभाना है दिखाएगा। सच्चाई तो यह है कि हम मसीही फलवन्त, भरपूर, संतुष्ट जीवन जिसकी प्रतिज्ञा परमेश्वर करता है इसी प्रकार जी सकते हैं (भजन 139:13-16; यिर्मयाह 1:4-10; इफिसियों 1:4-5; इफिसियों 2:10; यूहन्ना 10:10)।

यीशु अपनी देह, कलीसिया का सिर है, और देह को निर्देश देना और जो करना है उसे बताना सिर का काम है। इसलिए यीशु निर्देश दे रहा/अगुआई कर रहा है, और हम उसकी कलीसिया के सदस्य सुन रहे हैं तो क्या ऐसा हो सकता है कि वह 20 लोगों को एक दिशा में और 5 लोगों को दूसरी दिशा में ले चलेगा? नहीं! यदि हमें उसी दल/संस्था/कलीसिया में काम करने के लिए बुलाया गया है तो परमेश्वर हमारी एक साथ अगुआई करेगा। बेशक कुछ छोटे-मोटे मतभेद होंगे, परन्तु मसीह के मन का पता लगाने और आज्ञापालन में एकता की आत्मा उत्पन्न होगी। असल में, जैसे-जैसे हम मसीह के नेतृत्व में कार्य करेंगे एकता होती जाएगी। 'आप मार्ग, सत्य और जीवन हैं। मार्ग के बिना, कहीं जा नहीं सकते। सत्य के बिना कुछ जाना नहीं जा सकता। जीवन के बिना, कोई जीना नहीं है।'

यदि अगुवों का हृदय जो एक सामूहिक दर्शन के निरीक्षक हैं मसीह के मन का पता लगाना है तो जो परमेश्वर के दर्शन का विरोध करना या रुकावट डालना चाहते हैं सदा नहीं कर सकेंगे। अगुवों को केवल इस लिए कि उनका एक सदस्य अधिकाँश से सहमत नहीं होता, उसे अनदेखा या उसकी नहीं सुनना नहीं करना चाहिए। कहा गया है कि यदि परमेश्वर बिलाम के गधे के द्वारा बात कर सकता है तो वह अपने किसी भी अगुवे के द्वारा बात कर सकता है। सम्भव है जो व्यक्ति दर्शन में रुकावट डालता लग रहा है, असल में इस मामले में प्रभु का मन जानता है।

याद रहे, हमारे जीवनों के लिए परमेश्वर का मन हमारे समय में नहीं, उसके समय में प्रकट होगा। हमें अपने अपने जीवन उसकी आज्ञाओं का पालन करते और उसके लिए जीते हुए जैसा उसे पसन्द है जीते रहना है। मूसा जब 80 वर्ष का हुआ था तब ही उसे परमेश्वर से उसका सामूहिक दर्शन मिला था। इसके कई वर्ष पहले मूसा को कुछ पता था परमेश्वर क्या चाहता है वह करे, परन्तु यह व्यक्तिगत दर्शन था जो परमेश्वर के समय में नहीं पहुँचा था कि उसे कार्य में लाया जाता। परमेश्वर ने मूसा को उसके नियुक्त समय के लिए रोके रखा (उसे पता था कब मूसा और लोग तैयार होंगे)। परमेश्वर के प्रकटीकरण का हम सब के लिए एक

नियुक्त समय है (हबक्कूक 2:3)। हमारा काम डटे रहना है जब तक हम परिपक्व और पूरे नहीं हो जाते, और हम में कोई कमी न रहे (याकूब 1:4), और परमेश्वर के सम्मुख निरन्तर खुले रहना है ताकि वह अपनी इच्छा प्रकट कर सके।

"तुम अपने आप को पवित्र करो; क्योंकि कल के दिन यहोवा तुम्हारे मध्य में आश्चर्यकर्म करेगा।" (यहोशू 3:5)

परमेश्वर के दिए दर्शन के चार प्रभाव:

(अ) यह उत्तेजित करता है (मुझे बुलाया है)

यह जीवन लाता है, क्योंकि यह जीवन बदलनेवाली शक्ति प्रदान करता है जो हमारे जीवनों में नई दिशा और उद्देश्य लाता है। हमारा जीवन एक दिशा में जा रहा था, परन्तु एक बार जब हम ने परमेश्वर का दर्शन पा लिया है, यह हमें जकड़ लेता है और हम इसकी सेवा किए बिना रह नहीं सकते। उदाहरण के तौर पर,

- शाऊल / पौलुस (प्रेरितों 9:1-31)
- यशायाह (यशायाह 6:1-8)
- मूसा निर्गमन (3 और 4)
- यरूब्बाल / गिदोन (न्यायियों 6 और 7)
- अब्राम / अब्राहम (उत्पत्ति 17:1-27)

(आ) यह प्रेरणा देता है (मैं करूँगा/कर सकता हूँ)

परमेश्वर से दर्शन हमें उन उद्देश्यों की ओर प्रगति करने देता है जो उसमें छिपे होते हैं। यदि हमारे पास परमेश्वर से कोई दर्शन नहीं है तो हम निश्चल रहेंगे और नष्ट होंगे! असल में, दर्शन में हमारे जीवनों के लिए परमेश्वर के उद्देश्य का बीज होता है (और उन सब के जीवनों के लिए भी जो दर्शन में हमारे साथ जुड़े हैं)। जलती झाड़ी के पास मूसा को जो प्रकाश मिला था वह उसके लिए एक व्यक्तिगत वचन से कहीं अधिक था, इसमें परमेश्वर के लोगों के लिए उसके उद्देश्य का बीज था। एक और मनुष्य का उदाहरण जो परमेश्वर के दर्शन से प्रेरित था पौलुस का है (प्रेरितों 26:12-23)। यह केवल सड़क पर रोशनी या यीशु का प्रकट होना नहीं था जिसने शाऊल का जीवन बदल दिया था, यह परमेश्वर द्वारा दिया गया उसके लिए निर्देश भी था जिसका उसने पालन किया। अनुभव ने शाऊल को उसके लिए खोल दिया जो परमेश्वर उससे चाहता था। जब शाऊल ने यीशु को देखा तब वह अपने हृदय में निर्देश पाने योग्य हुआ था, 'मैं ने तुझे अन्य-जातियों में ज्योति ले जाने के लिए नियुक्त किया है'। परमेश्वर से मिलने के अपने अनुभव में शाऊल को अपने बाकी के जीवन के लिए दिशा मिली थी और तब से लेकर उसने जो कुछ भी किया उसे प्रेरणा मिली थी। बाद में, प्रेरित पौलुस उस चीज को पाने की बात करता है जिसके लिए मसीह यीशु ने उसे पकड़ा था (1 कुरिन्थियों 9:24-27; फिलिप्पियों 3:12-14)। पौलुस का कोई छोटा सा धर्म-परिवर्तन नहीं हुआ था जिसने उसके जीवन में थोड़ा सा बदलाव लाया था। पौलुस को उसके उद्धार के अनुभव के मूल जीवन-परिवर्तित आयाम की जानकारी थी।

याद रहे, परमेश्वर के दर्शन के साथ ज्ञान होता है कि हम इसमें अपना भाग पूरा कर सकते हैं, क्योंकि सबकुछ जिसकी हमें आवश्यकता है परमेश्वर देगा! (फिलिप्पियों 4:13, 19; 2 पतरस 1:3)। हमें यह भी पता होगा कि परमेश्वर ने हमें इस मार्ग पर चलने के लिए नहीं बुलाया होता यदि हम में वह नहीं होता जिससे हम उसके दर्शन में अपना भाग पूरा कर पाते।

'दर्शन का अर्थ है: व्यक्ति एक आवश्यकता को इस प्रकार देखता है कि उसके हृदय में उस आवश्यकता को पूरी करने की सम्भावनाएँ खुद आवश्यकता से बड़ी हैं।'

(इ) यह बाध्य करता है (केवल मुझे ही)

जिन लोगों ने उनके हृदयों में परमेश्वर का दर्शन पाया है, तब से लेकर वही कर सकते हैं जो उस दर्शन के अनुसार है। तब से लेकर उनके जीवन उस दर्शन के अनुसार बनते हैं। ये लोग अपने आप को उनके पुराने जीवन से काट देते हैं, और वही करना चाहते हैं जो परमेश्वर को पसन्द है और दर्शन को पूरा करता है। उदाहरण के तौर पर, जो दर्शन मूसा को परमेश्वर से मिला था निश्चित था। इसकी रूप-रेखा और विषय-वस्तु

थी, और वह रूप-रेखा से आगे जाने या विषय-वस्तु को बदलने के लिए स्वतन्त्र नहीं था। मूसा को परमेश्वर ने बताया था, 'सावधान रहकर इन वस्तुयों को उस नमूने के समान बनवाना, जो तुझे इस पर्वत पर दिखाया गया है।' (निर्गमन 25:40)।

"जहाँ दर्शन की बात नहीं होती, वहाँ लोग निरंकुश हो जाते हैं।" (नीतिवचन 29:18)

जब परमेश्वर अपने आत्मा के द्वारा अपने वचन से एक दर्शन देता है जो वह चाहता हो, और आपका मन और प्राण इससे उत्तेजित होते हैं, और यदि आप उस दर्शन के प्रकाश में नहीं चलते तो आप दासता में इस हद तक गिरेंगे जो हमारे प्रभु के पास नहीं ... एक सत्य के प्रकट होने के बाद वह वैसे नहीं रह सकते हैं। वह क्षण आपको यीशु मसीह में एक अधिक सच्चा चेला या भगोड़ा बना देता है।

(ई) **यह पवित्र करता है (मैं नहीं करूँगा)**

जो लोग परमेश्वर से दर्शन पाते हैं वे अपना जीवन ठीक कर लेते हैं। वे परमेश्वर की सेवा करने के लिए जिसने अपने आप को इतना प्रकट किया है कि वे उनके जीवन अनुशासित करने लगते हैं। वे अब अपने को प्रसन्न नहीं करना चाहते, परन्तु अपने जीवन परमेश्वर और उसकी सेवा के लिए अलग करना चाहते हैं। मूसा को परमेश्वर ने कहा था, 'अपने पाँवों से जूतियों को उतार दे, क्योंकि जिस स्थान पर तू खड़ा है वह पवित्र भूमि है।' (निर्गमन 3:5)। परमेश्वर ने जो कार्य मूसा के अनुभव में किया था वह उसे उसके पुराने जीवन से नहीं परन्तु किसी दूसरी योजना या विचार से काट दिया जो उसमें हो सकता था। वह इसके बाद किसी और चीज के लिए नहीं जी सकता था।

दिव्यदर्शी, योग्य बनानेवाले और बनाए रखनेवाले

तो सामूहित दर्शन परमेश्वर से निकलकर, यहाँ पृथ्वी पर व्यावहारिक, कार्यात्मक शैली में वास्तविकता कैसे बनता है? इस दर्शन का प्रबंध कैसे होता है और यह दूसरे मसीहियों के जीवनों में कैसे क्रिया करता है? नीचे एक सांचा है जिसे हम अपने जीवन और सेवा की स्थितियों में लागू कर सकते हैं जो इन प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयास करता है।

परमेश्वर ने जिस प्रकार इतिहास में कार्य किया है वह है एक व्यक्ति को खोजना जो उसके दर्शन का रचनात्मक स्रोत होगा। यही कारण है कि क्यों कुछ कलीसियाएँ 200 वर्षों के बाद अचानक जीवित हो उठीं और कि क्यों कुछ मसीही संस्थाएँ/कलीसियाएँ केवल कुछ ही वर्षों में बहुत सफल हो गई – परमेश्वर ने एक व्यक्ति को पाया और उसे खड़ा किया जिसके द्वारा वह अपने दर्शन को आरंभ कर सका है। यहाँ, हम इस व्यक्ति को दिव्यदर्शी कहते हैं। यदि आप एक दिव्यदर्शी को एक कलीसिया/संस्था में से निकाल लें और उसके स्थान पर किसी को न रखें, तो वह कलीसिया/संस्था कुछ समय तक चलेगी, परन्तु अन्त में निश्चल हो जाएगी, और परम्परागत और निष्फल हो जाएगी।

यह बहुत असम्भावित है कि एक व्यक्ति अकेला परमेश्वर के दर्शन को आरंभ करे और पूरा करे। साधारणतः, परमेश्वर व्यक्ति के साथ कार्य करने के लिए नचनात्मक स्रोत दर्शन वाले दूसरे लोगों को बुलाता है। इन में कुछ लोगों को परमेश्वर ने दर्शन को लेने और उसकी व्यवस्था करने और पूरा करने का वरदान दिया होगा। यहाँ, हम इन लोगों को "योग्य बनानेवाले" कहते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि दिव्यदर्शी आप इस क्षेत्र में कुछ नहीं करेगा, एक स्तर पर वह भी योग्य बनानेवाला है।

अन्त में, एक दर्शन को ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो इसे बनाए रख सकते हैं। परमेश्वर लोगों को बुलाता है जो उसके दर्शन को उन कार्यों को करके जो दर्शन बनाता है रोजाना के आधार पर उठाए रख सकते हैं। इन लोगों के बिना दर्शन के कार्य सफलतापूर्वक नहीं हो सकेंगे। ये लोग वह करते हैं जो दर्शन को व्यावहारिक रूप से स्थापित करने और इसे चलाते रहने के लिए आवश्यक है। योग्य बनानेवाले दर्शन की व्यवस्था करते और अगुआई के अधिक कठिन कार्यों को करते हैं; फिर यह उन लोगों के ऊपर है जिन्हें हम बनाए रखने वाले कहते हैं कि दर्शन का अधिकाँश काम करते रहें।

मूसा इस्राएल के लोगों के लिए रचनात्मक दर्शन का स्रोत (अर्थात् दिव्यदर्शी) था। उसके पास कई योग्य बनानेवाले थे, उदाहरणार्थ, हारून (प्रवक्ता); यहोशू (निर्देशक, सेनापति, और मूसा का सहायक); बसलेल (कारीगर, निर्माता); हूर (उन्नत करनेवाला); कालेब (प्रोत्साहक); और यित्रो (सलाहकार)। निर्गमन 3 का अनुभव केवल मूसा का था, इन लोगों का नहीं। इन पुरुषों को परमेश्वर ने दर्शन को वास्तविक करने के लिए बुलाया था जो मूसा में आरंभ हुआ था। मूसा के मामले में, उसके बनाए

रखनेवाले लेवी, हारून के पुत्र, न्यायी, 12 गोत्रों के अगुवे, विशेषज्ञ कारीगर/अभिकल्पक, और सत्तर प्राचीन आदि थे। ये पुरुष दर्शन से सम्बंधिक विशेष क्षेत्रों में काम के लिए जिम्मेवार थे। बनाए रखनेवालों की आवश्यकता योग्य बनानेवालों के कार्यों के क्षेत्रों में से निकली थी।

परमेश्वर के दर्शन को वास्तविकता बनने के लिए सेवा के ये सब तीन स्तर आवश्यक हैं। बेशक, ये क्षेत्र परस्पर व्याप्त होते हैं परन्तु वे हमें विचार देते हैं कि किसी भी परमेश्वर द्वारा दिए दर्शन को कैसे हाथ में लेना और कार्य में बदलना है। रहस्य यह है कि सेवा के स्तर को परमेश्वर के दर्शन को जैसे इसे दिव्यदर्शी को प्रकट हुआ है लेना है और उनका अपना बनाना है। तब उन्हें आगे बढ़ना है और उस भाग को पूरा करना है जिसे करने के लिए परमेश्वर ने उन्हें बुलाया है जिससे उसका दर्शन पूरा हो।

कम लोगों को ही परमेश्वर दर्शन आरंभ करने के लिए बुलाता है (अर्थात् दिव्यदर्शी) जिसकी तुलना में दर्शन की सेवा करने के लिए अनेकों को बुलाता है। यह तथ्य कि योग्य बनानेवालों से कम दिव्यदर्शी होते हैं, और बनाए रखनेवालों से कम योग्य बनानेवाले होते हैं तो यह व्यक्ति या उसकी सेवा का मूल्य न्याय नहीं है। सच्चाई यह है कि परमेश्वर अपने लोगों को विभिन्न कार्य करने के लिए बुलाता है और वह उनसे वही कार्य करने के लिए कह रहा है। कुछ और करने का प्रयास मूर्खता है और अकसर असफलता और संकट में समाप्त होगा। परमेश्वर सही जानता है, और हमें उसी में बने रहना है जो करने के लिए उसने हमें बुलाया और तैयार किया है। याद रहे कि परमेश्वर का दर्शन उन सब की सामान्य सम्पत्ति है जो इसमें भाग लेते हैं (उदाहरणार्थ, मूसा के दिनों में इस्राएली), क्योंकि यह दर्शन परमेश्वर का था मनुष्य का नहीं। सब लोगों का जिन्हें परमेश्वर एक दर्शन में काम करने/भाग लेने के लिए बुलाता है इसमें भाग है। दिव्यदर्शी इसका मालिक नहीं है। योग्य बनानेवाले और बनाए रखनेवाले दर्शन का एक भाग बनाते हैं, और इसलिए, उन्हें देखने की आवश्यकता है कि वे सम्पूर्ण का एक अनिवार्य अंश हैं जिन्हें परमेश्वर अपनी महिमा के लिए उपयोग करेगा। उन्हें कभी भी अपने आपको अकेले अपना काम करते हुए नहीं देखना है। उन्हें दिव्यदर्शी की हाँ में हाँ मिलानेवाले नहीं होना है, क्योंकि उनका दिव्यदर्शी के साथ दर्शन में भाग है। इसकी सफलता उनकी सफलता है! दिव्यदर्शी के साथ, वे सब लोगों का एक समूह हैं जो परमेश्वर के दर्शन में चलते और प्रवाहित होते हैं और उस सेवा/कार्य को करते हैं जो दर्शन उनके लिए अलग अलग उत्पन्न करता है।

एक दिव्यदर्शी की विशेषताएँ:

उन लोगों में कुछ विशेषताएं होती हैं जिन्हें परमेश्वर यहाँ पृथ्वी पर दर्शन स्रोत करने के लिए बुलाता है। दिव्यदर्शियों को ऐसे लोग होना है:

(अ) प्रेरणा के

दिव्यदर्शियों को प्रेरित लोग होना है और उन्हें दूसरे लोगों को भी प्रेरित करना है (वैसे भी प्रेरित लोग ही दूसरों को प्रेरित कर सकते हैं)। यदि दिव्यदर्शी परमेश्वर द्वारा प्रेरित नहीं है तो, वे दर्शन के उनके भाग में भाग लेने और पूरा करने की कीमत नहीं दे सकेंगे, और न ही कोई दूसरा कर सकेगा। दिव्यदर्शियों को परमेश्वर से आमने-सामने मुलाकात करनी है और उसके भविष्यसूचक अन्तर्दृष्टि/दर्शन को पाना है और फिर इसे दूसरे लोगों को दे देना है जिन्हें दर्शन में काम करने के लिए परमेश्वर ने बुलाया है। ईश्वरीय प्रेरणा के विषय में कुछ चुम्बकीय होता है। एक दिव्यदर्शी को दूसरे लोगों को प्रेरित करने योग्य होना है कि वे दर्शन को अपना बना लें। जब दिव्यदर्शी ऐसा करता है तब उसे उस दर्शन के योग्य करनेवालों और बनाए रखनेवालों को स्थापित होने और काम करना आरंभ करने के लिए स्थान देना है, अर्थात् उन्हें परमेश्वर के दर्शन को दूसरे लोगों के जीवनों में से मुक्त रूप से कार्य करने देना है।

दिव्यदर्शियों को आशावाद और आशा के लोग होना है, क्योंकि कोई भी निराशावादी कभी भी एक महान अगुवा नहीं बना या कुछ बड़ा करने के लिए लोगों को प्रेरित किया। निराशावादी हर अवसर में कठिनाई देखता है, जबकि आशावादी हर कठिनाई में अवसर देखता है। असल में, यह अकसर निराशावादी होते हैं जो दिव्यदर्शियों को रोके रहते हैं जो सदा आगे बढ़ना चाहते हैं। निसन्देह, सावधान/समझदार लोग दिव्यदर्शी को यथार्थवादी होने में भूमिका निभाते हैं, परन्तु उन्हें उस व्यक्ति के पंख नहीं काटने हैं जिसे परमेश्वर ने उड़ने के लिए बुलाया है। सावधान लोग इतिहास से बहुमूल्य सबक सीखते हैं, परन्तु वे भूत से बंधने के खतरे में होते

हैं। जो व्यक्ति सम्भावनाओं को समझने के लिए उनकी कठिनाइयों से परे नहीं देख सकते हैं उनके अनुयायियों को कभी भी प्रेरित नहीं कर पाएँगे।

(आ) स्पष्टता

दिव्यदर्शी को दर्शन बुद्धिमानी और सफलतापूर्वक बताने योग्य होना चाहिए, अर्थात् दर्शन क्या है, इसकी नीति, विवरण, इत्यादि। इसे करने के लिए उन्हें दर्शन को जानना और समझना है। दर्शन दूसरे लोगों से अधिक उनके लिए निश्चित होना चाहिए। जैसे कि मूसा ने दर्शन के कुछ भागों के लिए जिसमें काम करने के लिए परमेश्वर ने उसे बुलाया था नमूना पाया था (निर्गमन 26:30; निर्गमन 24:34), उसी प्रकार दिव्यदर्शी को परमेश्वर के साथ दर्शन को निश्चित करने और स्पष्टता पाने के लिए समय बिताना चाहिए। तब दिव्यदर्शी योग्य करनेवालों और दूसरे लोगों को बता सकता है उन्हें क्या करना है (अर्थात् परमेश्वर का नमूना क्या है)। याद रहे, जिन लोगों ने दिव्यदर्शी के दर्शन को अपना बनाया है अब दिव्यदर्शी द्वारा उस दर्शन के विवरण जानना चाहते हैं।

(इ) समझ

मूसा के समान, दिव्यदर्शी को दर्शन और इसके तात्पर्य को समझने की आवश्यकता है। उन्हें उनके हृदयों में दर्शन की वास्तविकता क्या है निरन्तर जानने की आवश्यकता है और उसके अनुसार हर स्थिति जो उनके सामने आती है उसे परखने के योग्य होना है। इसलिए उन्हें किसी भी प्रकार के कार्य/रवैया/झुकाव को देखने के योग्य होना है जो उससे हट रहा है जो परमेश्वर उसके दर्शन के लिए चाहता है और लोगों को जहाँ उन्हें होना चाहिए वापस लाने योग्य होना है। असल में, दिव्यदर्शी को योग्य करनेवालों और बनाए रखनेवालों को दर्शन के साथ तालमेल में रखना चाहिए, और दर्शन को प्रभावशाली तरीके से चलाते रहने के लिए समझकर आवश्यक समाधान लाना है। मूसा ने तम्बू का निरीक्षण किया, क्योंकि वह समझता था कि दर्शन कैसा दिखना चाहिए (निर्गमन 39:32-43)। उसने निश्चित किया कि सबकुछ जो किया गया था परमेश्वर के दिए हुए दर्शन के अनुसार था, क्योंकि नहीं तो परमेश्वर की महिमा नहीं आएगी।

दिव्यदर्शियों को विश्वास के लोग बने रहने के लिए सावधान रहना है, और आलसी सपने देखनेवाले नहीं बनना है जो वर्तमान के कार्यों को उनके योग्य नहीं समझते (अर्थात् मनमाने बन जाते हैं और पृथ्वी के योग्य नहीं रहते)। दिव्यदर्शियों को दूरदर्शिता के लोग भी होना है, अर्थात् परमेश्वर में आगे क्या है उसे देखने और उसका प्रबंध करने योग्य होना है। उन्हें जिन क्रियाओं में वे लगे हैं उसका अन्तिम परिणाम देखने योग्य होना है, और जानना है कि उनकी नीतियों, तरीकों और लक्ष्यों का भविष्य पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

(ई) अधिकार

एक दिव्यदर्शी का अधिकार परमेश्वर से अभिषेक के कारण आता है। उन्हें इसके लिए प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु केवल इस पर खड़े होना है। दूसरे लोग इसे पहचान लेंगे (विशेषकर वे जिन्हें परमेश्वर ने उसी दर्शन में काम करने के लिए बुलाया है)। जब एक दिव्यदर्शी उसका अभिषेक खोता है, तो वह अपना अधिकार और दर्शन को चलाने के हक को खो देगा। इसी कारण से दर्शन वाले व्यक्ति को प्रभु के सामने दीन बने रहना है।

(उ) जिम्मेवारी

दिव्यदर्शी अन्त में एक परमेश्वर द्वारा दिए गए दर्शन की पूर्ति के लिए जिम्मेवार है (चाहे कितने भी योग्य करनेवाले और बनाए रखनेवाले क्यों न हों)। इसका अर्थ यह है कि उन्हें प्रभु पर निर्भर रहना है और दर्शन के पूरे होने के लिए पर्याप्त विश्वास रखना है। असल में, जब वे अभाव अनुभव करते हैं उन्हें विश्वास के नए कदम उठाने हैं। दिव्यदर्शी जिम्मेवारी टाल नहीं सकते हैं। उन्हें जिम्मेवारी की कीमत पता लगानी है और चुकानी है, ताकि वे दर्शन की अगुआई करते रहें। मूसा को अपने आप को बार-बार परमेश्वर और लोगों के बीच रखना होता था। मूसा दर्शनों की बड़ी जिम्मेवारी को समझता था और वह सीमाएँ जानता था (और लगभग सदा उनमें रहकर कार्य करता था)। दिव्यदर्शियों की लोगों को अपनी ओर नहीं, परन्तु परमेश्वर और उसके दर्शन की ओर संकेत करने की भी एक जिम्मेवारी है।

एक योग्य बनानेवाले की विशेषताएँ:

जिस प्रकार परमेश्वर ने उसके दर्शन को पूरा करने के लिए मूसा को योग्य पुरुष दिए थे, उसी प्रकार परमेश्वर हर सच्चे दिव्यदर्शी को उनके दर्शन को पूरा करने के लिए हर व्यक्ति देगा। योग्य करनेवाले दर्शन को स्रोत से एक स्तर आगे ले जाते हैं और उसे कार्य में लाने लगते हैं। इसलिए, उन्हें बड़ी जिम्मेवारी के लोग होना है जो दर्शन को समझ सकते, प्रबंध कर सकते, और स्पष्टता के साथ बता सकते हैं। उन्हें दर्शन की आत्मा के बहुत करीब भी होना है। असल में, उन्हें वही दोहराना है जो दिव्यदर्शी कह रहा है। योग्य करनेवालों को ऐसे लोग होना है:

(अ) प्रत्यक्षज्ञान

योग्य बनानेवालों को दर्शन में भाग लेना है और उसे अपना बनाना है। इसलिए, उन्हें ऐसे लोग होना है जिन्हें दिव्यदर्शी को बार-बार दर्शन समझाने की आवश्यकता न हो। असम में, योग्य बनानेवाले ऐसे लोग होने चाहिए जिन पर दूसरे लोगों को, अपने को और वापस दिव्यदर्शी को दर्शन समझाने के लिए भरोसा किया जा सकता है। दर्शन को पूरा करने में जो बातें शामिल हैं उन्हें देखनी हैं और उनके बारे में कुछ करना है, अर्थात् उसे काम में लाना है।

(आ) निर्णयकता

योग्य बनानेवालों को ऐसे लोग होना है जो दर्शन के अनुसार फैसले ले सकते हैं और जो इसे पूरा करने में सहायता करते हैं। हारून के पास उसके हृदय पर इस्राएलियों के लिए फैसले करने के साधन थे (निर्गमन 28:30)। आज योग्य बनानेवालों को परमेश्वर को और उनके हृदय में दर्शन को जानने की आवश्यकता है और, इसलिए, सही फैसले करने और दर्शन को प्राप्त करने के योग्य बनाना है (और कभी भी इससे हटना नहीं है)।

(इ) एकनिष्ठ

योग्य बनानेवालों को दर्शन की ओर इतने समर्पित होना है कि वे इसमें बने रहें (यहोशू 24:15)। असल में, उन्हें इसका अन्त तक या लक्ष्य प्राप्त होने तक अनुसरण करना है, चाहे कुछ भी कीमत क्यों न हो। वह दो पुरुष थे जिन्होंने अपने आप को मूसा के दर्शन की ओर समर्पित किया था (उसमें बने रहे) कि मूसा की मृत्यु के बाद भी उसे चलाते रहे (अर्थात् कालेब और यहोशू)।

योग्य बनानेवाले खतरनाक को सकते हैं, क्योंकि वे एक दर्शन में शक्तिशाली लोग हैं। उदाहरण के तौर पर, जब हारून ने सोने का बछड़ा बनाया था तो उसने अपने आप को दर्शन से आज्ञोल्लंघन और कुड़कुड़ाहट को हटाने दिया था (निर्गमन 32)। बाद में, वह अगुआई के विरुद्ध कुड़कुड़ाहट को होने देने (गिनती 12) और पवित्र/शुद्ध और अपवित्र/अशुद्ध के अन्तर को (लैव्यव्यवस्था 10) भूल जाने के द्वारा मूसा के दर्शन से दूर हुआ था। हर बार जब हारून दर्शन से दूर हुआ उसने बहुत संकट पैदा किया था। यही बात अनेक दर्शनों के योग्य करनेवालों के लिए भी सच है। इसलिए, उन्हें दर्शन के अनुसार बने रहने के लिए बड़े सावधान रहना है।

(ई) प्रेरणा

योग्य करनेवालों को जो उन्होंने दर्शन से (कम से कम कुछ अंश) पाया है दूसरे लोगों के जीवनों में बोने योग्य होना है, ताकि लोग प्रभावशाली तरीके से कार्य में लग जाएँ। उनमें दूसरे लोगों को सिखाने और प्रेरित करने की योग्यता होनी चाहिए, ताकि वे लोग दर्शन के लिए उपयोगी हों (निर्गमन 35:30-35); और उन्हें दूसरे लोगों के साथ सहानुभूत होना है ताकि वे उन्हें सही तरीके से योग्य कर सकें।

(उ) अगुआई

उन्हें ऐसे अगुवे होना है जो न केवल दूसरे लोगों की अगुआई कर सकते हैं, बल्कि जो पीछे चल सकते हैं और दूसरों को योग्य बना सकते हैं (व्यवस्थाविवरण 34:9)।

एक बनाए रखनेवाले की विशेषताएँ:

ये आधारिक और आगे के लोग हैं जो दर्शन को कार्य में लाते हैं और व्यावहारिक और विस्तृत तरीकों से बनाए रखते हैं। बनाए रखनेवालों को ऐसे लोग होना है:

(अ) अधीनता

बनाए रखनेवालों को ऐसे लोग होना है जो विस्तृत दर्शन को अपने हृदय में लेते हैं परन्तु जो दर्शन के अपने भाग पर कार्य करने पर ध्यान लगाते हैं। इसलिए उन्हें दर्शन के अधीन रहना है और अगुआई के भी जो दर्शन के पूरा होने में उनके प्रयासों को दिशा दे रहे हैं। इन लोगों में एक सिकुड़नेवाली, रेंगनेवाली आत्मा नहीं होनी चाहिए जो कहती है, "मैं किसी काम का नहीं हूँ, मुझ में कोई वरदान/योग्यता नहीं है और मुझे हर उस अक्षर का पालन करना है जो कोई ईश्वरीय भविष्यद्वक्ता कहता है!" उन्हें वैसे ही काम करना है जैसे प्रभु उन्हें आदेश देता है, और उनमें मूल्य और आत्म-मूल्य की एक सच्ची, भक्तिपूर्ण भावना होनी है।

(आ) समपर्ण

बनाए रखनेवालों को उस काम को समाप्त करने में समर्पित होना है जिसके करने के लिए परमेश्वर ने उन्हें बुलाया है और उन्हें यह काम उनकी परमेश्वर द्वारा दी योग्यता के अनुसार करना है। उन्हें ऐसे लोग होना है जो काम को तब भी पूरा करेंगे जब उन्हें अकेला छोड़ा गया हो।

(इ) उत्सुकता

बनाए रखनेवालों में जो काम करना है करने के लिए एक उत्सुक हृदय होना चाहिए (निर्गमन 35:20-21), क्योंकि वे प्रभु की और उस दर्शन की जिसे प्रभु ने उसके लोगों को दिया है सेवा करना चाहते हैं। उन्हें जिस संदर्भ में वे काम कर रहे हैं उसमें दर्शन को लगाने का प्रयत्न करना है।

(ई) लगन

बनाए रखनेवालों को उनका काम पूरा हुआ देखने की चाहता होनी चाहिए, और इसे करने के लिए अपने आप को और अपने समय को देने की इच्छा होनी चाहिए। उन्हें अपने विश्वास में फैलाए जाने और इसकी कीमत देने के इच्छुक होना चाहिए, ताकि वे दर्शन का अपना भाग सफलतापूर्वक करते रहें (चाहे इसका अर्थ जहाँ वे पहले थे उससे काफी बारह फैलाये जाएँ)। यीशु ने कहा, 'मेरा भोजन यह है कि अपने भेजनेवाले की इच्छा के अनुसार चलूँ और उसका काम पूरा करूँ।' (यूहन्ना 4:34)। सब जो यीशु का अनुकरण करते हैं इस क्षेत्र में उसके उदाहरण का अनुकरण करें।

(उ) वरदान

बनाए रखनेवालों को पता चलेगा कि उनके पास उस काम को करने के लिए जिसे परमेश्वर की ओर से दिया गया है परमेश्वर में सही वरदान है (निर्गमन 36:1)। असल में, परमेश्वर द्वारा दिया गया दर्शन तब ही सफल होगा जब हर व्यक्ति जिसे उस दर्शन में काम करने के लिए बुलाया गया है अपने परमेश्वर द्वारा दिए वरदान में काम करता है। दिव्यदर्शी और योग्य करनेवाले लोगों को उनके परमेश्वर द्वारा दिए वरदानों/अन्तःशक्ति में काम करने के लिए इसे पहचानें और उन्हें छोड़ें। याद रहे, जब एक व्यक्ति उसके वरदान में काम करने लगता है तो वह दूसरों द्वारा एक भिन्न नज़र से देखा जाता है। सब लोग जो दर्शन का अंश हैं उन्हें दूसरों के वरदान की ओर दीन/समर्पित होना है जिसे परमेश्वर ने दिया है।

परस्पर–व्यापन के क्षेत्र

इन में से अनेक विशेषताएँ दर्शन में भागीदारी के सब स्तरों में लागू की जा सकती हैं। उदाहरण के तौर पर, जिस प्रकार बनाए रखनेवालों की ओर से समर्पण होना चाहिए उसी प्रकार दिव्यदर्शियों को भी परमेश्वर और दर्शन दोनों की ओर समर्पित होना चाहिए; जिस प्रकार योग्य करनेवालों में प्रत्यक्ष-ज्ञान होना चाहिए उसी प्रकार बनाए रखनेवालों को दर्शन में उनका स्थान देखना और उस स्थान का मूल्य जानना चाहिए; जिस प्रकार बनाए रखनेवालों को समर्पित होने की आवश्यकता है उसी प्रकार

दिव्यदर्शियों को भी है (असल में, उसे तो अधिक समर्पित होना है क्योंकि उसे ही अन्त में सबसे अधिक कीमत उठानी होगी)। असल में, सब विशेषताएँ परस्पर संबंधित हैं, परन्तु किस मात्र तक उन्हें प्रकट करना है अन्तर लाता है।

दिव्यदर्शियों, योग्य करनेवालों और बनाए रखनेवालों सब को दर्शन के सेवक होना है; उनमें हृदय और उद्देश्य की एकता होनी है; उनमें दर्शन के संदर्भ में विश्वास/संतोष होना है; और उन्हें प्रभु और एक दूसरे की ओर आत्मा में निरन्तर खुले रहना है। हर एक जिसे दर्शन का एक अंश होने के लिए बुलाया गया है उसे महसूस होना चाहिए कि वह व्यक्तिगत रूप से दर्शन और दिव्यदर्शी से संबंधित है; उन्हें पता होना चाहिए कि वे जो करते हैं उसके लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी हैं और, इसलिए, उनके काम के कारण मूल्य और जिम्मेवारी की भावना अनुभव करते हैं; और उन्हें उस संदेश में व्यक्तिगत रूप से सम्मिलित होना है जिसे दर्शन बताने का प्रयत्न कर रहा है, क्योंकि दर्शन में काम कर रहे हर व्यक्ति को एक ही स्वर में बोलना है।

संघटनात्मक ढाँचा और परमेश्वर द्वारा दिया दर्शन

यह ढाँचा नहीं है जो आत्मिक दर्शन उत्पन्न करता या एक सेवा को सफल करता है। किसी भी कलीसिया/दल के ढाँचे को परमेश्वर के दर्शन का एक सेवक होना है। असल में, कलीसिया/संस्था का ढाँचा तब ही सक्रिय रूप से संबद्ध बनता है जब इसे परमेश्वर के दर्शन की सेवा के लिए खड़ा किया जाता है। परन्तु, एक कलीसिया/संस्था का ढाँचा आवश्यक है, क्योंकि यह एक आत्मिक दर्शन को वास्तविकता बनने में सहायता करता है, अर्थात् यह ढाँचा है जो दर्शन को कार्य करने देता है (और दर्शन को इसकी पूर्ति के लिए एक नीति के साथ कार्य करना है, नहीं तो यह मिथकशास्त्र या रहस्यवाद बन जाएगा)।

दिव्यदर्शियों को उस दर्शन को एक व्यावहारिक वास्तविकता बनाने के लिए जिसे वे परमेश्वर में आरंभ कर रहे हैं दूसरे लोगों और संघटन/ढाँचे की आवश्यकता है। यदि वे दूसरे लोगों के लिए स्थान नहीं बनाते तो दर्शन उनके भीतर बन्द रहेगा। उन्हें दर्शन के अंश इन लोगों के लिए देने हैं। यह दिव्यदर्शी और उन सब को जिन्हें परमेश्वर ने दर्शन में काम करने के लिए बुलाया है स्वतन्त्र करेगा। इसी तरीका से दर्शन कभी एक वास्तविकता बन सकता है। उदाहरण के तौर पर, एक दिव्यदर्शी एक संस्था आरंभ कर सकता है, परन्तु यह प्रबंध कौशल वाले अगुवे हैं जो दर्शन द्वारा बनाई गति को बनाए रखते हैं। और, जहाँ कहीं भी लोग होते हैं, वहाँ मिलकर काम करने के लिए संघटन/ढाँचे की आवश्यकता होती है, क्योंकि नहीं तो कुछ भी काम की बात नहीं हो पाएगी।

दर्शन परखा जाएगा

परमेश्वर के अगुवे अकसर पाएँगे कि परमेश्वर के उद्देश्यों और दर्शन में उनकी अन्तर्दृष्टि पर संदेह प्रकट, चुनौती या विरोध किया जाएगा। इसलिए, उन्हें निश्चित करना है कि उन्होंने परमेश्वर से सुना है, ताकि वे स्थिति को विश्वास की आँखों से देख सकें। असल में, परमेश्वर अकसर अपने अगुवे के दर्शन और अन्तर्दृष्टि को परखने देगा ताकि अगुवे को पता चले कि उसमें उसका विश्वास कितना गहरा है जिसे परमेश्वर ने उसे दिखाया है। परमेश्वर चाहता है कि उसके अगुवे निरन्तर उस पर और उसके पवित्र आत्मा, न कि उनकी योग्यताओं/क्षमता/स्थिति, दूसरे लोगों, या परिस्थितियों पर निर्भर रहें।

एक दूसरा कारण कि क्योंकि परमेश्वर उसके अगुवे के हृदय में डाले दर्शन को परखने देता है क्योंकि दर्शन द्वारा प्राप्त की गई हर चीज की महिमा वह पाना चाहता है। परमेश्वर अकसर दर्शन को बन्द करके अगुवे को परखता है, अर्थात् दर्शन के उत्पन्न होने के बाद, यह लगेगा मर गया है। ऐसी परिस्थिति में अगुवे परमेश्वर के पास जाने के सिवाय कुछ नहीं कर सकते हैं। परमेश्वर ऐसी स्थिति आने देता है क्योंकि वह चाहता है अगुवे दर्शन उसे वापस दें। क्योंकि किसी भी अगुवे को यह नहीं सोचना है कि वे दर्शन के मालिक हैं। परमेश्वर को सारी महिमा चाहिए; और एक अगुवा परमेश्वर को महिमा देने में काफी आसानी अनुभव करेगा यदि जिस दर्शन का वह एक अंश है किसी समय मरता है और केवल परमेश्वर द्वारा जीवित किया जाता है। एक अगुवा जिसने ऐसा अनुभव (या ऐसे कई अनुभव) पाए हैं दर्शन के पूरा होने पर उसे महिमा देगा। उसे स्पष्ट अनुभव होगा कि दर्शन परमेश्वर द्वारा उसके तरीके से और उसके समय पर पूरा होगा, और सब जो दर्शन में काम करते हैं उसके औजार हैं।

दर्शन का लोप हो जाना

दर्शन का लोप होना नए, अनुभवहीन मसीहियों के लिए कोई समस्या नहीं है क्योंकि वे अपने आप को ऐसे स्थान में देखते हैं जहाँ सबकुछ उनके आगे है। परन्तु, पुराने, अधिक परिपक्व अगुवों के लिए दर्शन का लोप होना बड़ी समस्या हो सकती है, विशेषकर

तब जब उन्होंने दर्शन में अपना भाग पूरा कर दिया है। यहाँ, समस्या यह है कि अगुवे ने एक दर्शन (या उसका एक अंश) पूरा किया और दूसरे के लिए (या उसका अंश होने के लिए) परमेश्वर के पास नहीं गया है। इस समस्या में मुख्य बात यह है कि ये अगुवे एक प्रकार का काम इतने समय से कर रहे थे कि वह उनके जीवन का अंश बन गया था। और जब यह काम पूरा हो गया, उन्हें समझ नहीं आ रहा था क्या करना है, क्योंकि उनका काम उन्हें अर्थ और जीने की भावना दे रहा था। परमेश्वर की सेवा, आगे चलकर उनके लिए दूसरे दर्जे की बात बन गई थी। ये अगुवे जो एक समय व्यस्त थे, अब नहीं जानते क्या करें। यदि यह स्थिति एक लम्बे समय तक बनी रहेगी तो वे निर्जीव, परेशान, निन्दक, मोह-भंग हो जाएगे। इसका उत्तर है नए दर्शन के लिए परमेश्वर की बाट जोहना या परमेश्वर को बताना कि उन्हें उसकी सेवा करने के लिए किस दर्शन में काम करना चाहिए।

दर्शन शीघ्र ही परम्परा और कर्मकाण्डवाद बन जाएगा, यदि दर्शन के स्रोत/प्रारंभक को दूसरे दिव्यदर्शी से नहीं बदल दिया जाता। अनेक बार नए अगुवे, जो उनके पूर्वाधिकारी की स्थिति और प्राप्ति को बनाए रखने के लिए, मरी हुई परम्परा को चलाते रहते हैं (या एक नई आरंभ करते हैं)। किसी भी संस्था/दल/कलीसिया को योग्य करनेवालों या बनाए रखनेवालों को चालक नहीं बनने देना है। परमेश्वर के हर काम के लिए दिव्यदर्शियों की आवश्यकता होती है जो उच्च अगुआई में हैं। वे चाहे प्रमुख अगुवा न हो परन्तु उन्हें कलीसिया/दल/संस्था में फैसले करने और लक्ष्य निर्धारित करने के मध्य में होना चाहिए। परमेश्वर का काम किसी दूसरे तरीके से करने का अर्थ आँखें बन्द करके करना है।

परमेश्वर के अगुवों के पास प्रभु से ऐसा आत्मिक दर्शन चाहिए जो नकारात्मक लोगों, या विपरीत/कठनि परिस्थितियों से न टूटेगा, डगमगाएगा और न लोप होगा। उन्हें दर्शन को पूरा करने के उनके भाग को करने से कोई भी विरोध निरुत्साहित न करने देना है। असल में, दर्शन के लोगों को जब कभी भी विरोध खड़ा होता है प्रार्थना में प्रभु के पास स्थिति को ले जाना है। उन्हें तब तक बने रहना है जब तक उन्होंने जो आवश्यक है कर नहीं लिया है।

आप अपने आप को और परमेश्वर की योजना को किस प्रकार देखते हो?

- क्या आप अपने आप को और अपने काम को वैसे ही देखते हो जैसे परमेश्वर देखता है?
- आप और आपका काम परमेश्वर के साथ किस स्तर पर हैं?
- जो स्थिति आपने प्राप्त की है, क्या आपकी सीमा है?
- क्या आप वह सबकुछ कर रहे हैं जो आप परमेश्वर के लिए कर सकते हैं?

हमें अपने आप को और अपने काम को उसी प्रकार देखना है जैसे परमेश्वर उन्हें देखता है। जब हम ऐसा करते हैं तो हम अपने आकार और योग्यता से सामित होने के बजाय परमेश्वर के आकार और योग्यता से विश्वास कर सकेंगे। वैसे भी, हम परमेश्वर के लिए क्या कर सकते हैं वह नहीं, परन्तु वह हमारे द्वारा क्या कर सकता है मायने रखता है! हम में हर एक को अपने को एक ऐसे व्यक्ति के रूप में देखना है जो मसीह में बढ़ रहा और विकसित हो रहा है और जो परमेश्वर के सामर्थ्य से भरा है। हमें परमेश्वर में अपने आप पर भरोसा रखना है (2 कुरिन्थियों 3:4-6; 2 कुरिन्थियों 4:7)। तब ही हम वह सब प्राप्त कर सकेंगे जो प्रभु चाहता है हम करें। याद रहे, हमें परमेश्वर के लिए बड़े काम करने के लिए एक बड़े, परमेश्वर द्वारा दिए दर्शन के अंश होना है।

निर्गमन की पुस्तक में, हम कारीगरों के बारे में पढ़ते हैं जो सुलेमानी पत्थर का काम कर रहे थे। ये पुरुष सम्भवतः बसलेल से बेहतर यह काम कर सकते थे (हालाँकि बसलेल सम्भवतः यह काम जानता था)। परन्तु, वह योग्य करनेवाला था, उनके वरदानों की व्यवस्था करने में उनकी सहायता की और उनके लिए ऐसा वातावरण उत्पन्न किया जिसमें वे उनका काम कर सकते थे। कारीगरों और बसलेल को उनके काम करने के लिए एक दूसरे की आवश्यकता थी। क्या आप उस दिन की कल्पना कर सकते हो जिस दिन वे तम्बू खड़ा करने आए होंगे? उसके सब टुकड़े एक पहेली के समान जमीन पर बिखरे पड़े होंगे। सुलेमानी पत्थर के कारीगर और दूसरे कारीगरों ने खड़े होकर देखा होगा जब उनका टुकड़ा अपने स्थान पर लगाया गया होगा। धीरे-धीरे सबकुछ अपने स्थान पर लग गया होगा और मुझे विश्वास है सबने आश्चर्य किया होगा। उनके छोटे छोटे टुकड़ों ने मिलकर पूरे को बनाया था और दर्शन को पूरा किया था। वे अकेले अपना अपना काम कर सकते थे, परन्तु वे जो अपनी आँखों से देख रहे थे उसकी तुलना में वह कुछ भी नहीं होता। उनका काम सम्पूर्ण का एक भाग था जिसमें परमेश्वर की महिमा वास करने को आई थी। जिस किसी भी दर्शन में परमेश्वर ने हमें काम करने को बुलाया हो, उसमें हमें अपना भाग करना है। वही स्थान है जहाँ परमेश्वर की महिमा वास करने वाली है। असल में, परमेश्वर की योजना में अपना स्थान देखना और कि दूसरे लोगों के संबंध में आप कैसे व्यवस्थित बैठते हैं देखना बहुत बड़ा अनुभव है।

परमेश्वर के लोगों को परमेश्वर की अनन्त योजना की पूर्ति में उनके भाग को देखकर संतुष्ट होना चाहिए। याद रखना है कि ये योजनाएँ हमारे जीवनकाल से आगे चलती रहेंगी। हम जो परमेश्वर में देखते हैं सम्भवतः सबकुछ प्राप्त नहीं कर पाते हैं। इससे हमें परेशान नहीं होना या भ्रम-भंग होना या निन्दक नहीं होना है। हमें परमेश्वर ने उसकी योजना में केवल अपना भाग करने को बुलाया है और हमें इससे संतुष्ट होना है। मूसा को भी प्रतिज्ञा के प्रदेश में जाने नहीं मिला था।

कुछ और बुद्धिमान सलाहः 'जो बड़े-बड़े काम आप करना चाहते हैं उसका दर्शन प्राप्त करो। इसे प्राप्त करने की एक योजना बनाओ। इसके लिए युद्ध करने के लिए तैयार हो जाओ। परमेश्वर से उत्सुकता से प्रार्थना करो कि वह आपको विजय दे।'

अन्त में

नीतिवचन 29:18 को इस प्रकार कहा जा सकता है। 'जहाँ परमेश्वर के वचन पर आधारित लोगों के लिए कोई योजनाएँ और लक्ष्य नहीं होते, वो लोग एक अर्थहीन, बेकार, निष्फल अस्तित्व में चले जाते हैं।' यदि हम भविष्य को कोई विचार दिए बिना केवल आज के लिए ही जी रहे हैं तब हमारा जीवन बिना कुछ प्राप्त किए बेमतलब घूमता रहता है। हमें परमेश्वर से एक दर्शन पाने की आवश्यकता है, जो हम में या किसी दूसरे व्यक्ति में आरंभ हो सकता है। तब हमें उस दर्शन को खिलाना, पोषण देना और रक्षा करनी है, और इसकी योजना बना कर इसके पूरे होने की अपेक्षा करनी है, अर्थात् हमें उस दर्शन को पूरा करने के प्रयत्न में अपने जीवन जीने हैं। हमें यह भी अपेक्षा करनी है कि दर्शन खुलता जाएगा जैसे परमेश्वर ने हमें दिखाया है यह होगा (अर्थात् सीधे या अगुआई के द्वारा)। विश्वास इसी के विषय में है। एक बार जब हमारे पास या हम एक दर्शन के भाग हैं, तो हमें इसके अपने भाग पर अपनी पूरी शक्ति से काम करना है, दूसरे लोगों के साथ-साथ जिन्हें परमेश्वर ने उसी दर्शन को करने के लिए बुलाया है। इसका अर्थ है लक्ष्य और उद्देश्य निर्धारित करना और उन्हें प्रोत्साहित करना जो हमारे साथ काम करते हैं ताकि परमेश्वर का दर्शन पूरा हो सके।

दर्शन अलग-अलग भी पाया जा सकता है। हम परमेश्वर से उसके लिए काम करने के लिए एक बोझ पा सकते हैं और दिव्यदर्शी बन सकते हैं जो योग्य करनेवालों और बनाए रखनेवालों को अपने साथ काम करने के लिए आकर्षित करते हैं (क्योंकि वे हमारे दर्शन को पकड़ते हैं और परमेश्वर द्वारा उस दर्शन को पूरा करने के लिए बुलाए गए हैं)। फिर भी, एक संस्था/कलीसिया में जहाँ विभिन्न प्रकार के कार्य हैं बिरले ही एक व्यक्ति को उस संस्था/कलीसिया के लिए सारा दर्शन मिलता है। यहाँ, कई लोग होते हैं जिन्हें दर्शन के भाग मिलते हैं और उस संस्था/कलीसिया का निरीक्षक का काम यह निश्चित करना है कि जो कुछ होता है वह उस संस्था/कलीसिया के सम्पूर्ण योजना में ठीक बैठे। इसे करने के लिए आत्मिक अधिकार की इकट्ठे परमेश्वर के मन की खोज करने की जिम्मेवारी है।

अनेक अगुवों ने सामूहिक आत्मिक दर्शन से संबंधित बहुत सारे अविवेकी और अतिरंजित दावे देखे हैं। यह इस तथ्य को बदलता नहीं है कि एक असली आत्मिक दर्शन है जो परमेश्वर में यथार्थ है, और जो उसके सामर्थ्य के साथ आता है और उसके उद्देश्य पूरे करता है। हम में से कुछ को परमेश्वर सामूहिक दर्शन उत्पन्न करने के लिए बुलाएगा, तो दूसरों को इसका प्रबंध करने और योग्य करने के लिए बुलाएगा, और फिर दूसरों को इसके लिए लोगों को भर्ती करने और चलाते रहने के लिए बुलाएगा। परन्तु हम में से हर एक के लिए जो परमेश्वर की सन्तान है उसके दर्शन में स्थान है। यदि हम परमेश्वर में सफल होना चाहते हैं, तब हमें अपने जीवन के लिए परमेश्वर के दर्शन में जीना है और उस दर्शन अपने भाग को पूरा करना है।

व्यक्तिगत अभ्यास

क्या आप अपने सम्प्रदाय या परम्परा में आपेक्षित विश्वासी के जीवन में टिक गए हैं ? परमेश्वर ने आपके जीवन के लिए आपको क्या दर्शन दिया है (करने और बनने दोनों के लिए) ?

किसी ने एक बार कहा, 'अधिकाँश कलीसियाएँ और संस्थाएँ एक कारण के लिए असफल होती हैं – दर्शन की कमी!' क्या यह सच है ? आप अपनी स्थिति में इसके बारे में क्या कर सकते हैं ?

'एक कार में एक ऐक्सलरेटर, ब्रेक और एक गियर होते हैं। दल वही है। ऐक्सलरेटर दिव्यदर्शी है जो 6.2 सेकन्ड में अपने पीछे धूल के बादल उड़ाते हुए 120 किलोमीटर जाना चाहता है। अपने आप में वह खतरनाक है - उसकी रफ्तार और नवीनता कलीसिया को तोड़ देगी। उसे उन लोगों की आवश्यकता है जो ब्रेक हैं, जो उसकी रफ्तार को धीमा करेंगे। फिर

भी ऐक्सलरेटर के बिना ब्रेक किसी भी उन्नति को रोकेगी। महान बदलनेवाले वो बुद्धिमान पुरुष और स्त्रिया हैं जो पता लगा सकते हैं कि कब कलीसिया या दल को ऊँचे गियर में जाना है, या कम होना है क्योंकि कार्य खतरे से भरा था।' क्या यह वक्तव्य सही है? क्या हम इससे कोई सबक सीख सकते हैं? आपको अपनी कलीसिया/दल/संस्था में क्या करना चाहिए?

क्या आप परमेश्वर से रोजाना के आधार पर उसकी नीति और इच्छा प्रकट करने के लिए कहते हैं? क्या आपको करना चाहिए?

सम्भवतः आपने उस व्यक्ति की कहानी सुनी है जिसकी मुलाकात तीन कारीगरों से हुई। उसने पहले कारीगर से पूछा वह क्या कर रहा है और उसे उत्तर मिला, 'मैं ईंटे लगा रहा हूँ!' उसने अगले से पूछा वह क्या कर रहा है और उत्तर मिला, 'मैं एक दीवार बना रहा हूँ!' अन्त में, उसने तीसरे व्यक्ति से पूछा वह क्या कर रहा है और उसे बिलकुल भिन्न उत्तर मिला। इस व्यक्ति ने कहा, 'मैं एक इमानत बना रहा हूँ!' तीसरे व्यक्ति ने दर्शन पकड़ लिया था। वह अपना काम कर रहा था, परन्तु वह इसे कुछ बड़े के संदर्भ में कर रहा था। उसके संतोष की कल्पना कीजिए। जब उसने सम्पूर्ण को अपने भाग के साथ देखा।

आप परमेश्वर के लिए अपने काम और सेवा को कैसे देखते हो? आपको इसे कैसे देखना चाहिए? क्या आपको परमेश्वर के पास जाने और आपके दृष्टिकोण को बदलने और आपको नया दर्शन देने की आवश्यकता है? यदि आवश्यकता है तो इसे अभी करो!

'सम्पूर्ण दर्शन इतना बड़ा होना ही चाहिए कि आप इसके लिए अपना जीवन देना चाहें। आकार उतना आवश्यक का नहीं है जितना महत्त्व है। एक दर्शन महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके पीछे परमेश्वर की इच्छा है। संसार इसे छोटा या बड़ा कहे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। परन्तु हमारे जीवनों में, जैसे हम आज्ञापालन और शिष्यता के लिए हाँ करें, यह एक बड़ी बात है!' क्या दर्शन का आकार महत्त्वपूर्ण है? क्या आपने उस दर्शन के लिए जिसमें आप इस समय काम कर रहे हैं अपना जीवन दिया है? क्यों नहीं? क्या देना चाहिए?

क्या परमेश्वर एक कलीसिया से दूसरे को भिन्न दर्शन देता है या एक सामान्य दर्शन होता है? क्या परमेश्वर चाहता है सब कलीसियाएँ स्नेही संगतियाँ, आराधक देहें, स्थान जहाँ लोग मसीह में पोषण पाते और परमेश्वर की सेवा के लिए तैयार किए जाते हैं आदि हों। क्या कलीसियाएँ सम्पूर्ण मसीह की देह के भीतर विभिन्न कार्य करती हैं? क्या हर कलीसिया को सबकुछ करने के लिए बुलाया गया है या परमेश्वर का दर्शन उस कलीसिया के लिए विशेष बनाया गया है?

कार्यकुशल होने के लिए समय प्रबंध

याद रहे, परमेश्वर का काम सबसे महत्त्वपूव चीज है जो हम कर सकते हैं। आखिरकार, जो काम हम परमेश्वर के लिए करते हैं हर चीज से अधिक चलेगा। इसलिए, हमें इस अन्तर का पता लगाने की आवश्यकता है कि क्या परमेश्वर में करना चाहिए और क्या हम करना चाहते हैं। इसे भी याद रखो, परमेश्वर की इच्छा करने के लिए सदा पर्याप्त समय रहेगा। आखिरकार, उसने समय बनाया है और पहले से हमारे लिए भले काम तैयार किए हैं (इफिसियों 2:10)। जब तक हम इस बहुमूल्य, दोहराए नहीं जानेवाले साधन को गँवाते नहीं, और परमेश्वर की योजनाओं और उद्देश्यों में ठीक बैठते हैं, हमें कभी भी समय की कमी नहीं होगी। "इसलिए ध्यान से देखो, कि कैसी चाल चलते हो; निर्बुद्धियों के समान नहीं पर बुद्धिमानों के समान चलो। अवसर को बहुमूल्य समझो, क्योंकि दिन बुरे हैं।" (इफिसियों 5:15-16)।

समय गँवानेवाले

- <u>अनिश्चय</u>: किसी भी प्रकार की अगुआई के लिए फैसला करना ही होगा और अकसर इनमें जोखिम सम्मिलित होगा। इसलिए, अगुवों को जोखिम स्वीकार करने और आगे बढ़ने और जितना अच्छा वे कर सकते हैं फैसले करने की आवश्यकता है जिनकी उनसे अपेक्षा की जाती है। टाल-मटोल समय का प्रमुख चोर है और, दुर्भाग्यवश, यह हम में से अनेकों की सामान्य कमी है। असल में, कई चीजें जो हमारे जीवनों में काँटे बन जाती हैं वही हैं जिन्हें दूसरे दिन के लिए टाल दिया था। यदि काम बहुत कठिन है तो उसे छोटे छोटे टुकड़ों में बाँट दो। और, अपने लिए समय निर्धारित करो जिसमें रहकर काम खत्म कर सको। परमेश्वर के साथ एक अत्यावश्यकता है। वह आज में काम करता है (2 कुरिन्थियों 6:2)। इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें परमेश्वर से आगे भागना है, परन्तु यह परमेश्वर के वचन की प्रगति को आगे बढ़ाना या सहायता करना है जब यह दिया जाता है, न कि यह आशा करते हुए इसे रख देना है कि जब हमें लगेगा हम इसे करेंगे।

- <u>योजना की कमी</u>: परमेश्वर के कई अगुवों को निश्चय नहीं होता कि उन्हें क्या करना चाहिए। जो काम करने हैं उनकी एक सूची बनाना और उन्हें प्राथमिकता के क्रम में रखना सहायक होगा। तब अपने दिन/सप्ताह/महिना/वर्ष की योजना बनाओ और निश्चय करो कि उस दिन/सप्ताह/महिना/वर्ष के लिए प्राथमिकताएँ उस समय में की जाए जब हम उन्हें अच्छा समय दे सकते हैं।

- <u>प्रबंध की कमी</u>: क्या आपको वह चीज नहीं मिलती है जो आपको चाहिए, जब आपको चाहिए? क्या आपकी मेज या आपका सारा आफिस इतना अस्तव्यस्त है कि जो आप कर रहे हैं उस पर ध्यान नहीं लग रहा है (उदाहरण के तौर पर, क्योंकि आपको सदा वह चीज मिल जाती है जिसे करना है या जिस पर आपका ध्यान चला जाता है)? सुव्यवस्थित करो और और एक अच्छा फाइल का सिस्टम ले लो। एक अच्छे फाइल सिस्टम में समय लगाने से आप बाद में कई घंटे बचा सकेंगे। और, निश्चित करो कि आपकी मेज साफ-सुथरी है और एक समय में आप केवल उसे ही देख पाते हैं जिस पर काम कर रहे हैं।

- <u>अनुशासनहीनता</u>: समय इतनी सरलता से व्यर्थ होता है क्योंकि हम उठ कर वह काम नहीं करते जिसे करने की आवश्यकता है। बदले में, हम सपने देखते हैं, एक कप और चाय या काफी पीते हैं, मेज पर पेपर सरकाते रहते हैं, किसी और से उनकी छुट्टियों के बारे में बात करते हैं, एक और फोन करते हैं आदि। अनुशासनहीन समय: वह काम करने में लग जाता है जिसमें हम अच्छे नहीं हैं (दूसरे को सौंपना इसका उत्तर है); जोर से, शक्तिशाली, दबानेवाले लोगों के नियंत्रण में होते हैं (हमारे समय के उपयोग के लिए हमारे पास परमेश्वर की प्राथमिकताएँ होनी चाहिए); तुरन्त या अत्यावश्यक की तानाशाही के अधिकार में हैं (हर चीज जो सबसे जोर से चिल्लाती है सबसे जल्दी करने वाली नहीं है); उन चीजों में लगे रहना जो शरीर को भाती हैं; और उन चीजों में लगना जो लोगों की प्रशंसा और तात्कालिक इनाम लाती हैं (इसलिए, हमें अपने आप को परमेश्वर के दीन सेवकों के रूप में देखना है)। मसीही कार्यकर्त्ताओं के पास परमेश्वर के लिए करने को काम है। इसलिए, उन्हें उनके जीवनों में इतने अनुशासित होना है कि यह काम सफलतापूर्वक किया जाए और उनका समय लाभपूर्वक इस्तेमाल हो। असल में, हमारे रुपये-पैसे के समान, हमारे समय का भी बजट बनना चाहिए। याद रहे, सबसे महत्त्वपूर्ण चीजों को प्रथम समय और तात्कालिक प्राथमिकता मिलनी चाहिए, जबकि कम महत्त्व की चीजों को दूसरे समयों में सूचिबद्ध करना चाहिए।

- बहुत कुछ करना: इससे हम कम प्राप्त कर पाएँगे और जो काम हम कर रहे हैं कम अच्छा करेंगे। यदि आपके काम का बोझ बहुत अधिक है तो जो काम दूसरों को दिए जा सकते हैं देकर बोझ कम करो। जब आवश्यकता हो तब 'नहीं' कहना, नित्यक्रम और तुच्छ कामों को तब तक टाल देना जब आप कम सक्रिय होते हैं भी याद रखो।

- कुछ नहीं करते हुए बहुत व्यस्त रहना: अनेक बार अगुवे कुछ चीजें करते हैं क्योंकि वे सदा होती रही हैं या क्योंकि उन्हें दिखना अच्छा लगता है, परन्तु असलीयत में बहुत कम कुछ कीमती काम होते हैं। परमेश्वर के अगुवों को उससे पूछना चाहिए कि वह क्या चाहता है वे करें। उन्हें यह भी पूछना चाहिए कि वे भविष्य में क्या बनें और करें और इसे प्राप्त करने के लिए उनकी क्रियाओं को लगाएँ। क्रियाओं को उनकी खातिर कभी नहीं करना चाहिए, परन्तु परमेश्वर का काम उसके तरीके और समय पर करने के लिए करना चाहिए।

- आलसपन: हमारा शरीर सदा आराम खोजता है। असल में, इसे लाड़-प्यार पसन्द है और चाहता है किया जाए। हमें निश्चित करना है कि हम ऐसा नहीं करें। परमेश्वर का काम हमारे लिए इतने महत्त्व का है कि हम इसकी ओर अपने रवैये में आलसी नहीं हो सकते। परमेश्वर ने हमें उसकी इच्छा सौंपी है और इसे विश्वासयोग्यता से और अपनी योग्यता के अनुसार करते रहने की हमारी जिम्मेवारी है (मत्ती 25:24-30; 2 थिस्स. 3:6-15)।

- चिपके रहने की कमी: परमेश्वर के अगुवों में चिपके रहने की योग्यता होनी चाहिए। उन्हें परमेश्वर के काम के संबंध में यीशु के रवैये का अनुकरण या नकल करनी चाहिए। उसने कहा, "मेरा भोजन यह है कि अपने भेजनेवाले की इच्छा के अनुसार चलूँ और उसका काम पूरा करूँ।" (यूहन्ना 4:34)। अनेक लोग उन चीजों में धँस जाते हैं जो उन्होंने आधी की हैं या छोड़ दी हैं। असल में, वे इन चीजों से इतना दब जाते हैं कि वे हिम्मत छोड़ देते हैं और कुछ नहीं करते हैं। परमेश्वर चाहता है कि हम वह समाप्त करें जो करने के लिए उसने हमें दिया है (1 कुरिं. 9:24-27; फिलि. 3:12-14)।

- आतंक: यह तब होता है जब हमारी कठिनाइयाँ और समस्याएँ हमारे लिए बहुत भारी हो जाती हैं और वे हमें हरा देती हैं। यहाँ समस्या बस इतनी है कि हम तेज-तेज साँस लेने लगते हैं और हमारा दिमाग खाली हो जाता है। हमें ऐसा करना चाहिए कि रुकें, विश्राम करें और धीमे-धीमे साँस लें (अर्थात अपने शरीर में आक्सीजन लाएँ)। एक बार जब हम ने शान्त होना आरंभ किया है, तो हमें प्रार्थना करनी और स्थिति को परमेश्वर के पास लाना है और स्पष्ट जानना है कि हम उसमें सबकुछ कर सकते हैं (फिलि. 4:13)। जब हम आतंकित होते हैं उस समय कुछ करने का प्रयत्न समय गँवाना है। अच्छा होगा यदि हम रुकें और परमेश्वर में अपने आप को सम्भालें।

- बाधाएँ: क्या आप ने देखा है कि जब आप कुछ जरूरी कर रहे हों या जल्दी करना होता है तब कितनी बार फोन की घंटी बजती है या घर की घंटी बजती है? दिन में एक ऐसा समय निर्धारित करना जब आप बिना बाधा काम कर सकें सहायक होता है। इसका अर्थ है आन्सरिंग मशीन चालू रखना या रिसीवर को फोन से अलग रख देना। मिलने आनेवालों को भी जब सम्भव हो देख लेना चाहिए, और मिलने का समय सुविधा के अनुसार देना चाहिए। दूसरे व्यक्ति का संकट सम्भव है उतना आवश्यक न हो जितना उन्हें लगता है, इसलिए जल्दी से आपातों के लिए भी छूट मत दो। लोगों से भोजन के समय मिलना या दिन के ऐसे समय मिलना जब आप उतनी कार्यकुशलता से काम नहीं कर पाते हैं सहायक होगा (उदा. दोपहर को)। फिर भी याद रखो कि अनपेक्षित आपातें भी परमेश्वर ने उत्पन्न की हो सकती हैं। यीशु कभी भी उनके द्वारा चिन्तित या चिड़ता दिखता नहीं था, सम्भवतः क्योंकि वे असली में बाधाएँ नहीं थीं परन्तु उसके पिता की योजना का भाग थीं। जब बाधाएँ आएँ तो यह प्रश्न पूछो, 'परमेश्वर इस व्यक्ति/स्थिति को इस समय मेरे पास क्यों आने दे रहा है?' अर्थात् इसमें परमेश्वर को लाओ और उसकी योजना को खोजो (इफिसियों 2:10)।

- सभाएँ: आजकल बहुत से परमेश्वर के अगुवे सभाओं में जाने में समय गँवाते हैं जहाँ उन्हें जाने की आवश्यकता नहीं है। कलीसिया के अगुवों को कलीसिया की हर सभा में होने की, न ही हर सम्मेलन में भाग लेने की, या सब स्थानीय सभाओं में जाने की आवश्यकता नहीं है। परमेश्वर के अगुवों को उनकी प्राथमिकताएं तय करनी चाहिए और उन्ही सभाओं में जाना चाहिए जहाँ जाने की उनको आवश्यकता है।

- तीसरे पहर की सुस्ती: दोपहर के अच्छे भोजन के बाद जैसे हम भरे पेट की अच्छी भावनाओं का आनन्द लेते हुए आकाश में ताकते या अपने मन को भटकने देते हैं उससे कुछ काम नहीं होता है। तीसरे पहर की सुस्ती से बचने के कुछ सरल सहायकों में सम्मिलित है: हलका भोजन करना; आफिस में गर्मी कम हो; और जो काम हमें अच्छे लगते हैं उन्हें

इस समय के लिए बचा रखना (जिससे हमें काम के लिए प्रेरणा मिल सके)। ध्यान दें, सारा दिन कुर्सी पर बैठने से हमारी साँस जल्दी-जल्दी चलने लगती है। इससे हमारे खून में आक्सीजन की कमी के कारण हम उनींदा, सुस्त महसूस करते हैं और ध्यान नहीं लगा पाते हैं। जब हम उनींदा महसूस करते हैं उस समय सबसे उत्तम काम हल्का व्यायाम करना है जिससे पसीना नहीं आए (उदा. एक तेज सैर के लिए जाना या कुछ सीड़ियों में ऊपर-नीचे जाना)।

- टीवी/रेडियो/पढ़ना/टेलीफोन: ये सब उपयोगी उपकरण हैं जिन्हें हम विश्राम करने और अपने मनों को उन्नत करने के लिए इस्तेमाल कर सकते हैं, परन्तु हमें सावधान रहना है। बहुत सारे लोग उनके जीवनों का बहुत सारा समय इन चीजों के कारण गँवाते हैं। हमें पहले परमेश्वर का काम करना है और जो वह चाहता है हम करें उनके आस-पास इन चीजों को शामिल कर लेना है।

सम्भवतः और भी दूसरी समय गँवानेवाली चीजें हैं जो आपसे समय बर्बाद करवाती हैं। उन्हें सहन मत करो परन्तु उनके विषय में कुछ करो। हमारे पास परमेश्वर के लिए जीने के लिए एक ही जीवन है, इसलिए आओ हम इसका अच्छा लाभ उठाएँ।

अपने काम का मूल्याँकन करना

“समय खोया जा सकता है परन्तु यह कभी भी पुन:प्राप्त नहीं किया जा सकता, इसे जमा करके नहीं रखा जा सकता, इसे खर्च ही करना है। उसे टाला नहीं जा सकता है। यदि इसे उत्पादक रूप से इस्तेमाल नहीं किया तो सदा के लिए खो जाता है।”
पेशावरों ने एक संस्था में समय प्रबंध की प्रभावकारिता का मूल्याँकन करने के लिए तीन नैदानिक प्रश्न बनाए हैं। वे हैं:

- मैं ऐसा क्या कर रहा हूँ जिसे मेरे या किसी दूसरे द्वारा किए जाने की असल में आवश्यकता नहीं है?
- मेरे समय की सूची में ऐसे कौन से काम हैं जो किसी दूसरे द्वारा, यदि बेहतर नहीं तो उतने ही अच्छे तरीके से किए जा सकते हैं?
- मैं ऐसा क्या करता हूँ जो दूसरे लोगों का समय बर्बाद करता है?

हालाँकि ये प्रश्न मुख्य रूप से व्यवसाय प्रबंध का लक्ष्य हैं, फिर भी इन प्रश्नों का उत्तर देने में कुछ मूल्य है। उदाहरण के तौर पर, परमेश्वर के अगुवों को निश्चित करना है कि वे वही चीजें कर रहे हैं जो उन्हें करनी चाहिए; और उन्हें निश्चित करना है कि वे दूसरे लोगों पर अनावश्यक बोझ न डालें। मसीही अगुवों के रूप में, हमें प्रार्थनापूर्वक पता लगाना है कि हम अपना समय कैसे उपयोग करते हैं। आप सम्भवतः ऊपर दिए पेशावरों के प्रश्न उपयोग न करना चाहें, परन्तु जहाँ तक समय का संबंध है सुखद अज्ञानता में न रहो, क्योंकि आप वापस जाकर इसे ला नहीं सकते हो। बैठकर पता लगाना कि आपके एक दिन में हर आधा घंटा कैसे उपयोग होता है अच्छा विचार है। ऐसे प्रश्न करो: ‘क्या यह कार्य परमेश्वर के लिए मेरी सेवा में उत्पादक है?’; या ‘क्या यह कार्य मेरे जीवन/परिवार/कलीसिया में कुछ अर्थपूर्ण चीज जोड़ता है?’; या ‘क्या मुझे इसे करना चाहिए?’; आदि। हम में से अधिकाँश को पता चलेगा कि हम अपना समय ठीक से उपयोग नहीं करते हैं और इस क्षेत्र में सुधार लाने के लिए हम कुछ सरल चीजें कर सकते हैं।

हर व्यक्ति को यह पता लगाने से लाभ होगा कि वे दिन के किस समय अपने चरम पर होते हैं। यह व्यक्ति से व्यक्ति तक भिन्न होगा और परिस्थितियों के अनुसार व्यक्ति के जीवन में भी भिन्न हो सकता है। इसे करने का सबसे सरल तरीका दिन के अन्त में मूल्याँकन करना है कि उस दिन आपने अपना सबसे उत्पादक काम कब किया था (यह केवल आप ही जान सकते हैं!)। यह मूल्याँकन जीवन के अधिक सामान्य समयों में और एक लम्बे समय कर किया जा सकता है, अर्थात् कम से कम कुछ हफ्तों के लिए। हमारे सबसे प्रभावशाली/उत्पादक समय हो सकते हैं एक झपकी के बाद, सुबह, दोपहर के भोजन के बाद, एक प्रेरक बातचीत के बाद, आदि। एक बार जब आपने पता लगा लिया है कि आप एक दिन और सप्ताह में कब अच्छा काम करते हैं, तब आपको इन समयों में महत्त्वपूर्ण कामों को सूचिबद्ध करना चाहिए, अर्थात् ऐसे काम जिन्हें करने के लिए आपको मन और शरीर में उच्च स्तर पर होना है ताकि उन्हें शीघ्रता से, कार्यकुशलता से और सफलतापूर्वक किया जा सके। यह निर्धारित करना जरूरी है कि एक दिन में आप कब कम प्रेरित होते हैं, और इन समयों में या तो ऐसी चीजों को सूचिबद्ध करो जो आपको पुन:प्रेरित करें या ऐसे काम जहाँ आपको अपने उत्तम स्तर में कार्य करने की आवश्यकता नहीं है। ध्यान दो, ऐसे सर्वेक्षण आपको नियमित करते रहने हैं क्योंकि आपकी स्थिति बदल सकती है।

अपने समय को अनुशासित करने के तरीके

- अपने आप को जानना, अर्थात् कब (और क्यों) हम अच्छी तरह काम करते हैं, ताकि हम उत्तम समय और स्थिति चुन सकें जिसमें हम अपने परमेश्वर द्वारा दिए काम करें। तब हम इसके ईर्द-गिर्द अपना जीवन/कार्यक्रम बना सकते हैं। हमें इसका परमेश्वर के साथ नियमित पुनःमूल्याँकन भी करना चाहिए, क्योंकि समय बदल जाते हैं और हमें अपने समय सफलतापूर्वक उपयोग करते रहना चाहिए और परमेश्वर के साथ बने रहना चाहिए।

- कामों को प्राथमिकता/महत्त्व के अनुसार लगाना और सबसे महत्त्वपूर्ण कामों को पहले करना (जब सम्भव हो)। इससे हम काफी भावात्मक शक्ति बचा सकेंगे (क्योंकि हमें उतने समय तक उस काम को करने की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी) और इससे कुछ समय की बचत भी होगी। जब मुख्य चीजें ध्यान के लिए चिल्ला रही होती हैं तब लोग दूसरी महत्त्व की चीजों पर उनके प्रयास और समय नहीं लगा सकेंगे। हर मसीही को उनके दिनों की योजना ध्यानपूर्वक बनानी चाहिए और उनके समय को प्राथमिकता के अनुसार सबसे महत्त्व के कामों के लिए देना चाहिए।

- अपने समय का अधिक कार्यकुशलता के साथ प्रबंध करने में अपने समय को खण्डों में बाँटना सहायक होगा। उदाहरण के तौर पर, हम दिन को सुबह, दोपहर और शाम में बाँट सकते हैं और फैसला कर सकते हैं कि हर एक में क्या करेंगे। इसे कार्यकुशलता के साथ करने के लिए, हमें एक घड़ी, एक डायरी, एक नोट-बुक, और एक पेन की आवश्यकता होगी जिन्हें हम हर समय अपने साथ रख सकते हैं।

- एक नियमित दिनचर्या बनाए रखो (दोबारा, जहाँ सम्भव हो)। हर सप्ताह उसी दिन एक विशेष काम के लिए समय का एक खण्ड अलग रखो, उदाहरण, संदेश की तैयारी, मिलने जाना, समूह अध्ययन, और परिवार के लिए समय, आदि।

- पहले से योजना बनाओ। इससे हमें अपने व्यस्त कार्यक्रम में हमारे समय की असली महत्त्वपूर्ण प्राथमिकताओं को लेने में सहायता मिलेगी (जैसे कि प्रभु के साथ हमारा समय और हमारे परिवार के साथ समय)। तब हम हमारे समय की दूसरी माँगों को हमारी प्राथमिकताओं के बाद आने दे सकते हैं। इसे करने के लिए एक अच्छी व्यवस्थित व्यक्तिगत डायरी अत्यावश्यक होगी। एक बुद्धिमान व्यक्ति जानता है आगे कैसे देखना है और उन चीजों को देखना है जो सबसे चुनौतीपूर्ण हैं, अर्थात् जहाँ वह थक सकता है और प्रेरणा की कमी हो सकती है, और यह भी देख सकता है क्यों। वह व्यक्ति तब समय से पहले आवश्यक शक्ति और प्रेरणा इकट्ठी कर सकता है, और उपयोग कर सकता है कि इन समयों का सामना कर सके। इसे करने के लिए व्यक्ति के लिए आवश्यक है: पहले, अपने आप को जाने (अर्थात् उन्हें क्या प्रभावित करता है, उनकी कमज़ोरियाँ और ताकतें क्या हैं, और क्या चीजें उनके प्रेरणा को वापस लाएँगी जब यह कम होने लगती है); दूसरा, जानना और समझना कि उनके आस-पास क्या चल रहा है (आत्मिक और स्वाभाविक दोनों रूप से) और जानना कि वे इनकी ओर क्या प्रतिक्रिया दिखाएँगे; और अन्त में, परमेश्वर को जानना (विशेषकर उनकी ओर एक व्यक्ति के रूप में उसके प्रेम, देखभाल, और विश्वासयोग्यता को जानना) और उस स्थिति में वह क्या चाहता है वे करें जानना (अर्थात् उसका मार्गदर्शन)। हर जीवन की अपनी समस्याएँ/कठिन बातें होती हैं और यह हर व्यक्ति के लिए कठिन होंगी, उदाहरण, एक व्यक्ति के लिए एक-एक व्यक्ति को काऊन्सलिंग करना कठिन हो सकता है, जबकि दूसरे के लिए संदंश तैयार करना या समय पर काम समाप्त करना कठिन हो सकता है, आदि। यह मान लेना कि हम कर लेंगे और आगे नहीं देखना, संकट ला सकता है। परमेश्वर में भरोसा करना ठीक है, परमेश्वर चाहता है कि हम उसमें आगे देखें और जो कठिनाइयाँ वह हमें दिखाता है आनेवाली हैं उनके लिए उसकी शक्ति प्राप्त करें। वह यह भी चाहता है कि हम किसी भी चीज के लिए जो हमारे रास्ते में आ सकती है उसमें तैयार रहें (इब्रानियों 12:1-3; इफिसियों 6:10-18; 2 तीमुथियुस 4:2; 1 पतरस 5:8-9)। इसलिए हमें निश्चित कर लेना है कि हम रोजाना के आधार पर उससे मिलते हैं और उसकी शक्ति प्राप्त करते हैं।

- पहले आरंभ करनेवाले बनो। एक दिन के आरंभ में काफी कुछ किया जा सकता है, क्योंकि रात की नींद के बाद पहले कुछ घंटों में हमारी कार्यकुशलता उच्च स्तर पर होती है, और हस्तक्षेप भी कम हो सकता है। और, बिस्तर में से निकलने के लिए 20 मिनट मत लगाओ, परन्तु जल्दी से उठ जाओ और नहा-धोकर तैयार हो जाओ। किसी ने एक बार कहा, 'यदि हम कम सोएँ, तो अधिक जीते हैं।' असल में, यदि हम हर दिन एक घंटा कम सोएँ, तो हम अपने जीवन में जागते रहनेवाले 2 वर्ष जोड़ सकते हैं।

- हमें उस पर ध्यान रखना है जो हम कर रहे हैं (कुलुस्सियों 3:23)। आधे मन से कुछ करने से थोड़े समय के लिए ऐसा करना फायदेमंद है।

- इसे अभी करो! जो चीजें हमें करनी हैं उन्हें इतना बढ़ने मत दो कि उनमें डूब जाएँ।

- कामों को दूसरों को सौंप दो, ताकि हम उन कामों को कर सकें जो हम जानते हैं हमें परमेश्वर में करने चाहिए। हमें वह कभी नहीं करना चाहिए जिसे दूसरे लोगों को करना चाहिए या कर सकते हैं।

- अपने समय के उत्तम उपयोग के लिए परमेश्वर की कसौटी रखो। याद रहे, निश्चित करो कि आपके परिवार पर से आपका ध्यान न छूटे, क्योंकि वे भी आपकी जिम्मेवारी हैं।

अगुआई की तीन शैलियों का मूल्याँकन: आप कहाँ ठीक बैठते हैं ?

हमारे समाज में और कलीसिया में भी हैं, अगुआई की अनेक विभिन्न शैलियाँ हैं। मैं संक्षेप में तीन विभिन्न शैलियों की चर्चा करूँगा जो आजकल कलीसिया में दखाई देती हैं। पहली खराब है। दूसरी अच्छी है। तीसरी, उत्तम है! इस अध्ययन के लिए मैं उन्हें कहूँगा:

1: बोतल में ठक्कन शैली

इस शैली में अगुवा आगे होता है। कलीसिया या संस्था जिसका वह अगुवा है एक बोतल के समान है जिसका वह एक ढक्कन है। उसकी मंजूरी और अनुमति के बिना कुछ भी बरतन में न तो आता है न जाता है। वह फैसलों के हर स्तर पर सम्मिलित होता है और कुछ भी नहीं होता है जिसे वह प्रेरित नहीं करता।

मैं इस प्रकार के अगुवे को अकसर "एक व्यक्ति वाला बैंड" कहता हूँ। एक अगुवा जो सबकुछ खुद करने का प्रयत्न करता है। कई बार मैंने ऐसे एक व्यक्ति को एक ही समय में अनेक वाद्य बजाने का प्रयास करते देखा है। एक व्यक्ति जिसके बारे में मुझे साफ-साफ याद है एक प्रदर्शन कर रहा था जो एक साथ एक माउथ-आर्गन, अकार्डियन, ड्रम, और एक झाँझ बजा रहा था। जैसे वह एक सारे वाद्य-मण्डल का काम करने का प्रयास कर रहा था, उसका सिर, मुँह, हाथ और पैर सब अधिक काम कर रहे थे। यह बेशक एक हास्यकर और मनोरंजक दृश्य था। परन्तु, यह इतना हास्यकर नहीं होता है जब हम एक मसीही अगुवे को ऐसा कुछ करते हुए देखते हैं। ऐसा अगुवा नौकर के कामों के अलावा जिन्हें वह करना नहीं चाहता है, कुछ भी दूसरों को नहीं देता। वह अपने सम्भावित अगुवों को प्रशिक्षण देने में बिरले ही समय खर्च करता है। वह अगुआई के सारे काम स्वार्थीपन और ईर्ष्या के साथ अपने पास रखता है। वह अपने आप को एक बड़े व्यक्ति के रूप में देखता है जिसका काम कोई भी उतनी कार्यकुशलता के साथ नहीं कर सकता है। मैं उसे "बोतल में ढक्कन" के रूप में देखता हूँ। उसकी अनुमति बिना कलीसिया में कुछ भी नहीं हो सकता है। उसके पास ऐल्डरों की एक समिति हो सकती है परन्तु वे सब अकसर "हाँ में हाँ मिलानेवाले" होते हैं, उन्हें इसलिए चुना गया है क्योंकि वे सदा उसके साथ सहमत होते हैं।

यह तरीका कभी-कभार एक छोटी कलीसिया में काम कर सकता है जहाँ सदस्य निष्क्रिय और अरुचिकर होते हैं। परन्तु यह एक नकारात्मक तरीका है जो शायद ही कभी बढ़त और विस्तार में ले जाता है। यदि बोतल में केवल पानी या दूध है तो ढक्कन लगा रह सकता है, परन्तु यदि वहाँ आत्मा का जीवन और दाखरस है तो कुछ हरकत होने लगेगी जिससे दो चीजें हो सकती हैं। या तो बोतल फूट जाएगी और कलीसिया बँट जाएगी, या भीतर दबाव बनता जाएगा और एक समय आएगा जब ढक्कन बोतल में से निकल आएगा।

2: पिरामिड या कार्यकारी शैली

यह शैली पहले से एक बड़ा सुधार है। इसकी सलाह मूसा को उसे ससुर यित्रों ने दी थी (निर्गमन 18:13-27)। मूसा एक एक-व्यक्ति बैंड के समान काम करने का प्रयास कर रहा था। काफी देर तक काम करने के कारण वह थक रहा था। लोग भी थक रहे थे क्योंकि मूसा की सलाह पाने के लिए उन्हें देर तक कतार में खड़ा रहना पड़ता था।

यित्रों की सलाह पर, मूसा उसकी अगुआई की शैली को पिरामिड शैली में बदल दिया जिसमें उसने पिरामिड की ऊँचाई पर अपना स्थान ग्रहण किया। उससे कहा गया था कि वह लोगों को "विधि और व्यवस्था प्रकट कर करके, जिस मार्ग पर इन्हें चलना, और जो जो काम इन्हें करना हो, वह इनको जता दिया कर।" (निर्गमन 18:20)। मूसा का सीधा सम्बंध "हजार-हजार के प्रधानों" से था, जिनका सम्बंध "सौ-सौ के प्रधानों" से था, जिनका "पचास-पचास के प्रधानों" से, और उनका "दस-दस के प्रधानों" से था। इस प्रकार अधिकार ऊपर से लेकर नीचे तक जाता है।

यह एक बहुत स्पष्ट और प्रभावशाली नमूना है जिसे अधिकाँश व्यवसायी निगमों ने उपयोग किया जाता है। इस नमूने के द्वारा अधिकार का ढाँचा स्पष्ट रूप से स्थापित किया गया है। आदेश की श्रृंखला स्पष्ट रूप से निश्चित की गई है। सब को संस्था में उनके अधिकार के स्तर की एक स्पष्ट जानकारी है।

अनेक समकालीन कलीसियाओं ने इस शैली की विभिन्नताओं को अपनाया है और यह एक कलीसिया या मसीही संस्था में काफी प्रभावशाली तरीके से काम कर सकती है। परन्तु, यह आदर्श नहीं है। यह यीशु का अगुआई का तरीका नहीं है।

## 3:	यीशु की अगुआई की शैली

यह कलीसिया की अगुआई के लिए कहीं अधिक वांछनीय नमूना है। मैं कभी-कभी इसे "नाभी सिद्धान्त" कहता हूँ, जिसमें यीशु नाभी (केन्द्र) है और चेले तारों के समान पहिये की परिधि तक पहुँचते हैं।
इस नमूने में भी अधिकार का ढाँचा स्पष्ट रूप से निश्चित किया गया है। यीशु केन्द्र है। वह नाभी है जिसके ईर्द-गिर्द सबकुछ घूमता है। हर तार उसके साथ जुड़ी हुई है, परन्तु पहिए की परिधि के साथ भी जुड़ी है। केन्द्र वह तत्त्व है जिसके ईर्द-गिर्द पहिया निरन्तर घूमता रहता है। हर तार तब ही उपयोगी और मान्य है जब यह केन्द्र के साथ उचित रूप से सम्बंध रखती है, और परिधि के साथ भी जुड़ी हुई है।

दुर्भाग्यवश, अनेक मसीही अगुवों के लिए, उनकी अगुआई की शैली उनकी सम्प्रदाय द्वारा निर्धारित की जाती है। यह अकसर याजक/साधारण लोग के विचार पर आधारित होती है, न कि देह की सेवा पर। इससे पास्टरों को नया नियम का नमूना अपनाने में कठिनाई होती है जो सब विश्वासियों का याजकपन पर आधारित है। यह विश्वासियों को चेला बनाने के काम को भी अधिक कठिन करता है। परन्तु, यह किसी को भी चेले बनाने के बाइबल के आदेश का पालन नहीं करने का बहाना नहीं देता है। किसी न किसी तरीके से, प्रभावशाली शिष्यता का वातावरण उत्पन्न करने का तरीका खोजा जाना चाहिए।

जब तक एक पास्टर चेले नहीं बना रहा होता है, वह अपनी सेवा पूरी नहीं कर रहा है। पास्तरीय और शिक्षा की सेवा का अत्यावश्यक पहलू सम्भावित अगुवों को अगुआई की कुशलताओं और अनुशासनों में प्रशिक्षित करने और तैयार करने का है।
इफिसियों 4:11-12 हमें बताता है कि: "उसने कुछ को प्रेरित नियुक्त करके, और कुछ को भविष्यद्वक्ता नियुक्त करके, और कुछ को सुसमाचार सुनानेवाले नियुक्त करके, और कुछ को रखवाले और उपदेशक नियुक्त करके दे दिया, जिस से पवित्र लोग सिद्ध हो जाएँ और सेवा का काम किया जाए और मसीह की देह उन्नति पाए।" यह स्पष्ट रूप से सिखाता है कि पंच-गुणा सेवा सेवा का काम करने के लिए नहीं बल्कि सन्तों (विश्वासियों) को तैयार करने (प्रशिक्षण, तैयारी, सुधार, बनाना) के लिए दी गई हैं ताकि वे सेवा का काम कर सकें, अर्थात् मसीह की देह का निर्माण कर सकें।

एक सच्चा प्रभावशाली पास्टर सेवा के सब काम स्वयं नहीं करता है। उसका सर्वप्रथम काम सन्तों को यह करने के लिए चुनना, बुलाना, प्रशिक्षित करना और सामान्यतः तैयार करना है। केवल इसी तरीके से विश्वासियों की स्थानीय देह सच्चे रूप से परिपक्व होगी और निर्मित होगी। कोई भी व्यक्ति पास्टर की सेवा अकेले नहीं कर सकता है। परमेश्वर के लोगों की रखवाली करने का काम उचित रूप से पूरा करने के लिए असंख्य वरदानों और योग्य व्यक्तियों की आवश्यकता है।

इसे प्राप्त करने की एक अत्यावश्यक जरूरत हर स्थानीय कलीसिया में एक शिष्यता प्रशिक्षण कार्यक्रम है। सबसे अच्छा यह है कि ये चेले एक सेवा के दल में सम्मिलित कर लिए जाएँ। इस तरीके से वे न केवल प्रशिक्षण पाएंगे बल्कि उन्हें उनकी सेवा को व्यक्ति करने का असली अवसर भी मिलेगा। जैसे-जैसे चेले अनुभव और कुशलता में बढ़ते जाएंगे, उन्हें धीरे धीरे चरवाहे की सेवा के विभिन्न कार्य करने दिए जा सकेंगे।

प्रेरणा के सिद्धान्त

विचार: प्रेरणा के बिना कुछ नहीं हो सकता है।

ऐसा क्यों है कि किसी दिन हम प्रभु के लिए सबसे ऊँचे पहाड़ चढ़ सकते हैं और सबसे बड़ा समुद्र तैर सकते हैं, और फिर किसी दूसरे दिन हम बड़ी कठिनाई से उसके लिए एक अँगुली ही उठा पाते हैं? वैसे भी हमें प्रभु की सेवा करने के लिए क्या प्रभावित करता है? हम प्रभु की सेवा सम्पूर्ण हृदय से कैसे कर सकते हैं जैसे हम जानते हैं हमें करनी चाहिए? हम दूसरों से प्रभु की सेवा सम्पूर्ण हृदय से कैसे करवा सकते हैं?

प्रेरणा की परिभाषा

प्रेरणा की परिभाषा यह हो सकती है: जो गति आरंभ करती है या जो एक व्यक्ति को कार्य करने के लिए प्रभावित करती है। यह मानव शक्ति है जो पृथ्वी पर सबसे बहुत और शक्तिशाली है। यह कभी खत्म नहीं हो सकती है, और फिर भी सदा ऐसा लगता है कि इसकी कमी है या गलत दिशा में लगी हुई है। उन चीजों की सूची जो हमें प्रेरित कर सकती हैं अनन्त है। यह सूची व्यक्ति से व्यक्ति और एक दिन से दूसरे दिन भिन्न होगी।

नकारात्मक	तटस्थ	सकारात्मक
विवशता	खुशी	भक्तिपूर्ण
क्रोध	सम्मान	पवित्रता
ईर्ष्या	सुखाभास	धार्मिकता
चोटें	संतोष	शान्ति
डर	समझौता	आनन्द
धमण्ड	असहमति	दया
आलस	दबाव	भलाई
घृणा	स्वच्छता	विश्वासयोग्यता
डाह	इच्छा	कृपा
अकेलापन	परिस्थितियाँ	आशा
बुराई	सद्भाव	प्रेम
निराशा	नैतिकता	स्वार्थीपन
असुरक्षा	सुरक्षा	परमेश्वर का भय
आत्मसंतोष	प्रतियोगिता	धैर्य
चिन्ता	उत्तेजना	नम्रता
दोष	सुख	संयम
निरुत्साहन	विवेक	परमेश्वर से दर्शन
धोखा	सफलता	अनुग्रह
निराशा	शारीरिक स्वस्थता	परमेश्वर का ज्ञान

यह सूची किसी विशेष क्रम में नहीं है, किसी परिस्थिति में, एक कालम की एक विशेषता दूसरे में रखी जा सकती है। यह सूची आपको प्रेरणा के साधनों की संख्या और विविधता का एक विचार देने के लिए दी गई है (और भी कई हैं जिन्हें इसमें जोड़ा जा सकता है)।

प्रेरणा की हमारी समझ एक सेवा जो प्रभावशाली है, और एक जो आगे बढ़ नहीं पा रही है में अन्तर ला सकती है। इस महत्त्वपूर्ण विषय पर विस्तार से चर्चा की जानी चाहिए।

मानवीय प्रेरणा के तीन मूल स्रोत

सम्भवतः सबसे शक्तिशाली, और सबसे मूल मानवीय प्रेरणा जो हम सब में है जीवित रहने की है। इसे पूर्ण रूप से समझने की आवश्यकता है, क्योंकि यदि हम एक व्यक्ति की सहायता करने का प्रयत्न कर रहे हैं जिसकी उत्तरजीविता खतरे में है (उदाहरण, भूख, बीमारी, बूढ़ी उम्र, आदि के द्वारा), तो हमें इस बात को ध्यान में रखना पड़ेगा कि सम्भवतः यह बात उनके मन में छाई हुई है और उनके अधिकाँश कार्यों को प्रेरित कर रही है।

मानवीय प्रेरणा की एक दूसरी बात जिसे समझने की आवश्यकता है वह है कि सब लोग जीवन का कुछ अर्थ बनाना चाहते हैं, एक उद्देश्य होना, और उनके जीवन किसी काम के हों चाहते हैं। यह इस लिए है क्योंकि परमेश्वर ने सब मनुष्यों को उसे जानने और उसकी इच्छा पूरी करने की एक बनी-बनाई इच्छा के साथ बनाया है। प्रेरणा का यह स्रोत कुछ में अनभिज्ञ प्रेरणा हो सकता है, परन्तु यह सब धर्मों के पीछे, जिसमें नास्तिकता भी शामिल है, प्रेरणा का स्रोत है।

प्रेरणा का तीसरा मूल स्रोत जो हम सब में, और मसीहियों में भी, कार्य करता है, वह है उन्ही चीजों को करने की शक्तिशाली प्रेरणा जो हमारे लिए अच्छी हैं। प्रेरणा का यह स्वार्थी या आत्मकेंद्रित स्रोत हमें हमारे जीवनों में अपने को प्रथम रखने के लिए विवश करता है।

मसीहियों के रूप में, हमें परमेश्वर को सब चीजों में प्रथम रखना चाहिए। इसका अर्थ यह होगा कि हम अपना इन्कार करें, यह कुछ ऐसा है जो मनुष्य के लिए स्वाभाविक रूप से नहीं होता है। परन्तु, मसीह में ऐसा जीवन सम्भव है। हमें परमेश्वर को अपने सारे जीवन की प्रभुता देने की आवश्यकता है और, इसलिए, आज्ञाकारी, निस्वार्थ जीवन जीने का प्रयत्न करना है जिनमें परमेश्वर और उसकी इच्छा हम से और हमारी इच्छा से श्रेष्ठता पाती है (लूका 9:23)। परमेश्वर से अलग, लोग उनके जीवनों में अर्थ पाते हैं: लाभकर कार्य करके; लक्ष्यों को प्राप्त करके और जो काम उन्होंने आरंभ किए हैं उन्हें समाप्त करके; स्वगृहीत स्तरों को प्राप्त करके; दूसरे लोगों के साथ संतोषजनक सम्बंध विकसित करके; अधिकार प्रयोग करके और दूसरे लोगों को चालाकी से प्रभावित करके, और इसलिए कुछ हद तक उन लोगों और संसार को बदलने में सहायक होकर; और जो चीजें जीवन में आवश्यक हैं और चाहिए उनके लिए पर्याप्त पैसा कमाकर, परन्तु परमेश्वर चाहता है हम भिन्न हों। मसीहियों के रूप में, हमें समझना है कि हमें क्या प्रेरित करता है और, आगे हमें पता होना चाहिए कि कैसे सही चीजों से 100% समय प्रेरित रहें, ताकि हम अपने प्रभु की सेवा कर सकें। प्रेरित रहने के लिए हमारे जीवन परमेश्वर और उसके साथ हमारे सम्बंध के ईर्द-गिर्द धूमने चाहिए। सबकुछ जो हम करते हैं इसलिए होना चाहिए कि वह इसे चाहता है और कि हम उससे प्रेम करते हैं।

प्रेरित लोग कैसे होते हैं?

प्रेरित लोग सर्वप्रथम इच्छुक लोग होते हैं। इच्छुक लोगों के एक समूह का एक अच्छा उदाहरण देखा जा सकता है जब इस्राएल के लोग प्रभु के तम्बू के निर्माण के लिए अपने दान लाए थे (निर्गमन 35:4 – 36:7)। यहाँ लोगों को और लाने से रोकना पड़ा क्योंकि वे देने के लिए इतने इच्छुक जो थे। अनेक अगुवे अपनी कलीसियाओं में ऐसी एक समस्या अवश्य चाहेंगे! ऐसा क्यों है कि ये लोग इतने इच्छुक थे? उत्तर सरल है क्योंकि परमेश्वर और उसके काम ने इन लोगों के हृदयों को मोहित कर लिया था, और इसलिए उन्होंने कुड़कुड़ाना छोड़ दिया और बदले में इच्छुक, प्रेरित लोग हो गए।
प्रेरित लोग जो काम खत्म करना चाहते हैं। उनकी प्रेरणा कार्य के लिए उनको प्रोत्साहित करती है। जितनी शक्तिशाली प्रेरणा होगी, उतना बलिदान समय, धन और शक्ति का होगा। असल में, बहुत प्रेरित लोग, कड़े विरोध के होते हुए भी, काम को समाप्त करना चाहेंगे। इसलिए, वे अकसर ऐसे लोग होते हैं जो जीवन में बहुत कुछ प्राप्त करते हैं।

एक अत्यन्त प्रेरित व्यक्ति से संबंधित कई विशेषताएं हैं जिनकी हम बात कर सकते हैं। नीचे दी गई सूची में, हम ने अधिक प्राप्त करनेवाले, अत्यन्त प्रेरित मसीहियों की सबसे सामान्य कुछ विशेषताएँ दी हैं। कोई भी मसीही जो प्रभु की सेवा अधिक प्रभावशाली तरीके से करना चाहता है, इन विशेषताओं को विकसित करे:

- उन्होंने अपने आप को अपने हाथ में रखा है और एक अनुशासित, भक्तिपूर्ण जीवन जीते हैं जो परमेश्वर और उसकी इच्छा को प्रथम स्थान देने का प्रयास करते हैं। वे उनके जीवन के लिए लक्ष्य बनाते हैं और उन्हें प्राप्त करने की नीति बनाते हैं, और जब तक काम हो नहीं जाता (जहाँ सम्भव हो) लगे रहते हैं। असल में, वे सबकुछ जो परमेश्वर के लिए करते हैं उसमें श्रेष्ठ होने का प्रयास करते हैं। वे अपने आप को थका नहीं देते और वे आलसी नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने

जीवन में एक सन्तुलन बनाया हुआ है जो उन्हें उद्देश्य के साथ और फलदायक जीवन जीने में सहायता करता है। वे निश्चित करते हैं कि वे उनके जीवन का कोई क्षेत्र अनदेखा न करें। इसलिए वे उनके शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक और आत्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समय देते हैं। वे जानते हैं कि क्रोध तो करें परन्तु पाप न करें (इफिसियों 4:26)। यीशु के समान, उनमें पाप, पाखण्ड और अन्याय की ओर धर्मी क्रोध है, परन्तु वे उनके क्रोध को वश में रखना जानते हैं। असल में, वे दूसरे व्यक्ति की ओर क्रोध पर सूर्य अस्त होने नहीं देते हैं पहले क्षमा कर देते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि कड़ुवाहट और बदले की भावना जो क्षमा के बाहर की हैं परमेश्वर के लिए उनकी प्रेरणा और उनकी प्रभावकारिता को नष्ट कर देंगी (इफिसियों 4:26-27; याकूब 1:19-20)।

- जीवन की ओर उनकी पहुँच सकारात्मक है, वे विश्वास करते हैं कि परमेश्वर सब समस्याओं को हल कर सकता है। वे कभी-कभार निराश हो सकते हैं, परन्तु वे उदास या हताश नहीं होते। जबकि निराशावादी हर अवसर में कठिनाई देखता है, आशावादी हर कठिनाई में अवसर देखता है। इसलिए वे कठिन कामों को हाथ में लेने के इच्छुक हैं। वे एक खुश, संतुष्ट जीवन जीते हैं, वे इसके लिए काम कर सकते हैं और जो वे उनके समय और प्रयत्न में बोते हैं उसमें रचनात्मक (उनकी कल्पना को इस्तेमाल करते) हो सकते हैं। वे लोगों, नए विचारों और ज्ञान के लिए भी खुले/सतर्क/ग्रहणशील होते हैं।

- वे दिव्यदर्शी हों या न हों, परन्तु उनमें उनके जीवनों के लिए दिशा की भावना है, और परमेश्वर के दर्शन को लेकर उसके साथ भाग सकते हैं। वे अकसर कायल करनेवाले लोग होते हैं जो अपने विचार दूसरों को दे सकते हैं। वे परिणाम पाने के लिए सदा आगे देखते रहते हैं और, इसलिए, अच्छे फैसले करने के लिए उनके पास अन्तर्दृष्टि/बुद्धि होती है। वे व्यावहारिक भी हैं, और जानते हैं कि दर्शन को वास्तविकता में बदलना है।

- जैसे वे परमेश्वर की इच्छा पूरी करने का प्रयत्न करते हैं वे मन और शरीर में उनकी सीमा को फैलाने के लिए इच्छुक हैं; आवश्यक होने पर वे विश्वास के कदम बढ़ाने और जोखिम लेने के इच्छुक हैं; और जब उन्हें होना होता है वे बदलने के योग्य और बहुमुखी होते हैं।

- वे परमेश्वर में और वह उनके द्वारा क्या-क्या कर सकता है उसमें विश्वास से भरे होते हैं। वे जानते हैं कि यदि अपने आप में भरोसा न कर सकें, तो कोई भी उनमें विश्वास नहीं करेगा। उनके विश्वास के कारण जब वे कोई गलत फैसला करते या गलती होती है तो वे अपने पर हँस सकते हैं। परमेश्वर में उनका भरोसा उनको साहस देता है। वे दृढ़निश्चित, उत्साही, अटल होते हैं और वे हिम्मत नहीं हारते जब तक उन्हें लगे नहीं उन्होंने परमेश्वर में गलती की है। वे जानते हैं परमेश्वर उनके साथ है, और इसलिए जब वे डरते भी हैं, वे आगे बढ़ते रहते हैं और उनके डर को उन्हें हराने देने से इन्कार करते हैं (यहोशू 1:1-9)।

- वे दीन है, जानते हैं कि उनकी सफलता का श्रेय और महिमा का हकदार परमेश्वर ही है। उन्हें उनकी प्राप्तियों और सफलता के विषय में घमण्ड करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे आप बोलती हैं।

- वे धैर्य रखते हैं, जानते हैं कि परमेश्वर सदा विश्वासयोग्य निकलता है, और उसके पास हर चीज के लिए समय है (सभोपदेशक 3:1-8)। वे अच्छे सुननेवाले और वार्ता करनेवाले होते हैं, और वे महत्त्वपूर्ण फैसले तब ही करते हैं जब उन्होंने पर्याप्त संबद्ध जानकारी प्राप्त कर ली होती है।

- वे भरोसेमंद होते हैं, क्योंकि वे अखण्डता/ईमानदारी का जीवन जीते हैं और जिम्मेवारी को समझते हैं। उनके वचन की कीमत होती है और उन पर भरोसा किया जा सकता है, विशेषकर उस समय कठिन समय होता है। सबसे बढ़कर, वे उनके जीवन में धोखा देने से इन्कार करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि इससे अल्पकाल के लिए चीजें आसान हो जाएँगी, परन्तु वे अपने साथ जी नहीं सकेंगे।

आज का हमारा संसार

हमारा संसार हर दिन जो गुज़रता है उसमें अधिकाधिक प्रतियोगी और कम भविष्यसूचक होता जा रहा है। मानव जाति ने पिछले 50 वर्षों में परमाणु युग, अन्तरिक्ष युग और कम्प्यूटर युग में प्रवेश किया है। पता लगाया गया है कि नौकरी पर जा रहे लोगों को पिछली पीढ़ी की तुलना में 20 बार अधिक जानकारी की समझ होने की आवश्यकता है।

मसीहियों को इन घटनाओं से छूट नहीं मिली हुई है। हमें संसार में रहना है और कुछ हद तक इसका अंश होना है। हम में अधिकाँश को बाहर संसार में नौकरी करनी है और हम कितनी सरलता से हमारे आस-पास हो रही चीजों के भँवर में फँस सकते हैं जहाँ परमेश्वर के साथ हमारे जीवन पर प्रभाव पड़ता है। कलीसिया के अगुवों को आज बहुत सारे फैसले करने पड़ते हैं, उदाहरण, क्या पढ़ें (पहाड़ के समान पुस्तकों के ढेर में से); किस शिक्षा पर विश्वास करके उसे अपना लें, और उनके लोगों को क्या सिखाएँ (शिक्षा की विविधता और संख्या में से जो हमारे समय और पैसे के लिए प्रतिस्पर्द्धा कर रही हैं); किन सेमिनारों में जाएँ; अपनी कलीसिया में कितनी सभाएँ रखें और किस-किस में जाएँ, आदि। कलीसिया के सदस्य भी उनके अगुवों से उनकी अपेक्षाओं में अधिक दावेदार होते जा रहे हैं। तात्कालिक, बहुत दबाव, परिणाम-अभिमुख संसार जिसमें हम जीते हैं कलीसिया में घुस आ रहा है और अपने साथ सब प्रकार की समस्याएं ला रहा है और कभी-कभी सफलता की योग्यता भी जिसका यह प्रचार वह करता है।

कलीसिया के अगुवों को इस खान को पार करना है और परमेश्वर के लिए उनकी सेवा में प्रेरित बने रहना है। आज के पश्चिमी संसार का समाज एक सरल वातावरण नहीं है जिसमें एक अच्छा, प्रभावशाली मसीही जीवन जिया जा सके जो परमेश्वर को महिमा लाता है, परन्तु ऐसा कर पाना सम्भव है। इसे करने के लिए, हमें अपने विषय में और हम परमेश्वर में क्या हैं सीखने की आवश्यकता है। हमें यह भी सीखने की आवश्यकता है कि हम विभिन्न घटनाओं और परिस्थितियों में कैसे प्रतिक्रिया करते हैं, और क्यों। सबसे जरूरी, हमें अपने आप को परमेश्वर के लिए पूरी तरह उपलब्ध करना है ताकि वह हमें बदल सके और तैयार कर सके। केवल तब ही हम सच में तैयार होंगे और उसके तरीके से उसकी इच्छा पूरी कर पाएँगे। परमेश्वर चाहता है कि उसके अगुवे अत्यन्त प्रेरित हों और, इसलिए, जहाँ कहीं भी वे रहें और कुछ भी वे करें उसके लिए फलदायक और प्रभावशाली हों।

दबाव की ओर लोग तीन तरीकों से प्रतिक्रिया करते हैं

आज संसार, और मसीहियों की भी की गति में बदलाव, जल्द उपलब्ध जानकारी की वृद्धि, और बेहतर प्रदर्शन की माँग के कारण हमें दबाव की बढ़ती मात्रा से निपटना पड़ता है। इसलिए यह समझना सहायक होगा कि हम लोग दबाव की ओर क्या प्रतिक्रिया करते हैं। हम ने इसके विषय में कुछ पिछले अध्याय में देखा था, अर्थात् 'समस्याओं और दबाव का मूल्य' में, परन्तु यहाँ हम अपना ध्यान हमारी प्रेरणा पर दबाव के प्रभाव पर रखेंगे। पता लगाया गया है कि लोग दबाव की ओर मूल रूप से तीन तरीकों से प्रतिक्रिया करते हैं। नीचे दिए वर्ग उन लोगों का वर्णन करते हैं जो दबाव की ओर इन तीन किस्मों को दिखाते हैं।

(1) पूँछ का पीछा करनेवाला

ये लोग दबाव के उत्तर में अधिक काम लेते हैं और रफ्तार बढ़ाते हैं। परिणामस्वरूप, वे अपने आपको हाँकते, और अति-सक्रिय और आक्रमणशील होते हैं। हम ने इस समूह को 'पूँछ का पीछा करनेवाले' कहा है, क्योंकि वे उस कुत्ते के समान करते हैं जो अपनी पूँछ का पीछा करता है, अर्थात् वे अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए दायरों में बड़ी उत्तेजना में दौड़ते रहते हैं। यदि वे उसे प्राप्त कर भी लें जिसे पाने के लिए वे निकले हैं, तो उन्हें अकसर पता नहीं चलता कि वे अपने साथ क्या करें, जब तक उन्हें अगली चीज नहीं मिल जाती जिसके पीछे वे भाग सकें, अर्थात् वे उस पूँछ को दोबारा देखते हैं और किसी भी कीमत पर उसे पाना चाहते हैं।

ऐसा व्यक्ति अकसर इधर-उधर भागता रहता है और काफी कुछ और तुरन्त करने का प्रयास करता है, और फलस्वरूप, बहुत कम ही कुछ अच्छा प्राप्त करता है। वे अकसर बहुत अधिक जिम्मेवारियाँ ले लेते हैं और वे अधिक वचनबद्धता करते और अपने आप को अधिक चुनौती देते हैं। इन लोगों के लिए समय एक शत्रु है और सबकुछ जो वे करते हैं उसके लिए उनमें अत्यावश्यकता और हड़बड़ी की भावना होती है। वे कड़ी मेहनत करते हैं और एक काम को जल्दी समाप्त करने के लिए अवास्तविक बड़े-बड़े खतरे लेते हैं। वे उनसे भी जो उनके लिए काम करते हैं यथार्थ से कहीं अधिक अपेक्षा करते हैं, और वे क्रोधित भी हो जाते हैं जब वे उनकी अपेक्षाओं में खरे नहीं उतरते। यदि काम कल नहीं हुआ है तो खुश नहीं। ये लोग सफलता के लिए सरल उपाय खोजने और लेने का भी प्रयास करते हैं, इसलिए वे योजना के समय को निकाल देते हैं और कुशलता के विकास और विशेषज्ञता

के लिए पर्याप्त समय नहीं देते हैं। आतंक अकसर उनकी शक्ति का स्रोत होता है और, इसके कारण, ये लोग कुछ समय के लिए ध्यान लगा पाने में असमर्थ होते हैं, अर्थात् उनके मन एक चीज से दूसरी पर टकते रहते हैं।

ऐसे व्यवहार की कीमत विशाल है। न केवल वे निष्प्रभाव हैं, परन्तु ये लोग उनके साथ काफी मात्रा में दबाव और तनाव लिए फिरते हैं। इससे परेशानी, घबराहट, क्रोध, शारीरिक बीमारी (जैसे कि हृदय रोग और कैन्सर), मदात्यय, अत्यधिक धूम्रपान, नशीले पदार्थों पर निर्भरता, मानसिक विकार, और आत्महत्या भी हो सकती है। अपने जीवन के नियंत्रण में न होने की भावना, महसूस करना कि दिमाग काम नहीं कर रहा, और जो आपके आसपास हो रहा है उससे आदेश पाना और नियंत्रित होना एक बड़ी डरावनी स्थिति है।

जो लोग दबाव की ओर उनके काम को बढ़ाकर और जल्दी-जल्दी काम करके प्रतिक्रिया करते हैं, अकसर सर्पिल गति से आगे बढ़ते हैं, अर्थात् जितना अधिक वे करने का प्रयत्न करते हैं और जितनी कड़ी मेहनत और तेजी से काम करते हैं, उतना कम वे प्राप्त करते हैं; और जितना कम वे प्राप्त करते हैं, उतना कड़ी परिश्रम उन्हें लगता है उन्हें करना है और उतना अधिक काम वे ले लेंगे। यदि ये लोग सफलता प्राप्त कर भी लें, तो यह सब उनके गलत व्यवहार को मजबूत करता और प्रोत्साहित करता है, अर्थात् वे विश्वास करते हैं कि अधिक काम लेना और उसे जल्दी से करना उनके लिए कुछ प्राप्त करने का और सफल होने का जो वे किसी भी हालत में चाहते हैं एक मात्र तरीका है। जिस दोषपूर्ण चक्कर में ये लोग फँसे हुए हैं एक कभी न खत्म होने वाला व्यर्थता का अभ्यास है जो अकसर संकट लाता है।

(2) शुतुरमुर्ग

ये लोग दबाव को अनदेखा करते, धीमे हो जाते या उससे भाग जाते हैं। दबाव की ओर यह प्रतिक्रिया निरुत्साहित, बेफिक्र, असावधान लोग उत्पन्न करती है, जो काम समाप्त करने की चिन्ता के बजाय अपनी चिन्ता अधिक करते हैं। ये लोग चाहेंगे कि दबाव गायब हो जाए, और इसलिए ये लोग उनके सिर रेत में दबा लेते हैं और स्वीकार करने से इन्कार करते हैं कि दबाव है; या वे दबाव के स्रोत या कारण की ओर अपनी पीठ फेर लेते हैं और उससे भाग जाते हैं, चाहे यह कितना भी अत्यावश्यक चीज क्यों न हो जिसे करने की आवश्यकता है। हालाँकि इन लोगों में उतना हाई व्लड प्रेशर न हो जितना पहले वर्ग के लोगों में है, वे ऐसे जीवन जीते हैं जिनमें उत्तेजना और उत्साह की कमी है। वे सामान्यतः उच्च सफल लोग नहीं हैं, क्योंकि उनमें आवश्यक जोखिम लेने और अनिवार्य चुनौतियों को जीत लेने की प्रेरणा और शक्ति नहीं है। उनका आलसी, किसी भी कीमत पर सुरक्षा का रवैया उन्हें सुरक्षित, परन्तु दुखी रखता है। जब ये लोग अनिच्छा से दबाव ले भी लेते हैं तो ये ऐसा बेमन से करते हैं और, इसलिए अच्छा काम नहीं करते। तब यह व्यक्ति की स्थिति को अगली बार अधिक दृढ़ता से मजबूत करती है।

ऐसे व्यवहार की सबसे बड़ी कीमत यह है कि ये लोग सोचते हैं कि उनके जीवन कहीं नहीं जा रहे हैं। वे अकसर उबे हुए होते हैं, और उनके काम में कोई रुचि नहीं रखते या पसन्द नहीं करते। ये लोग अकसर कम से कम जो वे करते हैं उसमें योग्य होते हैं, परन्तु वे उनके योग्यता के क्षेत्र से आगे बढ़ना और नए क्षेत्र में जाना नहीं चाहते हैं, अर्थात् ऐसी चीजों को करना जो उन्होंने पहले नहीं की हैं, या उससे आगे जाना जहाँ वे पहले गए हैं। प्रयत्न के किसी नए क्षेत्र में कदम रखना उन्हें बहुत खतरनाक लगता है, मुख्य रूप से असफलता के डर के कारण। इसलिए, इन लोगों के लिए जीवन जाना-पहचाना और नित्यक्रम लगता है और इसलिए जो वे कर रहे हैं उसमें तुरन्त ही रुचि खो देते हैं, और उन्हें साथ-साथ चलते रहना और सबको खुश रखना अच्छा लगता है। इन लोगों को परेशानी, उदासी, पूर्ति की कमी, मोह-भंग और निराशा के कारण उदासी पर आधारित बीमारियों का खतरा है।

(3) आदर्श

यह समूह दबाव की ओर आदर्श तरीके से प्रतिक्रिया करता है, अर्थात् वे इसे खुद को प्रेरित करने देते हैं कि उच्च स्तर पर कार्य कर सकें और आवश्यक काम को पूरा करें। हम ने एक पिछले अध्याय में इस विषय पर नज़र डाली थी, इसलिए हम दबाव की ओर प्रतिक्रिया के बारे में अधिक विस्तार में बात नहीं करेंगे। यहाँ इतना कहना काफी होगा कि ये लोग परिस्थितियों को उन्हें आदेश देने या नियंत्रित करने नहीं देते हैं। वे तनाव का मुकाबला करते हैं, परन्तु इसे अपने में ले लेने और इसलिए इससे तकलीफ उठाने के बजाय, वे इसे माध्यम बनाना भी जानते हैं। वे उनके काम में लगे रहते हैं और उसे करने के लिए, अवास्तविक हुए और इसलिए उससे पराजित होकर जो वे कर रहे हैं उसके बिना, आवश्यक खतरे भी लेते हैं। मूल रूप से, वे उनके अपने और उनके हालातों के नियंत्रण में हैं, और उनके काम को सबसे प्रभावशाली तरीके से करने के लिए उनके पास आवश्यक कुशलताएँ हैं (या पाने के लिए प्रशिक्षण ले रहे हैं)। बेशक, यह एक आदर्श स्थिति है। कभी-कभी, अतिरिक्त प्रशिक्षण पाना सम्भव नहीं होता और हमें केवल काम चलाना पड़ता है। दूसरे समयों पर, हमें ऐसे काम करने पड़ सकते हैं जो हम में कमी की

भावना छोड़ देते हैं, और फिर भी मसीहियों के रूप में, अपनी कमज़ोरी को बराबर करने के लिए हम परमेश्वर का सामर्थ्य जान सकते हैं।

वैसे भी, हम सब जीवन में आनेवाले विभिन्न कामों और चुनौतियों की ओर भिन्न प्रतिक्रिया करते हैं। ये तीन विवरण हमें केवल जानने में सहायता के लिए हैं कि हम दबाव की ओर कैसी प्रतिक्रिया दिखा रहे हैं, और मसीहियों के रूप में हमारा क्या लक्ष्य होना चाहिए, ताकि अपनी प्रभावकारिता को बढ़ा सकें और परमेश्वर के लिए उत्तम परिणाम जो सम्भव है पा सकें।

निपुणता, परमेश्वर द्वारा दिया गया वरदान और रवैये में सन्तुलन

एक मसीही के रूप में अपने उत्तम स्तर पर काम करना निपुणता, परमेश्वर द्वारा दिया वरदान और रवैये का संयोग है। निपुणता की परिभाषा हो सकती है: कुछ करने के लिए ज्ञान और योग्यता होना। नियम के रूप में, इससे पहले हम सफलतापूर्वक कोई काम हाथ में लें यह आवश्यक है। परमेश्वर ने प्रतिज्ञा की है कि जब तक हम अपने जीवन उसकी इच्छा के अधीन रखेंगे, वह हमें सबकुछ देगा जिसकी हमें जीवन और भक्ति के लिए आवश्यकता है (2 पतरस 1:3)। यदि हम मसीही उसकी सेवा प्रभावशाली तरीके से करना चाहते हैं तो परमेश्वर के वरदान आवश्यक हैं। फिर भी, हालाँकि ये दो चीजें प्रकट रूप से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं, यह रवैया है जो उनको जो असल में सफल होनेवाले हैं उनसे अलग करता है जो केवल पर्याप्त होंगे। निपुणताएं, और परमेश्वर के वरदान भी, कइयों के पास हैं, परन्तु केवल कुछ ही मसीही परमेश्वर के लिए असल में सफल हैं। यह कुछ अंश तक भिन्न बुलावे के कारण है जो परमेश्वर हमारे जीवनों पर रखता है, अर्थात् कुछ को महानता और बहुत पाने के लिए बुलाया गया है और कुछ को केवल चीजें चलाते रहने के लिए बुलाया गया है। फिर भी, यह भी सत्य है कि कई मसीहियों में परमेश्वर के लिए बहुत कुछ करने की क्षमता है, परन्तु कुछ करने में असफल रहते हैं और अंशतः सफल होते हैं। जो चीज अन्तर लाती है उनका रवैया है।

रवैया की परिभाषा है: सोच-विचार, दृष्टिकोण या परिदृश्य, जो हमें एक प्रकार से कार्य करने के लिए प्रेरित या सुव्यवस्थित करता है। हमारा रवैया हमे में से कुछ ही नियंत्रित या काम में लगा सकते हैं। यह हमारा रवैया है जो निर्धारित करता है कि हम अपनी निपुणताओं और परमेश्वर के वरदानों को कितना अच्छा उपयोग करेंगे और यह भी निर्धारित करता है कि जो हम बौद्धिक रूप से जानते हैं उसे कैसे व्यक्त या उपयोग करते हैं। हमारा रवैया किसी स्थिति के हमारे परिदृश्य को प्रभावित करता है, अर्थात् यह निर्धारित करता है हम इसे कैसे देखने वाले हैं; और यह भी निर्धारित करता है कि उस स्थिति में हम कितना अच्छा प्रदर्शन करने वाले हैं।

एक रवैये की समस्या के लिए आपके जीवन में तबाही लाना बहुत आसान है। यह इसलिए है क्योंकि इससे हम न केवल एक स्थिति में बुरा करेंगे परन्तु हर स्थिति में जिसका हम सामना करते हैं बुरा करेंगे। उदाहरण, एक सामान्य रवैये की समस्या असफलता की अपेक्षा है। यह अकसर एक पिछली असफलता है जिसके कारण हम अपने विषय में बुरा सोचते हैं। यह रवैया तब हम दूसरी चीजों में ले जाते हैं जो हम करते हैं और हम वहाँ भी असफल होते हैं। ऐसे एक चक्कर में फँसने के कारण हम निरन्तर खराब करते रहेंगे। मसीही जो ऐसे एक बुरे चक्कर में फँसे हैं (जिसमें वे खराब से और खराबी में जा रहे हैं), यदि वे कभी परमेश्वर के लिए प्रभावशाली और सफल होनेवाले हैं तो उन्हें बन्धन तोड़ना होगा। इसे करने के लिए उन्हें परमेश्वर और दूसरे लोगों से सहायता पानी होगी। केवल सकारात्मक सोचना पर्याप्त नहीं होगा। समस्या की जड़ से निपटने की आवश्यकता है, अर्थात् उनके रवैये की समस्या को ठीक करना है।

हमें मसीहियों के रूप में अच्छे से बेहतर की ओर जाना है। यदि हम जो करते हैं उसमें सफल हैं क्योंकि खुद को वैसे ही देखते हैं जैसे परमेश्वर देखता है और, इसलिए, एक अच्छा आत्म-रूप है; यदि हम किसी भी स्थिति में यथार्थ रूप से पर्याप्त निपुण और योग्य हैं; यदि हम जो कर रहे हैं उसमें वचनबद्ध हैं क्योंकि यह इस समय के लिए हमारे लिए परमेश्वर की इच्छा है; और यदि हम (परमेश्वर के साथ) स्थिति के नियंत्रण में हैं, तब लगभग सबकुछ जो हम करते हैं उसमें अत्यन्त प्रेरित और सफल होना सम्भव है। सफल होना हमारे रवैये और व्यवहार को मजबूत करेगा और इसमें बने रहने में हमारी सहायता करेगा।

परमेश्वर के लिए हमारी सेवा में सही रवैया बनाए रखने में सहायता के लिए नीचे कुछ सहायक विचार दिए गए हैं:

- हमें अपने परिणामों का मूल्याँकन करने और उनसे कोई सबक सीखने की आवश्यकता है। बहुत सारे प्रश्न हैं जो हम खुद से पूछ सकते हैं। जो कुछ हम इनके उत्तर से सीखते हैं अगली स्थिति में जिसका हम सामना करते हैं लागू किए जा

सकता है और परमेश्वर के लिए अपनी सेवा में अच्छे से बेहतर की ओर जा सकते हैं। कुछ प्रश्न जिन्हें हम खुद से पूछ सकते हैं:

- क्या मेरी निपुणताएँ काम के लिए पर्याप्त थीं?
- मैं अपनी क्रिया कैसे सुधार सकता हूँ?
- यदि काम दोबारा दिया जाता तो मैने क्या किया होता?
- क्या मैंने परमेश्वर को स्थिति में लाया था?
- क्या मैं जानता था परमेश्वर मेरे साथ है?
- मैंने स्थिति को कितना सही-सही देखा था?
- क्या मैंने विश्वास किया था मैं सफल हूँगा?
- मैंने अपने और सामना करने की अपनी योग्यता के विषय कैसा महसूस किया था?

❑ जीवन की ओर हमारा रवैया निर्धारित करेगा कि हम जीवन में कैसे करते हैं। हमें अपने आप को मसीहियों के रूप में स्वीकार करना है, यह जानते हुए कि परमेश्वर हम से प्रेम करता है और हमें चुना है। वह जानता है हमारे हृदय में किस प्रकार के रवैये हैं (इब्रानियों 4:12-13)। वह जानता था कि हम शारीरिक, भावात्मक और बौद्धिक रूप से कैसे होंगे, और उसने हमें एक अनोखे प्रकार से वरदान दिया ताकि हम उसके लिए कुछ कर सकें जो उतना अच्छा कोई नहीं कर सकता है। परमेश्वर हमें हम जैसे हैं इस्तेमाल कर सकता है, परन्तु वह चाहता है कि हम उसमें उन्नति करें और परिपक्वता में बढ़ें ताकि वह हमें और अधिक अपनी सेवा में इस्तेमाल कर सके। हमें अपने पुराने मनुष्यत्व को, जो इसकी कपट लालसाओं के कारण भ्रष्ट होता जा रहा है उतार देना है; और परमेश्वर को अपने मन के रवैये में नया बनाने देना है; और हमें मसीह में नए अस्तित्व को पहन लेना है, जो सत्य, धार्मिकता और पवित्रता में परमेश्वर के स्वरूप में सृजा गया है (इफिसियों 4:22-24)।

❑ हमें उसी प्रकार सोचना, कार्य करना और बोलना है जो हम अन्त में बनना चाहते हैं, अर्थात् मसीही; हमें यीशु के समान कार्य करना और बोलना है (फिलिप्पियों 2:5-11; 1 पतरस 4:1-2)।

❑ दूसरे लोगों की ओर हमारा रवैया हमारी ओर उनके रवैये को निर्धारित करेगा, उदाहरण, यदि हम दूसरे लोगों को सदा महसूस कराते हैं कि वे आवश्यक, महत्त्वपूर्ण और प्रशंसा के योग्य हैं तो वे इस रवैये को हमें लौटा देंगे। दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम चाहते हो वे तुम्हारे साथ करें; और जहाँ सम्भव हो सबके साथ आदर, प्रतिष्ठा और शिष्टाचार से पेश आओ। अपनी सेहत के विषय में बात करना (यदि यह अच्छी है तो) या अपनी व्यक्तिगत समस्याओं के विषय में (क्योंकि सम्भवतः इससे आपको कोई लाभ न होगा और निश्चय ही दूसरों को सहायता नहीं मिलेगी) बात करना एक अच्छा विचार नहीं है।

❑ एक काम के आरंभ में हमारा रवैया हमारे काम और उसके परिणाम को प्रभावित करेगा।

❑ हमें रचनात्मक होना है, हर ओर नए विचारों पर नज़र रखनी है, और उनमें उत्तम खोजना है।

❑ हमें दर्शन, इच्छाओं और लक्ष्यों की बात करने से घबराना नहीं है।

❑ जब हम वास्तव में परमेश्वर की इच्छा पूरी करना चाहते हैं और इसे समाप्त करने में वचनबद्ध हैं, तब हमारा रवैया सही होगा।

❑ हमें कल्याण और साहस का रवैया दिखाना चाहिए। हमें सकारात्मक, आशावादी होना चाहिए और उन्ही चीजों को सोचना चाहिए जो सत्य, शुद्ध, मनोहर, प्रशंसनीय, उत्तम, और उत्कृष्ट हैं (फिलिप्पियों 4:8)।

❑ हमें अपनी बुरी आदतों से छुटकारा पाना, अपने डरों से निपटना और आवश्यक निपुणताओं को सीखना चाहिए, ताकि ये चीजें परमेश्वर के लिए हमारी प्रभावकारिता को रोक न सकें।

वचनबद्धता और हमारे हृदय को क्या मोहित करता है

हमारा हृदय हमारे विचारों, रवैयों, प्रेरणाओं और फैसलों का अड्डा है। जो चीजें हमारे हृदय को मोहित करती हैं, हमारे विचारों और भावनाओं पर प्रबल होती हैं, और हमारी इच्छा-शक्ति के फैसलों को प्रभावित करती हैं (नीतिवचन 27:9; नीतिवचन 4:23; लूका 6:43-45)। जितना अधिक हमारा हृदय किसी चीज से मोहित होता है, उतना अधिक हम उसे चाहेंगे या इच्छा करेंगे; जितना अधिक हम किसी चीज की इच्छा करेंगे, उतनी अधिक हमारी इसकी ओर वचनबद्धता होगी; जितनी बड़ी हमारी वचनबद्धता होगी उतनी बड़ी हमारी उस इच्छा को पाने की प्रेरणा होगी। एक मोहित हृदय और जो वचनबद्धता यह उत्पन्न करती है हमें बड़ी से बड़ी बाधा को जीतने, और आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करती है, तब भी जब हमें इसके लिए बड़ी कीमत देनी पड़ती है। असल में, जितना अधिक हम किसी चीज में वचनबद्ध होते हैं उतना कम कठिन यह लगता है। कुछ भी सम्भव लगता है और कुछ भी बहुत मसीबत नहीं होता है। बाधाओं को चौखट के रूप में देखा जाता है, जिन्हें पार करना है, और धक्के अवसरों के रूप में देखे जाते हैं जिनसे सीखना है (अर्थात् इसे कैसे नहीं करना है और अगली बार कैसे अच्छा करना है)। एक मोहित हृदय असफलता को स्वीकार करने से इन्कार करता है और कभी भी हाथ खड़े नहीं करता। प्रेरित पौलुस के समान यह इनाम पाने के लिए लक्ष्य की ओर दौड़ा जाता है (फिलिप्पियों 3:12-14; कुलुस्सियों 3:23-24)।

मसीहियों के रूप में, हमें परमेश्वर और उसके काम को हमारे हृदय को मोहित करने देना है, ताकि वह और उसकी इच्छा की पूर्ति वह बनेंगे जिन्हें हम किसी भी चीज से अधिक चाहते हैं (1 कुरिन्थियों 4:5; 2 थिस्स. 3-5; नीतिवचन 3:5-6; भजन 119:1-3)। इसे सम्भव होने के लिए हमें परमेश्वर से मिलना है और उसे और उसकी इच्छाओं को जानना है। तब हमारा हृदय उसके हृदय के साथ धड़कने लगेगा और हम उसके समान बनने लगेंगे। उसकी इच्छा हमारी इच्छा बनेगी। यदि हम उसे करने देंगे तो वह हमें दर्शन देगा और हमारे हृदय को किसी काम से मोहित करेगा। उसे हमारे जीवनों में पहले से तैयारी का कुछ काम करना पड़ेगा, परन्तु यदि हम उसकी ओर देखते रहें तो वह हमें दिखाएगा कि हमें उसके लिए क्या करना है। परमेश्वर और उसकी इच्छा से मोहित हृदय हमें वचनबद्धता, प्रेरणा, शक्ति और इच्छा देगा, चाहे कुछ भी कीमत क्यों न हो। ऐसा ही बाइबल के महान चरित्रों के साथ हुआ था, जैसे कि मूसा और दाऊद, और यह हमारे साथ भी हो सकता है। लोग हमें प्रेरणा से भरे भाषणों या इनाम दिखाकर कुछ समय के लिए चला सकते हैं, परन्तु एक मसीही को उसकी इच्छा समझने, और मानने के अलावा कुछ भी अधिक प्रेरित नहीं कर सकता है।

हम जिस चीज में अपने आप को भाग लेने देते हैं और जिसे हम अपने जीवनों में डालते हैं उससे हमारा हृदय मोहित होगा। इसलिए, हमें सावधान रहना है, क्योंकि हम मसीहियों के भी हृदय चोरी हो सकते हैं, यदि हम अपनी सुरक्षा ढीली कर दें और शत्रु को अन्दर आने दें। यदि हम ऐसा होने दें तो यह प्रभु की हमारे सेवा के लिए विध्वंसक हो सकता है। हम अपने आप को परमेश्वर और उसकी इच्छा से अलग किसी चीज को वचनबद्धता देने लगेंगे। एक बार ऐसा हुआ तो हमारे हृदय हमें हमारे गलत व्यवहार में चलते रहने के लिए प्रोत्साहित करेंगे (यिर्मयाह 17:9; रोमियों 121)। कुछ गलत चीजें जो हम मसीहियों के हृदयों को मोहित कर सकती हैं: पाप (इब्रानियों 3:12); हम खुद (नीतिवचन 14:10); संदेह (और अन्त में अविश्वास); डर और चिन्ता (व्यवस्थाविवरण 20:8); दूसरे लोग (भजन 69:20); दबाव, विद्रोह, मोह-भंग, निराशा, कड़ुवाहट और चोट।

परमेश्वर के पुत्रों के रूप में, हमें अपने हृदयों को उसके लिए कभी भी बन्द नहीं होने देना है, विशेषकर उस समय जब हम निराश या भावात्मक रूप से चोट खाए होते हैं। परमेश्वर चाहता है हम अपनी आँखें उस पर रखें और क्षमा करें, और इस प्रकार अपने हृदयों को उसके लिए पत्थर न बनने दें। मसीहियों के रूप में, परमेश्वर चाहता है हम सब समय उसके लिए उपलब्ध रहें। इसलिए, हमें अपने हृदय उसके लिए कभी भी बन्द या सुन्न नहीं होने देना है, जिससे वह और वह चीजें जो वह चाहता है हम उसके लिए करें हमारे हृदयों को मोहित करने से रोक न पाएँ (1 शमूएल 16:7)। यदि हमारे हृदय कठोर हो गए हैं, और हम जानते हैं कि हम परमेश्वर के साथ सही सम्बंध में नहीं है, तब हमें उसके पास जाना, उसे इसके विषय में बताना, और अपने आप को नए सिरे से उसके सामने दीन करना चाहिए। वह हमारे लिए एक शुद्ध हृदय उत्पन्न करोगा जो उसके इस्तेमाल के लिए उपलब्ध होगा (भजन 139:23-24; यहेजकेल 18:31-32; भजन 51:10-12)।

परमेश्वर द्वारा मोहित हृदय बनाए रखने के लिए हमें: उसकी शान्ति को हमारे हृदयों की रखवाली और शासन करने देना (फिलिप्पियों 4:7; कुलुस्सियों 3:15); हर दिन परमेश्वर की उपस्थिति में और उसके वचन के साथ बिताना (1 यूहन्ना 3:19-21; इब्रानियों 4:12); अपने धन को स्वर्ग में जमा करना (मत्ती 6:19-21); एक कृतज्ञ हृदय और एक दीन, मसीह समान रवैया बनाए रखना (भजन 10:17; इफिसियों 5:19-20); प्रभु का भय मानना (व्यवस्थाविवरण 5:29; नीतिवचन 28:14); अपना हृदय परमेश्वर के

लिए पवित्र करना और उसमें प्रभु को सदा शासन करने देना (मरकुस 12:19-31); अपने को अनुशासित करना है ताकि हम सदा परमेश्वर की इच्छा पूरी कर सकें (गलातियों 6:9; नीतिवचन 23:19)।

एक परमेश्वर द्वारा मोहित हृदय, और जो परमेश्वर और उसकी इच्छा की ओर वचनबद्धता यह बनाता है, एक फलदायक और परमेश्वर को महिमा लानेवाला जीवन जीने के लिए एक बहुत आवश्यक कुंजी है। मसीहियों के रूप में, हमें फैसला करना है कि हम किस चीज को अपने हृदयों को मोहित करने देंगे। तब हमें अपने फैसले पर कार्य करना है और ऐसा जीवन जीना है जिसमें वही चीजें जाती हैं जो परमेश्वर चाहता है। इसके लिए आवश्यक होगा कि हम उन कुछ चीजों को छोड़ दें जो इस समय हम कर रहे या अपने में जाने दे रहे हैं। इससे सम्भव है हमें अपने कुछ मित्रों से दूर होना पड़े। परमेश्वर हम से निस्वार्थी, धर्मी, पवित्र जीवन की माँग करता है जो सम्पूर्ण रूप से उसके हैं। हम जो भी करें केवल इसलिए करें क्योंकि वह चाहता है हम करें। इसका अर्थ होगा कुछ बहुत ही कीमती बलिदान करना, परन्तु कुछ भी इतना कीमती नहीं जो बलिदान परमेश्वर ने हमारे लिए किया है।

निश्चय

किसी ने एक बार लिखा, 'बेटा, डाक-टिकट को देखो। इसकी उपयोगिता एक चीज से चिपकने की इसकी योग्यता में है जब तक यह वहाँ पहुँच नहीं जाती।' जो लोग किसी भी क्षेत्र में सफल हैं वही हैं जो अकसर हिम्मत नहीं हारते। जब कठिनाइयाँ आती हैं, और वे अनिवार्य है आएँगी, ये लोग एक ऊँचे, अधिक निश्चित गियर में चले जाते हैं जब तक वे पार नहीं हो जाते। वे परिणाम पाने के लिए और सफल होने के लिए काम करते हैं। एक मसीही के लिए परमेश्वर के काम को इस प्रकार देखना गलत नहीं है। हम में से बहुत परमेश्वर के लिए कम ही प्राप्त करते हैं। मसीहियों को परमेश्वर से सुनना और तब उसकी इच्छा पूरी करने का निश्चय करना चाहिए। हमें कुछ भी रोकने न पाए!

किसी ने कहा, 'महान लोग असाधारण निश्चय वाले साधारण लोग हैं।' अनेक मसीहियों के साथ समस्या यह है कि या तो वे कुछ भी आरम्भ नहीं करते या वे कठिनाई के पहले चिन्ह पर छोड़ देते हैं। यदि यही हमारा रवैया है तो हम परमेश्वर के लिए कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं। परमेश्वर ने हमें उसके राजदूत होने और पृथ्वी पर उसका काम करने के लिए चुना है। हमें उस ओर पूरी तरह वचनबद्ध होना है जो उसने हमारे लिए योजना बनाई है और इस काम को समाप्त होते देखने के लिए, चाहे इसकी हमारे लिए कुछ भी कीमत क्यों न हो, पूरी तरह निश्चित होना है (जब तक सबकुछ जो हम कर सकते हैं पूरा नहीं हो जाता)। असल में, हमें इसे अपना जीवन देना है (1 कुरिन्थियों 9:24-27; 1 तीमुथियुस 4:16)। इसके लिए कुछ बड़ी कठिनाइयों को हाथ में लेना, अपनी कुछ कमजोरियों को जीतना, या अपने पैसों, समय और प्रयास के रूप में एक बड़ी कीमत देना आवश्यक हो सकता है; परन्तु यदि हम सही चीज की ओर वचनबद्ध हैं तो यह ठीक है। जब तक हम किसी चीज की ओर वचनबद्ध नहीं होते, करते नहीं, तब तक चलते नहीं रहते जब तक हम ने अपनी वचनबद्धता को पूरी तरह कार्य में बदल दिया हो, हम कहीं नहीं पहुँचेंगे या प्राप्त नहीं करेंगे।
यीशु ने कहा, "जो कोई अपना हाथ हल पर रखकर पीछे देखता है, वह परमेश्वर के राज्य के योग्य नहीं।"

अपने और परमेश्वर में भरोसा

हम में और परमेश्वर के साथ हमारे सम्बंध में सफलता की प्रमुख कुंजीः हमारा बॉस, पगार, पदवी या कोई दूसरी चीज नहीं है। हमें, उसमें वास्तव में फलदायक और प्रभावशाली होने के लिए, अपने आप में और परमेश्वर हमारे द्वारा जो कर सकता है उसमें भरोसा रखना है। हमें भरोसा रखना है कि हम उस काम को कर सकते हैं जिस काम के लिए परमेश्वर ने हमें बुलाया है, और हमें खुद को उस काम में वैसे ही देखना है जैसे वह हमें देखता है। परमेश्वर ने हमें किसी भी काम के लिए जो वह हमें करने के लिए बुलाता है, पर्याप्त रूप से सज्जित करने की प्रतिज्ञा की है। जब हम असफल होते हैं या जब दूसरे लोग वह नहीं कर रहे हैं जो उन्हें करना चाहिए, तब परमेश्वर में और अपने में हमारा भरोसा डगमगाना नहीं चाहिए। हमें अपने आप को और अपनी परिस्थितियों को, चाहे वे कितनी भी खराब क्यों ने दिखें, उसी प्रकार देखना है जैसे परमेश्वर उन्हें देखता है। तब हम शान्त हो सकते हैं, परमेश्वर में अपना उत्तम प्रदर्शन कर सकते हैं, और यह जानते हुए कि परमेश्वर हम से बस इतनी ही अपेक्षा करता है अपने आप को किसी भी काम में पूरी तरह वचनबद्ध करो जो वह हमें उसके लिए करने को कहता है। यदि हमारा ऐसा रवैया हो, तो हम जब उचित होगा नई चीजों का प्रयत्न करने में स्वतन्त्र होंगे, और आवश्यक होने पर जैसे हम उन्हें सदा करते आए हैं बदलने के लिए स्वतन्त्र होंगे परमेश्वर में और अपने आप में (जब हम उसकी इच्छा कर रहे हैं!) जो भरोसा हमारा होगा बहुत स्वतन्त्र करनेवाला हो सकता है और उसकी सेवा करने में हमारी प्रेरणा के लिए अत्यन्त उत्तेजक होगा।

यदि हम केवल मानवीय विश्वास से काम करेंगे तो हमारे कार्य इसकी सीमाओं तक ही रहेंगे। मसीहियों के रूप में हमें एक ऐसे विश्वास से काम करना है जो परमेश्वर में हमारी स्थिति पर आधारित है और इस ज्ञान पर कि परमेश्वर हमारे द्वारा ईश्वरीय परिणाम उत्पन्न कर सकता है। इन चीजों पर भरोसा हमें धमण्ड, अहंकार या डर में गिरने नहीं देगा बल्कि हमें आगे कदम बढ़ाने और सारी महिमा और श्रेय परमेश्वर को देने में समर्थ करेगा उस सारे काम के लिए जो उसने हमारे द्वार किया है (2 कुरिन्थियों 3:4-6; 2 कुरिन्थियों 4:7; 1 कुरिन्थियों 4:1-5)। हम अपना भविष्य केवल अपने ही कंधों पर नहीं लिए फिरते हैं, परमेश्वर हमारे साथ है! इसे ही एक मसीही की सुराक्षा और भरोसे का स्रोत होना चाहिए।

डर भरोसे का सबसे बड़ा शत्रु है, और मसीहियों के लिए भी है। यह हम में आंतक फैलाता है; हमारे कामों में जल्दबाजी करवाता है; और साथ मिलकर काम करने से रोकता है। मसीहियों को डर से छुटकारा मिला हुआ है (2 तीमुथियुस 1:7; यूहन्ना 8:32, 36; इब्रानियों 2:15), परन्तु कई अभी भी इसमें रहते हैं और इसके कारण परमेश्वर के लिए उनकी सेवा में प्रभावहीन बने हैं।

हर मनुष्य में डर और चिन्ता को जानने की क्षमता बनी हुई है। हम अकसर डर को होने से रोक नहीं सकते हैं, परन्तु हम जानते हैं कि इसे परमेश्वर में कैसे सम्भालें। हमें डर को सम्भालना है क्योंकि यह हमारे प्रत्यक्षज्ञान को बिगाड़ता है, जिससे वह स्थिति जिससे डर उत्पन्न हुआ था वास्तविकता से अधिक खतरनाक और कठिन लगती है, और स्थिति को सम्भालने की हमारी योग्यता कम होती दिखती है। जब हम डर की स्थिति में होते हैं तब हमारी कल्पनाएँ बेलगाम हो जाती हैं। 'क्या होगा?' दूरवर्ती असंभावनाएँ वास्तविक संभावनाओं जैसी गलती हैं। हम भी उन्हीं चीजों को देखने लगते हैं जो डर को मजबूत करतीं या बढ़ाती हैं, जिससे स्थिति बिगड़ती हुई दिखती है। डर असफलता के परिणामों को भयंकर आयामों तक भी बढ़ा देता है। डर का एक और व्यर्थ करनेवाला पहलू यह है कि हम डरने के असली कारण का पता नहीं लगा पाते हैं।

डर की ओर दो सबसे सामान्य प्रतिक्रियाएँ हैं इससे जम से जाते हैं या इसमें से लड़ते हुए निकलने का प्रयास करते हैं, अर्थात् हम अधिक प्रतिक्रिया दिखाते हैं। एक मसीही के लिए डर से निपटने का सबसे उत्तम तरीका जो हो रहा है उसे पहचानना और, फिर रुक कर डर का सामना करना है। इसे करने के लिए, हमें शान्त होना है और स्थिति को प्रभु के पास ले जाना है। बहुत सारे मसीही उनके डरों को दबाने का प्रयत्न करते हैं और पाते हैं कि वे उन्हें सताने के लिए सबसे असुविधाजनक क्षणों में आ जाते हैं। एक डर की प्रतिक्रिया के आरंभ होने के कुछ चेतावनी के चिन्हों में सम्मिलित हैं: अपने आप से नकारात्मक तरीके से बातें करना, (उदाहरण, 'मैं तो यह नहीं कर सकता हूँ!' या 'इस बार तो मैं उनकी आशा तोड़ने वाला हूँ और वे मुझ से बहुत नाराज़ होंगे!'); या शरीर की प्रतिक्रियाएँ जैसे कि हाँफना, मूँह सूखना, घुटने काँपना, हथेलियाँ गीली होना, घबराहट बढ़ना, आदि। जब इनमें से कुछ डर की चेतावनियों को पहचानते हैं तो हमें रुकना चाहिए, और कुछ लम्बी लम्बी साँसे लेनी चाहिए। शान्त होने और जो कर रहे हैं उसे रोकने (जहाँ संभव हो) से हमें अपने डर से दूर होने का अवसर मिलता है और अपनी स्थिति का मूल्याँकन करने का स्थान मिलता है। हम इस स्थान को पता लगाने का प्रयत्न कर सकते हैं कि क्या चीज हम में डर की प्रतिक्रिया उत्पन्न कर रही है। मसीहियों के रूप में हम इस स्थान को परमेश्वर को स्थिति में लाने, और उसे पूछने में कि क्या हो रहा है और कि हम इस प्रकार क्यों प्रतिक्रिया दिखा रहे हैं इस्तेमाल कर सकते हैं। इससे हमें जो वास्तव में है और स्थिति जैसी यह वास्तव में हैं देखने में सहायता मिलेगी (हम तिल का पहाड़ से अन्तर पता लगा पाएँगे)। अकसर स्थिति का एक अधिक शान्त मूल्यनिर्धारण और उसे वैसे देखना जैसा परमेश्वर देखता है, हमारे डर को कम करेगा और हमें अपने नियंत्रण में होने में सहायता करेगा (2 राजा 6:8-23)।

कुछ दूसरी सहायक चीजें भी हम डर उत्पन्न करनेवाली स्थितियों में कर सकते हैं। पहले, हम उस सब की एक सूची बना सकते हैं जो हमें करना है। हमें इसे करने के लिए परमेश्वर से सहायता माँगनी चाहिए। हम में से कई इसे अपने मन में रख कर काम की मात्रा को बिगाड़ देते हैं। इस सूची को अपने सामने देखकर हमें जो करना है उसे स्पष्ट देखने में सहायता मिलेगी और हम इसका सही-सही मूल्याँकन कर सकेंगे। दूसरा, हम अपने सामने की स्थिति की असली कठिनाई का पता लगा सकेंगे। जब हमारे मन को किसी चीज का मूल्य निर्धारित करने को कहा जाता है (उदाहरण, इसे दस में से अंक देना), तो मन विश्लेषणपरक और विषयपरक बन जाता है। यह अकसर उस चित्र को तोड़ता है जो डर हमें दिखा रहा होता है। तीसरा, हम अपना मूल्याँकन कर सकते हैं। हम पूछ सकते हैं कि क्या हम ने वास्तव में परमेश्वर से सुना था। यदि ऐसा है तो डरने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि परमेश्वर हमारी आवश्यकताओं को पूरा करेगा और स्थिति में हमें सफल करेगा। यदि नहीं तो, हमें स्थिति में से सबसे सम्भावित अच्छे तरीके से निकल जाना चाहिए, उदाहरण, यदि पहाड़ वाकई में पहाड़ है। हमें पूछना चाहिए कि क्या हम पहले भी ऐसी एक स्थिति में थे (चाहे केवल एक अंश ही वैसा हो) और तुलना करनी चाहिए। यदि हम ने वैसी ही स्थिति में अच्छा किया है तो यह हमें प्रोत्साहित करेगा। यदि हम ने ठीक से सामना नहीं किया है तो हमें पीछे हटना पड़ेगा, या इस समय सफल होने के लिए परमेश्वर

से साहस और दृढ़ निश्चय की माँग करनी होगी। हमें परमेश्वर के पास भी जाना चाहिए और निश्चय करना चाहिए कि हम उसकी सीमाओं से बाहर नहीं जा रहे हैं; और उससे पता लगाना है कि क्या हम अभी भी सही मार्ग पर हैं या हम जो कर रहे हैं उसे ठीक करना है। अन्तिम काम जो करना है वह है यदि असफल रहे तो सबसे बुरे परिणाम की कल्पना करना है। जब हम सही-सही फैसला कर लें कि हमारी स्थिति में असफला की सबसे खराब सम्भावना क्या हो सकती है, तब हम फैसला कर सकते हैं कि क्या हम इसे स्वीकार कर सकते हैं या नहीं। यदि कर सकते हैं तो आगे बढ़ें। इस सबसे खराब परिणाम के होने का मूल्याँकन हमारी सहायता कर सकता है, क्योंकि हमारा मन अकसर इसे बढ़ा कर देखता है और इसके होने की सम्भावना से इसे अधिक बढ़ाता है। संकट का पता नहीं लगाई हुई सम्भावनाएँ हमें ठीक से काम करने से रोकती हैं।

कभी भी कोई भी काम पहले परमेश्वर की सहायता से मूल्याँकन किए बिना आरंभ मत करो। एक बार जब हम ने चीजों को सही-सही और परमेश्वर के दृष्टिकोण से देख लिया है, तो हम बड़ी सरलता से हमारी स्थिति में हमारा अगला कदम क्या होगा फैसला कर सकते हैं। किसी काम में झूठे विश्वास, एक सकारात्मक अंगीकार पर आधारित, एक अस्पष्ट आशा, अपनी योग्यताओं का अधिक मूल्याँकन, या स्थिति की कठिनाई का कम मूल्याँकन के साथ जाना संकट ला सकता है। परमेश्वर कहता है कि हम अपने आपके मूल्याँकन में सन्तुलित हों (रोमियों 12:3)। गलत न्याय या परखने से हम स्थिति में कम तैयारी से जा सकते हैं या हम जितना हमें होना चाहिए उससे कम सावधान या परिक्षमी हो सकते हैं। हमें परमेश्वर के साथ मूल्याँकन करना है कि क्या हमें किसी काम को सफलतापूर्वक करने के लिए अतिरिक्त प्रशिक्षण और/या सहायता की आवश्यकता है। यह जानना कि हम किसी काम के लिए उपयुक्त रूप से प्रशिक्षित (या योग्य) हैं एक विश्वस्त रवैया देता है; और, जैसे हम ने पता लगाया है, किसी काम को आरंभ करने के समय सही रवैया सफलता की सम्भावनाओं को काफी बढ़ाता है।

हमें अगुवों के रूप में प्रेरित रखने के लिए कुछ सुझाव

- ✓ हम जो करते हैं उसके लिए पहचाने और प्रशंसा किए जाना। यह हम सबको वह करते रहने का प्रोत्साहन देता है जिससे लिए किसी ने हमारी पुष्टि की। हम सबको किसी की आवश्यकता है जो हमें बताए कि हम किसी चीज में आगे बढ़ रहे हैं जब हम ने उसे करने में काफी प्रयत्न किए हैं। हमें दूसरे लोगों द्वारा भी स्वीकार होना है; और यदि हमें प्रेरित बने रहना है तो, अपने आप को और परमेश्वर में अपनी कीमत को स्वीकार/सम्मान करना है।

- ✓ यह जानना कि परमेश्वर हमें अगुआई के काम में बुलाता है, क्योंकि तब हमें पता होगा कि वह हमारे साथ है। यह हमें सुरक्षा और परमेश्वर की शान्ति देगा जिसकी हमें उसके एक अगुवे के रूप में प्रभु की सेवा करते रहने के लिए प्रेरणा की आवश्यकता है।

- ✓ जिनकी हम अगुआई करते हैं उनके लिए एक आदर्श बनना। यह हमें सही चीज करने और एक धर्मी, पवित्र जीवन जीते रहने के लिए प्रेरणा देता रहेगा; और यह उन्हें भी ऐसा ही करने में प्रेरित करेगा जिनकी हम अगुआई करते हैं।

- ✓ उन चीजों पर अपना ध्यान नहीं रखना जो हमारे नियंत्रण से बाहर हैं और उनकी चिन्ता नहीं करना। यह केवल हमारा समय और शक्ति बर्बाद करता है, और हमारी प्रेरणा को कमज़ोर करता है, जैसे कि हम दूसरे व्यक्ति की आवश्यकताओं, रवैयों या प्रतिक्रियाओं को काफी हद तक नियंत्रित नहीं कर सकते हैं। हम सम्भवतः उनके कार्यों को प्रभावित कर सकते हैं (विशेषकर प्रार्थना द्वारा), परन्तु प्रभाव नियंत्रण से काफी अलग है। हम आखिरकार परमेश्वर के सामने अपने लिए और अपने कार्यों के लिए ही वास्तव में जिम्मेवार है।

- ✓ दूसरे लोगों को देना या उनके साथ बाँटना। परमेश्वर अकसर हमारे जीवनों में हम जो देते हैं उससे अधिक डाल देता है, ताकि हम दोबारा दे सकें (लूका 6:38; 2 कुरिन्थियों 9:6)। निस्संदेह, देना पैसे के अलावा कुछ और भी है। इसमें प्रेम, खुशी, प्रोत्साहन, समय, मित्रता, और उपयोगी सहायता शामिल हैं। हमें जो चाहिए उसकी हम चाह कर सकते हैं और सपने देख सकते हैं, परन्तु अन्त में हम वही काटते हैं जो बोते हैं। यदि जो आप अपने जीवन में देखते हो पसन्द नहीं करते तो पता लगाओ कि क्या बो रहे हो।

- ✓ जानना कि हम दूसरे लोगों के साथ लक्ष्यों और उद्देश्यों को पाने के लिए मिलकर काम कर रहे हैं। यह हमारी प्रेरणा को बहुत बढ़ावा दे सकता है। इससे हम लगे हुए, महत्त्वपूर्ण, आवश्यक और उद्देश्यपूर्ण अनुभव करते हैं। प्राप्ति का अर्थ बढ़ जाता है जब इसमें दूसरे लोग भी लगे होते हैं।

✓ जानना कि हम अपने जीवन और अपनी निपुणताओं के लिए परमेश्वर के सामने उत्तरदायी हैं। यह हमें परमेश्वर के लिए उत्पादक और फलदायक होने में प्रोत्साहित करता है। हम इस क्षेत्र में सही मित्रों की ओर उत्तरदायी बन कर जिनसे हम अपने जीवन बाँटते हैं, अर्थात् सफलताएं और असफलताएं, अपनी सहायता कर सकते हैं।

✓ जो हम जानते हैं हमे करना है उसे कभी भी टालें नहीं। सफल, बहुत प्रेरित लोग जानते हैं कि बीता हुआ समय कभी भी वापस नहीं लाया जा सकता है और इसलिए, उन्हें इस बहुमूल्य वस्तु का उत्तम लाभ उठाना है।

✓ जीवन में सही चुनाव करना। हमें पता लगाना है जो परमेश्वर चाहता है हम करें और फिर, उसकी सहायता से वास्तविक निष्पाद्य लक्ष्य बनाने हैं और उनके लिए काम करना है। लक्ष्य निर्धारण की प्रक्रिया जो अपेक्षा और प्रेरणा लाती है बहुत प्रेरणात्मक हो सकती है। निष्पाद्य लक्ष्य निर्धारित करने से हमें असम्भव को फोड़ने में सहायता मिलती है जिससे यह ऐसा हो जाता है जिसे हम सम्भाल सकते हैं, और यह हमें रचनात्मक रूप से व्यक्त करने के लिए (जीवन में आलसी दर्शक बनने के बजाय) स्थान देता है। लक्ष्यों तक पहुँचना भी बहुत प्रेरणात्मक होता है, क्योंकि इससे पता चलता है कि हम फलवन्त और सफल हैं – हम अन्तर लाते हैं, और हमारे जीवन मायने रखते हैं।

✓ अपना सुधार करने की इच्छा रखना, उन क्षेत्रों में भी जिनमें हम अच्छे हैं। कुछ करने में अपने आप को अच्छा होते देखना भी लगे रहने की हमारी प्रेरणा को मजबूत करता है। रिकार्ड तोड़ने और सफल होने से जो प्रेरणा मिलती है वह भी महान है। यह हमें बाधाओं और विरोधों को पार करने में सहायता करता है, और बड़े-बड़े कामों को पाने में सहायता करता है। अपने पर काल्पित सीमाओं को बनाने से हमारा प्रर्दशन सीमित हो जाएगा क्योंकि आगे चलकर ये असली सीमाएँ बन जाती हैं। यह इसलिए है क्योंकि हमारे मन ने हमारे शरीर और इच्छा-शक्ति को मना लिया है कि यह हो नहीं सकता है। मसीहियों के रूप में, हमें याद रखना है कि परमेशवर के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है और कि हम उसके द्वारा जो हमें सामर्थ्य देता है सबकुछ कर सकते है (फिलिप्पियों 4:13)। यदि यह परमेश्वर की इच्छा है तो, यह हमारे द्वारा भी, हो सकता है। हमें केवल उसके पास प्रार्थना में जाना और पता लगाना है कि इसे कैसे करें।

✓ निष्क्रियता के परिणाम पर विचार करना। हम ऐसा तब ही कर सकते हैं यदि हम अपने जीवन और सेवा के लिए योजना बनाएँ और व्यावहारिक लक्ष्य निर्धारित करें। एक बार जब हम ने ऐसा किया है, तब हम खुद से पूछ सकते हैं कि यदि हम उन्हें पाने में असफल रहे तो क्या परिणाम होंगे। क्या हमें उदासी, आर्थिक हानि, परेशानी, प्रेरणा की कमी, आदि का सामना करना पड़ेगा ? क्या इसका फायदा है ?

✓ सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यों को उस समय में सूचिबद्ध करो जब हमारा शरीर और मन दोनों सबसे अधिक चुस्त होते हैं। यदि आपको पता नहीं है ये समय कब हैं तब आप एक या दो महिनों तक रोजाना मूल्याँकन कर सकते हैं। हर दिन के अन्त में, पता लगाओ कि आपने अपना सबसे उत्पादक (या कम) काम कब किया था, क्या यह सुबह था, एक प्रेरित बातचीत के बाद, छोटी झपकी के बाद, दोपहर के भोजन के बाद, आदि। यह व्यक्तिगत मूल्याँकन नियमित किया जाना चाहिए, और यदि किया जाता है तो यह हमें हमारे जीवन भर प्रेरित बने रहने में सहायता करेगा।

आकार में आना

"क्योंकि देह की साधना से कम लाभ होता है, पर भक्ति सब बातों के लिए लाभदायक है, क्योंकि इस समय के और आनेवाले जीवन की भी प्रतिज्ञा इसी के लिए है।" (1 तीमुथियुस 4:8)। इस आयत को शारीरिक व्यायाम से बचने के लिए अकसर इस्तेमाल किया जाता है, परन्तु सच्चाई तो यह है कि पौलुस ने कहा शारीरिक व्यायाम की कुछ कीमत है। बाइबल अकसर हमारे लिए अपने शरीरों की देखभाल करने की आवश्यकता की बात करती है क्योंकि यह पवित्र आत्मा का मंदिर है (1 कुरिन्थियों 3:16; 1 कुरिन्थियों 6:15-20; 2 कुरिन्थियों 6:16-7:1)। यदि हमारी शारीरिक स्वस्थता प्रभु की हमारी सेवा में बाधा डालती है तो हमें इसके विषय में कुछ करना चाहिए!

व्यक्तिगत अभ्यास के प्रश्न

1. क्या आप अपने आप को एक इच्छुक, प्रेरित व्यक्ति कहोगे ? आप किन क्षेत्रों में प्रेरित हो ? इन क्षेत्रों में क्यों ? क्या ये क्षेत्र हैं जिनमें परमेश्वर चाहता है आप प्रेरित हों ? आप प्रभु की सेवा करने की अपनी प्रेरणा के विषय में क्या कर सकते हो/ करना चाहिए ?

2. एक सफल व्यक्ति और जो असफल होता है या साधारण है में अन्तर हलका है। आप किस प्रकार के व्यक्ति हो ? क्या आप अपने को सुधारने के लिए कुछ कर सकते हो ?

3. आप जो कर रहे हो, क्या उसमें परमेश्वर का समर्थन पाते हो ? क्या आप सदा परमेश्वर की इच्छा पूरी करने में संघर्ष करते हो या आपको उन कामों को करने में आनन्द आता है जो आपका बुलावा लाता है ? क्या आपमें अपने और परमेश्वर में आश्वासन और विश्वास है जो आपको बिना संघर्ष सेवा करने में समर्थ करता है ?

4. क्या आप या जिनकी आप अगुआई कर रहे हैं, वचनबद्धता में समस्याएँ अनुभव कर रहे हैं ? आपके और उनके हृदयों को किसने मुग्ध किया है ? क्या परमेश्वर यही चाहता है ? आप वचनबद्धता को कैसे प्रोत्साहित कर सकते हैं ? याद रहे वचनबद्धता को थोपा नहीं जा सकता है!

5. इससे पहले श्रीमान् थॉमस एडिसन एक बल्ब बना सका, उसने 700 से अधिक बार प्रयत्न किया था। आपको हिम्मत छोड़ने के लिए कितनी बाधाएँ लगती हैं ? यदि आरंभ में आप सफल नहीं होते हो तो, दोबारा प्रयत्न करो। क्या यह आपके जीवन में सत्य है ?

6. हमारे तेज-गति वाले संसार में जिसमें शीघ्र हल मिलते हैं, अध्यवसाय को पुरानी बात कहा जाता है। एक मसीही अगुवे के रूप में, क्या आपको लगे रहना चाहिए ? क्या आप लगे रहते हैं ? क्या आपने वर्षों में कुछ स्मरणीय काम किया है ? यदि नहीं तो, क्यों नहीं ? क्या आप इसके विषय में कुछ कर सकते हो/करना चाहिए ?

7. यदि हम कोई चुनौति लेने से इन्कार करते हैं तो, हम कभी भी कुछ प्राप्त नहीं करेंगे! क्या आप कभी चुनौतिपूर्ण कार्य लेते हैं ? आप एक अगुवे के रूप में कितने सफल हैं ? क्या आपको अधिक सफल होना चाहिए ? आप सुधारने के लिए क्या कर सकते हैं ?

8. क्या आपकी शारीरिक स्थिति आपकी परमेश्वर की सेवा में बाधा डाल रही है या सहायता कर रही है ? क्या आपके शरीर की देखभाल में आपका काफी समय और पैसा जाता है ? क्या आपका शरीर उतना परमेश्वर को महिमा लाता है जितना लाना चाहिए ?

उन्नति और सफलता के लिए भक्तिपूर्ण प्रेरणा की आवश्यकता

हम उसका काम क्यों करते हैं परमेश्वर उसकी उतनी ही परवाह करता है जितनी किए जा रहे काम की करता है। परमेश्वर चाहता है कि हम विश्वासी उसके लिए अपनी सेवा में प्रेरित हों, क्योंकि वह चाहता है कि उसकी इच्छा का पालन हो और उसका काम पूरा हो। यदि प्रेरणा से वह काम पूरा होता है, तब प्रश्न उत्पन्न होता है, 'क्या परमेश्वर परवाह करता है कि हमें क्या प्रेरित करता है जब तक वह काम होता रहे? निस्संदेह उत्तर 'हाँ' है। इस अध्ययन में, हम अपने आपको समय-समय पर प्रार्थनापूर्वक जाँचने की आवश्यकता पर नज़र डालेंगे, ताकि हम मूल्याँकन कर सकें कि हम कहाँ जा रहे हैं और हमें वहाँ क्या ले जा रहा है। हम उन कुछ प्रेरणा के स्रोतों पर भी नज़र डालेंगे जिन्हें परमेश्वर ने हमें, उसके सेवकों को उसका काम करने के लिए दिया है। अन्त में, हम सही लोगों द्वारा जो सकारात्मक प्रभाव हम पर हो सकता है उस पर भी नज़र डालेंगे।

अपने आप की समय-समय पर जाँच करने की आवश्यकता

आत्म-जाँच मसीही के लिए एक जीवन-शैली नहीं बननी चाहिए, या यह केवल इसी की खातिर नहीं होना चाहिए। यह इसलिए है, क्योंकि जब इसे अधिक बार किया जाता है तो, यह लोगों को अधिक अन्तर्दर्शी बना देता है। जब ऐसा होता है तब, लोग उनकी आँखें प्रभु पर से हटा लेते हैं और उनकी समस्याओं और कठिनायों पर लगा लेते हैं। हमें परमेश्वर के राज्य और उसकी धार्मिकता की खोज करनी है, और परमेश्वर और उसकी इच्छा को जीवन की प्राथमिकता बनाना है। जो लोग निरन्तर अपने भीतर देखते हैं स्वार्थी, आत्म-केन्द्रित जीवन की प्राथमिकताएं बनाते हैं, क्योंकि वे उनका अधिक समय यह पता लगाने में लगाते हैं कि वे कौन हैं, जो वे करते हैं क्यों करते हैं, या आत्मदया में लोटते हैं, आदि। असल में, अपने भीतर देखना अकसर बहुत खतरनाक होता है और हमें बड़े डर, बन्धन और निष्क्रियता में ले जाता है; विशेषकर तब जब हम अपनी खोज के विषय में चिन्ता के सिवाय कुछ नहीं करते।

फिर भी, सही आत्म-जाँच की आवश्यकता है। यह सदा आशा के साथ आगे को देखती है जो हो सकता था और पीछे देखती है ताकि यह की गई गलतियों से सीख सके। यह हमारी जानने में सहायता करती है कि हम कौन हैं और जो हम करते हैं उसे करने के लिए हमें क्या प्रेरित करता है। परमेश्वर परवाह करता है हम उसकी सेवा क्यों करते हैं। वह परवाह करता है जब गलत चीजें हमें प्रेरित करती हैं। वह चाहता है कि हम कभी-कभार, प्रार्थनापूर्वक अपने आप का विचार करें, ताकि हमें पता चले कि उसके साथ हमारा जीवन कैसा चल रहा है; और ताकि हमें पता चले कि हमारे भीतर क्या चल रहा है। इसमें और उसमें जिसके विरुद्ध हम ने अभी-अभी चेतावनी दी है अन्तर यह है कि परमेश्वर नियंत्रण में है, न कि हम। हम केवल उसे हमारे जीवनों में जो ठीक नहीं है उसे दिखाने का समय और अवसर दे रहे हैं। एक बार जब उसने ऐसा कर लिया है, तब हमें उसकी क्षमा माँगनी चाहिए और अपने जीवनों के ये क्षेत्र उसके हाथों में सौंप देने चाहिए। प्रार्थनापूर्वक आत्म-जाँच के समय कुछ चीजें जो परमेश्वर हम उसके अगुवों को दिखा सकता है:

- ❖ हमारी ताकतें और कमज़ोरियाँ क्या हैं।
- ❖ क्या हमारी अपनी आप से काल्पनिक अपेक्षाएँ हैं।
- ❖ हमारे जीवन पर परमेश्वर का बुलावा क्या है।
- ❖ परमेश्वर हम से क्या अपेक्षा करता है।
- ❖ क्या हम ऐसा कुछ कर रहे हैं जो परमेश्वर ने नहीं चाहता था हम करें (यहाँ पर अधिक दबाव डालना ठीक नहीं है)।
- ❖ क्या हमारा एक सताव मनोग्रन्थि है, जिसके कारण हम कई स्थितियों में अपने लिए खतरे देखते हैं (चाहे वे हों या न हों)।
- ❖ क्या हम अपनी अगुआई में असुरक्षित है, क्योंकि हम लोगों से डरते हैं या हमें लगता है हम पर्याप्त योग्य नहीं हैं।
- ❖ क्या हमें अतिरिक्त प्रशिक्षण की आवश्यकता है, क्योंकि हम में किसी एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र में निपुणता की कमी है।
- ❖ क्या किसी से ईर्ष्या रखते हैं।
- ❖ क्या हम अपनी स्थिति से असंतुष्ट हैं और हमें दूसरे की चाहिए।
- ❖ क्या हमारा किसी के साथ मन-मुटाव है जिसने हमें चोट पहुँचाई है (जिसके विषय में हमें पता है हमें छोड़ देना चाहिए और क्षमा और भरोसा करना चाहिए)।

अपने आप की प्रार्थनापूर्वक जाँच करने की अनिच्छा हमारी आत्मिक बढ़त को, यदि असम्भव नहीं तो, कठिन करने लगती है, और हमारी सेवा की प्रभावकारिता स्थिर हो जाती है। हमें अपनी सेवा का मूल्याँकन करने और परमेश्वर में अपने लक्ष्यों और प्राथमिकताओं को सही करने के लिए आत्म-ज्ञान की आवश्यकता है। पवित्र आत्मा को हमारा सलाहकार होने, और हमारा सब

सत्य में मार्गदर्शन करने के लिए दिया गया है (यूहन्ना 14:26; 16:13-14)। वह हमें दिखा सकता है हमें कहाँ बदलना है और बदलने में हमारी सहायता कर सकता है। हमें अपने जीवनों में परमेश्वर को अवसर देने की आवश्यकता है। हमें अपने आप का सन्तुलित मूल्याँकन करना चाहिए (रोमियों 12:3), और अपनी जाँच और न्याय करना चाहिए ताकि हम परमेश्वर के न्याय में न पड़ें (1 कुरिन्थियों 11:27-32; 2 कुरिन्थियों 10:12-13; 2 कुरिन्थियों 13:5-6)।

सब मसीहियों को उनके विचारों उनके विचारों को बदलने की आवश्यकता है ताकि वे अपने आप को और उनके काम को वैसे देख सकें जैसे परमेश्वर उन्हें देखता है। हमें अपने विचारों में सन्तुलित होना है, परन्तु हमें परमेश्वर को हमारी क्षमता को बढ़ाने देना है ताकि हम उसके लिए अधिक कर सकें। यदि हम उन छोटे-छोटे कामों को करते हैं जो वह हमें करने को कहता है तो उसने ऐसा करने की प्रतिज्ञा की है (लूका 19:11-27)। इसका अर्थ है कि हमें परमेश्वर के साथ सही संबंध में रहना है और निश्चय करना है कि हम सही चीजों से प्रेरित रहें। यह सच है कि कभी-कभी परमेश्वर अपने काम को बहुत असामान्य तरीकों से और अजीब कारणों से होने देता है; परन्तु, जहाँ तक हमारा प्रश्न है, हमें सावधानी से बनाना है, क्योंकि यदि हम सही नींव पर और सही चीजों से बनाते हैं तब ही हमें अनन्त परिणाम मिलेंगे।

जब हालत अच्छी नहीं होती तब आत्म-जाँच करना कठिन होता है, परन्तु हमें अपने आप को और अपनी स्थिति को ठीक करने के लिए ऐसा करना है। हमें तब भी अपनी जाँच करनी चाहिए जब हम असफल होते हैं, क्योंकि हमारी असफलता का इलाज हो जा सकता है। हमें तब भी अपना मूल्याँकन करना है जब सब ठीक है, ताकि हमें पता चले इसने क्यों काम किया और आगली बार बेहतर हो सके। फिर भी याद रहे, कि हमारी कीमत हमारी प्राप्तियों पर, दूसरे लोगों द्वारा हमारी स्वीकृति पर या हमारी मित्रता पर निर्भर नहीं है; यह केवल उस पर निर्भर होनी चाहिए जो परमेश्वर हमारे वियष में सोचता है।

कुछ अगुवों को अपना मूल्याँकन करने में काफी कठिनाई होती है (हम में से कुछ थोड़े संदेही होते हैं!)। इसलिए, कभी-कभार, हम सब के लिए अच्छा है कि हम उन लोगों से जिन पर हम भरोसा करते हैं पूछें कि वे हमारे विषय में क्या सोचते हैं। यह प्रश्न सामान्य रूप से हमारे सारे जीवन के बारे में या विशेष क्षेत्रों के बारे में पूछा जा सकता है। यह अकसर सच होता है कि दूसरे लोग हमें हम से बेहतर देख सकते हैं। उन्हें वे सब चोटें, घमण्ड और असुरक्षाएं (और वो भीतरी घेरे जो हम ने उनसे और जो चोटें वे पहुँचाते हैं उनसे अपनी सुरक्षा के लिए इन चीजों के ईर्द-गिर्द बनाएँ हैं) नहीं मिली हैं जो हमें मिली हैं जो हमारे बारे में हमारे विचारों को रंजित कर देती हैं। हम अगुवों को, कुछ हद तक, अपने आप को आत्मचेतना से अलग करना चाहिए जिससे हम दूसरे लोगों की सेवा अधिक प्रभावशाली तरीके से कर सकें। यह भी अपने बारे में हमारे विचार को रंजित कर सकता है। सबसे सही लोग जिनके पास हम जा सकते हैं वे लोग हैं जो हमें अच्छी तरह जानते हैं, जैसे कि हमारी पत्नियाँ या मित्र जो भरोसेमंद हैं और जो परमेश्वर से सुनना जानते हैं। अगुवे भी इस क्षेत्र में एक दूसरे की सहायता कर सकते हैं। इसे करने का एक तरीका, कलीसिया के मुख्य सदस्यों को एक रीट्रीट (संभव हो तो दो या तीन दिन के लिए) के लिए ले जाना, और एक दूसरे के जीवनों और सेवा की प्रभावकारिता पर नज़र डालना है। पास्टर, विकार या प्रमुख अगुवे को अकसर खुल कर आवश्यक चीजें बताने को आदर्श बनाकर बात आगे बढ़ानी होगी।

परमेश्वर के महान प्रेरक

अ-प्रेरित मसीही अगुवा न केवल सम्भव है, यह सामान्य है! परमेश्वर के अगुवों के रूप में, हमें परमेश्वर-प्रेरित लोग होना है, और निश्चित करना है कि हमारे पास उसकी सेवा के लिए प्रेरणा का सही स्रोत है। बहुत सारे मसीही अगुवे या तो बहुत सांसारिक, समझौता करनेवाले या उनके रवैये में अनिश्चित हैं और, इसलिए, प्रभु की सेवा करने की उनकी प्रेरणा कम है। परमेश्वर हम उसके अगुवों से चाहता है कि हम सही प्रकार की प्रेरणा के आदर्श हों और इसलिए, जिनकी हम अगुआई करते हैं उनके लिए अच्छे उदाहरण बनें। वह चाहता है कि हम सावधान रहें, क्योंकि हम नकारात्मक शक्तियों से प्रेरित हो सकते हैं जो अन्त में हमें नष्ट कर देंगी।

परमेश्वर हमारी प्रेरणाओं की परवाह करता है। परमेश्वर के हिसाब में परिणाम साधनों को उचित सिद्ध नहीं करता है! परमेश्वर के वचन के अनुसार, वह हमारी प्रेरणाओं को समझता है (1 कुरिन्थियों 28:9); वह हमारी प्रेरणाओं पर विचार करता है (नीतिवचन 16:2): वह हमारी प्रेरणाओं को प्रकट करेगा, न्याय करेगा और परखेगा (1 कुरिन्थियों 4:5; 1 थिस्स. 2:4); और यदि हम गलत कारणों से प्रार्थना करते हैं तो वह उन्हें नहीं सुनेगा (याकूब 4:3)। निस्संदेह, परमेश्वर कोई 'बड़ा भाई' व्यक्ति नहीं है जो हाथ में एक छड़ी लिए हम पर नज़र रखता है कि जब कभी हम कुछ गलत करें वह हमारे सिर पर दे मारे। परमेश्वर हम से प्रेम करता है और वह हमारे लिए अच्छा ही चाहता है, परन्तु वह जानता है कि कुछ चीजें जो हमें प्रेरित करती हैं हमारे लिए हानिकारक हो

सकती हैं। वह चाहता है कि हम उन चीजों से प्रेरित हों जिन्हें उसने दिया है, और उसे महिमा लाएँ और अपने लिए अनन्त फल लाएँ। प्रभावशाली, फलवन्त मसीही सेवा के लिए नीचे परमेश्वर के प्रेरणा के कुछ सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत दिए गए हैं।

प्रेरणा के महत्त्वपूर्ण स्रोतः

(1) परमेश्वर का प्रेम

परमेश्वर का प्रेम बिनाशर्त, बलिदान-संबंधी और निस्वार्थ होता है। यह यूनानी शब्द 'अगापे' है। यह एक प्रकार का प्रेम है जो सब का कल्याण खोजता और किसी का बुरा नहीं चाहता है, जैसे यीशु ने दिखाया था कि यह सम्भव है जब वह संसार में दुख उठाने और मानवजाति के लिए मरने आया था। यह आशीष देता और देता है; और यह उन सब के लिए भला चाहता है जिनकी ओर यह होता है।

'अगापे': एक सिद्ध अस्तित्व का गहरा और स्थिर प्रेम और रुचि बिलकुल अयोग्य वस्तुओं की ओर व्यक्त करता है, उनमें देनेवाले की ओर एक भयरूपी प्रेम, और उनकी ओर व्यावहारिक प्रेम जो उसी के भागी हैं, और देनेवाले को खोजने की उनमें इच्छा उत्पन्न करता और बढ़ाता है। परमेश्वर के प्रेम की असीमित गहराई उसके पुत्र यीशु में प्रकट की गई थी। हम परमेश्वर के प्रेम का जो हमारे लिए है भरोसा कर सकते और निर्भर हो सकते है, कुछ भी हमें उसके प्रेम से अलग नहीं कर सकता है (रोमियों 8:38-39); और, यदि हम इसे बदले में दें, तो परमेश्वर सब चीजों में हमारे लिए भलाई उत्पन्न करेगा (रोमियों 8:28)। एक बार जब एक व्यक्ति विश्वास से प्रभु के साथ एक व्यक्तिगत सम्बंध स्थापित करता है, तो 'अगापे' प्रेम आता है, और पवित्र आत्मा के हमारे भीतर कार्य के कारण वह प्रेम बढ़ने लगेगा (रोमियों 5:5)।

परमेश्वर तब ही हमें उसके अधीन-चरवाहों के रूप में काम करने दे सकता है जब हम सबसे पहले, अपनी नौकरी और अपने से बढ़कर, उससे प्रेम करते हैं (यूहन्ना 21:15-17)। पवित्रशास्त्र से कोई संदेह नहीं है कि परमेश्वर हम से बेहद प्रेम करता है (यूहन्ना 3:16; रोमियों 5:8; इफिसियों 2:4-5; इफिसियों 5:1-2)। परमेश्वर हमें उससे और दूसरे लोगों से प्रेम करने, और इसे कार्यों के द्वारा दिखाने की आज्ञा देता है (मत्ती 6:1-4; लूका 10:27-28; यूहन्ना 13:34-35; रोमियों 12:9-10; रोमियों 13:8-10; 1 कुरिन्थियों 16:14; गलातियों 5:6, 13-14; 1 थिस्स. 4:9-10; 2 थिस्स. 3:5; 2 तीमुथियुस 2:22-26; 1 पतरस 1:22; 1 पतरस 4:8; 1 यूहन्ना 3:14-18; 1 यूहन्ना 4:7-12)। असल में, हम मसीहियों को प्रेम का जीवन जीना है, विशेषकर विश्वासियों के समाज में। परमेश्वर के इस स्नेही परिवार के संदर्भ में विश्वासियों को परमेश्वर के प्रेम के अनुभव में बढ़ना है और मसीही परिपक्वता में पहुँचना है (इफिसियों 3:17-19)। प्रेम मसीह की देह में सम्बंध भी स्थापित करता है और एकता बनाए रखता है (फिलिप्पियों 2:1-4; कुलुस्सियों 2:2-3)। प्रेम स्वार्थीपन का उलटा है। असल में, जो प्रेम करते हैं तब ही संतुष्ट होते हैं जब वे उन्हें आशीष देते हैं जिनकी ओर उनका प्रेम जाता है। दूसरी ओर, स्वार्थीपन कभी भी संतुष्ट नहीं होता – यह सदा अधिक चाहता है।

मसीहियों के रूप में, प्रेम हम सबकुछ जो करते हैं उसकी प्रेरणा का प्रमुख स्रोत होना चाहिए (1 कुरिन्थियों 13:1-13; 2 कुरिन्थियों 5:14)। पवित्र आत्मा के वरदानों से सेवा करना; अपना सबकुछ गरीबों को देना; पहाड़ों को हटाने का पर्याप्त विश्वास होना; और शहीद होना ये सब विशाल विचार हैं जिन्हें सब मसीही करना चाहेंगे (कुछ हद तक!), परन्तु पवित्रशास्त्र की तुलना में वे परमेश्वर के प्रेम की तुलना में कुछ नहीं हैं। असल में, ये सब चीजें कुछ नहीं हैं यदि वे प्रेम की प्रेरणा से नहीं की जाती हैं। इसलिए, यदि हम अपना सारा जीवन और सेवा इन चीजों पर आधारित करते हैं, तब तो हम ने अनन्त मूल्य का कुछ भी नहीं किया होगा, जब तक हमारे सारे कार्यों के पीछे प्रेरणा परमेश्वर का प्रेम न होगा। प्रेम मसीहियत का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू है, चंगाई या भविष्यद्वाणी या सुसमाचार प्रचार भी नहीं। परमेश्वर के लिए हमारी सारी सेवा और पवित्र आत्मा के सारे वरदान परमेश्वर के प्रेम की अभिव्यक्तियाँ होने के लिए ही हैं। अनेक बार हम अपना ध्यान वरदानों पर और न कि देनेवालों पर लगाते हैं (हम भूल जाते हैं कि वरदान देने का मुख्य कारण क्या है, अर्थात् लोगों का परमेश्वर की ओर संकेत करना और परमेश्वर का प्रेम उनके लिए प्रकट करना); या हम अपनी सेवा पर ध्यान लगाते हैं और भूल जाते हैं कि हम सेवा क्यों कर रहे हैं।

परमेश्वर का प्रेम हमारे जीवनों के केन्द्र में और सबकुछ जो हम करते हैं उसकी प्रेरणा होना चाहिए। जितना अधिक यह हमारे जीवनों में सत्य है, उतना अधिक यह परमेश्वर के लिए हमारी वचनबद्धता को प्रोत्साहन देगा, हमारी आज्ञापालन को उत्तेजित करेगा, और हमारी सेवा को योग्य करेगा (यूहन्ना 14:21-24; 1 थिस्स. 1:3; 1 यूहन्ना 5:3)। यह हमें हमारे आत्मकेन्द्रित प्रेरणात्मक शक्तियों से मुक्त होने, और बदले में परमेश्वर और दूसरे लोगों के लिए जीने में सहायता करेगा। यदि मसीहियों ने परमेश्वर से

उनके सारे हृदय, शक्ति, मन और प्राण से प्रेम किया तो परमेश्वर की सेवा और आज्ञापालन के लिए किसी दूसरी प्रेरणा की आवश्यकता नहीं होगी (मत्ती 22:37-39)। वैसे भी, प्रेरणा के दूसरे स्रोत तब तक सहायता करते हैं जब तक हम सिद्धता प्राप्त नहीं कर लेते जो हमारा लक्ष्य है।

परमेश्वर के प्रेम को पाने के सात तरीके:

अ) सीधे परमेश्वर से, अर्थात् इसे परमेश्वर को हमारे भीतर बनाने देना (1 थिस्स. 3:12; 2 पतरस 1:3)।

आ) परमेश्वर को अधिकाधिक जानने के द्वारा। हम ऐसा प्रार्थना करके, परमेश्वर को खोजकर और उसकी आराधना करके करते हैं (यूहन्ना 17:26; 1 यूहन्ना 4:8)। परमेश्वर प्रेम है, और इसलिए उसकी उपस्थिति में समय बिताने से हम उसके प्रेम में भागी होने लगते हैं और, उसका कुछ अंश हमारे जीवनों का अंग बन जाता है।

इ) परमेश्वर की आज्ञाओं को समझने और फिर उनका पालन करने के द्वारा (यूहन्ना 14:21)। जैसे हम सबकुछ में जो हम करते हैं परमेश्वर को पहला स्थान देते हैं, तो यह परमेश्वर को हमारे जीवनों में उसके प्रेम को कार्य करने का ढाँचा देता है। जब परमेश्वर हम से कुछ करने को कहता है तो उसे नहीं करना उस क्षेत्र में अपने आप को और अपनी इच्छाओं को परमेश्वर के ऊपर रखना है, अर्थात् असलीयत में यह अपने को उस क्षेत्र का प्रभु बनाना है। तब परमेश्वर हमारे जीवन के उस अंश में अपना प्रेम नहीं बना सकता है। परमेश्वर वहीं जाता है जहाँ उसकी अपेक्षा है और जहाँ उसे प्रभु होने के लिए बुलाया गया है।

ई) अपने जीवन पवित्र आत्मा के नियंत्रण में अर्पित करने के द्वारा ताकि वह हमारे हृदयों में अपना प्रेम उँडेल सके और प्रेम का फल हम में उत्पन्न कर सके (रोमियों 5:5; गलातियों 5:22)।

उ) प्रेम को वास्तव में पहनने और सबकुछ जो परमेश्वर का नहीं है उसे उतार देने का सचेत चुनाव करने के द्वारा। परमेश्वर का प्रेम हमें सेंत-मेंत में उपलब्ध है; हम इसे या तो पहन सकते हैं या ठुकरा सकते हैं, इसके लिए कार्य कर सकते हैं या इसे अनदेखा कर सकते हैं (कुलुस्सियों 3:12-14)। 2 पतरस 1:5-9 समझाता है कि एक पैर रखने की श्रृँखला है जो प्रेम में समाप्त होती है। हमें इन्हें अपने जीवनों में एक बढ़ती मात्रा में जोड़ने को कहा गया है ताकि हम परमेश्वर के लिए प्रभावशाली और फलवन्त हो सकें।

ऊ) एक शुद्ध हृदय, एक अच्छा विवेक और एक सच्चा विश्वास होने के द्वारा (1 तीमुथियुस 1:3-7)। यह परिच्छेद दिखाता है कि पौलुस का अन्तिम लक्ष्य प्रेम था। उसने देखा था कि प्रेम वचनबद्धता व्यक्त करता है। इसलिए, एक कलीसिया में जहाँ लोगों का अन्तिम लक्ष्य प्रेम और प्रेरणा का प्रमुख स्रोत है तो सबकुछ जो होना है हो जाएगा। परमेश्वर के राज्य में प्रेम सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है। यह सीमेंट है जो कलीसिया को इकट्ठी जोड़ती और कलीसिया को परमेश्वर से जोड़ती है।

ए) एक दूसरे को प्रेम और भले कामों के लिए उकसाने के द्वारा (इब्रानियों 10:24)।

"कि वह अपनी महिमा के धन के अनुसार तुम्हें यह दान दे कि तुम उसके आत्मा से अपने भीतरी मनुष्यत्व में सामर्थ्य पाकर बलवन्त होते जाओ; और विश्वास के द्वारा मसीह तुम्हारे हृदय में बसे कि तुम प्रेम में जड़ पकड़ कर और नेव डालकर, सब पवित्र लोगों के साथ भली-भाँति समझने की शक्ति पाओ कि उसकी चौड़ाई, और लम्बाई, और ऊँचाई, और गहराई कितनी है, और मसीह के उस प्रेम को जान सको जो ज्ञान से परे है कि तुम परमेश्वर की सारी भरपूरी तक परिपूर्ण हो जाओ।" (इफिसियों 3:16-19)

(2) परमेश्वर का भय

परमेश्वर का भय एक मसीही के जीवन में एक नियंत्रण करनेवाली प्रेरणा होनी चाहिए। यह आदरपूर्ण भय या परमेश्वर का भय, वह करने के बजाय जो हम स्वार्थीपन के कारण करना चुनेंगे, उसके मार्ग पर जाने और उसकी इच्छा करना चुनने के लिए प्रभावित करता है (भजन 36:1-4; रोमियों 3:10-18; 2 कुरिन्थियों 6:14-7:1)। परमेश्वर के भय को बुद्धि और ज्ञान के आरंभ के रूप में बताया गया है (भजन 111:10; नीतिवचन 1:7; 1 पतरस 1:17), क्योंकि यह परमेश्वर के लिए सही आदर रखने और बुराई को छोड़ने, और बदले में आज्ञाकारी भक्तिपूर्ण जीवन जीने में हमारी सहायता करता है जो हमारे स्वर्गीय पिता को प्रसन्न करता है। यह हमें अपने जीवन में सही दृष्टिकोण बनाए रखने में सहायता करता है, जिससे हमारी इच्छा-शक्ति सर्वशक्तिमान् सिरजनहार

की इच्छा के अधीन रहती है। इस प्रकार परमेश्वर को लेना सबसे अच्छी नींव है जो हम बना सकते हैं जिससे कि हम अनुशासित, आज्ञाकारी, धर्मी, पवित्र जीवन जी सकें और उस सबको ठुकरा सकें जो इससे मुकाबला करती है (व्यवस्थाविवरण 6:13-19; 10:12-22)। असल में, प्रभु उन्हें आशीष देने की प्रतिज्ञा करता है जो उसका भय मानते हैं (भजन 128:1-4)।

प्रभु का भय हमें उन सब सामान्य डरों से छुटकारा देता है जो मानवजाति को सताते हैं और जो हमें गुलामी में रखते हैं, उदाहरण, मृत्यु का डर (इब्रानियों 2:14-15); दूसरों का और जो वे हमारे साथ कर सकते हैं उसका डर (मत्ती 10:28; लूका 12:4-5; इब्रानियों 13:6; 1 पतरस 3:13-16); शत्रु का डर (व्यवस्थाविवरण 20:3-4); बुरी खबर का डर; अज्ञात का डर; और चिन्ता, जो एक ऐसी भावना, जिसे बताया नहीं जा सकता, कि कुछ गलत होने वाला है (भजन 112:7-8)। यह इसलिए है क्योंकि हम जानते हैं कि चाहे हमारे साथ या हमारे ईर्द-गिर्द कुछ भी क्यों न हो रहा हो, परमेश्वर हमारे साथ है और वह नियंत्रण में है। असल में, परमेश्वर ने हमें कभी भी न छोड़ने या त्यागने की प्रतिज्ञा की है (इब्रानियों 13:5); और उसने प्रतिज्ञा की है कि हमें कुछ भी उसके प्रेम से अलग नहीं कर पाएगा (रोमियों 8:38-39)। जब हम सच में परमेश्वर के सामर्थ्य और उसकी स्नेही परवाह को अपने जीवन के हर विवरण में जानते हों (मत्ती 10:29-31; लूका 12:6-7), तो हम इन छोटे डरों से छुटकारा पाते हैं जो हमें समझौता करने या परमेश्वर की आज्ञोल्लंघन करने के लिए उकसा सकते हैं।

परमेश्वर का भय और प्रेम एक साथ काम करते हैं, अर्थात् हमें केवल परमेश्वर का भय मानना है जब हम उसकी इच्छा से बाहर हो जाते हैं और फिर उसके प्रेम से बाहर हो जाते हैं। तब परमेश्वर का भय एक बहुत बड़ी प्रेरणा का स्रोत हो सकता है, हमें परमेश्वर की इच्छा में लौट आने में, और इसलिए उसके प्रेम में को प्रोत्साहित करता है। याद रहे, परमेश्वर अपना प्रेम हटाता नहीं है; यदि पाप में पड़ते हैं तो हम उस क्षेत्र में उसके प्रेम से दूर हो रहे हैं। परमेश्वर का भय एक घेरे के समान है जिसके बाहर चीजें हैं जो परमेश्वर की नहीं हैं और जिसके भीतर परमेश्वर का प्रेम है। भीतर कोई डर नहीं है क्योंकि सिद्ध प्रेम सब डर निकाल देता है (1 यूहन्ना 4:18)। जब हम परमेश्वर से प्रेम करते और उसका भय मानते हैं तो हमें उसका न्याय या सजा से डरना नहीं है क्योंकि हम उसके साथ सही सम्बंध में रहेंगे। असल में, हमें यीशु में अपनी स्थिति के कारण उसके सामने अकेले और विश्वास के साथ आने से डरना नहीं है (इफिसियों 3:10-12; इब्रानियों 10:19-22; भजन 103:17)। मसीहियों के रूप में, हमें ऐसा आत्मा नहीं मिला है जो हमें दोबारा डर का गुलाम बनाता है, परन्तु हमें पुत्र होने का आत्मा मिला है जो हमें परमेश्वर से प्रेम करने और उसे पिता कहने देता है (रोमियों 8:15)।

"क्योंकि परमेश्वर ने हमें भय की नहीं पर सामर्थ्य और प्रेम और संयम की आत्मा दी है।" (2 तीमुथियुस 1:7)। प्रारंभिक कलीसिया के सदस्यों के लिए प्रभु के भय में जीना एक सामान्य बात थी (प्रेरितों 7:31)। परमेश्वर ने भी कार्य किया था कि उसके लोग उसका आदरपूर्ण भय मानें जिसे हनन्याह और सपीरा के विवरण से देखा जा सकता है (प्रेरितों 5:1-11)। परमेश्वर का भय हमें एक दूसरे के अधीन होने में सहायता करता है क्योंकि हम समझते हैं कि हम विश्वासी एक दूसरे के प्रतियोगी नहीं बल्कि हम उसी प्रभु की सेवा कर रहे हैं (इफिसियों 5:21)। यादे रहे परमेश्वर चाहता है कि हम उसकी सेवा में प्रेम से, न कि किसी सजा के डर से जो वह हमें दे सकता है प्रेरित हों। फिर भी, पवित्रशास्त्र हमें आग्रह करते हैं कि हम परमेश्वर की उपेक्षा न करें, परन्तु हमारी सेवा आदर और भय के साथ स्वीकार्य हो, क्योंकि हमारा परमेश्वर भस्म करनेवाली आग है (इब्रानियों 12:28-29)। "इसलिए हे मेरे प्रियो, जिस प्रकार तुम सदा से आज्ञा मानते आए हो, वैसे ही अब भी न केवल मेरे साथ रहते हुए पर विशेष करके अब मेरे दूर रहने पर भी डरते और काँपते हुए अपने अपने उद्धार का कार्य पूरा करते जाओ; क्योंकि परमेश्वर ही है जिसने अपनी सुइच्छा निमित्त तुम्हारे मन में इच्छा और काम, दोनों बातों के करने का प्रभाव डाला है।" (फिलिप्पियों 2:12-13)। "और जब कि तुम 'हे पिता' कहकर उससे प्रार्थना करते हो, जो बिना पक्षपात हर एक के काम के अनुसार न्याय करता है, तो अपने परदेशी होने का समय भय से बिताओ।" (1 पतरस 1:17)।

(3) **परमेश्वर से दर्शन**

इसने बाइबल के प्रमुख व्यक्तियों के जीवनों को बदल दिया है, उदाहरण, अब्राहम, मूसा, शमूएल, पौलुस, आदि। इसे देखा, सुना, अनुभव किया जा सकता है और परमेश्वर हमें सीधे या भविष्यद्वाणी द्वारा दे सकता है; और परमेश्वर के राज्य में यह सबसे सामर्थी प्रेरणात्मक शक्ति है। दर्शन उत्तेजित करता है, क्योंकि यह हमें परमेश्वर की प्रभावशाली सेवा में ले जाता है; और यह नियंत्रित करता है, क्योंकि यह सीमाएँ बनाता है जिनमें रहकर हमें परमेश्वर की इच्छा के अनुसार सेवा करनी चाहिए। असम में, नीतिवचन 29:18 कहता है कि दर्शन के बिना लोग नष्ट हो जाएँगे, आत्मसंयम फेंक देंगे या बेकाबू हो जाएँगे।

(4) परमेश्वर की शान्ति

शब्दकोष में शान्ति की परिभाषा इस प्रकार दी गई है: 'युद्ध से स्वतंत्रता; शान्त, प्रशान्ति, मानसिक शान्ति; मित्रता की स्थिति; या झगड़ा नहीं'। परमेश्वर की शान्ति का वर्णन करना या समझना अधिक कठिन है। असल में, परमेश्वर का वचन कहता है यह समझ से परे है (फिलिप्पियों 4:7)।

शान्ति के लिए इब्रानी शब्द 'शालोम' है और यह सम्पूर्णता, पूर्णता, विश्राम, व्यवस्था, मेल/एकता और स्वास्थ्य, संतोष, समृद्धि और पूर्ति का और अधिक सामान्य अर्थ झगड़े की अनुपस्थिति का भी अर्थ बताता है। इसे आशीष, के रूप में और पानेवाले के कल्याण की आशा के रूप में इस्तेमाल किया जाता था; परन्तु यह भीतरी और बाहरी आशीष और उस संगति की बात करता है जो एक व्यक्ति या व्यक्तियों पर आती है जब वे परमेश्वर और उसकी इच्छा के साथ एक करीबी सम्बंध में रहते हैं। असल में, परमेश्वर की शान्ति परमेश्वर के स्वभाव का अंग है (न्यायियों 6:24; रोमियों 15:33; 1 कुरिन्थियों 14:33; 1 थिस्स. 5:23-24; इब्रानियों 13:20) और केवल वह ही मनुष्य की असली शान्ति का स्रोत है। शान्ति के लिए यूनानी शब्द 'eirene' परम्परा के अनुसार संकेत देता है: व्यवस्थित समृद्ध जीने का तरीका जो युद्ध की अनुपस्थिति से सम्भव है। परन्तु, नए नियम के लेखकों ने इसके अर्थ को शान्ति के लिए इब्रानी शब्द 'शालोम' के समान बदल दिया। नया नियम शान्ति को सीधे यीशु के साथ जोड़ता है, आखिरकार, मनुष्यजाति का शान्ति के परमेश्वर की ओर मार्ग केवल वही है।

परमेश्वर की शान्ति विश्वासियों के जीवन में स्पष्ट प्रकट होनी चाहिए और मसीह की देह, कलीसिया के सदस्यों के बीच गुणी सम्बंधों में प्रवाहित होनी चाहिए। असल में, परमेश्वर की शान्ति को हमारे हृदयों और मनों को मसीह यीशु में सुरक्षित रखना चाहिए (फिलिप्पियों 4:7)। यदि आपके पास है तो यह आपको चलाते रहेगी; और यदि खो जाए तो आप इसे वापस चाहेंगे। इसलिए यह हमें संचालित कर सकती है (यशायाह 60:17) और परमेश्वर के साथ सही सम्बंध में रहने में प्रेरणा के लिए एक बहुत उपयोगी उपकरण है। परमेश्वर की शान्ति सदा हमारे हृदयों में शासन करनी चाहिए क्योंकि एक देह के सदस्यों के रूप में हमें शान्ति के लिए बुलाया गया है (कुलुस्सियों 3:15)। यह सच होना चाहिए चाहे हमारे आस-पास कुछ भी क्यों न हो रहा हो। परमेश्वर का वचन यह भी बताता है कि परमेश्वर की शान्ति हमें एक भविष्य दे सकती है, क्योंकि शान्ति के पुरुष के लिए भविष्य है (भजन 37:27)। यह शरीर में जीवन लाती है क्योंकि शान्ति से भरा हुआ हृदय शरीर में जीवन लाता है (नीतिवचन 14:30)। यह आनन्द लाती है (नीतिवचन 12:20), सुन्दरता (यशायाह 52:7) और धार्मिकता की फसल (याकूब 3:18) लाती है; जिस शान्ति को परमेश्वर ने हमें दिया है उसे घोषित करने या बाँटने से, बोने और काटने के सिद्धान्त के कारण अधिक शान्ति आती है (लूका 6:38; 2 कुरिन्थियों 9:6)।

अपनी शान्ति खोने के कई तरीके हैं, जिनमें शामिल हैं:

- क्षमा नहीं माँगा हुआ पाप (यशायाह 48:22)।
- परमेश्वर का आज्ञोल्लंघन।
- परमेश्वर की शान्ति को हमारे हृदयों में शासन नहीं करने देना, क्योंकि हमें इसे शासन 'करने देने' को कहा गया है (कुलुस्सियों 3:15)।
- एक अव्यवस्थित भीतरी आत्मिक जीवन।
- एक अन्यायी जीवन जीना।

अपने हृदय में परमेश्वर की शान्ति को स्थापित करने के भी अनेक तरीके हैं। विश्वासी के लिए, इन सब तरीकों में कलवरी पर मसीह के पूरे हुए कार्य का लाभ उठाना शामिल है; और क्षमा, उद्धार और परमेश्वर के साथ मेल जानना जो पाप से मन फिरा कर और यीशु को अपना प्रभु और उद्धारकर्त्ता स्वीकार करके मिलती है (यशायाह 53:5; रोमियों 5:1; इफिसियों 2:14-18)। मसीह की शान्ति को अपने हृदयों में दृढ़ता के साथ शासन करने देने के दूसरे तरीके हैं:

= पवित्र आत्मा को शान्ति, जो पवित्र आत्मा का एक फल है, उत्पन्न करने के लिए हमारे जीवनों में अवसर देना (गलातियों 5:22)।

= मसीह की शान्ति को हमारे हृदयों में शासन करने देना (कुलुस्सियों 3:15)। इसमें हमारी इच्छा-शक्ति को परमेश्वर की इच्छा पूरी करने में लगाना शामिल है।

= जैसे हम ने देखा है, परमेश्वर स्वभाव से शान्ति है; और इसलिए यदि हम उसके और उसके वचन के साथ समय बिताएँगे तो उसकी कुछ शान्ति हम पर 'लग जाएगी'।

= फिलिप्पियों 4:8 हमें कुछ चीजें दिखाता है जिन्हें करने से हम परमेश्वर की शान्ति अपने हृदयों में स्थापित कर सकते हैं। वे हैं: प्रभु में आनन्दित होना (आय. 4); अपनी कोमलता सब पर प्रकट होने देना (आय. 5); किसी चीज के बारे में चिन्तित न होना, परन्तु हर बात को धन्यवाद के साथ प्रार्थना और विनती के द्वारा परमेश्वर के पास लाना (आय. 6); उन बातों पर विचार करना जो सत्य, आदरणीय, उचित, पवित्र, सुहावनी, मनभावनी, सद्गुण और प्रशंसा की हैं (आय. 8); जो बातें हम ने परमेश्वर और भक्त पुरुषों से सीखी हैं उनका पालन करना (आय. 9)।

= शान्ति की खोज में रहना (भजन 34:14; रोमियों 14:19)।

= परमेश्वर के वचन से प्रेम रखना, क्योंकि परमेश्वर की व्यवस्था से प्रेम रखनेवालों को बड़ी शान्ति होती है (भजन 119:165)।

= बुद्धि पाने से, क्योंकि उसके सब मार्ग शान्ति के हैं (नीतिवचन 3:13, 17)।

= अपने बच्चों की ताड़ना करने से (नीतिवचन 29:17)।

= अपने मन दृढ़ रखने से क्योंकि हम परमेश्वर पर भरोसा रखते हैं (यशायाह 26:3; रोमियों 15:13)।

= धार्मिता का पीछा करने से, क्योंकि धार्मिकता का फल शान्ति है (यशायाह 32:17; यशायाह 57:2)।

= परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करने से (यशायाह 48:18)।

= परमेश्वर का पुत्र होने से जिसे प्रभु सिखाता है (यशायाह 54:13)।

= भलाई करने से, क्योंकि परमेश्वर उन्हें महिमा, आदर और शान्ति देता है जो भलाई करते हैं (रोमियों 2:10)। इससे स्पष्ट होता कि कई लोग जो परमेश्वर को नहीं जानते शान्ति का जीवन का आनन्द लेते दिखते हैं, अर्थात् वे दूसरे लोगों का भला करते हैं और इसलिए, वे परमेश्वर की इस प्रतिज्ञा का लाभ पाते हैं। परन्तु, मसीह में, हमारे लिए एक कहीं अधिक शान्ति की गहराई उपलब्ध है, क्योंकि इसमें परमेश्वर के साथ शान्ति शामिल है जिसे जानने के लिए मानवजाति को बनाया गया था और, जिसके बिना, शान्ति की अकली गहराई को जानना असम्भव है।

= आत्मा द्वारा नियंत्रित मन होने से, क्योंकि यही जीवन और शान्ति है (रोमियों 8:6)।

= आशा के परमेश्वर पर भरोसा करने से, क्योंकि तब हम शान्ति से भर जाएँगे (रोमियों 15:13)।

(5) एक अच्छा विवेक

इस विषय को इस भाग में लेने का कारण यह है कि एक शुद्ध विवेक के बिना हम प्रभु की सेवा सम्पूर्ण हृदय से नहीं कर सकते हैं। विवेक के लिए यूनानी शब्द 'suneidesis' जिसका अक्षरक्षः अर्थ है: 'भीतर जानना', अर्थात् अपने भीतर ज्ञान होना। शब्दकोष की परिभाषा है: 'भीतरी पहचान'; व्यक्ति के अभिप्रायों और कार्यों के नैतिक गुण; शक्ति या सिद्धान्त जो व्यक्ति के कार्यों या अभिप्रायों के नैतिक गुणों का निर्णय देते हैं, सही की पुष्टि करते और गलत को दोषी ठहराते हैं। हमारा विवेक हमारे व्यवहार की गवाही देता है और दोषी ठहराता है या माफ करता है (रोमियों 2:15)। हमारा विवेक समझदार नहीं है, यह केवल उसे जो इसे लगता है सही है उत्तेजित करता है। हम, अपने जीवनों में बहुत बड़ा तनाव बनाए बिना, इसे प्रसन्न नहीं कर सकते, खरीद नहीं सकते या इन्कार नहीं कर सकते हैं। इस तनाव को कुछ समय के लिए छिपा देना सम्भव हो सकता है, परन्तु आखिरकार यह बार-बार एक बीमारी या कड़ुवाहट के समान निकलती रहेगी। परमेश्वर ने हर एक को एक विवेक उसकी ओर हमारे आज्ञापालन और सेवा की सहायता के एक महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में दिया है (रोमियों 9:1; रोमियों 13:5; 2 कुरिन्थियों 1:12; 2 कुरिन्थियों 5:11; इब्रानियों 13:18; 1 पतरस 3:16-22)।

आदर्श स्थिति में, हमारा विवेक सदा हमें बताने कि लिए कि कब हम अपने जीवनों में कुछ परमेश्वर की इच्छा के विरुद्ध कर रहे हैं (या करने का सोच रहे हैं) बनाया गया है। दुर्भाग्यवश, मनुष्य के पतन ने हमारे भीतरी मनुष्यत्व में बहुत सी अतिरिक्त या विभिन्न चीजों को जोड़ दिया है, और इसलिए, हमारा विवेक सदा उस प्रकार काम नहीं करता है जैसा परमेश्वर चाहता है यह करे (तीतुस 1:15-16)। केवल विवेक कभी भी एक सच्चा नैतिक व्यक्ति बनाने में सफल नहीं रहा है। विश्वासियों के रूप में, परमेश्वर को हमारे मनों को नया करने और फिर हमारे विवेक को दोबारा प्रशिक्षित करने के लिए काम करना है ताकि यह दोबारा केवल परमेश्वर की उत्तेजना से कार्य करने लगे। इसमें समय लगता है; और इसमें परमेश्वर का वचन पढ़ने, उसकी इच्छा का पालन करने और अपने मन पवित्र आत्मा को समर्पित करना शामिल है, जब तक हम उस प्रकार प्रतिक्रिया दिखाने और सोचने नहीं लगते जैसा परमेश्वर चाहता है। जब तक हम सिद्धता के इस स्थान पर नहीं पहुँचते, हम अपने विवेक पर भरोसा नहीं कर सकते हैं। जैसे प्रेरित पौलुस ने कहा, "परन्तु मेरी दृष्टि में यह बहुत छोटी बात है कि तुम या मनुष्यों का कोई न्यायी मुझे परखे, वरन् मैं स्वयं अपने आप को नहीं परखता। क्योंकि मेरा मन मुझे किसी बात में दोषी नहीं ठहराता, परन्तु इससे मैं निर्दोष नहीं ठहरता, क्योंकि मेरा परखनेवाला प्रभु है। इसलिए जब तक प्रभु न आए, समय से पहले किसी बात का न्याय न करो : वही अन्धकार की छिपी बातें ज्योति में दिखाएगा, और मनों के अभिप्रायों को प्रगट करेगा, तब परमेश्वर की ओर से हर एक की प्रशंसा होगी। (1 कुरिन्थियों 4:3-5)।

विश्वासी जिनके कमज़ोर विवेक है इतने परिपक्व नहीं हुए हैं कि जो सच में अच्छा या भक्तिपूर्ण है और जो बुरा या अभक्त है उसमें भेद बता सकें, या पता लगा सकें जो नैतिक रूप से भिन्न है। ये लोग अकसर एक 'कर्मकाण्डवाद मानसिकता' प्रकट करते हैं, क्योंकि उन्हें जीने के लिए नियमों की आवश्यकता पड़ती है ताकि गलत करने से रोक सकें। वे अकसर सीमाएँ बना लेते हैं जो परमेश्वर की ओर से नहीं होतीं, परन्तु जो फिर भी नियंत्रण हैं जो उनकी सहायता करते हैं। उनके विवेक उन्हें इन सीमाओं के अन्दर रखने के लिए बनाए गए हैं। पौलुस हमें चेतावनी देता है कि इन स्वयं बनाई सीमाओं को भी पार न करें (और इस प्रकार अपने विवेक का उल्लंघन करें), विशेष दूसरे लोगों के दबाव के कारण। ऐसा करना विश्वास का कार्य नहीं होगा, जो पाप है (रोमियों 14:1-23, विशेषकर आय. 23; इब्रानियों 11:6)।

लोग जिनके मजबूत विवेक हैं जो परमेश्वर के वचन पर आधारित हैं, उन्हें उतने कर्मकाण्डवाद नियंत्रणों की आवश्यकता नहीं। उनके हृदयों में परमेश्वर की सीमाएँ हैं और यह उन्हें उस प्रकार जीने में सहायता करता है जैसा परमेश्वर चाहता है। परन्तु जो मजबूत हैं जो वे करते हैं उससे उनके भाइयों के ठोकर का कारण न बनें (1 कुरिन्थियों 8:7-13; 1 कुरिन्थियों 10:23-11:1)। जहाँ परमेश्वर की इच्छा स्पष्ट नहीं है, वहाँ हर व्यक्ति उसके अपने विवेक के अनुसार करे और सावधान रहे कि दूसरे को उसके दृढ़ निश्चय के विरुद्ध प्रभावित न करे। इस मामले में हर व्यक्ति जैसा उसे लगता है परमेश्वर चाहता है वह करे, प्रतिक्रिया करने के लिए स्वतन्त्र है। परन्तु, जब एक विषय पर परमेश्वर का वचन स्पष्ट है तब हमें पालन करना है, चाहे हमारा विवेक कुछ भी क्यों न कहता हो।

याद रहे, हालाँकि दान और बलिदान हमें पाप से शुद्ध करने में असमर्थ थे, मसीह का लहू हमें सब पाप से शुद्ध करने के लिए पर्याप्त है (इब्रानियों 9:9-14; 10:19-22)। इसलिए, जब हम परमेश्वर को हमारा पाप क्षमा करने को कहते हैं या हमारे विवेक का उल्लंघन करने को कहते हैं, तो हमें दोष से पूर्ण रूप से मुक्त होने की अपेक्षा करनी है। यदि हम ने सच में मन फिराया है तो हमारे विवेक शुद्ध होने चाहिए। यदि कोई दोष बचा रहता है तो यह शत्रु की ओर से है और इसलिए, उसका सामना किया जाना और डाँटा जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा दोष परमेश्वर से नहीं (रोमियों 8:1-2)।

हमें देखने का प्रयत्न करना है कि क्या हमारा विवेक हमें कुछ बता रहा है। परमेश्वर अकसर हमारे विवेक को कुछ बताने के लिए इस्तेमाल करता है जिसे हमें उसके पास लाने की आवश्यकता है। यदि हम अपने विवेक को अनदेखा करें तो, हम इसके जिम्मेवार हैं, क्योंकि हमारे जीवनों में तनाव पैदा होगा और हमारा विवेक मन्द हो जाएगा और हम कम सुरक्षित होंगे (1 तीमुथियुस 1:19; 1 तीमुथियुस 4:2)। प्रभु की सेवा करने की हमारी प्रेरणा पर भी प्रभाव पड़ेगा क्योंकि हम अपने भीतर एक तंग करनेवाली भावना पाएंगे कि कुछ गलत है। इससे पहले हम अपने जीवनों और चरित्र में परमेश्वर का प्रेम पूरी तरह पाएँ और स्वीकार करें हमें एक पूरी तरह शुद्ध विवेक चाहिए (1 तीमुथियुस 1:5)। प्रेरित पौलुस के समान, हमें परमेश्वर और मनुष्य के सामने अपने विवेक को सदा शुद्ध रखने का प्रयत्न करना चाहिए (प्रेरितों 24:16)।

मित्र जो हमें प्रेरित करते हैं

हर अगुवे को मित्रों की आवश्यकता है जो उसे उन कठिनाइयों में से ले चलेंगे जो अनिवार्य है उसके सामने आएँ। इन मित्रताओं को उनमें समय लगाकर बनाने और बढ़ाने की आवश्यकता होती है, उस समय को भी जिसे हम ने दूसरे महत्त्वपूर्ण दिखनेवाले कार्यों के लिए अलग रखा होगा। उनकी उपेक्षा करने से अगुआई की एक सबसे बड़ी समस्या खड़ी हो सकती है, जो है अकेलापन। मित्रता एक वाहन है जिसके द्वारा हम जीवन और प्रेरणा पा सकते हैं और जिसके द्वारा हम जीवन और प्रेरणा दूसरों को दे सकते हैं। मित्रताएं कभी-कभार थकानेवाली भी हो सकती हैं परन्तु कीमत सामान्यतः लाभकारी है। वे हमारा समर्थन करते और प्रोत्साहित करते हैं; वे हमारी कमज़ोरियों को बताने और सही समय पर सही अनुशासन लाने के इच्छुक हैं; जब हम सफल होते हैं तो वे खुश होते हैं, और रोते हैं जब हम गिरते हैं; और वे ईर्ष्या नहीं करते जब हम जीतते हैं, या खुश होते जब हम असफल होते हैं। मित्र हमारे सबसे कठिन समयों में भी हमें सहयोग देते और हमारे साथ खड़े रहते हैं। हम उनके बिना क्या कर सकते हैं। दुख की बात यह है कि कई मसीही अगुवों की पहचान तो बहुत है, परन्तु यदि हैं तो, बहुत कम सच्चे मित्र हैं!

मित्रों और मित्रताओं के बारे में बात करते हुए, **हम नौ प्रकार के मित्रों का पता लगा सकते हैं** जिन में से सब अपने जीवनों के कम से कम कुछ समयों में हमारे पास होने चाहिए या हम दूसरे लोगों के लिए हों। वे हैं:

(1) **गुरू**

ये ऐसे मित्र हैं जो हमें पहचान देते हैं और जो हमारे जीवनों में शक्ति, प्रेरणा, उत्साह और दर्शन उँडेलते हैं, जो हमें प्रभु की सेवा अधिक प्रभावशाली तरीके से करने के योग्य बनाते हैं। जब हमें उनके साहस, समर्थन, मार्गदर्शन और आश्वासन की आवश्वकता होती है तब वे उपलब्ध होते हैं, और वे परमेश्वर में हमारी क्षमता को स्थापित करने और बढ़ाने में सहायता करते हैं। कभी-कभी, वे हमारी सेवा को आरंभ भी करते हैं। वे हमारे जीवनों को बनाते और प्रभु की सेवा करने के हमारी प्रेरणा को उत्तेजित करते हैं। ये गुरू अवश्य नहीं हमारे करीबी मित्र हों। वे हमारे जीवनों में एक समय के लिए और एक विशेष उद्देश्य के लिए आते हैं; वे लगभग सदा हमारे जीवनों में सकारात्मक योगदान देते हैं। दुर्भाग्यवश हम इन मित्रों की सुरक्षा में सब समय नहीं जी सकते हैं। हमें अपने पैरों पर खड़ा होना और परमेश्वर में अपने बुलावे में परिपक्व होना सीखने की आवश्यकता है। हमारे गुरू केवल मार्ग में हमारी सहायता करते हैं। वे ऐसे लोग हैं कि परमेश्वर में उनकी परिपक्वता के कारण हम उनकी नकल कर सकते हैं। बाइबल के इस प्रकार के उदाहरणों में शामिल हैं: यीशु और उसके चेले; बरनबास और पौलुस; पौलुस और तीमुथियुस।

(2) **प्रोत्साहक**

ये मित्र उस पर ध्यान देते हैं जो हम कर रहे हैं और जो हम बन रहे हैं और उसे मूल्य देते हैं, अर्थात् वे हमें बताते हैं कि हम परमेश्वर में बढ़ रहे हैं। यह प्रोत्साहन या पुष्टि कोई अस्पष्ट प्रशंसा या एक आवेगी वक्तव्य नहीं है और निश्चय ही ऐसा कुछ नहीं है जिसके लिए व्यक्ति को आदान-प्रदान करना है; परन्तु बदले में यह एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के जीवन और परमेश्वर के बुलावे की पहचान और सकारात्मक मूल्याँकन है। इस प्रकार के मित्र के बिना, हम कभी भी निश्चित नहीं हो पाएँगे कि जो हम कर रहे हैं परमेश्वर में पर्याप्त है। उनके बिना, हम सदा सोचते रहेंगे कि क्या हम कुछ अर्थपूर्ण कर रहे हैं और क्या परमेश्वर के लिए हम कुछ अन्तर ला रहे हैं। शैतान सदा हम पर दोष लगाता है और हमारे मनों में नकारात्मक विचार डालता है, कोशिष करता है कि हम असुरक्षित अनुभव करें और असफल होने भी भावनाओं को सोचें। हमें प्रोत्साहकों की आवश्यकता है जो दृष्टिकोण देखने में हमारी सहायता करते हैं और हमें सही मार्ग पर रखते हैं। इन मित्रों के बिना, कई और भी हताश लोग होते। जो लोग इस प्रकार के मित्र होते हैं उन्हें बहुत ध्यान देना है कि वे दूसरे व्यक्ति में जो परमेश्वर का है उसे ही समर्थन दें और केवल हाँ में हाँ मिलानेवाले न हों।

(3) **उपदेशक**

ये मित्र हमें सत्य बताते हैं, तब भी जब सत्य चोट पहुँचाता है। वे हमारे मुँह पर बोल सकते हैं जिसे सम्भवतः दूसरे लोग पीठ पीछे बोल रहे हैं। अगुआई में बहुत से लोग ऐसे लोगों से कठिनाई अनुभव करते हैं क्योंकि वे ऐसे लोग होते हैं जिनके पास सब सही उत्तर होते हैं। यदि हम सच्चे हैं तो, कभी-कभी, हमें उसे स्वीकार करना है जो हमारे डाँटनेवाले कहते हैं (और उसके अनुसार अपने जीवन बदलने हैं), ताकि हम परमेश्वर के सामने अपने जीवनों को सही रख सकें। प्रकट है कि अपने व्यवहार को हर कहे गए नकारात्मक शब्द के अनुसार बनाना सही नहीं है, परन्तु ताड़ना के किसी भी शब्द को परखना आवश्यक है ताकि हम पता लगाएँ कि उसमें क्या है। यदि शब्दों में सच्चाई का कोई भी दाना है (और अकसर होता है), और यदि हम उसे स्वीकार करें और उसके अनुसार अपने जीवन सुधारें तो हम परमेश्वर के एक बेहतर सेवक होंगे। एक अच्छा

तरीका यह है कि हम डाँट के शब्दों को प्रार्थना में परमेश्वर के पास ले जाएँ, और उससे पूछे कि क्या वे सही हैं और कि हमें उनके साथ क्या करना चाहिए।

मसीही समुदायों में, हम अकसर एक दूसरे के साथ बहुत अच्छे होते हैं और हम कुछ बहुत ही भयंकर व्यवहार को सह लेते हैं। हम इस प्रकार जीते हैं क्योंकि प्रेम को बेढंगी भावुकता से उलझा देते हैं और इसलिए, हम एक दूसरे की भावनाओं को चोट पहुँचाना या दूसरे विश्वासी के विषय में एक नकारात्मक शब्द कहना नहीं चाहते। सकारात्मक आलोचना एक सबसे बहुमूल्य स्रोत है जो हमारे लिए उपलब्ध है। परमेश्वर चाहता है कि हम वास्तविकता में जीएँ; परमेश्वर के तरीके और परमेश्वर के समय में प्रेम में कहा गया सत्य, ऐसा करने में हमारी सहायता कर सकता है और जीवन परिवर्तित करनेवाली बात हो सकती है। ताड़नाएँ शिक्षा की सबसे प्रभावशाली क्षण हो सकती हैं जिन्हें हम अनुभव कर सकते हैं। वे अकसर हमें उन चीजों से मुक्त कर सकते हैं जो पहले हमारी सेवा में बाधा थीं या प्रभु की सेवा की हमारी प्रेरणा को सुखा रही थीं (नीतिवचन 27:5-6; नीतिवचन 28:33)। अवश्य है कि जब हम गलत हों हमें ठीक किया जाए; जब हम सुस्त हों हमें आगे धकेला जाए; जब हम आत्मसन्तुष्ट हों तो हमें दर्शन से भरा जाए; और जब हम परमेश्वर के मार्ग से भटक रहे हों हमें वापस लाया जाए।

जब हम एक डाँट सुनते हैं तब हमारे प्रतिरूप को खतरा महसूस होता है। फिर भी, परमेश्वर ने हमें इसका बचाव करने को नहीं कहा है, बल्कि उसके हाथ के नीचे दीन होने को कहा है ताकि उचित समय में वह हमें उठा सके (1 पतरस 5:6)। यदि आपको महसूस होता है कि प्रभु चाहता है आप एक डाँटनेवाले का काम करें, तो याद रखो कि सबकुछ प्रेम की प्रेरणा से किया जाना चाहिए। तब ही डाँटो जब यह दूसरे व्यक्ति की भलाई के लिए है और यह ऐसा कुछ है जिससे वे इसके विषय में कुछ कर पाएँगे। हमें उनसे सावधान रहना है जो हमें नीचा दिखाने के प्रयास में डाँटते हैं ताकि वे अपने आप को हम से बड़ा महसूस कर सकें। यदि डाँटने की प्रेरणा प्रेम ही है तब अवश्य है कि यह हमें भी चोट पहुँचाएगी या हम भी दुखी होंगे, क्योंकि जब आप किसी से प्रेम करते हैं तब आप उसे चोट नहीं पहुँचाना चाहेंगे (2 कुरिन्थियों 2:2-4)।

(4) **मध्यस्थता करनेवाला**

ये ऐसे मित्र हैं जो हमें प्रभु के सामने प्रार्थना में रखते हैं। वे ऐसे मित्र हैं जो हम से पूछते हैं कि कैसा चल रहा है। हमें इन लोगों के साथ समझदारी के साथ बात करनी चाहिए। परमेश्वर उन्हें हमारे लिए प्रार्थना करने के लिए सही बातें बता सकता है, परन्तु, जब सम्भव हो, हमें उन्हें बताना चाहिए कि हम परमेश्वर में कहाँ हैं, हम परमेश्वर के लिए क्या कर रहे हैं, और परमेश्वर में हमारी आवश्यकताएँ क्या हैं। इन मित्रों को यह बताकर कि किस प्रकार परमेश्वर ने हमारी आवश्यकताओं को पूरा किया है प्रोत्साहित करना भी जरूरी है। हमें उनकी उपेक्षा कभी नहीं करनी है जो हमारे लिए प्रार्थना करते हैं, क्योंकि परमेश्वर में हमारा जीवन और उसकी सेवा की हमारी प्रेरणा प्रार्थना पर निर्भर है। हमें उनकी आवश्यकता है जो हमारे लिए प्रार्थना करेंगे। और, जिनकी अगुआई की जिम्मेवारी है उन्हें अत्यावश्यकता के रूप में भी प्रार्थना चाहिए।

(5) **साझेदार**

हम इन मित्रों के साथ अपना काम और अपने जीवन बाँटते हैं। वे सहयोगी हैं! वे हमें प्रेरित रखते हैं, क्योंकि, कम से कम एक समय के लिए, उनका लक्ष्य भी वही चीजें हैं जो हमारी हैं और वे भी उसी दिशा में जा रहे हैं जिसमें हम जा रहे हैं। इसलिए, वे हमें प्रोत्साहित करते और उकसाते हैं ताकि जो साझेदारी हम उनके साथ बनाते वह अपना लक्ष्य प्राप्त करे। यह एक बोझ उठाने के समान है जो वहीं पर टिका रहेगा। साझेदारों ने उसी बोझ के एक अंश को उठा लिया है और उसके लिए जिम्मेवारी ली है। ये लोग जब हमें उनकी आवश्यकता होती है वहाँ होते हैं और हमारे साथ सहानुभूति दिखाते हैं, क्योंकि जब हम काम के कारण दुखी होते हैं वे भी होते हैं; और वे हमारी खुशियों और सफलतां को बाँटते हैं। साझेदारियाँ अकसर सहक्रियाशील होती हैं। इसका अर्थ है कि जितना काम साझेदार मिलकर करते हैं वह उससे अधिक होता है (अकसर बहुत अधिक) जो साझेदार अकेले-अकेले कर पाते हैं, अर्थात् सम्पूर्ण अंशों के जोड़ से अधिक प्रभावशाली होता है। साझेदारियाँ परमेश्वर में हमारी सम्पूर्ण अन्तःशक्ति को प्राप्त करने में योग्य करती हैं, और वे हमें साहस, प्रेरणा और शक्ति देती हैं। एक दल के एक अंग के रूप में काम करना भी बहुत प्रोत्साहक होता है, विशेषकर तब जब हम परिणाम देखते हैं। यदि आप विवाहित हैं तब आपका सबसे महत्त्वपूर्ण साझेदार अपकी पत्नी/पति होना चाहिए!

(6) **चरवाहा**

ये हमदर्द मित्र होते हैं जो हमारी अगुआई करते, खिलाते, रक्षा करते और रखवाली करते हैं। वे हमारी बगल में आते हैं और जब हम निराश होते हैं वे हमें ऊपर उठाते हैं; जब हम कमज़ोर होते हैं वे हमें प्रोत्साहित करते हैं; जब प्रभु की सेवा करने

की हमारी प्रेरणा कम हो रही होती है वे आकर हमें अपने पैरों पर खड़े होने में सहायता करते हैं; जब हम दुखी होते हैं वे हमारी देखभाल करते हैं; और वे उलझन में से व्यवस्था लाते हैं। ये मित्र जान जाते हैं कि हम परमेश्वर के साथ और अपने आप में कहाँ हैं, और वे हमारे पास आते हैं और हमारी आवश्यकता के समय खुद को देते हैं। वे भरोसेमंद लोग हैं जिनके पास हम दौड़ कर जा सकते हैं जब हमारी शक्ति खत्म हो गई होती है और हमें पता है कि हम वहाँ प्रोत्साहन, सहायता और सेवा पाएँगे।

(7) **सेवक**

ये ऐसे मित्र हैं जो हमारे लिए उपयोगी चीजें अपनी इच्छा से करते हैं। वे ऐसे मित्र होते हैं जो जब हमें आवश्यकता होती है सदा उपलब्ध होते हैं। इन विश्वासयोग्य लोगों के लिए कुछ भी बहुत नीच या निर्लज्ज नहीं होता, क्योंकि उन्होंने खुद को हमारे साथ जोड़ दिया है ताकि हम परमेश्वर का काम कर सकें। वे हमारी प्रेरणा को योग्य बनाते हैं, क्योंकि वे हमारा कुछ बोझ ले लेते हैं और इसलिए, हमें वह करने के लिए अधिक समय दे पाते हैं जिसे हमें परमेश्वर के लिए करना चाहिए। हमें इस प्रकार की मित्रता को पहचानने और सम्मान करने में सावधान होना है क्योंकि यह अकसर मान ली जाती है या ध्यान नहीं दिया जाता है। ऐसा नहीं करने से व्यक्ति को लगेगा उसे इस्तेमाल किया जा रहा है और वे हमारी सेवा करने की उनकी प्रेरणा को खो सकते हैं। हमें इतने घमण्डी भी नहीं होना है कि हम उनकी सेवा को स्वीकार ही न करें। याद रखो, कि लोगों को इस प्रकार सेवा करने में बाध्य मत करो। ऐसी सेवा परमेश्वर में एक बुलावा है जिसे बाध्य नहीं किया जाना चाहिए।

(8) **शिष्य**

ये ऐसे मित्र हैं जिनके लिए परमेश्वर ने एक समय के लिए हमें जिम्मेवार बनाया है। इन लोगों को प्रशिक्षण देना और सहायता करना हमारा काम है जो हम से पाना और सीखना चाहते हैं। हालाँकि हम अपना अधिक समय और शक्ति इन लोगों को देते होंगे, हमें ऐसा करते खुशी होती है, क्योंकि हम उनमें परमेश्वर के लिए सम्भावना देखते हैं। यीशु हमें उसके चेले होने के लिए बुलाता है और, कभी-कभी, इस बुलावे का एक अंश दूसरे लोगों को परमेश्वर के राज्य में हमारे साथ सेवा करने में प्रशिक्षण देना है। जब हम उन पुरुषों और स्त्रियों को देखते हैं जो प्रभु की सेवा कर रहे हैं जिनके जीवनों में हम ने कुछ डाला है, हमारी अपनी सेवा की प्रेरणा को कुछ अधिक उत्तेजना मिलती है। दोबारा, हमें याद रखना है कि हम अपना चेला बनने के लिए किसी को बाध्य न करें।

(9) **सामाजिक मित्र**

ये ऐसे मित्र हैं जिनके साथ हम आराम कर सकते और मजा कर सकते हैं। हर मसीही अगुवों को ऐसा समय समय पर करना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर ने हमें सामाजिक प्राणी बनाया है। ये मित्र अकसर ऐसे लोग होते हैं जिनके साथ हम सामान्य शौक, रुचियाँ या खेल-कूद कर सकते हैं। इन लोगों के साथ इन क्रियाओं को करने से हम थकान दूर कर सकते और अपने काम पर से अपना मन कभी-कभार हटा सकते हैं। सब मसीहियों को ऐसा करने, और एक ऐसा मित्र पाने की आवश्यकता है जिसके साथ हम बाँट सकें जो इसे लाभकारी और चिकित्सीय बनाता है। ये ऐसे लोग भी हैं जिनके साथ बैठकर हम चाय पी सकते हैं और हम जानते हैं कि हम पर प्रचार नहीं किया जाएगा यदि हम चाहते नहीं हैं तो। इस प्रकार की मित्रता में एक ही बात ध्यान में रखनी है कि हम इसे संदर्श में रखें। हम इस प्रकार की मित्रता बनाए रखते हुए उन क्रियाओं का आनन्द लेंगे जिन्हें करते हैं, परन्तु हमें इन क्रियाओं को अपना बहुत सा समय लेने नहीं देना है या उन्हें अपने हृदय को अधिकार में नहीं लेने देना है, बल्कि बदले में प्रभु और उसके काम को लेने देना है।

इसे ध्यान में रखना है कि वही व्यक्ति विभिन्न समयों में एक विभिन्न प्रकार का मित्र हो सकता है। हमें परमेश्वर में मित्रताओं को बनाना है और ऐसे लोगों की खोज में होना है जिनके साथ परमेश्वर चाहता है हम मित्र हों। फिर भी, यह आवश्यक है कि हम एक या दो ऐसे लोगों को आदर्श मानकर आँखें बंद करके उन पर अपने जीवन न बनाएँ, क्योंकि इससे हम उनकी पूजा करने लग सकते हैं। हमें अपने जीवन केवल यीशु और उसके चरित्र के तत्त्वों पर बनाने हैं जिसे हम दूसरे लोगों में देखते हैं।

कई कलीसियाएँ बच नहीं पाएँगी यदि मित्र बनाने की उनकी आदत में सुधार नहीं होता। कलीसिया के नए सदस्य कलीसिया में स्वागत महसूस करना चाहते और प्रेम का वातावरण पाना चाहते हैं। कलीसिया की बढ़त के विशेषज्ञों ने पाया है कि लोगों को इससे पहले वे एक लम्बे समय के लिए वचनबद्ध हों उस कलीसिया में कम से कम सात अर्थपूर्ण सम्बंध पाने की आवश्यकता होती है। एक नियम के रूप में, यह अर्थपूर्ण सम्बंध हैं, न कि ढाँचा या कार्यक्रम हैं जो लोगों को कलीसिया में रखते हैं। अकेलापन लोगों को भगा देगा और उन्हें कलीसिया के विरुद्ध कर देगा, क्योंकि ऐसे वातावरण में जिसे प्रेमी,

देखभाल करनेवाला वातावरण होना चाहिए, वे अकेले नहीं होना चाहते हैं। लोग कम से कम चाहते हैं उनकी आवश्यकता हो।

मित्रताएँ जो गुट बन जाते हैं गलत हैं, क्योंकि दूसरे लोग इनमें शामिल नहीं किए जाते और इनसे खतरा भी अनुभव करते हैं। फिर भी, जो मित्रताएं यीशु को नींव रखकर बनाई जाती हैं, बनी रहती हैं और हमारे जीवनों और उनके जीवनों पर बहुत बड़ा प्रभाव डालती हैं जिनके साथ हम प्रतिदिन सम्पर्क में आते हैं। कलीसिया एक बेहतर स्थान होगा यदि सब अगुवों के सही मित्र होंगे और सब कलीसिया के सदस्य कलीसिया के जीवन के इस महत्त्वपूर्ण पहलू पर कार्य करेंगे। प्रेरणा बढ़ेगी, परमेश्वर का काम और अधिक होगा, और परमेश्वर का प्रेम अधिक स्वतन्त्रता से प्रवाहित होगा (और यह कभी समाप्त नहीं होता)।

व्यक्तिगत उपयोग के लिए प्रश्न

1. क्या आप जानते हैं आप परमेश्वर में कैसा कर रहे हैं? क्या आप उसके साथ अपने सम्बंध में बढ़ रहे हैं या किसी प्रकार चले जा रहे हैं? क्या आप कभी परमेश्वर के साथ अपनी चाल का प्रार्थनापूर्वक मूल्याँकन करते हो? क्या आपको करना चाहिए? ऐसे करने के कुछ खतरे क्या हैं? क्या आपने आत्म-जाँच को अपने साथ एक दमघोंटू तल्लीनता बनने दिया है? क्या आत्म-जाँच खतरे के योग्य है?

2. अपने जीवन के हर क्षेत्र के लिए कुछ वास्तविक लक्ष्य लिखो। इसे करने से पहले प्रार्थना करो। फिर इन में से हर एक को प्राप्त करने में होने वाली कठिनाई का मूल्याँकन करो। यदि यह बहुत कठिन है तो लक्ष्य को सरल करो! बाहरी अपेक्षाओं (जो दूसरे लोग आप से चाहते हैं!) को भीतरी अपेक्षाओं (जो आप अपने से अपेक्षा करते हो!) से अलग करो, क्योंकि इससे आपको पता लगाने में सहायता मिलेगी कि इस क्षेत्र में क्या या कौन आपको प्रेरित कर रहा है। अन्त में, पता लगाओ कि आपकी मूल्य की भावना आपकी अपेक्षाओं से कितनी करीब से जुड़ी हुई है।

3. यदि प्रेम इससे निकलने वाले कार्यों से दिखता है तो, आपके जीवन में कितना प्रेम भरा हुआ है? क्या आपको परमेश्वर से और अधिक माँगने की आवश्यकता है? वह प्रमुख चीज क्या है जो परमेश्वर के लिए आपकी सेवा को प्रेरित करती है?

4. आप में परमेश्वर के लिए कितना आदर और भय है? क्या आप परमेश्वर के पास हृदय के सही रवैये के साथ जाते हो? आप फैसले कितनी बुद्धिमानी से करते हो?

5. किस दर्शन ने आपके हृदय को पकड़ रखा है? क्या यह परमेश्वर का है? क्या आप परमेश्वर के लिए अपने काम के विषय में उत्तेजित हो? क्या आपको लगता है आप नष्ट हो रहे या डूब रहे या बेकाबू तरीके से कार्य कर रहे हो, क्योंकि आपके पास परमेश्वर से कोई निर्देश या मार्गदर्शन नहीं है; या क्या आप अपनी मर्जी कर रहे हो और आशा करते हो अच्छा हो जाएगा?

6. क्या मसीह की शान्ति आपके मन में शासन कर रही है? यदि नहीं तो, क्यों नहीं; और आप इसके विषय में क्या करने वाले हो?

7. क्या आपका विवेक परमेश्वर के सामने शुद्ध है? क्या आप किसी चीज के विषय में दोषी अनुभव करते हो? इसका स्रोत क्या है; और क्या आपको इसके विषय में कुछ करना चाहिए? क्या परमेश्वर कभी हमें दोषी ठहराता है?

8. कलीसिया में अगुआई में बहुत सारे अ-प्रेरित अकेले भटक रहे लोग हैं। क्या आप उनमें से एक हो? आप इस स्थिति के विषय में क्या कर सकते हो? क्या कोई पुराने मित्र हैं जिनके पास आप जा सकते हैं? क्या आपको अपनी पत्नि के साथ मित्रता पर कार्य करने की आवश्यकता है?

9. क्या प्रेरित पौलुस के मित्र थे? क्या वह उनकी ओर समर्पित था? क्या वह निरन्तर उनको समर्थन देता और इन मित्रताओं पर कार्य करता था? वह ऐसा क्यों करता था? क्या वह इन मित्रों पर निर्भर था? इस क्षेत्र में हम पौलुस से क्या सीख सकते हैं?

मसीह के अधीन एक अगुवे के रूप में अधिकार

कलीसिया में जिसका सिर यीशु है सब अगुवों को उसके द्वारा दिए कार्य को पूरा करने के लिए अधिकार सौंपा गया है। इसलिए, उन्हें केवल वही करना चाहिए जो वह उनकी स्थिति में करता।

अधिकार की परिभाषा है: आज्ञापालन लागू करने की शक्ति या हक; सौंपी गया अधिकार; या व्यक्तिगत प्रभाव। यह कुछ ऐसा नहीं जिसे हम लेते हैं; यह 'दी' जाती है। असल में, यह तब ही मान्य होती है जब दूसरे लोग इसे पहचानते हैं।

जब कभी एक व्यक्ति दूसरे के साथ सकारात्मक रूप से सम्बंध लगाता है, तब वे एक व्यक्तिगत स्तर पर अधिकार काम में ला रहे या पा रहे होते हैं। यदि यह अनुभव के लगभग सब स्तरों पर, अर्थात् व्यवसाय में, सामाजिक सम्बंधों में, सरकार में और घर में, सच न होता तो मानव समाज किसी अर्थपूर्ण तरीके से कार्य करना बन्द कर चुका होता। असल में, व्यक्तिगत अधिकार के पहचान के बिना, हम मनुष्यों के रूप में जीवित नहीं होते।

बाइबल का अधिकार क्या है?

यूनानी भाषा का सबसे सामान्य शब्द जिसे "अधिकार" अनुवाद किया गया है 'exousis' है। इस शब्द का अर्थ है: जैसा कोई चाहता है वैसा करने की 'स्वतन्त्रता'। योग्यता या सामर्थ्य जो व्यक्ति को मिली हुई है; अधिकार का सामर्थ्य, अर्थात् अधिकार लागू करने का हक; शासन या सरकार का सामर्थ्य; या एक व्यक्ति का सामर्थ्य जिसकी इच्छा और आज्ञा दूसरों को माननी चाहिए। यह पद पर आधारित अधिकार भी हो सकता है। यूनानी भाषा के अधिकार अनुवाद किए गए दूसरे शब्द हैं: 'huperoche' जिसका अर्थ है: 'एक प्रक्षेपण, एक ऊपर उठाना, श्रेष्ठता, वरिष्ठता, ऊँचा स्थान (1 तीमुथियुस 2:2); 'epitage' जिसका अर्थ है: 'आदेश देना, निषेधाज्ञा' (तीतुस 2:15); 'dunastes' जिसका अर्थ है: 'शक्तिशाली व्यक्ति' (प्रेरितों 8:27); और 'authenteo' जिसका अर्थ है: 'अपना कवच इस्तेमाल करना, अधिकार हड़पना, अपने अधिकार के बल पर कार्य करना' (1 तीमुथियुस 2:12)।

बाइबल यह नहीं कहती कि अधिकार गलत है। यह परमेश्वर, मनुष्य या शैतान का हो सकता है; बुद्धिमान या मूर्ख; सहायक या विनाशकारी; स्वीकार की गई या बल द्वारा लागू की गई हो सकती है; परन्तु यह आवश्यक है। अधिकार हम लोगों पर सीमाएँ लगाती है क्योंकि हम पाप द्वारा भ्रष्ट हो चुके हैं। हमें अधिकार को कभी भी ठुकराना नहीं है और न ही ऊँचे पदवालों की निन्दा करनी है (यहूदा आय. 8-10)। निस्संदेह, याद रखा जाना चाहिए कि परमेश्वर द्वारा स्थापित कोई दूसरा अधिकार नहीं है और वह अपेक्षा करता है कि हम इसके अधीन हों (रोमियों 13:1-7)।

यीशु का अधिकार

यीशु जानता था कि उसका अधिकार उसके स्वर्गीय पिता की ओर से आया था जिसका वह कार्य कर रहा था (यूहन्ना 10:18; 5:19, 30)। उसने लोगों के पाप क्षमा किए, जिन्हें चंगाई की आवश्यकता थी उन्हें चंगा किया, दुष्टात्माओं को निकल जाने की आज्ञा दी, प्रकृति पर नियंत्रण दिखाया, सिखाया, और लोगों को मरे हुओं में से जिलाया – यह पिता परमेश्वर द्वारा दिए अधिकार में किया। इस अधिकार ने उसे न्याय करने (यूहन्ना 5:27); अनन्त जीवन देने (यूहन्ना 17:2) और अपना जीवन दे देने (यूहन्ना 10:17-18) का हक दिया। यीशु ने पवित्रशास्त्र का पालन भी किया क्योंकि वे उसके लिए उसके पिता के शब्द थे (यूहन्ना 10:34-35; मत्ती 4:1-10)। यीशु अधिकार के साथ बोला और सेवा की (मरकुस 1:22, 27; लूका 4:31-37)। उसके विषय में कुछ था जिससे वह लोगों पर जिनके सम्पर्क में वह आता था बहुत प्रभाव डालता था। कई लोगों ने उसकी ओर स्वेच्छा और सकारात्मक रूप से प्रतिक्रिया दिखाई, दूसरों ने नकारात्मक और क्रोध में प्रतिक्रिया दिखाई (मत्ती 7:28-29; लूका 7:1-10), परन्तु उसे किसी न किसी प्रकार का उत्तर मिलता था।

जब वह कफरनहूम में आया तो एक सूबेदार ने उसके पास आकर उस से विनती की, "हे प्रभु, मेरा सेवक घर में लकवा रोग से बहुक दुःखी पड़ा है।" उसने उससे कहा, "मैं आकर उसे चंगा करूँगा।" सूबेदार ने उत्तर दिया, "हे प्रभु, मैं इस योग्य नहीं कि तू मेरी छत तले आए, परन्तु केवल मुख से कह दे तो मेरा सेवक चंगा हो जाएगा। क्योंकि मैं भी पराधीन मनुष्य हूँ, और सिपाही मेरे अधीन हैं। जब मैं एक से कहता हूँ, 'जा' तो वह जाता है; और दूसरे से, 'आ!' तो वह आता है; और जब अपने दास से कहता हूँ, 'यह कर!' तो वह करता है।" यह सुनकर यीशु को अचम्भा हुआ, और जो उसके पीछे आ रहे थे उनसे कहा, "मैं तुम से सच

कहता हूँ कि मैंने इस्राएल में भी ऐसा विश्वास नहीं पाया। और मैं तुम से कहता हूँ कि पूर्व और पश्चिम से बहुत से लोग आकर अब्राहम और इसहाक और याकूब के साथ स्वर्ग के राज्य में बैठेंगे। परन्तु राज्य के सन्तान बाहर अन्धकार में डाल दिए जाएँगे : वहाँ रोना और दाँतों का पीसना होगा।" तब यीशु ने सूबेदार से कहा, "जा, जैसा तेरा विश्वास है, वैसा ही मेरे लिए हो।" और उसका सेवक उसी घड़ी चंगा हो गया। (मत्ती 8:5-13)। सूबेदार ने इन वचनों में यीशु के अधिकार को पहचाना। एक सैनिक अधिकारी के रूप में, सूबेदार को उसका अधिकार रोम सम्राज्य से मिलता था। इससे सूबेदार उसके सैनिकों पर शासन कर और उन्हें अधिकार में रख सकता था, वैसे ही जैसे कैसर स्वयं कर रहा हो। सूबेदार की यीशु से विनती विश्वास की स्वीकृति थी, क्योंकि उसने पहचाना कि यीशु को अधिकार परमेश्वर से मिला था और इसलिए वह केवल शब्द बोलकर चंगा कर सकता था, अर्थात् वह जानता था कि यीशु परमेश्वर के पूरे अधिकार से बोलता और कार्य करता था और इसलिए जब वह बोलता था तो ऐसा था जैसे परमेश्वर पिता स्वयं बोल रहा हो। असल में, यीशु का हर शब्द पिता के अधिकार से भरा हुआ था क्योंकि यीशु सम्पूर्ण रूप से उसके और उसकी इच्छा की ओर समर्पित था। उसने तब तक कुछ नहीं किया और कुछ नहीं बोला जब तक उसके स्वर्गीय पिता ने उसे ऐसा करने को नहीं कहा।

जब हम यीशु की सेवा पर नज़र डालते हैं, तब हम कुछ स्पष्ट तत्त्व देख सकते हैं जो उसके काम की विशेषता थे:

- यह आत्मा के द्वारा था। यीशु अपने पिता से अलग काम नहीं करता था। यह इस सच्चाई में व्यक्त होता है कि यीशु पवित्र आत्मा के सामर्थ्य में कार्य करता था (मत्ती 12:28; यूहन्ना 5:7-32)। यीशु ने तब तक कोई बड़ा काम नहीं किया जब तक उसने यरदन पर पानी और आत्मा का बपतिस्मा नहीं पाया।

- यह जरूरतमंदों के लिए था। यीशु की सेवा का प्रमाणचिन्ह यह था कि यह उनकी ओर थी जिन्हें उनकी आवश्यकता पता थी। यीशु ने एक बार कहा था, 'वैद्य भले चंगों के लिए नहीं परन्तु बीमारों के लिए आवश्यक है' (मत्ती 9:12)। लोग यीशु के पास खाली और आत्मा में जरूरत लिए आए और उसमें उनकी आवश्यकता का उत्तर पाया (यूहन्ना 4:13-15)।

- यह शत्रु के विरुद्ध था। उसकी सारी सेवा, जिसमें उसका जीवन और मृत्यु शामिल थी, शत्रु के अधिकार को सीधी चुनौती थी। शैतान को बलवन्त के रूप देखा गया था जिसे यीशु पवित्र आत्मा के सामर्थ्य में बाँधने वाला था (मत्ती 12:29)। जब उसे बाँधा गया है तब उसका घर लूटा जा सकता है। यीशु की सेवा शैतान के एक आनेवाले दिन सम्पूर्ण विनाश और उसके बाँधे जाने का पूर्वानुभव है। यह दुष्ट के विनाश की घोषणा और उसकी अन्तिम हार का एक चिन्ह है। यीशु का हर महान कार्य और चंगाई पुरुषों और स्त्रियों पर से शैतान की पकड़ को छुड़ाना था (यूहन्ना 12:31)। यीशु का संसार में आना शैतान की शक्ति को सीधी चुनौती थी।

- यह उद्धार के लिए था। यीशु का उद्देश्य पुरुषों और स्त्रियों का सम्पूर्ण उद्धार था। जब जब उसने लोगों को शारीरिक चंगाई दी, वह उन्हें उनके शरीर के स्तर से आगे ले गया और उन्हें संकेत दिया कि उद्धार कहीं अधिक गहरा है। उसने अकसर लोगों को कहा कि वे जाएँ क्योंकि उनके विश्वास ने उन्हें चंगा किया है! यीशु को ऐसे पुरुष और स्त्रियाँ चाहिए जो आत्मा, प्राण और शरीर में सम्पूर्ण हैं (1 थिस्स. 5:23-24)।

- यह सामर्थ्य में था। सुसमाचार यीशु की सामर्थ्य की सेवा से भरे पड़े हैं। एक सच्ची सुसमाचार की सेवा केवल शब्दों का सुसमाचार नहीं है। हमें हमारे भीतर की आशा का कारण बताने के लिए शब्दों की आवश्यकता है (1 पतरस 3:15), परन्तु केवल शब्द उन लोगों के लिए अपर्याप्त हैं जो उनके सारे जीवन भर आत्मिक अन्धकार और बन्धन में रहे हैं। उन्हें उनकी परमेश्वर की आवश्यकता की ओर जाग्रत करने के लिए परमेश्वर की सीधी सामर्थ्य चाहिए। यही यीशु की सेवा में होता था।

एक विश्वासी का अधिकार

परमेश्वर ने स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार यीशु को दिया है (मत्ती 28:18; इफिसियों 1:22-23; कुलुस्सियों 2:10; 1 पतरस 3:22)। यीशु ने यह अधिकार बदले में उसकी कलीसिया में विश्वासियों को दिया है। यह मसीह में हमारी स्थिति और उसके द्वारा पिता परमेश्वर के साथ हमारा सम्बंध है जो हमें परमेश्वर के राज्य की सेवा में शामिल होने का अधिकार देता है। हमारी सेवा जो यीशु ने आरम्भ किया उसे जारी रखना और उसकी सेवा का प्रतिबिम्ब होना चाहिए (यूहन्ना 14:12)। किसी भी आवश्यकता के

लिए परमेश्वर के सामर्थ्य का हमारे लिए रहस्य, जैसे यह यीशु के लिए था, पवित्र आत्मा पर सीधा भरोसा है। हम देखेंगे कि विश्वासियों के रूप में हमारा अधिकार हमें क्या करने के लिए योग्य करता है।

एक विश्वासी अगुवे का अधिकार

यीशु ने अगुवे की अपनी भूमिका उसकी कलीसिया में कुछ चुने हुए विश्वासियों को दी है और उन्हें अगुआई करने के लिए उसने उन्हें अपना कुछ अधिकार दिया है। इन अगुवों के पास जो भी अधिकार है "दिया गया" अधिकार है और इसलिए, उन्हें यीशु मसीह की कलीसिया में उसके सेवकों के समान काम करना है और जिनकी वे अगुआई करते हैं उन पर अधिकार नहीं जताना है। यीशु ने कलीसिया में अगुआई को उसके अधिकार का प्रतिनिधि होने, उसकी सेवा को जारी रखने और उसके जीवन को व्यक्त करने के लिए नियुक्त किया है।

(1) दो गलत रवैये

दो गलत रवैये हैं जो हर अगुवे के अन्दर प्रतियोगिता करते नज़र आते हैं। पहला, अपने बारे में बहुत ऊँचा सोचना और इसलिए सबकुछ जो वे प्राप्त करते हैं उसके लिए महिमा लेना; दूसरा, अपने बारे में बहुत कम सोचना, विश्वास करना कि हम किसी काम के नहीं और महसूस करना कि हम बेकार हैं। (जब शत्रु हमें घटिया अनुभव कराता है, तब हम समझौता करने लगते हैं और हम दूसरे लोगों की अपेक्षाओं के अनुसार करते हैं ताकि वे हमें स्वीकार करें और प्रेम करें।) शत्रु दोनों रवैयों को प्रोत्साहित करता और बढ़ाता है और दोनों का हमें सामना करना है। हमें अपने आप को पर्याप्त रूप से समझना है ताकि हमें पता चले कि कब यह चीजें हमारे जीवनों में जड़ पकड़ रही हैं और इस प्रकार शोधक कदम उठाना है। इसका कारण यह है कि इन दो सिरों के बीच का स्थान स्थिरता और अधिकार का है। यहाँ हम जानते हैं हम परमेश्वर में क्या हैं और हम अपने आप में क्या हैं।

(2) कोमल अधिकार

जब हम अगुवे अपने अधिकार के पद को किसी से अपने लिए कुछ करने को कहते हैं, तो हमें कोमलता, दीनता और प्रेमपूर्वक पूछना चाहिए। जिन लोगों को परमेश्वर ने हमारे भरोसे पर सौंपा है उनसे अधीनता की माँग करना या उन पर अधिकार जताना अच्छी बात नहीं है - उनके लिए उदाहरण होना बेहतर है (1 पतरस 5:3)। यदि एक व्यक्ति आपको सहयोग नहीं देता तो याद रखो कि वह परमेश्वर का (आपका नहीं!) सेवक है, और परमेश्वर उसे ठीक करेगा। यदि उन्हें सुधारने के लिए परमेश्वर आपको इस्तेमाल करता है तब ऐसा प्रेम के साथ करो और उत्सुकता से उनके लिए प्रार्थना करनी है ताकि उनका हृदय बदल जाए (रोमियों 14:4)। हमें अपने अगुवे की भूमिका मसीह की दीनता में कोमल अधिकार के साथ निभानी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि हमें कमजोर होना चाहिए, परन्तु इसका अर्थ है कि हमें पहले प्रेम करना है। हमें प्रेरित पौलुस के समान अपने लोगों के साथ काम करना है उनके विरुद्ध नहीं (2 कुरिन्थियों 1:24)।

(3) बहुत अधिक, बहुत जल्दी

बहुत सारे अगुवों को, विशेषकर नौजवान अगुवों को, सारा अधिकार तुरन्त चाहिए। सामान्य रूप से, यह बुद्धिमानी नहीं है। अगुवों को उनकी जिम्मेवारी एक-एक कदम लेकर अधिकार इस्तेमाल करना सीखना है, और उसी समय जो उनके ऊपर अधिकारी हैं उनको पहचानना और उनका आज्ञापालन करना है। बहुत सारा अधिकार बहुत जल्दी दे देना अकसर असहायक होता है और संकट भी ला सकता है, क्योंकि यह घमण्ड और सीखाने और समझदार होने की अयोग्यता ला सकता है। ये लोग अकसर आगे दौड़ना चाहते हैं और सामान्य परिणाम उनके मार्ग में दुर्घटनाओं का ढेर होता है। सच्चा अधिकार तब आता है जब हम अपने ऊपर के अधिकार के अधीन होते हैं और परमेश्वर की रफतार से चलते हैं।

(4) अधिकार की सीमाएँ

अगुवे वही दे सकते हैं और अधिकार की उसी मात्रा में उसी कार्य को कर सकते हैं जो परमेश्वर ने उन्हें दिया है। इन सीमाओं में से बाहर कदम रखने से अगुवे को उसके कार्यों को समर्थन देने के लिए स्वर्ग के साधन नहीं मिलते और जैसे अगुवा अपनी गहराई में से बाहर होता है यह बन्धन और चिन्ता में ले जा सकता है। ये सीमाएँ अगुवे के जीवन के

लिए परमेश्वर का फैलाव है और उनके भीतर अगुवे के लिए बहुत स्वतन्त्रता है, क्योंकि वह जानता है कि उसे केवल वही करने की आवश्यकता है जो परमेश्वर उससे चाहता है।

(5) **प्रभु का भय**

एक अगुवे के अधिकार के केन्द्र में प्रभु का भय होता है।

जो व्यक्ति प्रभु का भय मानता है:

- उसने बुद्धि का स्रोत पा लिया है (नीतिवचन 9:10)।
- वह सरल मार्ग अपनाने और सतही या पक्षपाती निर्णय लेने की इच्छा से मुक्त हुआ है (यशायाह 11:3-5)।
- वह ऐसा जीवन जीता है जो परमेश्वर के अधीन है, और अपनी योजनाएं बनाने और अपनी इच्छा करने के बजाय अपने फैसले और योजनाएँ वैसे ही करता है जैसा वह विश्वास करता है परमेश्वर उस स्थिति में करता।
- वह परमेश्वर के भव्य उद्देश्य में अपना अंश करने में संतुष्ट है चाहे वह अंश कितान भी छोटा या तुच्छ क्यों न हो और उसे करने में वह अपनी सारी योग्यता लगा देता है।
- वह उसके पापों और गलतियों के लिए जिम्मेवारी लेता है और जहाँ आवश्यक हो वहाँ मन फिराता और सुधार लाता है।

(6) **सुव्यवस्थित सम्बंध**

मसीह की देह में अगुवे के रूप में काम करने में दूसरे लोगों के साथ परस्पर सम्बंध लगाना शामिल है। सुव्यवस्थित सम्बंध होने देने के लिए, अगुवों को उस संस्था में अधिकार के स्तरों को समझना है। उन्हें उनकी भूमिका के विस्तार को भी जानना है और कि उनका अधिकार कितनी दूर तक जाता है। यदि अगुवे किसी क्षेत्र में जहाँ उन्हें अदिकार नहीं है अपना अधिकार जताने का प्रयत्न करेंगे तो केवल नकारात्मक भावनाएँ और चोट ही हाथ लगेंगे। अगुवों को कलीसिया में उनके स्थान को जानने और स्वीकार करने की आवश्यकता है और जानना है कि यह परमेश्वर है मनुष्य नहीं जिसने उन्हें वहाँ रखा है।

(7) **खतरा या सहायता**

लोग अकसर उसी प्रकार व्यवहार करते हैं जैसा वे अपने आपको देखते हैं और जैसे वे कलीसिया में उनकी भूमिका को देखते हैं वैसा कार्य करने लगते हैं। एक व्यक्ति की अधिकार की ओर प्रतिक्रिया, चाहे वह खुद अगुवे क्यों न हों, इस बात पर निर्भर करती है कि वे अधिकार को एक खतरा या एक सहायता के रूप में देखते हैं। अधिकार द्वारा बनाए निर्देशों को भी इसी नज़र से देखा जाएगा। लोगों से अधीनता की माँग करना अकसर काम नहीं करता। अपने समूह में एक अच्छा वातावरण बनाना और ऐसे फैसले करना जिनसे लोगों को अगुआई के अधीन होने में प्रोत्साहन मिले बेहतर होगा। निस्संदेह, इसे परमेश्वर की इच्छा पूरी करने या उससे समझौता करने के बदले नहीं किया जाना चाहिए।

मसीही अधिकार क्या नहीं है

सच्ची मसीही अगुआई जिनकी हम अगुआई करते हैं उनके मनों और व्यवहार पर नियंत्रण नहीं है। यह अच्छा जन-सम्पर्क या करिश्मा वाला व्यक्तित्व नहीं है; और यह निश्चय ही अधिकार प्राप्त करने की अभिलाषा नहीं है - बल्कि यह उस समूह की, उसके अधिकार और सामर्थ्य को लेकर, दीन सेवा है जिसके लिए परमेश्वर ने हमें जिम्मेवार बनाया है (मत्ती 20:25-28; 1 कुरिन्थियों 1:26-31)। अधिकारवादी अगुआई इसके अधिकार को थोपती है, अपने को बड़ा करती है, अपनी रक्षा करने का प्रयास करती है, और केवल कर्मकाण्डवाद और बोझ लाती है। दूसरी ओर मसीही अगुवों को उन पर जिनके लिए वे जिम्मेवार हैं सम्पूर्ण अधिकार नहीं है। इसलिए, उन्हें उनको अधिकार में रखने या उन पर अधिकार जताने की कोशिश नहीं करनी है जिनकी वे अगुआई करते हैं, बल्कि मसीह की समानता और परमेश्वर के आज्ञाकारी होने का उदाहरण बनकर उन्हें मसीह में परिपक्वता में लाने के लिए प्रोत्साहित करना है। असल में, बाइबल बताती है कि परमेश्वर के सबसे बड़े अगुवे वे हैं जो सबसे बड़े सेवक हैं (मरकुस 10:42-45)।

जो अधिकार यीशु उसके अगुवों को देता है वह उन्हें जो उनके पीछे चलते हैं कुछ करने के लिए या पालन कराने के लिए विवश करने का अधिकार नहीं है। यदि वे अधिकार के गलत विचार से कार्य करते हैं तो वे उनके लोगों को गलत तरीके से अधिकार में रखकर कुचल सकते हैं। उसके चुने हुए अगुवों के रूप में परमेश्वर से मिले अधिकार को हमें संवेदनशीलता से, समझ, बुद्धि और

परिपक्वता से इस्तेमाल करना है। असल में, जैसा बताया गया है, परमेश्वर के अगुवों को जिनकी वे अगुआई करते हैं उनकी सेवा करनी है न कि उनके कार्यों और फैसलों पर अधिकार जताना है। जब वे जिनकी वे अगुआई करते हैं परमेश्वर के मार्ग से भटक रहे हों तो उनका मसीह की ओर संकेत करना है और न कि आज्ञापालन के लिए बाध्य करना है। प्रेरित पौलुस भी, जिसके पास प्रकट है महान अधिकार था, उसके अधिकार के इस्तेमाल में कठोर नहीं था, क्योंकि वह जानता ता कि प्रभु ने उसे तोड़ने के लिए नहीं बल्कि बनाने के लिए दिया है (2 कुरिन्थियों 10:8; 2 कुरिन्थियों 13:10; 1 थिस्स. 4:2)। केवल एक ही समय परमेश्वर के अगुवों को उनके साथ बहुत दृढ़ता दिखाने का अधिकार प्राप्त है जिनकी वे अगुआई करते हैं, जब परमेश्वर जो अन्तिम अधिकार है, उन्हें ऐसा करने देता है। यहाँ परमेश्वर बोलता है और वचन का केवल पालन किया जाता है और परमेश्वर का वचन उसके लोगों तक पहुँचाया जाता है (2 कुरिन्थियों 13:2-4)।

मसीही अगुवों के रूप में हमें लोगों के साथ छलयोजना करने या उन्हें वह करने के लिए विवश करने की जो हम चाहते हैं वे करें आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यीशु कलीसिया का सिर है और उसने इसे बनाने की प्रतिज्ञा की है। वह आज भी उतना ही सामर्थी है जितना वह कभी था (इब्रानियों 13:8)। जब तक हम उसके अगुवे उसकी अगुआई का पालन करते रहेंगे तो हम, हमारी स्थिति में परमेश्वर की इच्छा पूरी करने के लिए, वह सारा अधिकार इस्तेमाल कर पाएँगे जिसकी हमें आवश्यकता है, और सारा सामर्थ्य हमारे पास होगा जिसकी हमें आवश्यकता है। अगुवे का अधिकार लोगों को यीशु की ओर प्रतिक्रिया दिखाने में सहायता करने के लिए है, उन्हें नियंत्रण करने के लिए नहीं है और न ही उस व्यवहार को लागू करने के लिए है जो अगुवा चाहता है। इस क्षेत्र में यीशु आप सबसे उत्तम उदाहरण पेश करता है। यदि वह चाहता तो उसके पास शहरों या संसार को भी नष्ट करने की शक्ति थी और वह तो निश्चय ही बड़ी सरलता से लोगों के साथ छल कर सकता या उन्हें एक तरीके से व्यवहार करने के लिए विवश कर सकता था, परन्तु उसने नहीं किया। उसने केवल उन्हें जो उसकी सुनते थे विश्वास करने और आज्ञापालन करने को बुलाया। यदि लोगों ने नहीं किया तो उसने उन्हें उनके फैसले पर छोड़ दिया। निस्संदेह, उनका उनके उस फैसले के अनुसार न्याय होगा। परन्तु जब तक वे पृथ्वी पर थे उनके पास चुनाव का हक था।

अगुवों को, केवल इसलिए कि उन्हें अगुआई के लिए पगार दी जाती है या क्योंकि उनके पास अगुआई की पदवी है, लोगों पर अधिकार पाने या आदर पाने की कभी भी अपेक्षा नहीं करनी है। वैसे भी कलीसिया में लोग अधीन होने के किसी दबाव में नहीं हैं। यदि एक अगुवे का अधिकार पहचाना नहीं जाता है तो यह उनकी अगुआई को असम्भव करेगा और बेहतर होगा वे त्यागपत्र दे दें। मसीही अगुवों का अधिकार उस अधिकार पर निर्भर करता है जिसके अधीन वे हैं। यह उनकी उपाधि या पदवी से नहीं आता, परन्तु परमेश्वर से आता है जिसका काम वे कर रहे हैं। उदाहरण, कोई भी इसलिए पास्टर नहीं है क्योंकि उनके पास दिखाने के लिए कार्ड है, बल्कि वे इसलिए पास्टर हैं क्योंकि वे उनके लोगों की रखवाली कर सकते हैं और उनकी भेड़ें उनके पीछे चलती हैं। जब अगुवे परमेश्वर के अधिकार के अधीन होते हैं तब ही वे उसके राज्य के अधिकार को उपयोग कर सकते हैं। इसलिए, अगुवों को उनके समूह में सबसे अधीनस्थ लोग होना चाहिए।

परमेश्वर की कलीसिया में अधिकार की किसी भी पदवी को अगुवे की प्रसिद्धि या महिमा के लिए इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। सारी महिमा परमेश्वर को मिलनी चाहिए। परमेश्वर द्वारा दिए गए अधिकार को परमेश्वर को महिमा लानी है, उनकी रक्षा करनी है जो इसकी देखरेख में हैं, और लोगों को स्वतन्त्रता, आनन्द और फलदायकता में लाना है। हम अगुवों को अपने परमेश्वर के साथ दीनता में चलना है, उसकी आज्ञाओं का पालन करना है और सब प्रकार से जिनकी हम अगुआई करते हैं उनकी सेवा करनी है।

अधिकार और अधीनता

यीशु कलीसिया का सिर हैं और उसकी इसके द्वारा कार्य करने की योजना है, क्योंकि यह पृथ्वी पर उसकी देह है। इसलिए, विश्वासियों को उसकी अगुआई के अधीन होना है और उनके भी जिन्हें प्रभु उनके ऊपर रखता है। यह अधिकार के अधीन होने के लिए इसे पहचाना जाना या इसके योग्य होना चाहिए, न कि इसे थोपा जाना चाहिए। अधीनता हृदय का एक रवैया है, गुलामी की स्थिति नहीं है। अधीन होना होता है: अपने आप को स्वेच्छा से अगुआई के अधीन देखभाल, सुरक्षा और मार्गदर्शन के लिए रखना। याद रहे, आपके समूह के सदस्यों को कुछ भी करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता है। फिर भी, जहाँ एक अगुवे में सच्चा आत्मिक अधिकार पहचाना जाएगा, वहाँ लोग स्वेच्छा से अधीन होंगे।

कलीसिया में अधिकार के अधीन होना तीन-तरफा सम्बंध पर आधारित है, अर्थात् अगुवा, लोग और परमेश्वर के बीच। इसलिए विश्वासियों को उसकी प्रधानता और उनके अधीन होने की आवश्यकता है जिन्हें प्रभु उनके ऊपर रखता है। समूह के सदस्य जो परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करना चाहते हैं, यदि वे उनमें परमेश्वर का वचन सुनते और पहचानते हैं तो वे उनके अगुवे के मार्गदर्शन को सुनेंगे और पालन करेंगे। असल में, जितना अधिक एक अगुवा परमेश्वर के अधीन होता है (जिसने उसे अधिकार

दिया है) उतना अधिक परमेश्वर का अधिकार अगुवे के पास होगा, क्योंकि जो अधीन हैं वे पाएंगे कि उन्हें अधिकार मिला है (मत्ती 8:8-9)। एक अगुवे में परमेश्वर का अधिकार, जब कार्य करता है और फिर उनके द्वारा प्रतिक्रिया पाता है जिनकी वे अगुआई कर रहे हैं, तब परमेश्वर के लिए बहुत प्रभाव उत्पन्न करता और फल लाता है।

परमेश्वर अन्तिम अधिकार है और जब वह अगुआई खड़ी करता है तब वह केवल अधिकार दे रहा है, सौंप रहा है। परमेश्वर अपने अनुयायियों को उनके अगुवों का कहना मानने और उनके अधीन होने को कहता है (इब्रानियों 13:17)। जैसे हम उनके अधीन होते हैं जिन्हें परमेश्वर ने हमारे ऊपर अगुवों के रूप में रखा है, तो हम असल में परमेश्वर के अधीन हो रहे हैं। यह ऐसी अधीनता नहीं है जहाँ हमें अपने अगुवों की हर बात माननी पड़ती है क्योंकि और कोई रास्ता नहीं है, परन्तु यह अधीनता ऐसी है जो अगुवे के परमेश्वर में स्थान के सम्मान और स्वीकृति में से निकलती है (1 थिस्स. 5:12-13)।

यदि कलीसिया को इस संसार में परमेश्वर के लिए प्रभाव बनाना है तो विश्वासियों को परमेश्वर और उसके सौंपे हुए अधिकार के पीछे हो लेना होगा। उन्हें उनकी अगुआई के द्वारा चलना है जैसा परमेश्वर उन्हें चलाता है और इस प्रकार उसे महिमा लानी है और उसके राज्य को फैलाना है। उन्हें उनकी अगुआई की ओर वचनबद्ध और वफ़ादार होना है जो उनके लिए परमेश्वर के सामने जिम्मेवार हैं। उन्हें सिखाया जाना है: कि वे परमेश्वर के वचन को जिसे वे उनके अगुवों के द्वारा सुनते हैं गम्भीरता से और व्यक्तिगत लें (1 थिस्स. 2:13); उनके अगुवों के भक्तिपूर्ण उदाहरण का अनुकरण करें (1 थिस्स. 1:6); उनके अगुवों की सेवाकाइयों और उनके परिवारों के लिए प्रार्थना करें (रोमियों 15:30; 2 थिस्स. 3:1); उनके अगुवों को स्नेह के साथ प्रणाम करें, उनसे प्रेम करें और स्वागत करें; और उनके अगुवों की प्रशंसा करें और उन्हें आदर और पहचान दें (1 थिस्स. 5:12-13)।

एक गलत निर्भरता उठ खड़ी हुई है क्योंकि हम सदा प्रतीक्षा करते हैं कि कोई हमें हमारे उत्तर दे। निस्संदेह, हमें अधीन होना है, परन्तु यह अधीनता हमें ऐसे व्यक्ति नहीं बना दे कि हमें पता नहीं चले कि हम क्या सोचते हैं या क्या सोचना है। यह स्थिति तब उत्पन्न होती है जब बहुत शक्तिशाली निरंकुश अगुआई उनके लिए फैसले करती है जिनके वे अगुआई करते हैं। इससे एक ऐसी कलीसिया बनती है जिसमें आज्ञापालन की कोई समस्या नहीं होती, परन्तु जिसमें पहली-शक्ति नहीं है और परिणामस्वरूप बहुत अनुत्पादक है। ऐसे स्थान में मसीहियों को हाथ से खिलाना पड़ता है और इसलिए वे कभी भी परिपक्व नहीं हो पाते। वे उनके गुलाम बन जाते हैं जो उनकी अगुआई करते हैं और उन्हें बताया जाता है क्या पहनना है, कैसे सोचना है, कब विवाह करना है, छुट्टियों के लिए कहाँ जाना है, आदि। परमेश्वर ऐसा नहीं चाहता है और यह नमूना प्रारंभिक कलीसिया में नहीं देखा गया था। परमेश्वर को परिपक्व मसीही चाहिए जो उसके पास याजकों और पुत्रों के समान आ सकते हैं, जो आप अपने फैसले कर सकते हैं, और वे ऐसे लोग नहीं हैं जो केवल उनके अगुवों का विस्तार हैं। अधिकारवादी अगुवों द्वारा अधीनता की माँग अकसर और कुछ नहीं सिर्फ औंधे मुँह लेटना है, जबकि असली मसीही अधीनता लोगों को मसीह में उनके सम्पूर्ण सम्भावना में बढ़ने देती है। यह उन अगुवों से उत्पन्न होती है जो उनके लोगों से प्रेम करते हैं और केवल उनका भला चाहते हैं, क्योंकि वे मसीह का विस्तार हैं, जो अपने सब अनुयायियों को इसी प्रकार देखता है।

अधिकार और कलीसिया का अनुशासन

परमेश्वर के अगुवे की जिम्मेवारी का एक अंश कलीसिया में अनुशासन लाना है जिसका सिर यीशु है। कलीसिया का अनुशासन जब इसे सही तरीके से अपनाया जाता है तो कलीसिया को परमेश्वर की इच्छा में रखने में सहायता करता है। यह ऐसा है कि कलीसिया के अगुवे यीशु की ओर से अनुशासित कर रहे हैं।

जब एक अगुवा अपने साथी विश्वासी के जीवन में अनुशासन लाता है तब उसे दो चीजें ध्यान में रखनी हैं। पहली, उन्हें दूसरे व्यक्ति को केवल प्रेम में ही अनुशासित करना है। अगुवों को क्रोध में या प्रतिक्रिया में से कभी भी अनुशासित नहीं करना है, परन्तु व्यक्ति के लिए प्रेम का एक हृदय पाने का प्रयत्न करना है। यह उन्हें अनुशासित करते समय सही प्रेरणा रखने में सहायता करेगा, और वे इसे व्यक्ति और समूह जिसके लिए वे जिम्मेवार हैं दोनों के उत्तम लाभ के लिए करेंगे (रोमियों 12:10)। कलीसिया का अनुशासन जो प्रेम की प्रेरणा से होता है समूह के सदस्यों को धार्मिकता के स्थान पर रखता है। दूसरी, हमारे अनुशासन में लक्ष्य सदाः पुनःस्थापना होना चाहिए (गलातियों 6:1; याकूब 5:19-20; यहूदा 22-23)। अपने लोगों को अनुशासित करने का हमारा उद्देश्य उन्हें परमेश्वर और उसकी इच्छा में दोबारा ले आना होना चाहिए।

कलीसिया के अनुशासन के सम्बंध में बाइबल स्पष्ट निर्देश देती है:

"यदि तेरा भाई तेरे विरुद्ध अपराध करे, तो जा और अकेले में बातचीत करके उसे समझा; यदि वह तेरी सुने तो तू ने अपने भाई को पा लिया। यदि वह न सुने, तो एक या दो जन को अपने साथ और ले जा, कि 'हर एक बात दो या तीन गवाहों के मुँह से

निश्चित हो जाए।' यदि वह उनकी भी न माने, तो कलीसिया से कह दे, परन्तु यदि वह कलीसिया की भी न माने तो तू उसे अन्यजाति और महसूल लेनेवाले जैसा जान।" (मत्ती 18:15-17)

- दो या तीन गवाहों के मुँह से हर एक बात ठहराई जाएगी। (2 कुरिन्थियों 13:1)
- किसी बूढ़े को न डाँट, पर उसे पिता जानकर समझा दे। (1 तीमुथियुस 5:1)
- कोई दोष किसी प्राचीन पर लगाया जाए तो बिना दो या तीन गवाहों के उसको न सुन। पाप करनेवालों को सबके सामने समझा दे, ताकि और लोग भी डरें। (1 तीमुथियुस 5:19-20)
- किसी पाखंडी को एक दो बार समझा-बुझाकर उससे अलग रह, यह जानकर कि ऐसा मनुष्य भटक गया है, और अपने आप को दोषी ठहराकर पाप करता रहता है। (तीतुस 3:10-11)
- हमें उनके साथ जिन्हें हम अनुसासित करते हैं बहुत कठोर नहीं होना है, बल्कि जब वे उनके बुरे मार्गों से फिरें तो उन्हें वापस स्वीकार कर लेने के लिए इच्छुक होना है, परमेश्वर चाहता है कि हर व्यक्ति उसके बुरे मार्ग से फिरे और जीए (यहेजकेल 33:10-20) और उसके अगुवों को भी वैसा ही महसूस करना है। जब लोग पाप में गिरते हैं तो हमें खुश नहीं होना है। हमें उनको परमेश्वर के सामने धार्मिकता के स्थान में लौटा ले आने में जो कुछ हम कर सकते हैं करना है (2 कुरिन्थियों 2:5-8)।
- कभी-कभी, एक विश्वासी को अनुशासित करने का सही तरीका उन्हें उनके पाप या शैतान के हाथों में दे देना होगा, ताकि उनको धक्का लगे और होश आए या कम से कम वे उनकी गलती पहचानें और धार्मिकता में लौट आएँ (1 तीमुथियुस 1:20; 1 कुरिन्थियों 5:5)।
- हमें अपने झगड़े अविश्वासियों के पास नहीं ले जाने चाहिए (1 कुरिन्थियों 6:1-8)।

परमेश्वर के अगुवे इन सिद्धान्तों के अनुसार कार्य कर सकते हैं क्योंकि परमेश्वर का वचन उन्हें ऐसा करने का अधिकार देता है (तीतुस 2:15)। कलीसिया का अनुशासन तब ही आरंभ होना चाहिए जब आवश्यक हो। नियम के रूप में, व्यक्तिगत पापों से एकान्त में निपटा जाना चाहिए और सार्वजनिक पापों से सबके सामने। यदि हम पिछले को ऐसे न करें तो, सारी देह पर प्रभाव पड़ेगा, क्योंकि यह ऐसा होगा जैसे कि अगुआई उनकी चुप्पी के द्वारा गलत व्यवहार को जाने दे रही हो।

किसी भी अनुशासन हो लाने से पहले, यह आवश्यक है कि परमेश्वर की बाट जोहने में कुछ समय दिया जाए। इससे उसको हमें बताने का अवसर मिलता है कि उसके हृदय में क्या है और वह क्या चाहता है हम करें। जब कठिन स्थितियों में अनुशासन लाना हो (जिसमें आपको अगुवे के रूप में चोट पहुँची हो), तब अच्छा होगा कि कुछ समय दिया जाए जिस में स्थिति में से 'ठीस' निकल जाए। इसका अर्थ यह नहीं है कि हम बहुत समय लें जिससे हमारे समूह में कुछ जड़ पकड़ने लगे, जो इसे हानि पहुँचाएगा (नीतनवचन 10:17; 1 कुरिन्थियों 5:6-7), परन्तु इसका अर्थ यह है कि हम प्रभु के समय में अनुशासन लाएँगे।

जिन समयों में कलीसिया के अनुशासन की आवश्यकता है:

- जब हम लोगों को उनके रास्ते में फूट डालते और रुकावटें पैदा करते देखते हैं (परमेश्वर के वचन के विपरीत है) जो प्रभु की खोज करना चाहते हैं (रोमियों 16:17)।
- जब कलीसिया के सदस्यों में झगड़ा पैदा हो जाता है (1 कुरिन्थियों 5:12-13)।
- जब किसी प्रकार की अनैतिकता कलीसिया में जड़ पकड़ने लगती है (1 कुरिन्थियों 5:1-5)।
- जब लोग बेकार बैठे हैं और परमेश्वर के वचन की शिक्षा के अनुसार जीवन नहीं जीते (2 थिस्स. 3:6; 1 थिस्स. 5:14)।
- जब हम लोगों को किसी प्रकार का छल अपनाते हुए पाते हैं (इफिसियों 5:6-7।

दुर्भाग्यवश, ऐसे कई अगुवे हैं जो उनके लोगों को सुधारना या अनुशासित करना नहीं चाहते। इससे एक ऐसा वातावरण बनने लगता है जिसमें पाप और समझौता जड़ पकड़ने लगते हैं, जिसका परिणाम एक कमज़ोर मसीह की देह होती है। परमेश्वर हमें अनुशासित करता है क्योंकि वह हम से प्रेम करता है (इब्रानियों 12:5-6), और अगुवों को भी उनके लोगों को अनुशासित करना चाहिए क्योंकि वे उनसे प्रेम करते हैं और उन्हें उन्नति करते देखना चाहते हैं।

अगुवे उनके लोगों को अनुशासित क्यों नहीं करते उसके कुछ कारण:

- वे उनके अपने परिवार को अनुशासित नहीं करते और इसलिए सोचते हैं कि वे दूसरे लोगों को भी नहीं कर सकते।
- उनके जीवन में क्षमा-नहीं-माँगे-हुए पाप हैं, जिससे परमेश्वर के साथ उनकी चाल में रुकावट आती है और इस प्रकार मसीह में उनके अधिकार की स्थिति कमज़ोर होती है।

- वे परमेश्वर या उसके वचन को ठीक से नहीं जानते जिससे उनको पता नहीं चलता कि किन चीजों को अनुशासित किया जाना चाहिए।
- वे दूसरे लोगों को इतना खुश करना चाहते हैं कि वे ऐसा कुछ नहीं करेंगे जिससे इसमें रुकावट आए। लोगों को उनकी मर्जी करने देना लोगों को खुश रखेगा और उनको आराम देगा, परन्तु यह परमेश्वर के राज्य के लिए प्रभावशाली नहीं होगा (न्यायियों 21:25)।
- वे उनसे इतना प्रेम नहीं करते जिनकी वे अगुआई करते हैं कि, जब आवश्यकता है, तब उनसे कठोर हों ।
- वे ऐसा नहीं दिखना चाहते जो स्वयं-धार्मिक है या जो लोगों को सब समय तंग करता रहता है; इसलिए वे सन्तुलन खो देते हैं और जब आवश्यकता होती है तब भी अनुशासित नहीं करते।
- वे डरते हैं कि लोग उन्हें या उनके अनुशासन को ठुकरा देंगे और इसलिए वे बचने के लिए, अपना अच्छा नाम और उनके मित्रों को बनाए रखने के लिए इसे नहीं करते।
- वे दूसरे लोगों के दबाव में आ रहे होंगे जो अनुशासन नहीं चाहते, जैसे कि एल्डर, दूसरे अगुवे, समूह के प्रभावशाली लोग।
- वे अगुवे के उनके अधिकार में असुरक्षित होंगे।

जवान बच्चे तब अधिक सुखी और सुरक्षित अनुभव करते हैं जब उनके लिए व्यवहार की कुछ सीमाएँ होती हैं जिनका उनको उल्लंघन नहीं करना है। यही बात परमेश्वर के लोगों के लिए भी सत्य है। उन्हें जानने की आवश्यकता है कि उनके लिए बाइबल की सीमाएँ हैं जिनका उनको उल्लंघन नहीं करना है और जिन पर उनके अगुवे निगाह रखे हुए हैं। परमेश्वर का अनुशासन शरीर को अच्छा न लगता हो परन्तु यह आत्मा को लगता है और जो इससे सीखते हैं उनके लिए यह धार्मिकता और शान्ति की फसल लाता है (इब्रानियों 12:5-11)। याद रहे कि केवल शब्द ही किसी को अनुशासित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं - कार्यों की आवश्यकता पड़ सकती है (नीतिवचन 29:19)।

जब आप किसी को अनुशासित करते हैं तब उन्हें यह दिखाना कि वे कहाँ गलत थे और उन्हें सही मार्ग दिखाना महत्त्वपूर्ण है। उन लोगों को मन फिराने की उनकी आवश्यकता दिखाई जानी चाहिए और यह भी कि वे वापस सही मार्ग पर कैसे आ सकते हैं, यह जानकारी उनको दोबारा उसी गलती में नहीं पड़ने में सहायता करेगी (2 तीमुथियुस 2:25-26)।

ऐसा कभी नहीं सोचा जाना चाहिए कि कलीसिया का सब प्रकार का अनुशासन मसीह की देह का हर सदस्य लागू कर सकता है। सब विश्वासियों को एक दूसरे को सिखाना और ताड़ना देनी चाहिए (कुलुस्सियों 3:16-17), परन्तु जो अगुआई में हैं और जो परमेश्वर में अधिक आत्मिक और परिपक्व हैं, उन्हें ही कठिन मामलों को सम्भालने दिया जाना चाहिए।

अधिकार और आत्मिक युद्ध

वैसे तो शैतान ने उस सामर्थ्य और अधिकार को हड़प लिया होगा जिसे परमेश्वर ने सबसे पहले मानवजाति को दिया था (लूका 4:6; उत्पत्ति 1:27-28), परन्तु विश्वासी मसीह में उस सामर्थ्य और अधिकार को दोबारा जान सकते है। यीशु की मृत्यु और पुनरुत्थान ने शैतान और उसके गिरे गुए दूतों के हड़पे हुए सामर्थ्य को तोड़ दिया है (कुलुस्सियों 2:15; इब्रानियों 2:14-15; 1 यूहन्ना 3:8)। यीशु को सारा अधिकार दिया गया है और उसने इसमें से कुछ अपने चेलों को सौंपा है और उन्हें आज्ञा दी है कि वे सब जातियों के लोगों को उसका चेला बनाएँ (मत्ती 28:18-20; मरकुस 16:15-18; इफिसियों 1:17-23)। वह चाहता है कि जब तक अन्त नहीं होता, वे उस काम को जारी रखें जो उसने आरंभ किया था, तब वह सारी सत्ता, अधिकार और सामर्थ्य पिता परमेश्वर के हाथ में सौंप देगा (1 कुरिन्थियों 15:24-28)। तब तक, परमेश्वर चाहता है कि उसके लोग दुष्ट पर उनका अधिकार इस्तेमाल करें और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हुए उसके राज्य को फैलाएँ (प्रेरितों 1:8; फिलिप्पियों 2:12-13)।

परमेश्वर के अगुवों को उनके लोगों को अन्धकार की शक्तियों का सामना करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जिसका अर्थ है कि हम सब को कुछ हद तक आत्मिक युद्ध में भाग लेना होगा (इफिसियों 6:10-18)। शैतान परमेश्वर के सारे काम नष्ट करना चाहता है और इसलिए, परमेश्वर के लोगों को उसकी युक्तियों की जानकारी होनी चाहिए और उसका सामना करें। परमेश्वर के राज्य का काम चलता रहना चाहिए और परमेश्वर के अगुवों को उनको लोगों को इस काम के लिए इकट्ठा करना है। परमेश्वर चाहता है कि उसके सब लोग, विशेषकर उसके अगुवे (जिन्हें सही उदाहरण पेश करने की आवश्यकता है), दुष्ट पर उस अधिकार को इस्तेमाल करें जिसे उसने उन्हें दिया है (याकूब 4:7; 1 पतरस 5:8-9)। यदि हम मसीह में हैं तो हमें शत्रु से डरने की कोई

आवश्यकता नहीं है (कुलुस्सियों 3:3), क्योंकि वह सारे शासन और अधिकार, सामर्थ्य और सत्ता के ऊपर शासन कर रहा है (इफिसियों 1:17-23)। वे उसके अधीन हैं और हमारे भी जो उसकी इच्छा पूरी करते हैं। यह जानना भी सान्त्वना की बात है कि परमेश्वर के अधिकार वाला अगुवा अन्धकार की शक्तियों द्वारा पहचाना और भय खाया जाता है (प्रेरितों 19:15)।

मसीही अगुवों को उनके लोगों को शासकीय अधिकारियों के अधीन होने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इन्हें परमेश्वर ने कुछ हद तक हम विश्वासियों की रक्षा करने के लिए नियुक्त किया है (रोमियों 13:1-7; 1 पतरस 2:13-14; तीतुस 3:1)। वे परमेश्वर के प्रतिनिधि हैं और हमारे पापी संसार में उनके बिना सम्भवतः हर कोई वैसा करेगा जैसा उन्हें अच्छा लगता है (2 पतरस 2:10)। तब तो संसार पूरी तरह अस्तव्यस्त हो जाएगा, और परमेश्वर के राज्य का काम कठिनाइयों से भर जाएगा। हमारे ऊपर अधिकारियों के अधीन शान्ति से रहने से हम अकसर उनके हाथों दुख उठाने से बच सकते हैं। परन्तु यदि वे परमेश्वर के नियमों का विरोध करते हैं तब हमारी पहले परमेश्वर का कहना मानने की जिम्मेवारी है और हमें वैसा करना है जैसा वह चाहता है।

परमेश्वर के अगुवों को उनके लोगों को याद दिलाना है कि हालाँकि परमेश्वर ने शासकीय अधिकारियों को नियुक्त किया है और वह हमें आज्ञा देता है कि हम उनके अधीन हों और विद्रोह न करें, यह संसार इस समय दुष्ट के हाथों में है (1 यूहन्ना 5:19)। संसार के जीने का तरीका मानवजाति को प्रभावित और नियंत्रित करने का शैतान का एक प्रमुख औज़ार है। उद्धार न पाए हुओं का संसार एक अन्धकार का स्थान है जहाँ लोगों को कोई आशा नहीं है; असल में, वे सब दुष्ट की शक्ति के अधीन हैं। यह केवल विश्वासी ही हैं, जिन्हें यीशु ने इस अन्धकार में से निकाला है और परमेश्वर के राज्य में रखा है, जो शत्रु की पकड़ में नहीं हैं (इफिसियों 2:1-10; कुलुस्सियों 1:13)। इसलिए, विश्वासियों को संसार के नेताओं के अधीन तब तक ही होना है जब तक वे परमेश्वर की आज्ञाओं का विरोध नहीं करते - वही अन्तिम अधिकार है (प्रेरितों 4:19)। उन्हें उनके अगुवों के लिए प्रार्थना भी करते रहना है जिससे एक शान्ति का वातावरण बनेगा और परमेश्वर का काम अधिक प्रभावशाली तरीके से होता रहेगा (1 तीमुथियुस 2:1-4)।

शैतान परमेश्वर के काम को रोकने की कोशिश करेगा। वह ऐसा अकसर विश्वासी के जीवन में डर, असुरक्षा पैदा करके या पाप लाकर करता है जिससे वह उसे नीचा दिखा सके और परमेश्वर के अधिकार में जीने से रोक सके। परमेश्वर के अगुवों को अपने आप को और उनके लोगों को याद दिलाने की आवश्यकता है कि वे मसीहियों के रूप में (जब वे मसीह में हैं) शत्रु से अधिकार के एक ऊँचे स्तर पर कार्य कर रहे हैं और इसलिए, वे उसके आक्रमणों का सामना कर सकते हैं और उसकी युक्तियों को नष्ट कर सकते हैं। मसीह के लिए लोगों को जीतने और बन्दियों को स्वतन्त्र करने के कलीसिया के काम को शत्रु रोक नहीं सकता है। वह छोटी-छोटी कई लड़ाइयाँ जीत सकता है, परन्तु अन्तिम परिणाम पहले ही तय हो चुका है।

जब विश्वासी भक्त अगुआई के अधीन होते हैं तब वे शत्रु से सुरक्षित रखे जाते हैं, क्योंकि उनकी अगुआई उनके लिए आत्मिक आवरण है। आज परमेश्वर के अगुवों को उनके लोगों के लिए सुरक्षा का कवच बनना बहुत आवश्यक है। शैतान पृथ्वी पर परमेश्वर के वचन को बिगाड़ना चाहता और परमेश्वर के राज्य के प्रभाव को नष्ट करना चाहता है। उसका एक सबसे सफल तरीका भ्रम फैलाना है और परमेश्वर के लोगों को झूठ और गलती में भटकाना है (मरकुस 13:22; मत्ती 24:4-25:2; 2 थिस्स. 2:3)। परमेश्वर के लोगों को परमेश्वर के वचन और खुद परमेश्वर को इस प्रकार जानना है कि वे इन धोखों को पहचान सकें और उन्हें प्रकट कर सकें, ताकि परमेश्वर के लोगों की उनसे रक्षा कर सकें। जब परमेश्वर एक अगुवे को विश्वासियों के एक समूह की जिम्मेवारी देता है तब उसे, यदि यह प्रभु की इच्छा नहीं है तो, इधर-उधर नहीं घूमते रहना है (उदाहरण, अनेक सम्मेलनों में जाना, दूसरी कलीसियाओं में वक्ता होना, आदि), क्योंकि यह झुँड को खुला छोड़ देगा। यदि वह ऐसा करता है तो उसे निश्चित कर लेना है कि उसका झुँड जब वह जाता है, पर्याप्त रूप से ढँका हुआ और आत्मिक रूप से सुरक्षित है।

परिवर्तन लाने का अधिकार

यीशु के समय में आत्मिक अगुवे अकसर उससे पूछा करते थे कि जो वह कर रहा है किस अधिकार से करता है (मत्ती 21:23; यूहन्ना 2:18)। यही प्रश्न आज भी कलीसिया में पूछा जाता है जब एक अगुवा चीजों को बदलने का प्रयत्न करता है।

अगुवों को कसीलिया में चीजें बदलने का अधिकार है जब:

- वर्तमान ढाँचा परमेश्वर के वचन के अनुसार नहीं है या यह सुसमाचार के काम में रुकावट उत्पन्न कर रहा है।
- जब अगुवे को परमेश्वर करने को कहता है, अर्थात् यह परमेश्वर का समय है। यह अकसर तब होता है जब कलीसिया तैयार है!
- जब कलीसिया के लोगों को स्पष्ट अनुभव होता है कि कुछ बदलना चाहिए और वे अगुआई से इसे करने को कहता हैं।

अधिकाँश लोग परिवर्तन से खतरा महसूस करते हैं। यह असुरक्षा पैदा करता है और लोगों को वापस उन चीजों में लौटने को करता है जिन्हें वे जानते हैं और सुविधा अनुभव करते हैं, जैसे कि, कलीसिया की परम्पराएँ। इसलिए, परिवर्तन को अकसर धीरे-धीरे और कोमलता के साथ, उन लोगों को देखते हुए जिनको यह प्रभावित कर रहा है, लाना चाहिए।

परमेश्वर के अगुवों को उनकी स्थितियों में उसके सौंपे हुए अधिकार के रूप में देखने की आवश्यकता है। उन्हें परमेश्वर और उस समूह की ओर वचनबद्ध होने की आवश्यकता है जिनके लिए उसने उन्हें जिम्मेवार किया है। उन्हें समूह को और उस स्थिति को जिसमें वे हैं परमेश्वर की नज़रों से देखना चाहिए और उस की बाट जोहकर उसकी प्राथमिकताओं और संदर्श को अपना बनाना चाहिए। इससे अगुवों को उन कठिनाइयों को, जो अनिवार्य हैं कि परिवर्तन के समय खड़ी होंगी, पार करने की शक्ति और समानुपात की भावना मिलेगी। यदि अगुवे परिवर्तन को कलीसिया के लिए प्रभु की बड़ी योजना के संदर्भ में देख सकें तो उन्हें उनके डरों को कम करने और परिवर्तन को लोगों को देने में सहायता मिलेगी।

परमेश्वर के राज्य में जो अधिकार में हैं उनकी जिम्मेवारी

परमेश्वर के राज्य के सदस्यों की जिन्हें परमेश्वर अधिकार देता है कुछ जिम्मेवारियाँ हैं:

- उन्हें अपने लिए और अपने समूह के लिए परमेश्वर का वचन सुनना चाहिए। अन्त में एक विश्वासी का अधिकार, उसके जीवन और सेवा में परमेश्वर के वचन का अधिकार ही है। जितना अधिक अधिकार और जिम्मेवारी हमारी होगी, उतना अधिक हमें प्रभु की बाट जोहनी है। कभी-कभी, अगुवे परमेश्वर से कुछ सुनेंगे जिसे वे भावात्मिक रूप से कठिन पाएँगे, विशेषकर जब यह उनके लोगों से सम्बंधित होता है। अगुवों को स्पष्ट अनुभव होना है कि परमेश्वर ही अन्तिम अधिकार है और उसके निर्णय के अधीन होना है। हम अगुवों को परमेश्वर के उद्देश्यों में रुकावट नहीं बनना है – वह हम से बेहतर जानता है वह क्या कर रहा है।

- उन्हें उन समयों और मौसमों के चिन्हों को समझना चाहिए जिसमें उनके समूह के सदस्य रह रहे हैं और उन्हें समझना चाहिए कि किसी स्थिति में परमेश्वर में क्या हो रहा है और जिनकी वे अगुआई करते हैं उनको इसे प्रभावशाली तरीके से बताना है।

- उन्हें यीशु की ओर से जो कलीसिया का सिर है, अधिकार और अनुशासन लाना है।

- वे अपने आप को और उनके परिवारों को नियंत्रण में रखने के योग्य हों (1 तीमुथियुस 3:1-7)। एक अगुवा निर्दोष, प्रेमी, नम्र, संयमी और झगड़ालू नहीं होना चाहिए और यह उसके घर में दिखाई देना चाहिए। उन्हें सेवा के दबाव के कारण उनके परिवार को भी इनदेखा नहीं करना है।

- उनमें उनके लिए जिनकी वे अगुआई करते हैं एक सच्चा प्रेम और देखभाल होनी चाहिए और उन्हें इस प्रकार अगुआई करनी है जिससे समूह का भला हो जिसके लिए वे जिम्मेवार हैं।

- उन्हें उनके लोगों को शत्रु के प्रभाव से सुरक्षित रखना चाहिए (प्रेरितों 20:28-31)।

- उन्हें उनके लोगों को एक दूसरे और परमेश्वर दोनों के साथ एकता में रखना चाहिए। कलीसिया को ऐसे मसीहियों की आवश्यकता है जो उनके मिथ्याभिमान, घमण्ड, अहंकार, स्वाधीनता और ओछापन को परे रखने के इच्छुक हैं और, जुड़े रहें और अविभक्त वफ़ादारी के हों।

- उन्हें आज्ञाकारी, फलवन्त जीवन जीने चाहिए जो नकल करने योग्य हों (1 कुरिन्थुयों 11:1; 1 थिस्स. 1:6; 1 तीमुथियुस 3:2-5; 1 तीमुथियुस 4:12)। वे उनके लोगों के आगे जाने और जो वे उनके लोगों से करने को कहते हैं उसे पहले करने के इच्छुक होने चाहिए।

- उन्हें धर्मी जीवन जीने चाहिए। शैतान हमें पाप में उकसाकर परमेश्वर के साथ हमारी चाल को दूषित करने की कोशिश करेगा। यह इसलिए होता है क्योंकि यदि हम पाप करें तो, मसीह में हमारा अधिकार कमज़ोर होता है और, इसलिए, शत्रु के साथ हमारे युद्ध में रुकावट आती है या प्रभावहीन बन जाता है और परमेश्वर के लिए हमारा काम कुछ हद तक अयोग्य हो जाता है। पवित्र आत्मा केवल शुद्ध, तैयार, बुलाए पात्रों के द्वारा ही प्रभावशाली तरीके से कार्य कर सकता है।

- उन्हें विश्वास के लोग होना है। अगुवों को परमेश्वर में एक विश्वास होना है जो उनके अनुयायियों को परमेश्वर और उनके अगुवों पर भरोसा करने में प्रेरित करता है।

- उन्हें ऐसे लोग होना है जो उन पर निगरानी रखते हैं जिनके लिए वे जिम्मेवार हैं और उनके कल्याण और प्रगति के लिए अपने आप को परमेश्वर के सामने उत्तरदायी मानते हैं (1 पतरस 5:2-3)।

- उन्हें ऐसे लोग होना है जो साहसी कार्य कर सकते हैं। यदि आप नहीं कर सकते हो तो सम्भवतः आप वास्तव में एक अगुवे नहीं हो। ऐसा एक कार्य करने के लिए, अगुवे को पता होना चाहिए कि परमेश्वर में सही क्या है (दानिय्येल 11:32), अधिकार की उसकी स्थिति में विश्वास रखना है और परिणाम पाने का निश्चय रखता है। यदि एक अगुवा मनुष्य के दबाव या संदेह की स्थिति से कार्य करता है और फिर भी कार्य करने का प्रयत्न करता है, तो यह केवल उसके अधिकार की स्थिति का महत्त्व कम करेगा और वह उसे प्राप्त करने में असफल रहेगा जो करने वह निकला था (1 कुरिन्थियों 16:12-14)।

- उन्हें ऐसे लोग होना है जो कठिनाई होने पर भी उनकी जिम्मेवारियों से भागेंगे नहीं। अगुवों के रूप में अपनी जिम्मेवारियों से भागना अपने आत्मिक अधिकार को खोना है। जिम्मेवारी अगुवों पर समाप्त होती है और उन्हें इस परमेश्वर द्वारा दी जिम्मेवारी को स्वीकार करना है। याद रहे, यदि एक व्यक्ति अपनी जिम्मेवारी से जी चुराता है, तो यह गायब नहीं हो जाती है – यह मात्र किसी दूसरे के पास चली जाती है। परमेश्वर उसके अगुवों को उनकी जिम्मेवारियों से पराजित होने नहीं देगा, जब तक वे उसकी ओर देखते रहते हैं और वे वही काम लेते हैं जो परमेश्वर उन्हें देता है। संकट को हमें तोड़ने न पाए बल्कि हमें परमेश्वर के पास ले जाए। अगुवों को दबाव में जयवन्त जीवन जीना सीखना है।

- उन्हें परमेश्वर के वचन के साथ कभी भी समझौता नहीं करना चाहिए। जो परमेश्वर के राज्य में अधिकारी हैं उन्हें उसके साथ कभी भी समझौता नहीं करना है जिसे वे जानते हैं परमेश्वर का मार्ग है। हालाँकि यीशु जवान धनी शासक से प्रेम करता था (मरकुस 10:17-26; लूका 18:18-26), परन्तु उसके पीछे नहीं भागा और न सुसमाचार के साथ समझौता किया ताकि वह उसके स्वीकार करने के लिए इसे सरल बनाता। वह व्यक्ति उदास होकर चला गया परन्तु सुसमाचार की सच्चाई अखंड और बेदाग बनी रही।

- उन्हें ऐसे लोग होना है जो आगे रहते हैं। बहुत से अगुवों ने बहुत सारी चीजें बिना समाप्त किए छोड़ दी हैं; बहुत बार उनके कंधे उचकाए हैं; अनेक बार चोट खाए, निराश हुए, गलतफहमी और आलोचना का शिकार हुए, भ्रम भंग हुए; उन चीजों को भी आरंभ करने में असफल रहे जो चीजें परमेश्वर चाहता था वे करें; बहुत सारे फैसलों को स्थगित किया है और फलस्वरूप उन्हों ने पाया है कि प्रभु की सेवा करने की सारी प्रेरणा और शक्ति उन्हों ने खो दी है। वे अब सरल मार्ग लेना पसन्द करेंगे और रिटायर होने तक किसी प्रकार चलते रहेंगे। एक सुस्त जीवन के लिए कुछ भी उनका आदर्श-वाक्य बन रहा है। इन लोगों को याद करने की आवश्यकता है कि वे किसकी और क्यों सेवा कर रहे हैं। परमेश्वर ने हमें कभी भी अधिक भार नहीं देने या हम से असम्भव की माँग नहीं करने की प्रतिज्ञा की है। वह हमें वह सबकुछ देने की प्रतिज्ञा भी करता है जिसकी हमें आवश्यकता है, चाहे वह कुछ भी क्यों न हो (फिलिप्पियों 1:19;2 पतरस 1:3)।

- उन्हें ऐसे जीवन जीने की आवश्यकता है जो सम्पूर्ण रूप से परमेश्वर को समर्पित हैं या कम से कम इस के लिए कार्य कर रहे हैं। उन्हें परमेश्वर की इच्छा की ओर भी क्रियाशील होना है और जैसे वे उस काम को करते हैं जो परमेश्वर चाहता है वे करें तो उन्हें परमेश्वर को उनके द्वारा काम करने की अपेक्षा करनी है। इसका अर्थ है कि उन्हें संघर्ष नहीं करना है और वे परमेश्वर में विश्राम कर सकते हैं, उस पर भरोसा कर सकते हैं और उसके साथ सम्बंध से मिली शक्ति और साधनों से दूसरों की सेवा कर सकते हैं। याद रहे, परमेश्वर वह आपके द्वारा नहीं कर सकता है जो आप उसे अपने द्वारा नहीं करने देंगे।

- उन्हें अपने आप को आगे बढ़ाने या पदोन्नति की चिन्ता नहीं करनी चाहिए, परन्तु जो परमेश्वर उनसे करने को कह रहा है उसे करने में संतोष पाना है और उसे अपने समय में उन्हें उठाने देना है (1 पतरस 5:6)।

प्रश्न और अभ्यास

1. सबसे ऊँचा अधिकार कौन है: परमेश्वर या उसका सौंपा हुआ अधिकार। इसलिए, यदि इन दो अधिकारों में विरोध हो तब आपको किसका कहना मानना होगा?

2. क्या हमें मसीह की देह में दूसरों को सिखाने और सेवा करने में उत्सुक होना चाहिए (याकूब 3:1)? जब हम यह चीजें करते हैं तब हमारा रवैया कैसा होना चाहिए (1 पतरस 4:11)?

3. जो अधीन हैं वे क्यों पाते हैं कि उनके पास अधिकार है (मत्ती 8:5-13)?

4. जिनकी आप अगुआई करते हैं क्या वे जो आप कहते हैं उसे गम्भीरता से और अपने लिए लेते हैं? क्या उन्हें लेना चाहिए? क्या वे दीनता से आपके अधिकार के अधीन होते हैं और उनके अगुवे के रूप में आपके उदाहरण का अनुकरण करते हैं? यदि नहीं तो क्यों नहीं?

5. क्या परमेश्वर आपको उसके साथ आपकी चाल के लिए जिम्मेवार ठहराएगा? क्या वह आपको उनके लिए जो आपके अधिकार के अधीन हैं उत्तरदायी ठहराएगा? क्या वह आपको, यदि उसने आपको इसके लिए बुलाया है तो, इस जिम्मेवारी से भागने के लिए जिम्मेवार ठहराएगा? क्या आप अपने परिणामों के लिए उत्तर देने को तैयार हैं?

6. क्या आप उन्हें जिनकी आप अगुआई करते हैं आपके और आपके परिवार और अधिकार में दूसरे लोगों के लिए प्रार्थना करने को प्रोत्साहित करते हैं (1 तीमुथियुस 2:1-4)?

7. झुँड को ले चलने और खदेड़ने में क्या अन्तर है? आप अपने झुँड की अगुआई कैसे करते हैं?

8. क्या मसीह की देह को ऐसे अगुवों की आवश्यकता है जो जब आवश्यकता होगी अपने सदस्यों में भक्तिपूर्ण सुधार और अनुशासन लाएँगे? क्या आप करेंगे?

9. व्यभिचार में पकड़ी गई स्त्री की ओर यीशु की प्रतिक्रिया क्या थी (यूहन्ना 8:3-11)? ये वचन परमेश्वर के अनुशासन के विषय में हम अगुवों को क्या सबक सिखाते हैं? क्या आपके पास नैतिक और आत्मिक अधिकार है?

10. क्या आप अगुआई में परमेश्वर या दूसरे लोगों या अपने आप को प्रसन्न करने के लिए हैं? याद रहे, जब तक एक सेवा परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए नहीं है, यह शक्तिहीन रहेगी?

11. क्या आप अपने अधिकार और नाम का बचाव करते हैं? याद रहे, दीनता कभी भी आत्मा-केन्द्रित नहीं बल्कि दूसरों की ओर संकेत करती है?

12. क्या सफलता और असफलता दोनों आपको परमेश्वर के पास ले जाते हैं? क्या उन्हें करना चाहिए (2 कुरिन्थियों 3:4-6)?

13. यीशु के समान, परमेश्वर के अगुवों को परमेश्वर का अधिकार दिखाना है। क्या आप करते हैं? क्या आप परमेश्वर के अधिकार के अधीन हैं, उसकी इच्छा की ओर समर्पित हैं और अपनी इच्छा करने के बजाय इसे पूरा कर रहे हैं। क्या आप परमेश्वर के वचन के अधिकार के अधीन होते और इसका पालन करते हैं? जो आप कर रहे हैं उसे करने का अधिकार आपको किसने दिया है?

14. क्या ऐसा कोई है जिसके पास आप सहायता और सलाह के लिए जा सकते हैं? क्या आपके पास लोग हैं जिन पर आप वास्तव में भरोसा कर सकते हैं? क्या ऐसे लोग हैं जिनके पास आप अपने रहस्य प्रकट कर सकते हैं और जो आपसे वैसे ही प्रेम करते रहेंगे? यदि नहीं तो क्यों नहीं?

एक प्रभावशाली और पक्की संगठित सेवा का दल कैसे बनाएँ

किसी भी बड़े काम में जो पूरा करने के योग्य है पाँच तत्त्वों की आवश्यकता होती है:

1. योग्य और प्रेरणात्मक लक्ष्य।
2. उपयुक्त कार्यकर्त्ता।
3. संगठनात्मक और प्रबंध का ढाँचा और निपुणताएँ।
4. उत्तमता नियंत्रण, मूल्याँकन, समायोजन।
5. बिक्री नीति।

किसी भी बड़े उद्यम में इन पाँच सिद्धान्तों की आवश्यकता पड़ती है। वे किसी भी व्यवसायी निगम या कम्पनी के मूल तत्त्व होते हैं। वे ऐसे सिद्धान्त हैं जिनका एक सेवा के दल का संगठन करने के लिए पालन करना आवश्यक है।

बड़े काम के लिए विविध प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता होती है
अगुआई में सफलता का एक अंश विभिन्न प्रकारों को सुव्यवस्थित रूप से मिलाना है। हर प्रकार की आवश्यकता है। हर एक की विभिन्न विशेषता, स्वभाव, आदि हैं। विभिन्न प्रकारों को प्रभावशाली तरीके से प्रबंध करना सफलता की माँग है।

ऊपर दिए तत्त्वों को मन में रखकर, आओ हम यीशु के कुछ चेलों पर और उनके चरित्र, स्वभाव और भूमिकाएं क्या हो सकती थीं उन पर नज़र डालें।

1. पतरस – वैचारिक - एक विचार वाला व्यक्ति
प्रकाशन पाया। मत्ती 16:13-19
महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछे। जानकारी इकट्ठी करना। मत्ती 17:4
तीन तम्बू बनाने की योजना। मत्ती 17:4
विशेषताएँ: उत्सुक, नए विचारों के लिए खुला। समझने में तेज।
उलटा: संगठक, नियंत्रक के सन्तुलन की आवश्यकता।

2. यूहन्ना – लोगों का व्यक्ति - कार्यकर्त्ता सम्बंध
वह यीशु के भीतरी दायरे में था। मत्ती 26:37
भोज के समय यीशु के करीब, उसका सिर यीशु की छाती पर था। यूहन्ना 13:23-25
यीशु ने अपनी माता को उसकी देखभाल में छोड़ा। यूहन्ना 19:26-27
उसका पौलुस के लिए प्रोत्साहन। गलातियों 2:9
विशेषताएँ: लोगों का आनन्द लेता, दूसरों के साथ ठीक से सम्बंघ बनाता। सहानुभूति रखनेवाला।
प्रेरक, सकारात्मक, उत्साही और विश्वासोत्पादक।

3. अन्द्रियास – संगठक
पतरस को मसीह के पास लाया। यूहन्ना 1:40-42
लड़के के खाने के बारे में यीशु को बताया। यूहन्ना 6:8-9
यूनानियों के लिए यीशु से मुलाकात का प्रबंध किया। यूहन्ना 12:20-26
यीशु से अतिरिक्त बातें पूछीं। मत्ती 13:3-4। "अन्द्रियास ने यीशु से अकेले में पूछा।"
सारी जानकारी पाना चाहता है।
विशेषताएँ: ब्योरे के लिए अतिसावधान, सतर्क, कार्य करने में धीमा।

4. थोमा - चोकस नियंत्रक
"संदेही थोमा"
यीशु से निर्देश और स्पष्टीकरण की आवश्यकता थी। यूहन्ना 14:1-3
विश्वास के लिए अपना कार्यक्रम बताता है। यूहन्ना 20:25
उसे कायल करने के लिए यीशु दोबारा प्रकट होते हैं। यूहन्ना 20:26-27

विशेषताएँ: सतर्क, धीमा कार्य करनेवाला, तथ्यों और आँकड़ों की आवश्यकता है।
उलटा: कभी-कभार अधिक सतर्क, परिवर्तन में विरोधी।

5. **पौलुस – उद्यमकर्त्ता**

पौलुस जो एक प्रमुख प्रेरित है, प्रारंभिक कलीसिया के प्रमुख उद्यमकर्त्ताओं (समर्थक, अग्रेसर, अग्रणी) में से एक था। उद्यमकर्त्ता शब्द का अर्थ है: "जो उद्यमशील है", अर्थात्, साहसी, ओजस्वी, निडर, उत्सुक, साहसिक और उपायकुशल। हमारे आधुनिक संसार में, यह शब्द व्यवसाय के क्षेत्र में उपयोग होता है। यह ऐसे व्यक्ति की बात करता है जो नए व्यवसायिक अवसरों की ताक में रहता है। एसा व्यक्ति जो नए और सफल व्यवसायी जोखिम बनाने के हर अवसर का लाभ उठाता है।
पौलुस आत्मिक संसार में एक उद्यमकर्त्ता था। वह "कलीसिया को कहीं भी और कब भी जब सम्भव हो स्थापित करने के व्यवसाय" में सम्पूर्ण-हृदय से समर्पित था। उसने यह काम हर उपलब्ध कुशलता और निपुणता के साथ किया।

<u>एक सेवा के दल को बनाने और कायम रखने में कुछ तत्त्व</u>

अ) एक स्पष्ट दर्शन, उद्देश्य और लक्ष्य की कल्पना करो।

बड़े आश्चर्य की बात है कि कितनी सारी कलीसियाओं को कुछ भी विचार नहीं है कि वे कहाँ "जा रहे" हैं। वे एक वार्षिक कार्यक्रम और कुछ अल्पकालिक लक्ष्यों के साथ हर वर्ष भटकते रहते हैं परन्तु उनके पास कोई भी स्पष्ट दीर्घकालिक लक्ष्य नहीं होता। कइयों ने कभी भी गम्भीरता से सोचा नहीं है कि वे दीर्घकाल में क्या प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनके पास कोई भी स्पष्ट तस्वीर नहीं है कि अगले 10 से 20 वर्षों में परमेश्वर क्या चाहता है वे किस प्रकार की कलीसिया बनें।

(आ) प्रारंभ से ही दर्शन को बताओ। योजना बनाना, विचार-विमर्श करना, नीति बनाना।

एक दल के बनने में यह बात बहुत सहायक होती है यदि सब सदस्य प्रारंभ से ही दर्शन के अंगभूत भाग हों। यदि उनकी प्रार्थनाएँ, विचार, मत और नीतियाँ दर्शन में लगी हों तब वे इसकी पूर्ति का एक अंगभूत भाग महसूस करते हैं। एक दल का योगदान, निवेश और वचनबद्धता होती है।

(इ) मिशन का एक स्पष्ट वक्तव्य लिखो

दर्शन को लिखने से यह अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है। इसे संक्षिप्त और व्यापक रूप से बताया जा सकता है। एक संक्षिप्त, एक पैराग्राफ का वक्तव्य होना चाहिए जो दर्शन की मूल बात को प्रकट कर सके। बाद में इस वक्तव्य को कुछ पैराग्राफस में बाँटा जा सकता है, जिनमें से हर एक दर्शन के विशेष भाग का वर्णन करता है। मूल वक्तव्य की प्रतिलिपियाँ, जिन्हें एक आदर्श-वाक्य में ढाला जा सकता है, कलीसिया और आफिस के आस-पास कई स्थानों पर लगाया जा सकता है जिससे दर्शन सदस्यों की नज़रों के सामने रहे।

(ई) अपने दल के सदस्यों को ध्यानपूर्वक चुनो

दल के विभिन्न सदस्यों को बड़ी सावधानी से चुनना चाहिए। उस दल का संगठन काफी हद तक दर्शन की विशेष प्रकृति और जो विशेष लक्ष्य जिन्हें पाने का आप प्रयत्न कर रहे हैं उन पर निर्भर होगा। दल के सदस्यों को उनकी विशेष और बेजोड़ निपुणताओं और विशेषताओं के लिए चुना जाना चाहिए। एक उचित सन्तुलन होना चाहिए जिससे निश्चित हो कि दर्शन के सब क्षेत्र पर्याप्त रूप से सम्मिलित किए गए हैं। सामान्यतः अपने दल में ऐसे सदस्यों को जोड़ना जिनमें उन कार्यों को करने की क्षमता है जो आपके विशेष गुण नहीं हैं। ऐसे लोगों को लो जो दल के कमज़ोर क्षेत्रों को बराबर करते हैं। <u>हर सम्भावित दल के सदस्य से तीन मूल प्रश्न पूछे जाने चाहिए:</u>

- क्या वे काम कर सकते हैं ? क्या वे उपयुक्त रूप से योग्य और कार्यक्षम हैं ?
- क्या वे काम करेंगे ? क्या वे मेहनत करने के लिए वचनबद्ध और इच्छुक हैं ?
- क्या वे दल में मैत्रिपूर्ण रूप से ठीक बैठेंगे ? क्या वे दल में काम कर सकते हैं ?

(उ) दल को "दर्शन अपना बनाने" के लिए प्रोत्साहित करो

यह महत्त्वपूर्ण बात है कि दल का हर सदस्य दर्शन की पूर्ति के लिए सम्पूर्ण रूप से वचनबद्ध है। उन्हें महसूस होना चाहिए कि वे दल के अंगभूत और अनिवार्य अंग हैं जो दर्शन की प्रभावशाली पूर्ति के लिए अत्यावश्यक हैं। हम इसे अकसर "दर्शन अपना

बनाना" कहते हैं। यह महसूस करना कि जो दर्शन परमेश्वर ने दिया है वह उनका भी उतना ही है जितनी किसी दूसरे का है। हर सदस्य को समझने में सहायता करो कि दर्शन की पूर्ति में उनका एक निहित स्वार्थ है। विभिन्न वैद्य प्रेरक देने का प्रयत्न करो।

(ऊ) हर व्यक्ति को पहचान दो और प्रशंसा करो और देखभाल करो

हमें दल के हर सदस्य के विशेष अनोखेपन को मन में रखना है और जिस काम में वे विशेष निपुणताएँ लाने वाले हैं उनके लिए प्रशंसा करो। अनेक बार एक दल का अगुवा किसी को उसके बेजोड़ चरित्र और व्यक्तित्व या आत्मिक वरदानों के लिए चुनता है और बाद में उससे बदलने और अगुवे के तरीके के अनुसार करने की अपेक्षा करता है। क्लोनस का एक दल बनाने का प्रयत्न मत करो जो सब एक से दिखते हैं।

(ए) दल में काम करने पर निरन्तर जोर देते रहो

हर अनोखे व्यक्ति की कीमत पहचानने के बाद, हमें दल की आत्मा की सुसंगत आवश्यकता पर जोर देना है। कोई व्यक्ति चाहे कितना भी प्रतिभाशाली क्यों न हो, वह अकेले जीत नहीं सकता है। जीत दल के हर सदस्य के प्रभावशाली, सुव्यवस्थित काम करने और प्रवाहित होने पर निर्भक होती है। कोई भी कप्तान अकेले नहीं जीत सकता है। अन्त में वह अपने दल जितना ही लाभदायक है। उसकी सफलता दल के सारे सदस्यों में सुव्यवस्था और सहयोग प्रोत्साहित करने और बनाए रखने की उसकी योग्यता से प्राप्त होती है।

(ऐ) सब समय परस्पर वफादारी पर जोर दो

वफादारी वह गुण है जो दल को इकट्ठा रखता है। यह अकसर आपसी विशेषता है। यदि आप अपेक्षा करते हैं कि आपके दल के सदस्य आपकी ओर वफादार हों, तो तुम्हें भी उनकी ओर हर समय वफादार रहना होगा। वफादारी वफादारी उत्पन्न करती है। यदि दल का अगुवा उसके सदस्यों की ओर प्रकट रूप से वफादार है तब वे भी वफादारी के उसी गुण से प्रतिक्रिया दिखाएँगे। एक दल जितनी वफादारी दिखाता है उसका सीधा जोड़ अगुवे की वफादारी से है। वह वही काटता है जो वह बोता है।

- परमेश्वर की ओर वफादारी।
- एक दूसरे की ओर वफादारी।
- उस काम और दर्शन की ओर वफादारी जिस के करने का हम प्रयत्न कर रहे हैं।

(ओ) सामूहिक उत्साह को प्रतोत्साहन दो। यदि दल जीतता है तो हम जीतेंगे।

बहुत सारे लोगों का उनकी प्राथमिकताओं के सबसे ऊपर उनका अपना कार्यक्रम होता है। यह ऐसा नहीं होना चाहिए, परन्तु अक्सर ऐसा होता है। व्यक्तिगत अभिलाषा दल के भले और दर्शन की पूर्ति के लिए त्याग दी जानी चाहिए। स्वार्थीपन को सम्पूर्ण की भलाई के लिए बलिदान कर देना चाहिए। हर सदस्य को जानना चाहिए, "यदि दल जीतता है तो मैं जीता हूँ। यदि यह हारता है तो मैं हारा हूँ।" हमें एक ऐसा उत्साह उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए जो इसकी प्रकृति में सामूहिक है और सामूहिक जीत पर अति प्रसन्न होता है। हर सदस्य में सम्बंध होने की भावना होनी चाहिए और एक जानकारी कि सच्चा लाभ पारस्परिक लाभ है।

(औ) एक परिवार की आत्मा मन में बैठाओ। भाईचारे के सम्बंधों को प्रोत्साहन दो।

एक सेवा का दल एक दल से कहीं अधिक है; यह एक परिवार है। असल में, मसीह की सारी देह एक परिवार है और एक स्थानीय कलीसिया को निश्चय ही ऐसा होना चाहिए। यह परिवारिक आत्मा तब ही चालू हो सकती है जब सेवा का दल ऐसे एक नमूने की वास्तवकिता और लाभ दिखाता है। प्रेरितों की सभा भाइयों को एक गुट था, हर एक दूसरे से प्रेम और देखभाल करते थे। हमें भी वैसे ही सम्बंध के लिए प्रयत्न करना है। ऐसे सम्बंध में सुरक्षा, शक्ति, प्रोत्साहन और संतोष होता है। ये तत्त्व सारी कलीसिया में फैल सकते हैं यदि वे सिखाए जाएँ और ऊपर दिखाए जाएँ।

(अं) एक सकारात्मक कार्य करने का वातावरण प्रोत्साहित करो

जीवन नकारात्मक और सकारात्मक दोनों चीजों से बना है और दोनों के सही समानुपात और सन्तुलन से जीवन संश्लेषण उत्पन्न होता है। परन्तु, दल के अगुवों के रूप में हमारा प्रमुख काम सकारात्मक पहलुओं पर जोर देना है। यही विजय और प्राप्ति की प्रकृति और वातावरण है। कोई भी दल उनके सामान्य काम और इसके सफलतापूर्वक पूर्ति की ओर एक सकारात्मक रवैया बनाए बिना प्रभावशाली तरीके से कार्य नहीं कर सकता है। दल की आत्मा या मनोदशा एक सकारात्मक वातावरण में बनती है हमें निश्चित करने का प्रयत्न करना है कि हमारे दल के सारे कार्यक्रम, हमारी योजना के सत्र, प्रार्थना के समय और संगति की सभाएँ एक सकारात्मक रवैया बनाते हैं। दल के हर सदस्य को उसके साथियों को समर्थन देने का प्रयत्न करना चाहिए।

(अ:) संगत जानकारी को नियमित बाँटते रहो

हर दल के सदस्य को जानना है कि उनके दल के प्रभावशाली कार्य के लिए वे एक अंगभूत और अत्यावश्यक अंग हैं। एक तत्त्व जो सम्बंध की यह भावना और मूल्यवान् होने की भावना बनाता है वह है निश्चित करना कि सूचनाएँ और जानकारी जो दल के सफल कार्य करने के लिए अत्यावश्यक है सब सदस्यों के साथ नियमित समयों पर बाँटी जाए। अगुवे को सदा निश्चित करना है वह नियमित सभाएँ बुलाता है जहाँ सबके साथ उपयुक्त जानकारी बाँटी जाती और विचार-विमर्श किया जाता है।

यह क्रिया एक दल को इकट्ठा जोड़ने और वचनबद्धता और भगीदारी का बड़ा स्तर प्रोत्साहित करने में सदा सहायता करता है। दल के सदस्यों में उनकी समझ को बनाने और उनकी प्रभावकारित को बढ़ाने में अत्यावश्यक और अर्थपूर्ण जानकारी बाँटने का अनुभव जरूरी है।

सीखने की प्रक्रिया के विषय में, एक विद्वान ने कहा है:

मैं सुनता हूँ .... और मैं भूल जाता हूँ।
मैं देखता हूँ .... और मैं याद रखता हूँ।
मैं भाग लेता हूँ .... और मैं समझता हूँ।

यह पता लगाने के लिए कि दर्शन किस प्रभावशाली तरीके से पूरा हो रहा है नियमित पुनर्विचार होने चाहिए। अधिक प्रभावकारिता को प्राप्त करने के लिए समय समय पर योजनाओं और नीतियों या कार्यकर्त्ताओं की भूमिकाओं को व्यवस्थित करना आवश्यक होगा।

व्यक्तिगत बढ़त और विकास को प्रोत्साहन देना

1. नियमित और संगत विकास की आवश्यकता पर जोर दो।
2. विकास के लिए प्रेरक प्रदान करो।
3. विकास के चरीकों और साधनों को प्रदान करो या सलाह दो।
4. परिपक्वता के चिन्हों को आदर्श बनाने का प्रयत्न करो।
5. दल के हर सदस्य को महसूस कराओ कि उसकी आवश्यकता है और वह प्रशंसा के योग्य है।
6. उन्हें उनके काम में संतोष प्राप्त करने का प्रयत्न करो।
7. मानव आवश्यकता के तत्त्वों को पहचानो। सम्मान, स्वीकृति, फलदायकता और काम में संतोष।

चेलों को प्रशिक्षण देने का प्रमुख उद्देश्य उन्हें अगुआई के विभिन्न कार्यों और जिम्मेवारियों को प्रभावशाली तरीके से निभाने के लिए पर्याप्त रूप से तैयार करना है। उस तैयारी का एक अत्यावशयक पहलू चेलों द्वारा करने के लिए विशेष कार्ये को उन्हें देना है। इसके लिए उनके पास सौंपने के सिद्धान्तों का मूल ज्ञान होना है।

जिम्मेवारी सौंपने की नीति

1. लक्ष्यों और दर्शन को स्पष्ट रूप से जान लो

बहुत सारी कलीसियाएँ कहीं नहीं जा रही हैं क्योंकि उन्हें उनके दर्शन और उस दर्शन को पाने में लक्ष्यों को सही-सही जानने के लिए समय नहीं दिया है। उनके लक्ष्य सदा निराकार और स्पष्ट होते हैं। उनमें आयाम और समय के ढाँचों की कमी होती है। उनकी इच्छा “बढ़ने” की है, परन्तु उन्होंने कभी भी पता नहीं लगाया है कि:

- कितना बड़ा?
- यह कैसे होगा?
- इसे प्राप्त करने के लिए हमें क्या ठोस कदम उठाने होंगे?
- इसकी कीमत क्या होगी?
- हम कीमत कैसे चुकाएंगे? (कीमत मुख्य रूप से आर्थिक नहीं है, परन्तु कार्यकर्त्ताओं, मेहनत, बलिदान आदि की है। यदि हमारे अभिप्राय सही होंगे तो परमेश्वर पैसों को देख लेगा)।

2. इसे लिख लो

इसे स्पष्ट और सरल बनाओ। अधिकार के ढाँचों के फ्लो चार्ट प्रदान करो। दर्शन को लिख लेने का काम सदा सहायक होता है। यह दर्शन के सारे पहलुओं पर प्रार्थनापूर्वक विचार करने में सहायता करता है। जैसे हम दर्शन को स्पष्य रूप से और संक्षिप्त में व्यक्त करने का प्रयत्न करते हैं तो, हम परियोजना के विषय में विस्तार से विचार कर सकते हैं। इससे हमें जो हम करने का प्रयत्न

कर रहे हैं उस पर एक वास्तविक पकड़ और संदर्श मिलता है। इससे हमें इसकी पूर्ति की मूल आवश्यकताओं पर और हर पहलू पर विचार करने में सहायता मिलती है जो इसके अन्तिम प्राप्ति के लिए आवश्यक होगा।

3. विशेष जिम्मेवारियों को सौंपो और काम का विवरण लिख कर दो

जिम्मेवारियों का सौंपना अधिकार देने से सदा पहले होना चाहिए। जिम्मेवारी सौंपना तब ही हो सकता है जब विशेष आवश्यकताओं को स्पष्ट रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसे सदा लिखित रूप में करना और सबकुछ जिसकी आवश्यकता है उसके काम का सम्पूर्ण विवरण देना अच्छा होगा।

4. पर्याप्त अधिकार सौंपो

अधिकार है व्यक्ति की जिम्मेवारियों के भीतर कार्य करने का सौंपा गया हक, अर्थात् जो काम दिया गया है उसे करो। दिए गए काम को प्रभावशाली तरीके से करने के लिए आवश्यक साधनों, व्यक्तियों और साजो-समान को प्राप्त करना।

5. पैरामीटर स्पष्ट रूप से निर्धारित करो

जब कभी भी एक व्यक्ति को एक काम सौंपा जाता है, तब उसके साथ स्पष्ट मार्गदर्शन भी उसे दिए जाने चाहिए जिनके भीतर रहकर वह कार्य कर सकता है। उन्हें समझना चाहिए कि वे उनके काम के पैरामीटर्स के भीतर कार्य कर सकते हैं और उनके बाहर नहीं जा सकते हैं।

6. उपयुक्त उत्तरदायित्व माँगो

जिम्मेवारी और अधिकार सौंपने के बाद, आपको एक साधन भी प्रदान करना है जिसके द्वारा व्यक्ति हो रही प्रगति के लिए उत्तरदायी रखा जा सकता है। यह अकसर साप्ताहिक कर्मचारी सभा में होता है, जब दल के सदस्य को उनके कार्य के क्षेत्र में हुई प्रगति पर एक रिपोर्ट देनी होती है।

7. काम के विवरण के मार्गदर्शन के भीतर पहल-शक्ति को प्रोत्साहित करो

काम के पैरामीटर्स बताने और उपयुक्त अधिकार देने के बाद, व्यक्तिगत पहल-शक्ति को उपयोग करने की गुँजाइश दी जानी चाहिए। आपको एक व्यक्ति की निपुणताओं और योग्यताओं की कीमत का पता तब ही चलेगा जब आप उनको इन योग्यताओं को उपयोग करने का पर्याप्त अवसर दोगे।

8. योग्य निरीक्षण निर्धारित करो

अच्छी अगुआई की काफी सफलता योग्य निरीक्षण प्रयोग करने की योग्यता पर निर्भर करता है। जानना कि सब समय क्या हो रहा है और समय समय पर आवश्यक व्यवस्था करना और परिवर्तन लाना जिनकी जरूरत पड़ती है। यह निरीक्षण जिनको आपने जिम्मेवारी सौंपी है उनके काम में हस्तक्षेप किए बिना की जानी चाहिए। निरीक्षण का एक तरीका स्थापित किया जाना चाहिए जो सम्पूर्ण, योग्य, निर्णायक है और फिर भी अप्रत्यक्ष है। इसके लिए रिपोर्टस पाने के कोई स्थापित तरीके की आवश्यकता होगी। एक नित्यक्रम जिसके द्वारा हर दल का सदस्य उनके किए काम पर नियमित रिपोर्ट देता रहेगा। इनका विश्लेषण किया जाना और उन पर टिप्पणी की जानी चाहिए, सकारात्मक और शोधक दोनों रूप से।

9. व्यक्तियों के साथ अकेले में और दल के सदस्यों के साथ इकट्ठे नियमित जानकारी प्राप्त करने के सत्र आयोजित करो

दल के हर सदस्य के साथ नियमित और संगत सम्पर्क बनाए रखा जाना चाहिए।
नियमित दल की सभाएँ भी आवश्यक हैं जहाँ दल के हर सदस्य को उनके काम की स्थिति की रिपोर्ट देने का अवसर मिलता है। ऐसी सभाएँ सम्बंध की भावना को जो हर दल के सदस्य को होनी चाहिए, बनाने और प्रोत्साहित करने के लिए आवश्यक हैं।

10. विजयों को बताओ और मनाओ

एक तत्त्व जो अच्छी दल की भावना को बनाती है, मिलकर विजयों को प्राप्त करना है। यह आपसी सम्मान को प्रोत्साहन देती है। इसलिए विजयों को और उपलब्धियों को इकट्ठे मनाना लाभकारी है। इस सत्य पर जोर दो कि यह विजयें मिलकर काम करने से ही प्राप्त हुई हैं और दल का हर सदस्य कीमती और प्रशंसा के योग्य है। सब को विजय का मीठा स्वाद लेने दो।

11. अप्राप्ति को पहचानों और उसके लिए रचनात्मक चिन्ता प्रकट करो

विजयों को मिलकर मनाने के साथ-साथ, हमें उन समयों को भी पहचानना और स्वीकार करना है जब हम अपने तात्कालिक लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल हुए हैं। हमें अप्राप्ति के कारणों का विश्लेषण करना चाहिए और कदम उठाने चाहिए ताकि कमज़ोरियों

को निकाला जा सके। इन कदमों को सदा एक सकारात्मक और रचनात्मक तरीके से ही लिया जाना चाहिए, और समस्याओं और कमज़ोरियों पर नहीं परन्तु समाधानों पर जोर देना चाहिए।

12. सदस्यों को विश्राम और मनोरंजन अवकाश लेने के लिए प्रोत्साहित करो

हम ने अपने लक्ष्यों तक पहुँचने के लिए एक मजबूत वचनबद्धता और एक स्वास्थ्य इच्छा होने की आवश्यकता पर जोर दिया है। इस अध्याय को समाप्त करने से पहले, मैं इस बात पर भी जोर देना चाहता हूँ कि कार्यकर्त्ता नियमित अवकाश लें और विश्राम और स्वास्थ्यलाभ के लिए समय निकालें। दल के कुछ सदस्य अत्यधिक काम करनेवाला रवैया बना लेते हैं, और उनके काम के लिए सबकुछ बलिदान करते हैं। हमें एक सन्तुलित तरीका अपनाना चाहिए जो काम के लिए एक मजबूत वचनबद्धता के साथ-साथ उचित अवकाश और स्वास्थ्यलाभ की आवश्यकता को मानता है।

दल के अगुवों को न केवल इस विचार को सिखाना है, बल्कि उन्हें उनके सहयोगियों के सामने इसे आदर्श भी बनाना है। उनके सामने एक अच्छा उदाहरण पेश करना है। यीशु ने ऐसा किया था। उसने बारम्बार अपने चेलों को 'आओ और विश्राम करो' कहा था।

अपने परिवार के साथ उत्तम समय बिताने की आवश्यकता पर भी जोर दिया जाना चाहिए। कुछ अगुवों को लगता है कि अपनी पत्नी/पति और बच्चों के साथ समय बिताकर वे कीमती समय गँवा रहे हैं परन्तु ऐसा सच नहीं है। मैं ने कई पास्टरों को देखा है जो 'संसार को जीत रहे हैं परन्तु उनके परिवार को खो रहे हैं'। अपने काम के साथ इतना समय बिता रहे हैं कि उनके अपने परिवार के साथ बिताने को समय नहीं है। परिवार वाले इससे नाराज़ होते हैं जिन्हें लगता है कि उनकी कोई कीमत नहीं है। इसका परिणाम टूटा हुआ परिवार होता है, एक ऐसा संकट जो नहीं होना चाहिए!

दल में सेवाः विचार और सामर्थ्य

दल में सेवा जो बाइबल का नमूना है।
कलीसिया में आजकल अनेक अगुवे दल में सेवा के महत्त्व को नहीं मानते हैं। दल में सेवा में दो या अधिक अगुवे मिलकर एक अकेले आत्मिक काम को पूरा करते हैं। यह परमेश्वर के पुरुषों या स्त्रियों का एक समूह है जो परमेश्वर के राज्य के लिए आत्मा और उद्देश्य में एक हुए हैं।
दुर्भाग्यवश, कई अगुवों ने दल के प्रयत्न के लिए दूसरों के साथ कभी भी सहयोग नहीं दिया है। कई वर्षों तक, 'एक व्यक्ति बैंड' सेवाएँ कलीसिया पर छाई रही हैं, अर्थात् एक व्यक्ति सारी जिम्मेवारियों को उठाता है और सारा काम आप करता है। परमेश्वर ने कभी नहीं चाहा कि एक व्यक्ति स्थानीय कलीसिया या प्रमुख सेवा का सारा दबाव या जिम्मेवारी आप उठाए। कई पुरुष ऐसे एक बोझ के नीचे शारीरिक, मानसिक, नैतिक या भावात्मिक रूप से ढेर हुए हैं। इस व्यावहारिक कारण, और नैतिक, सिद्धान्तीय और आत्मिक कारणों से परमेश्वर ने सेवाओं को ठहराया है कि वे दलों में काम करें।

दल में सेवा बाइबल का नमूना है। नीचे दी गई सूची में नए नियम के दल की सेवाओं के कुछ उदाहरण दिए हैं:

- यीशु और उसके चेले (सुसमाचार)।
- पतरस और यूहन्ना (प्रेरितों)।
- फिलिप्पुस और फिर पतरस और यूहन्ना (प्रेरितों 8)।
- पतरस और कुछ भाई (प्रेरितों 10)।
- पौलुस और बरनबास (प्रेरितों 13, 14)। (प्रेरितों 13:13 पौलुस और उसके साथी)।
- यहूदा और सीलास पौलुस और बरनबास के साथ जुड़ते हैं (प्रेरितों 15)।
- बरनबास और मरकुस इकट्ठे सफर करते हैं और सीलास पैलुस के साथ जाता है (प्रेरितों 15)।
- तीमुथियुस सीलास के साथ जुड़ता है (प्रेरितों 16)।
- पौलुस प्रिस्किल्ला और अक्विला को अपने साथ ले जाता है (प्रेरितों 18)।
- तीमुथियुस और इरास्तुस को मकिदुनिया भेजा जाता है (प्रेरितों 19)।
- एशिया जाते समय, पौलुस के साथ सोपत्रुस, अरिस्तर्खुस, सिकुन्दुस, गयुस, तीमुथियुस, तुखिकुस और त्रुफिमुस थे (प्रेरितों 20)।

दल में सेवा का उद्देश्य और लाभ

- दल में सेवा देह सेवा के सिद्धान्त का सजीव प्रदर्शन प्रदान करती है (1 कुरिन्थियों 12)।
- आज के दिन सत्य को सिखाने में, एक से अधिक आवाज उसी बात को बोलती है तो बेहतर प्रभाव पड़ता है (व्यवस्थाविवरण 17:6; मत्ती 18:16; 2 कुरिन्थियों 13:1)।
- एक दल एक सभा या सभाओं के लिए अधिक प्रभावशाली तरीके से प्रभु का मन का पता लगा सकता है और परमेश्वर की इच्छा की पूर्ति के लिए प्रार्थना कर सकता है (मत्ती 18:19)।
- दल में सेवा कहीं अधिक प्रभावशाली होगी और बड़े परिणाम पाएगी (सभोपदेशक 4:9-12)।
- दल में सेवा सेवा में सुरक्षा और सन्तुलन की बड़ी सम्भावना प्रदान करती है (नीतिवचन 11:14)।
- दल में सेवा शत्रु द्वारा लगाए अनैतिक फंदों के विरुद्ध रक्षा करती है, जिसने कई व्यक्तिगत सेवाओं को फँसाया है।
- दल में सेवा सेवाओं के लिए भी शक्ति और प्रोत्साहन प्रदान करती है (निर्गमन 17:12)। दूसरों के साथ सेवाएँ प्रेरणा की भावना और आत्मिक वृद्धि प्रदान करती हैं। बड़ी संगति बड़ी शक्ति भी प्रदान करती है।
- जब कम अनुभव वाली सेवाएँ अधिक परिपक्व सेवाओं के साथ काम करती हैं तब शिष्यता और प्रशिक्षण की प्रक्रिया मजबूत होती है।

दल में सेवा का सिद्धान्त और अभ्यास

दल में सेवा की सफलता की सबसे पहली कुंजी प्रभु के साथ मिलकर काम करना है (मरकुस 16:20)। यदि प्रभु प्रयत्न में नहीं है तो, यह निश्चय ही असफल होगा, या कम से कम, थोड़ी सी सफलता के बाद गायब जो जाएगा। इसलिए, सबसे पहले, हर सदस्य प्रभु के मन को खोजे, और सब को निश्चयी होना है कि कार्य उसकी इच्छा है। इसमें सेवा के लिए दर्शन या लक्ष्य भी सम्मिलित होना चाहिए। केवल तब ही एक दल को बनाना उपयुक्त होगा।

दल में सेवा की सफलता की दूसरी कुंजी वचनबद्धता है। सफलता की मात्रा हर सदस्य की वचनबद्धता की मात्रा के अनुरूप होगी। दल को, बिना किसी चीज को रुकावट डालने देने या ध्यान भंग किए, अपने आप को परमेश्वर के उद्देश्य को पूरा करने के लिए देना है। और, हर सदस्य अपने आप को दूसरे के साथ वचनबद्ध हो क्योंकि यह उनके लिए उसके बढ़ते प्रेम की बुनियाद होगा।

सफलता की एक और कुंजी दल के सदस्यों का व्यक्तिगत और सामूहिक भक्तिपूर्ण जीवन है। प्रभु की सेवा लोगों की सेवा को नापेगा। एक संगत, उत्सुक और सजीव प्रार्थना का जीवन दल में सेवा के लिए अत्यावश्यक महत्त्व का है। "जो दल मिलकर प्रार्थना करता है मिलकर सेवा करेगा।"

अगुआई के सिद्धान्त को दल में सेवा में पहचाना जाना चाहिए। हालाँकि कोई भी सदस्य दूसरे से अधिक महत्त्व का नहीं है, फिर भी व्यवस्था और कार्यकुशलता की खातिर, किसी को अगुआई और अन्तिम जिम्मेवारी लेनी चाहिए। इस नियम को पहचानने में लागू करने में असफलता संकट ला सकता है।

पिछले सिद्धान्त से करीब से जुड़ी हुई, एक दल के असली कार्य करने के लिए एक बहुत बड़ी कंजी है: अधीनता का सिद्धान्त (इफिसियों 5:21)। बारम्बार, एक दल के सदस्य से सच्ची अधीनता की माँग की जाती है, और जब तक उस में अधीनता की भावना नहीं होगी, वह दल में कार्य करने में बहुत कठिनाई अनुभव करेगा। केवल एक सदस्य यदि वह दूसरे सदस्यों की भावनाओं की परवाह किए बिना अपने मार्ग पर जाने का फैसला करता है तो दल के प्रयत्न और भावना को बहुत ही कम कर देगा।

दल में सेवा के लिए मजबूत व्यक्तिगत सम्बंधों के विकास में सफलता अत्यावश्यक है। एकता बहुत जरूरी है। इस क्षेत्र में खराबी के कारण कई दल के प्रयत्न कुचले गए हैं। इस क्षेत्र में वार्तालाप के सिद्धान्त बड़े लाभ के हैं, और हमें ईर्ष्याओं, प्रतिद्वन्द्वों, कटुताओं, एक आलोचक आत्मा और शिकायत के विरुद्ध सावधान रहना है।

हर सदस्य अपने आप को निरन्तर याद दिलाता रहे कि वह परमेश्वर की इच्छा से दल का सदस्य है, और इसलिए, उसे अपने व्यक्तिगत अधिकार त्यागने हैं और दल में दूसरी सेवाओं को सहयोग देने और सहायता करने के लिए सबकुछ जो वह कर सकता है करना है।

पवित्रशास्त्र इस सत्य का समर्थन करता है कि परमेश्वर सब मसीही अगुवों से चाहता है कि वे उनके काम में उन में से कुछ प्रकार की सेवा में सम्मिलित हों। किस प्रकार की सेवा के दल में हर अगुवा कह सकता है वह इस समय उसका एक अंश है? स्थानीय कलीसिया और प्रमुख सेवाओं में दल में सेवा की पुनःस्थापना के साथ, कलीसिया परमेश्वर के लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करने में अधिक सुरक्षा से और प्रभावशाली तरीके से कार्य कर सकती है।

एक मौजूदा सेवा को दल में सेवा में ले जाना

नई सेवाओं के मामले में, दल में सेवा के विश्वास के कार्य में एक नई सेवा का आरम्भ होना सम्मिलित हो सकता है। फिर भी, कभी-कभी, हो सकता है एक अगुवा एक स्थापित सेवा में काम कर रहा हो, और दल में सेवा में आना चाहे। इस समय पर, वह सह-अगुवों को चुनने की प्रक्रिया में से गुज़रेगा। यह एक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन है, और इसे एक मापे हुए, व्यवस्थित तरीके से होना चाहिए ताकि उलझनों और शत्रु के सेवा पर आक्रमणों से बचा जाए।

नीचे दिए प्रश्न अगुवे की उसके सम्भावित सह-अगुवों और उनके योगदान, और दल के कार्य करने के सम्बंध की प्रकृति का मूल्याँकन करने में सहायता कर सकते हैं। ये प्रश्न एक ऐसी प्रक्रिया के लिए प्रारंभिक साधन हैं जिसमें काफी समय और प्रार्थना लगेगी। अगुवे को इस प्रकार की सेवा में सक्रिय रूप से जाने से पहले उसके सेवा के दल की विस्तार से समझ प्राप्त कर लेनी चाहिए।

एक चरवाहे को उसके सह-मजदूर कैसे चुनने चाहिए?

- चरित्र द्वारा और केवल व्यक्ति की योग्यता से नहीं।
- बहुत प्रार्थना और परमेश्वर को खोजने के बाद।
- व्यक्ति(यों) के विषय में दूसरों की भावनाओं की जाँच करने के बाद।
- यीशु मसीह की ओर उनके समर्पण के द्वारा।
- उनकी विशेष सेवा और बुलावे के द्वारा।

- खोए हुओं के लिए उनके प्रेम के द्वारा।
- परमेश्वर के लोगों के लिए उनके प्रेम के द्वारा।
- बिना दिखे, सेवा करने की उनकी इच्छा के द्वारा।
- आत्मा में उनकी एकता के द्वारा।

एक चरवाहे को सह-अगुवों को कैसे नहीं चुनना चाहिए?

- उनकी योग्यता पर और चरित्र पर नहीं।
- जब कलीसिया में एक स्थान भरने के दबाव में होते हैं।
- जब उसे अपना स्तर या परमेश्वर के वचन के स्तरों के साथ समझौता करना पड़ता है।
- क्योंकि सह-अगुवा कलीसिया को बहुत सा पैसा देगा।
- क्योंकि उनकी शैक्षिक योग्यता बहुत अधिक है।
- क्योंकि वे जवान हैं, और बहुत काबिल और तेज हैं।
- क्योंकि यदि आपने उन्हें तुरन्त इस्तेमाल नहीं किया तो वे कलीसिया छोड़ने की धमकी देते हैं।
- क्योंकि दूसरे क्षेत्रों में उनका प्रतियोगी स्वभाव है।

एक चरवाहा उसके सह-मजदूरों को कैसे प्रशिक्षण दे?

- उन्हें निर्देश देकर, उलझन देकर नहीं।
- उन्हें प्रोत्साहन देकर, दण्डाज्ञा देकर नहीं।
- उन्हें सेवा देकर, गुलामी देकर नहीं।
- उन्हें प्रेरणा देकर, इनकार देकर नहीं।
- उन्हें अनुशासन देकर, उनकी परवाह न करके नहीं।
- उन्हें माध्यम देकर, नियंत्रित करके नहीं।
- उन्हें छोड़कर, बाँधकर नहीं।
- उन्हें आशा देकर, निराशा नहीं।

एक चरवाहे को उसके सह-मजदूरों के साथ कैसे काम करना चाहिए?

उसकी अपनी सेवा की ताकतों को पहचान कर।
उसकी अपनी सेवा की सीमाओं और कमज़ोरियों को पहचान कर।
दल के दूसरे सदस्यों की ताकतों को पहचान कर।
एक सेवक का हृदय और आत्मा बनाए रखकर।
एक दूसरे के साथ परस्पर सम्बंध बनाकर।
दल में परिवार की भावना बनाए रखकर।
एक क्षमा करनेवाली भावना बनाए रखकर और प्रोत्साहित करके।
दल के साथ एक सच्चा और खुला रवैया बनाकर।
एक शिक्षणीय आत्मा बनाए रखकर।
अच्छा संचार बनाए रखकर।

एक सेवा के दल के सदस्य का चरित्र

<u>नीचे दिए गुण वे हैं जिनमें व्यक्ति को परिपक्व होना चाहिए:</u>

1.	नया जन्म पाया	यूहन्ना 3:3-7; रोमियों 6:23
2.	आत्मा से निरन्तर भरते रहना	इफिसियों 5:18
3.	आत्मा के फल दिखाना; परमेश्वर के प्रेम में जड़ पकड़ना, स्थापित होना और प्रेरित होना	गलातियों 5:22-25 इफि. 3:16-19; 1 कुरिं. 13:1-8
4.	आत्मा के वरदान प्रकट करना	1 कुरिं. 12:7-11
5.	प्रभु के कार्यक्रम से चलना	1 शमू. 16:7; यूहन्ना 5:19
6.	सेवा पाने और देने के लिए खुला, शिक्षणीय, निरन्तर बढ़ने के लिए खुला और भावात्मिक रूप से सम्पूर्ण	नीतिवचन 15:5, 32 मत्ती 7:3-5 फिलि. 2:12-13
7.	परमेश्वर के वचन में अच्छी तरह स्थापित	1 तीमु. 4:6-7 2 तीमु. 2:15; 3:16
8.	एक स्थानीय कलीसिया का कार्यशील सदस्य	इब्रा. 10:25; रोमि. 12:4-5
9.	एक आज्ञाकारी, अ-विरोधी हृदय उत्तरदायित्व और भक्तिपूर्ण अधिकार को समझता	इफि. 5:21; इब्रा. 13:17 1 शमू. 15:22-23; मत्ती 8:9
10.	सेवा में सम्प्रदाय के रूप से अपक्षपाती	1 कुरिं. 3:3-11
11.	सेवक का हृदय, बलिदान का रवैया सम्पूर्ण रूप से प्रभु के लिए उपलब्ध, धैर्य	इब्रा. 12:1-2; रोमियों 12:1 2 तीमु. 2:3-6
12.	पवित्र आत्मा की प्रेरणाओं की ओर संवेदनशील और आज्ञाकारी, दूसरों के लिए प्रार्थना करने में उसकी इच्छा करने के लिए उसके अभिषेक के लिए उस पर भरोसा करना	रोमि. 12:2; 2 तीमु. 1:6-7 यूहन्ना 14:12-14 मरकुस 16:17-20
13.	निन्दा/आलोचना नहीं करनेवाला, दयालु	यशायाह. 11:2-4; 2 कुरिं. 1:4
14.	"हे प्रभु, मुझे जाँच" सिद्धान्त में चलता है क्षाम करना एक जीवनशैली	भजन 139:23-24 इब्रानियों 12:15
15.	अत्यावशयक व्यक्तिगत प्रार्थना का जीवन - परमेश्वर के साथ घनिष्ठता	1 थिस्स. 5:17; इफि. 6:18
16.	जानो कि आप मसीह में कौन हैं	रोमि. 8:1; 1 यूहन्ना 4:4 इफि. 1:3 – 2:10

नए नियम में दल में सेवा

नए नियम में दल में सेवा के विचार के संदर्भ:

1. यीशु और बारह प्रेरित (मत्ती 10)। यीशु ने उन्हें हर शहर में दो-दो करके भेजा।
2. यीशु ने 70 को भी, हर शहर में भेजा (लूका 10:12)।
3. पतरस और यूहन्ना ने एक साथ काम किया (प्रेरितों 3)।
4. सामरिया में फिलिप्पुस, फिर पतरस और यूहन्ना (प्रेरितों 8)।
5. पतरस और छः दूसरे भाई (प्रेरितों 10-11)।
6. पौलुस और बरनबास ने एक साथ काम किया (प्रेरितों 13:13-14) पौलुस और उसके साथियों का वर्णन है।
7. यहूदा और सीलास प्रेरितों 15 में पौलुस और बरनबास के साथ जुड़ते हैं।
8. बरनबास और यूहन्ना मरकुस साथ काम करते हैं (प्रेरितों 15)।
9. पौलुस और सीलास साथ कम करते हैं (प्रेरितों 15)।
10. तीमुथियुस, पौलुस और सीलास के साथ जुड़ता है (प्रेरितों 16)।
11. पौलुस प्रिस्किल्ला और अक्विला को अपने साथ काम पर लगाता है (प्रेरितों 18)।
12. तीमुथियुस और इरास्तुस को पौलुस मकिदुनिया भेजता है (प्रेरितों 19)।
13. पौलुस के साथ प्रेरितों का दल जो एशिया गया था, सोपत्रुस, अरिस्तर्खुस, सिकुन्दुस, गयुस, तीमुथियुस, तुखिकुस और त्रुफिमुस थे (प्रेरितों 20)।
14. फिलिप्पी में बिशप और डीकन साथ मिलकर काम करते थे (फिलिप्पियों 1:1)।
15. सभा में प्रेरित, एल्डर और भाई थे (प्रेरितों 15:1-2, 17-18)।
16. क्रेते में तीतुस के साथ एल्डर (तीतुस 1:5)।
17. इफिसुस में तीमुथियुस के साथ एल्डर (प्रेरितों 20:17)।
18. अन्ताकिया में भविष्यद्वक्ता और शिक्षक थे (प्रोरितों 13:1-4)।

दल में सेवा के व्यावहारिक सिद्धान्त

जैसा दल का प्रमुख होगा, वैसा ही दल भी होगा। वह जो भी कहलाता हो, वरिष्ठ, एल्डर या मिनिस्टर, या जो भी उपाधी उसकी हो, दल की सेवा की सफलता में वह एक कुंजी है। इसलिए, अगुवे का बाइबल के सिद्धान्तों के अनुसार काम करने का महत्त्व है।

1. उसे उदाहरण होना है जिसका दल अनुकरण कर सके (1 कुरिन्थियों 11:1; इफिसियों 5:2; फिलिप्पियों 4:9)। पौलुस ने कहा कि विश्वासों ने उसमें उन चीजों को देखा, सुना, पाया, और सीखा था जिन चीजों को उनको करना था। एक अगुवे को उसके परिवार में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक, सिद्धान्तीय रूप से उदाहरण होना है। उसे सब समय वचन के स्तर के सृदश होना चाहिए (रोमियों 12:1-2)।
   - सिद्धान्त के अनुसार अगुआई करना - जो आप विश्वास करते हो।
   - नियम के अनुसार अगुआई करना - जो आप कहते हो (भजन 119:4, 168)। नैतिक व्यवहार का नियम।
   - व्यवहार के अनुसार अगुआई करना - जो आप करते हो (मत्ती 23:1-3)। पाखंडी नहीं।
   - व्यक्तिगत उदाहरण के अनुसार - जो आप हैं (फिलिप्पियों 3:17; 1 पतरस 5:3)। दूसरों के अनुकरण के लिए एक नमूना (फिलिप्पियों 4:9; 2 तीमुथियुस 3:10)।

2. उसमें अधिनायकीय आत्मा नहीं होनी चाहिए (लूका 22:24-27; मरकुस 10:42-45; 2 कुरिन्थियों 1:24; दानिय्येल 5:19)। राष्ट्रपति या किसी राजनीतिक पद के लिए चुनाव लड़ने के समान नहीं। प्रभुता, तानाशाही, अधिकारवादी, आदि नहीं।

   किसी ने एक बॉस और एक अगुवे में अन्तर बताए हैं:
   1) एक बॉस लोगों को दौड़ाता है - एक अगुवा उनको सिखाता है।
   2) एक बॉस अधिकार पर निर्भर होता है - एक अगुवा सद्भावना पर निर्भर होता है।
   3) एक बॉस डर पैदा करता है - एक अगुवा उत्साह पैदा करता है।

4) एक बॉस काम देता है - एक अगुवा गति निर्धारित करता है।
5) एक बॉस आदेश देता है - एक अगुवा सुझाव देता है।
6) एक बॉस खराबी के लिए दोष गलाता है - एक अगुवा खराबी ठीक करता है।
7) एक बॉस लोगों को धकेलता है - एक अगुवा लोगों को समझाता है।
8) एक बॉस शिकायतें पाता है - एक अगुवा सहयोग पाता है।
9) एक बॉस कहता है “जाओ” - एक अगुवा कहता है “आ चलें”।
10) एक बॉस मशीनें बनाता है - एक अगुवा लोगों को बनाता है।
11) संसार को अगुवों की आवश्यकता है - बॉस किसी को नहीं चाहिए!

3. उसमें एक सेवक का हृदय होना चाहिए (मरकुस 10:45; 1 राजा 12:7-8)। यदि कोई एक राजा के समान एक सेवक के हृदय से शासन करेगा, तो लोग उसकी सेवा करेंगे।

4. उसे एक ऐसा व्यक्ति होना है जिसके लिए ही नहीं बल्कि जिसके साथ दूसरे काम कर सकते हैं। कई सेवकों के साथ लोग काम नहीं कर पाते हैं क्योंकि सेवक उनके स्थान में असुरक्षित अनुभव करने लगते हैं और फिर उनको निकाल देते हैं (यूहन्ना 13:3; 1 तीमुथियुस 1:12)।

5. जैसे यीशु ने बारह प्रेरितों के साथ किया था, उसे दल के विकास में गलतियों के लिए गुँजाइश रखनी है।

6. उसे दल पर भरोसा हेना चाहिए और उनकी सच्चाई या अभिप्रायों पर संदेह प्रकट नहीं करना है।

7. उसे जिम्मेवारियाँ और अनुकूल अधिकार देने का इच्छुक होना चाहिए (मरकुस 13:34)। फिर भी, उत्तरयादित्व माँगना है।

8. उसे दल के सदस्यों को दिए अपने आदेश की श्रँखला का सम्मान करना है।

9. उसे अपने सम्मान को बाँटने का इच्छुक होना चाहिए और जब दूसरे सफल होते हैं तो ईर्ष्या नहीं करनी है (गिनती 27:20; 11:14-17)।

10. उसे दल की सेवा को होने देना है और उसे दबाना नहीं है।

11. उसे दल के सदस्यों को डाँटने, सामना करने और सलाह देने का इच्छुक होना है और इसे दूसरों को करने के लिए नहीं देना है। समस्याएँ जब छोटी ही हैं उनसे निपटो।

12. उसे संचार के माध्यमों को सदा साफ और खुले रखना है। दल के काम में संचार का टूट जाना एक सबसे बड़ी समस्या का कारण है। बिना अपमान महसूस किए, या रक्षात्मक हुए मुक्त भाव से बोलने की आवश्यकता।

13. उसे दल की सेवा में ध्यान रखने के लिए तीन प्रमुख समस्याओं को पहचानना है:
अ) अशुद्ध प्रयोग - अयोग्य व्यक्ति, प्रशिक्षित नहीं, दूसरों को जिम्मेवारी के लिए प्रशिक्षित करने में असफलता।
आ) अनुपयोग - आप स्वयं इसे अच्छा कर सकते हैं और दूसरो को सम्मिलित नहीं करना।
इ) दुरूपयोग - सबसे अधिक योग्य और प्रतिभाशाली लोगों को अधिक काम देना।

14. उसे दल के सब सदस्यों को विचार, नियम और व्यवहार द्वारा एक दल में बनाना है।

15. उसे बातचीत, विचारों, निर्णयों और दर्शन की एकता बनाए रखना है (भजन 133)।

16. उसे दल के सदस्यों के साथ सम्बंध बनाने हैं। सम्बंध यूँ ही नहीं बन जाते हैं। उन्हें बनाना पड़ता है। सम्बंधों का नियम नहीं बनाया जा सकता; सम्बंध नहीं बनाए जाने योग्य से सम्बंध नहीं बना सकते।
अ) पहले सम्बंध परमेश्वर के साथ आरंभ होता है (1 यूहन्ना 1:7-9)।
(आ) सम्बंध दूसरों के साथ बनते हैं (1 यूहन्ना 1:5-6)। ऊपर, फिर समतल।
(इ) सम्बंध एक दूसरे की ओर वचनबद्धता से पहले आते हैं।

(ई) सम्बंध बनाए रखने पड़ते हैं। वही चीजें जो सम्बंध बनाती हैं, बनाए रखने में भी सहायता करती हैं। एक इमारत में, एक ईट दूसरी छः ईटों से ही सम्बंध बना सकती है और यह सारी इमारत के लिए सच है।

(उ) सम्बंध आत्मा में है; आत्मा में एक; "भले या बुरे के लिए, जब तक मृत्यु हमें अलग न करे" की वचनबद्धता।

17. उसे दल की ओर वफादार रहना है, जब वे गलती करें तब भी। वह अकेले में डाँटता है। वह अपने साथी एल्डरों का समर्थन करेगा और उन पर आक्रमण नहीं करेगा, वैसे ही जैसे वह बच्चों को माता-पिता पर आक्रमण नहीं करने देगा।

18. उसे अपने आप-पास मजबूत लोगों को रखना चाहिए जो उसकी कमज़ोरियों को मजबूत करें और उलटे भी; हाँ में हाँ मिलानेवालों को नहीं रखना है (नीतिवचन 15:22)। सलाहकारों की बहुतायत में सुरक्षा है।

19. उसे अपने व्यक्तिगत जीवन और सेवा के लिए, और सारी कलीसिया के लिए; अगुआई और सारी मसीह की देह के लिए एक स्पष्ट दर्शन बनाए रखना है (नीतिवचन 29:18)। उद्देश्य, दर्शन, लक्ष्य और दिशा होनी चाहिए।

20. उसे दल को इकट्ठा होने, संगति, शिक्षा के लिए समय निकालना है।

21. उसमें उनके लिए ईश्वरीय प्रेम होना चाहिए (1 कुरिन्थियों 13)।

22. वह सदा समस्याओं पर आक्रमण करे, लोगों पर नहीं।

23. अच्छे किए काम के लिए वह प्रोत्साहन (चापलूसी नहीं) दे।

24. वह एक सिद्धान्तों का व्यक्ति हो जो वचन पर आधारित हैं।

25. उसमें भक्तिपूर्ण चरित्र हो।

26. वह अनुग्रकारी व्यक्ति हो।

27. वह दीन हो।

28. वह अपनी प्राथमिकताओं को व्यवस्थित रखे।

29. वह भले विवेक पर आधारित फैसले करे।

30. वह लोगों की ओर संवेदनशील हो, अति-संवेदनशील या भावुक न हो।

31. वह दूसरों के साथ अपने बर्ताव में अपक्षपाती हो।

32. उसके अभिप्राय शुद्ध हों।

33. वह पाखंडी न हो - एक कलाकार या कई नकाबोंवाला व्यक्ति नहीं (मत्ती 23)।

34. वह एक विश्वासयोग्य मनुष्य हो; उसका वचन उसके समान पक्का हो (लूका 16:10-12)।

अगुआई को चुनना

सम्भावित अगुआई को चुनते समय जिन्हें दल में बदलना है, कुछ चीजों को ध्यान में रखना होता है जिनकी सूची हम नीचे दे रहे हैं।

1. अभिलाषी आत्मा और राजनीतिक चालबाजी पर नज़र रखो। पदोन्नति प्रभु की ओर से होती है (भजन 75)।

2. अगुआई का स्थान “खरीदा” नहीं जाना चाहिए।

3. छोटी-छोटी चीजों में विश्वासयोग्यता पर नज़र रखो। शाबाश, अच्छे और विश्वासयोग्य सेवक। कोई अच्छा हो सकता है (अर्थात् गायक) परन्तु विश्वासयोग्य न हो (नीतिवचन 25:19; 1 कुरिन्थियों 4:1-2; लूका 19:17; मत्ती 25:14-36)।

4. चरित्र के गुणों वाले पुरुषों पर नज़र रखो (1 तीमुतियुस 3, तीतुस 1)।

5. हठ पर नज़र रखो। प्रतिक्रियाओं को जानने के लिए इच्छा को परखो (तीतुस 17; 2 पतरस 2:10; यशायाह 14:12-14; दानिय्येल 11:36)।

6. एक शिक्षणीय आत्मा पर नज़र रखो (भजन 27:11; 86:11)। दीन आत्मा की आवश्यकता है।

7. देखो कि क्या वह लचीला, उपलब्ध, समंजनीय, और निवार्य है; अनुशासन, ताड़ना ले सकता है (याकूब 4:7; इब्रानियों 13:17; सभोपदेशक 10:4)।

8. देखो कि उसमें उसकी सेवा से अधिक भेड़ों के लिए प्रेम है (1 पतरस 4:7; रोमियों 12:10)।

9. सेवक की आत्मा पर नज़र रखो; प्रेमी दास (मरकुस 10:43-45)।

10. देखो कि वह लोगों से और लोग उससे प्रेम रखते हैं। क्या लोग उसके पीछे चलना चाहते हैं ? क्या वह लोगों से सम्बंध लगाता है या लोग उससे दूर हो जाते हैं ? क्या उसके भाई उसे स्वीकार करते हैं (व्यवस्थाविवरण 33:24) ?

11. जोश और परिश्रम पर नज़र रखो। क्या वह आलसी है ? बिना ज्ञान के जोश ? (2 पतरस 1:5; रोमियों 10:1-2)।

12. परख-अवधि में रखो (1 थिस्स. 5:21; 1 तीमुथियुस 3)। पहले छोटे क्षेत्रों में परखो जहाँ वे अपने को या लोगों को चोट नहीं पहुँचा सकते हैं। परखने में समय लगता है।

13. करिश्मा चरित्र को अंधा न करने पाए। केवल चरित्र ही करिश्मा को सम्भाल सकता है।

14. देखो कि वह नीतिपरक व्यक्ति है; अच्छे व्यवहार, अच्छे आचरण का है।

15. देखो कि वह एक अच्छा वक्ता है।

16. एक सहयोगी आत्मा और अच्छे रवैये पर नज़र रखो (1 पतरस 2:17; रोमियों 12:17)। “शेर” के साहस से पहले “मेमने” का आत्मा विकसित करो।

17. समय-समय पर मूल्याँकन करो। सकारात्मक बातों से निपटो और नकारात्मक चीजों को ठीक करो।

18. वफादारी की परीक्षाओं पर नजर रखोः वरिष्ठ सेवक, अगुआई, परिवार, कलीसिया और कलीसिया के दर्शन की ओर।

19. एक अधीन आत्मा पर नज़र रखो (1 पतरस 5:1-5), परन्तु अधिक निर्भरता नहीं।

20. दीनता की आत्मा पर नज़र रखो। घमण्ड या अहंकार से बचो।

21. उसके आत्मिक जीवन पर नज़र रखोः प्रार्थना, वचन, आराधना, प्रभु के साथ अच्छा सम्बंध।

22. शुद्ध और शक्तिशाली प्रेरणा पर नज़र रखो। या क्या उसे प्रेरित करना पड़ता है ?

23. आत्मकेन्द्रित पर नज़र रखो।

24. निराशा, उदासी, मिज़ाज, कुड़कुड़ाना या आनन्दित आत्मा पर नज़र रखो।

दल का सफलतापूर्वक कार्य करना

दल में सेवा के उचित कार्य के लिए नीचे कुछ सिद्धान्त और व्यावहारिक निर्देश दिए गए हैं।

अ. एक दल का केवल एक ही प्रमुख हो सकता है, जैसे "बराबर वालों में प्रथम" के सिद्धान्त में देखा गया है। दल की सेवा में अगुआई के सिद्धान्त को पहचाना जाना चाहिए। हालाँकि कोई भी दूसरे से अधिक महत्त्व का नहीं है, फिर भी व्यवस्था और कार्यकुशलता के लिए कोई होना अवश्य है जो अगुआई लेता है और जिसके पास अन्तिम जिम्मेवारी है। इस पहचानने में असफल रहना संकट ला सकता है।

आ. दल को प्रभु ही इकट्ठे कर सकता है (मरकुस 16:20)। यदि इसमें प्रभु नहीं है तो दल असफल होगा। हर सदस्य को प्रभु को खोजना है कि यह उसकी इच्छा है कि वे इकट्ठे काम करें। बारहों और सत्तर को प्रभु ने दो-दो करके भेजा था (लूका 9-10)।

इ. दल ऐसे लोग होने चाहिए जिनके हृदयों को प्रभु ने छूआ है (1 शमूएल 10:26)। अगुवे के साथ अन्दर से हृदयों का जुड़ना। यदि केवल बाहरी है तो टिका न रहेगा। इकट्ठे बने रहने के लिए एक मन होना है (1 इतिहास 12)।

ई. दल पर वही आत्मा होना चाहिए जो उनके अगुवे पर है (गिनती 11:14-17)।

उ. दल में वफ़ादारी होनी चाहिए और एक दूसरे की ओर भी होनी चाहिए।

ऊ. दल को सब समय बातचीत के साधन खुले रखने चाहिए। अपक्षपाती जानकारी या अपर्याप्त जानकारी से बचो।

ए. दल के काम का विवरण स्पष्ट होना चाहिए। जिम्मेवारी के क्षेत्रों को निश्चित करो और लिख लो। यह उनका "उत्तरदायित्व" है।

ऐ. दल को जिम्मेवारी के क्षेत्रों के लिए उत्तरदायी होना है।

ओ. दल का व्यक्तिगत और सामूहिक भक्तिपूर्ण जीवन होना चाहिए। प्रभु की सेवा लोगों की सेवा निर्धारित करती है। जो दल इकट्ठे प्रार्थना करता है इकट्ठे बना रहता है।

1) मिलकर प्रार्थना करो - आत्मिक समय।
2) एक साथ बाँटो - मित्रत, सहभागिता।
3) एक दूसरे के साथ होना (मरकुस 3:14)।
4) विचार-विमर्श और बातचीत, रीट्रीट, आदि। दल की भावना बनाए रखो।
5) व्यवसाय और कर्मचारी सभा।

ऐसा करने से दल एक ही बात को बोलेगा, एक मन और एक निर्णय होकर जुड़े रहेंगे (1 कुरिन्थियों 1:10)।

औ. दल को समझना चाहिए कि सुरक्षा दल में ही है। दल में मजबूती, सुरक्षा, नियंत्रण और सन्तुलन है। किसी एक व्यक्ति के पास सबकुछ नहीं है। सब में ताकतें और कमज़ोरियाँ हैं, परन्तु इकट्ठे प्रभु की बहु-रुखी बुद्धि उपलब्ध है। कमज़रियों को बराबर करने के लिए एक दूसरे की ताकतों को उपयोग करो।

अं. दल को अधीनता का सिद्धान्त पता होना चाहिए (इफिसियों 5:21)। अधीनता समय समय पर परखी जानी चाहिए।

अः. दल को वचनबद्धता की ताकत का पता होना चाहिए। हर सदस्य दूसरे से और दल के दर्शन से वचनबद्ध होना चाहिए।

क. दल को व्यक्तिगत अधिकार छोड़ने हैं और प्रभु के दिए दर्शन को सारा सहयोग देना है।

ख. दल को किसी भी कीमत पर आत्मा की एकता बनाए रखने का प्रयत्न करना है। एकता प्रेम और सच्चाई में अवश्य है। उस किसी भी चीज से बचो जो विभाजन, फूट या बँटवारा लाएगी।

<u>नीचे कुछ चीजें दी गई हैं जो दल के कार्य को नष्ट करती हैं:</u>

1. एक प्रतियोगी या तुलनात्मक आत्मा (मत्ती 18:1-14)।
2. एक अधिनायकीय आत्मा या प्रभुत्व (1 पतरस 5:1-5; मत्ती 23:11)।
3. एक घमण्डी, स्वयं को ऊँचा करनेवाली आत्मा (लूका 22:24) जो झगड़ा उत्पन्न करती है। अहंकार झगड़े पैदा करता है (नीतिवचन 13:10)।
4. दल-बंदी की आत्मा (1 कुरिन्थियों 1:10)।
5. एक "दियुत्रिफेस-आत्मा", उत्कर्ष से प्रेम (3 यूहन्ना 9-10)। ऐसे का फल बुरे काम, दुर्भावपूर्ण आत्मा, और दूसरों को अस्वीकार करना, संगति को मना करना और निकाल देना है।
6. बातचीत की कमी।
7. पारदर्शकता की कमी, एक दूसरे के साथ बेइमानी। (इफिसियों 5:8-14)
8. ईश्वरीय प्रेम की कमी।
9. सहनशीलता की कमी। (बारह प्रेरित)
10. क्षमा करने की आत्मा की कमी (इफिसियों 4:32; मत्ती 18:21-22)।
11. आत्मिक परिपक्वता की कमी; सांसारिकता का प्रदर्शन (1 कुरिन्थियों 3:1-4)।
12. सच्ची दीनता की कमी (मत्ती 18:1-4; मरकुस 9:33-37)।
13. बुद्धि की कमी, कोई काम सही तरीके, समय, स्थान, शब्दों से करना।
14. अधीनता की कमी, सेवक का आत्मा (1 पतरस 5:3; मरकुस 10:42-45; 1 राजा 12:7-11)।
15. एक दूसरे में भरोसे की कमी (फिलिप्पियों 4:13)।
16. पवित्रता की कमी या गलत प्राथमिकताएँ (मत्ती 6:33)।
17. दल में संगठन की कमी, प्रयत्नों की गलत दिशा।
18. दूसरों के लिए आत्मिक चिन्ता की कमी (मत्ती 23)।
19. ज्ञान की कमी (होशे 4:6; नीतिवचन 3)।
20. एक दूसरे के लिए पारस्परिक आदर की कमी (इफिसियों 5:29-30)।
21. सहयोग के आत्मा की कमी।
22. एक दूसरे के लिए प्रशंसा की कमी; एक दूसरे को मान कर चलना।
23. दर्शन बनाए रखने की कमी (नीतिवचन 29:18)।
24. काम में सम्मिलित होने की कमी (हाग्गै 1:4)।
25. शुद्ध अभिप्रायों की कमी। यहूदा या शिमौन की आत्मा से सावधान रहो (1 तीमुथियुस 6)।
26. सीखने की आत्मा की कमी; अपनी समझ का सहारा लेना।

दल में सेवा का उद्देश्य और आशीषें

आशीष अंगूर के गुच्छे में पाई जाती है, एक अंगूर में नहीं (यशायाह 65:8)।
दल में सेवा पर नीचे दी बातों का अध्ययन करो।

1. एक दल में सेवा देह की सेवा का सजीव प्रदर्शन प्रदान करती है (1 कुरिन्थियों 12)।
2. दल में सेवा "वर्तमान सत्य" को अच्छे से बोल सकती है क्योंकि एक से अधिक आवाज एक ही चीज को बोल रही है (व्यवस्थाविवरण 17:6; मत्ती 18:16; 2 कुरिन्थियों 13:1)।
3. दल में सेवा चीजों में प्रभु के मन का पता लगाना सरल करती है (मत्ती 18:19-20; दानिय्येल 2-4; दानिय्येल और उसके मित्र)।
4. दल में सेवा अधिक सुरक्षा और नियंत्रण और सन्तुलन प्रदान करती है (नीतिवचन 11:14)।
5. दल में सेवा शत्रु द्वारा लगाए अनैतिक या दूसरे फँदों से बचाव करती है जिन्होंने दूसरी कितनी सारी सेवाओं को फँसाया है।
6. दल में सेवा खुद सेवाओं को ताकत और प्रोत्साहन प्रदान करती है (निर्गमन 17:12)। दल के काम की संगति में हाथ पकड़ कर प्रेरणा और आत्मिक शक्ति दी जा सकती है।
7. दल में सेवा प्रभु में चेले और उनकी सेवाओं के विकास का अवसर प्रदान करती है, अर्थात् तीमुथियुस, तीतुस, यहोशू, एलीशा, ये सब दूसरी सेवाओं में प्रशिक्षण पाए थे।

जब भाई लोग आपस में मिले रहते हैं, तब प्रभु ने वहीं जीवन की आशीषें ठहराई हैं। यह एकता स्थानीय कलीसिया की अगुआई में दिखाई देनी चाहिए, जो फिर मण्डली में भी दिखाई देगी (भजन 133)।

निचोड़:

इस अध्ययन के अन्त में, हम उस सम्बंध को चित्रित करेंगे जो अगुवे और दल के बीच होना चाहिए।

इसे दिखाने के लिए विभिन्न चित्र इस्तेमाल किए गए हैं। परमेश्वर ने मसीह और कलीसिया के असंख्य प्रतीक दिए हैं, और वही सिद्धान्त अगुआई और मण्डली पर भी लागू होता है।

- मसीह की देह में एक सिर, परन्तु कई सदस्य हैं। मसीह प्रमुख है। सब विश्वासी सदस्यों के रूप में बराबर हैं, परन्तु सबका अपना अनोखा स्थान और कार्य है।
- पहिए में एक केन्द्र परन्तु बहुत से अर होते हैं। सब अर बराबर हैं, सब एक दूसरे से नेमि और केन्द्र द्वारा जुड़े हुए हैं, फिर सबका अपना उचित स्थान है।
- परमेश्वर का एक सच्चा इस्राएल था, फिर भी 12 गोत्र थे। सब गोत्र परमेश्वर के सामने बराबर थे, फिर भी परमेश्वर के कैम्प में उन सबका नियुक्त स्थान था।
- एक मूसा, परन्तु कई न्यायी और प्राचीन थे, जो उसके साथ मिलकर इस्राएल के लोगों का न्याय करते थे।
- प्रभु का एक ही तम्बू था, फिर भी कई भाग, और विभिन्न साज-समान था जो सब प्रभु के सन्दूक और उसकी महिमा से जुड़े हुए थे।
- केवल एक महायाजक हारून था, फिर भी लेवी के गोत्र में कई याजक थे, और ये सब मिलकर इस्राएल के देश के याजक थे।
- एक प्रभु का मन्दिर था, फिर भी कई पत्थर और दूसरी सामग्री थे। सब पत्थर बराबर थे, फिर भी प्रभु के भवन में उनका उचित स्थान था।
- एक पिरामिड था, फिर भी कई पत्थर एक पिरामिड बनाते हैं। पिरामिड का केवल एक चोटी का पत्थर, और एक सिरे का पत्थर हैं। ये सब पत्थर उनके स्थान पर एक दसरे से जुड़े हुए हैं।
- परमेश्वर के राज्य का एक राजा है परन्तु असंख्य नागरिक हैं जिनके राज्य के नियमों के अधीन समान अधिकार हैं, फिर भी ईश्वरीय व्यवस्था है।

- परमेश्वर और मेमने का एक सिंहासन है, परन्तु संख्य स्वर्गदूत और सन्त हैं जो सिंहासन के ईद-गिर्द जमा हुए हैं। उन सबका एक दूसरे और सिंहासन के साथ सम्बंध और स्थान है।
- एक प्रमुख चरवाहा और असंख्य अधीन-चरवाहे और भेड़े हैं, और ये सब परमेश्वर का झुँड हैं।

इन में से कोई उदाहरण उपयोग किया जा सकता है क्योंकि वे सब एक ही सत्य बोलते हैं। मसीह और कलीसिया, या अगुवा और उसका दल।

- मसीह अनेक सदस्यों वाली देह का सिर है।

- मसीह अनेक अर वाले पहिये का केन्द्र है।

- मसीह आत्मिक इस्राएल के गोत्रों का राजा है।

- मसीह मलिकिसिदक की राजा-याजक रीति का महान महायाजक है।

- मसीह उसके तम्बू, उसके मन्दिर - कलीसिया के मध्य परमेश्वर का सन्दूक है।

- मसीह अनेक पत्थरों के पिरामिड में चोटी का पत्थर और कोने का पत्थर, आदि और अन्त, प्रथम और अन्तिम है।

- मसीह परमेश्वर के सिंहासन में परमेश्वर का मेमना है और सब स्वर्गदूत और सन्त उस सिंहासन के ईर्द-गिर्द आराधना करते हैं।

- मसीह, एक भेड़शाला पर, परमेश्वर के झुँड का प्रमुख चरवाहा है।

दल में सेवा की सांसारिक और व्यावहारिक अभिव्यक्ति में, ऊपर दिए सिद्धान्त उपयोग किए जा सकते हैं। दल का अगुवा और दल एक दूसरे के साथ वैसे ही सम्बंध में हैं जैसे मसीह उसके लोगों के साथ सम्बंध में है। चाहे कलीसिया का ढाँचा एक देह, एक पहिया, एक देश, एक मन्दिर, एक पिरामिड, एक राज्य, एक झुँड या किसी दूसरी चीज के समान हो, यह आत्मा और रवैया है, जरूरी नहीं खुद ढाँचा है जो इन में से किसी भी ढाँचे को अच्छा या बुरा बनाता है।

दल में सब लोग बराबर हैं परन्तु हर एक में मसीह के वरदान का परिमाण है। यह परिमाण दल में उनके कार्य और स्थान को निर्धारित करता है। दल का हर व्यक्ति एक दूसरे और अगुवे से सम्बंध में होता है और अगुवा दल के सदस्यों के साथ। यह सत्य नीचे दिए सब चित्रों में चित्रित किया गया है।

जीवन के बिना ढाँचा होना, ढाँचे बिना जीवन होना सम्भव है। परमेश्वर का विचार ढाँचे में एकता और जीवन होना है। यहीं पर प्रभु अपनी आशीष उँडेलता है और आनन्तकाल का जीवन भी।

ऊपर दिया कोई भी प्रतीक इस्तेमाल किया जा सकता है परन्तु हम नीचे उस सिद्धान्त को चित्रित करने के लिए जिसकी यहाँ बात की गई है, पिरामिडी रेखा-लेख उपयोग कर रहे हैं।

यित्रो सिद्धान्त

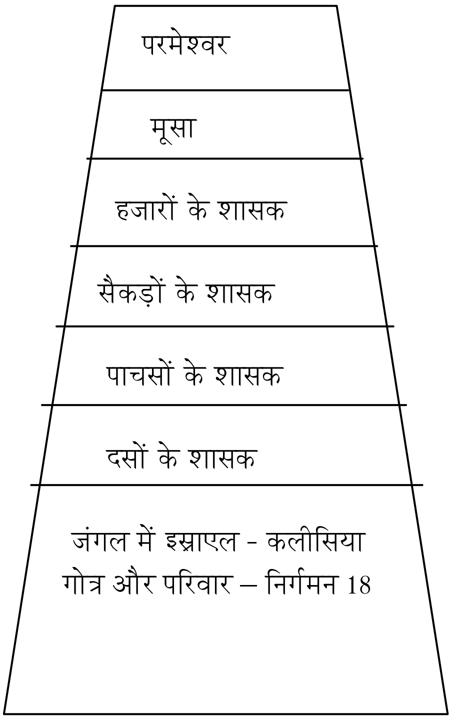

याजकीय सिद्धान्त

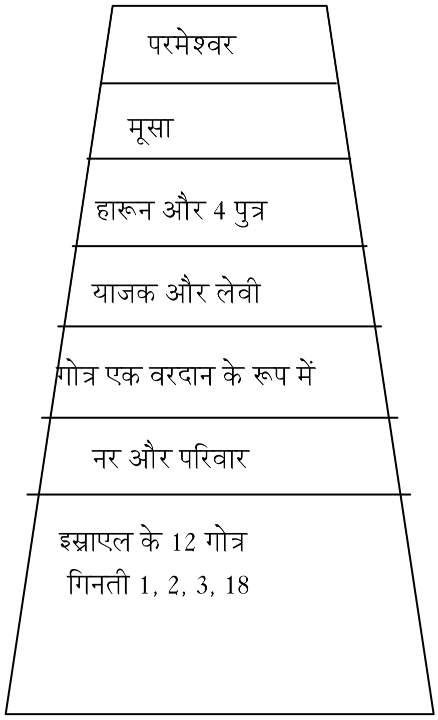

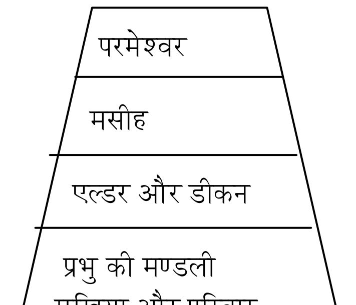

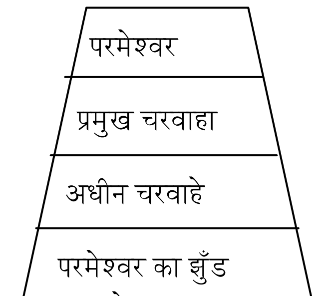

सफलता के लिए बारह बुनियादी दल के सिद्धान्त

निम्नलिखित बारह बुनियादी सिद्धान्त हैं जिन पर एक सेवा का दल, यदि इसे वास्तव में परमेश्वर के लिए फलवन्त और प्रभावशाली होना है, बनाया जाना चाहिए।

(1) **श्रेष्ठता**

एक बार किसी ने कहा, 'साधारण व्यक्ति की नज़र में सामान्यता श्रेष्ठ है।'
हम सब दूसरा स्थान लेकर बैठ जाते हैं, क्योंकि यह अकसर आसान तरीका होता है और श्रेष्ठता मँहगी होती है। श्रेष्ठता के लिए आत्म-बलिदान और निस्वार्थ की आवश्यकता होती है, परन्तु इनसे लाभ होता है। मसीहियों को और विशेषकर मसीही अगुवों को परमेश्वर के लिए अपना अति उत्तम देने की आवश्यकता है। यह जानना कि हम ने जो परमेश्वर के सेवक हैं, अपना अति उत्तम उसको दिया है, एक जीने का संतोष देनेवाला और भरपूर तरीका है। आखिरकार, परमेश्वर ने हमें अपना अति उत्तम दिया है। श्रेष्ट होने की हमारी प्रेरणा होनी चाहिएः हमारे व्यक्तिगत जीवन में (2 तीमुथियुस 2:20-21; तीतुस 3:2, 8); हमारे स्तरों में (2 कुरिन्थियों 8:7; फिलिप्पियों 4:8); और अपनी सेवा में (2 तीमुथियुस 2:15)। याद रहे कि श्रेष्ठता चोटी पर चढ़ना नहीं है। श्रेष्ठता है अपना काम करना क्योंकि हम भरोसेमंद भण्डारी / परमेश्वर के सेवक हैं, जो सबकुछ परमेश्वर की महिमा के लिए ही करना चाहते हैं।

"मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारा प्रेम ज्ञान और सब प्रकार के विवेक सहित और भी बढ़ता जाए, यहाँ तक कि तुम उत्तम से उत्तम बातों को प्रिय जानो, और मसीह के दिन तक सच्चे बने रहो, और ठोकर न खाओ; और उस धार्मिकता के फल से जो यीशु मसीह के द्वारा होते हैं, भरपूर होते जाओ जिससे परमेश्वर की महिमा और स्तुति होती रहे।" (फिलिप्पियो 1:9-11)

(2) **वचनबद्धता**

एक दल की सफलता दल के हर सदस्य की वचनबद्धता के स्तर के अनुकूल होगी। दल के हर सदस्य को दल के लिए परमेश्वर के उद्देश्य / दर्शन के उसके अंश को पूरा करने के लिए, किसी भी चीज को उन्हें रोके, रुकावट डाले या ध्यान भंग किए बिना सम्पूर्ण रूप से और पूरे निश्चय के साथ समर्पित होना चाहिए। यदि दल के सदस्य परमेश्वर और जो उसने उन्हें उसके लिए करने के लिए बुलाया है उसकी ओर वचनबद्ध नहीं हैं तो वे पाएँगे कि वे उसके लिए उनकी सेवा में निरन्तर बहक जाते और प्रभावहीन होते हैं। दल के सदस्यों को उस काम / दर्शन और स्थान के लिए वचनबद्ध होना है जिसके लिए परमेश्वर ने उन्हें बुलाया है। यह कीमती हो सकता है परन्तु परमेश्वर के राज्य में यही एक तरीका है (लूका 9:57-62; 14:25-33; यूहन्ना 12:23-26)। यीशु ने हमें परमेश्वर की वचनबद्धता दिखाई है और हमें उसके उदाहरण का अनुकरण करना है। कोई भी मसीही दल एक दूसरे की ओर और परमेश्वर के वचन के भ्रमातीत्व/केन्द्रीयता की ओर भी वचनबद्ध होना चाहिए, जिसके बिना कोई भी बाइबल की शिक्षा निश्चित नहीं है। ध्यान दो, कि यदि दल का कोई सदस्य कुछ और एक शुद्ध विवेक से करना चाहता है (अर्थात् एक दल का सदस्य होने के बजाय) तो उसे वह करने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए (क्योंकि यदि वे कुछ और करने के लिए सोच रहे या चाह रखते हैं तो वे दल की ओर सम्पूर्ण हृदय से वचनबद्ध नहीं हो पाएँगे)।

(3) **परिपक्वता**

हर दल के सदस्य को आत्मिक परिपक्वता में निरन्तर बढ़ते रहने को अपना लक्ष्य बनाना चाहिए। दल के अधिक परिपक्व सदस्यों को दूसरों के अनुकरण के लिए उदाहरण पेश करने चाहिए (तीतुस 2:6-8)। यह परिपक्वता प्रकट होती हैः दल के सदस्यों की सन्तुलित शिक्षा और जीवन में; दल के सदस्यों की अखंडता, विश्वासयोग्यता और भरोसेमंदी में (भजन 25:21); और दल के सदस्यों की अपने/दूसरों/स्थितियों की ओर प्रत्यक्षज्ञान और संवेदनशीलता में (नीतिवचन 16:21-22)।

(4) **विश्वास**

विश्वास परमेश्वर पर, न कि जो हम देखते या महसूस करते हैं उस पर विश्वास करता है। यह हृदय का एक रवैया/बड़प्पन है जो कहता है, 'परमेश्वर कर सकता है!' असल में, विश्वास के विषय में कह सकते हैं कि हम परमेश्वर में कितना सम्मिलित कर सकते हैं। यह निश्चितता है कि जो हम विश्वास करते हैं उसे हम कभी अनुभव करेंगे (इब्रानियों 11:1), चाहे इसमें पहाड़ों को हटाने की आवश्यकता भी क्यों न पड़े (मरकुस 11:22-24)। याद रहे, विश्वास बिना हम परमेश्वर को प्रसन्न नहीं कर सकते (इब्रानियों 11:6)। इसलिए, मसीहियों को एक ऐसा जीवन जीना है जो विश्वास चलते रहनेवाला प्रयोग है।

(5) **वार्तालाप / खुलापन**

दल के सदस्यों को सीखने की आवश्यकता है कि किस प्रकार एक दूसरे के साथ और उनके साथ जो दल के बाहर हैं (विशेषकर जहाँ यह दल के लक्ष्यों / दर्शन की उपलब्धियों का प्रश्न है) प्रभावशाली तरीके (अर्थात् उन्हें समझा जा सके) से वार्तालाप करें। यह वार्तालाप सकारात्मक होनी चाहिए, नकारात्मक/गप-शप/निन्दा नहीं, क्योंकि बोले गए शब्दों में बहुत भला करने, या बड़ा नुक्सान करने और बहुत विनाश करने की सम्भावना है (याकूब 3:6)। याद रहे, हमारे शब्द प्रकट करते हैं हमारे हृदयों में क्या है (मत्ती 12:34)।

(6) **दीनता**

परमेश्वर दीन को आशीष देता (मत्ती 5:5) और उठाता है (1 पतरस 5:6)। दीनता एक बड़ा व्यावहारिक रवैया है। यह दल के सदस्यों को पद के लिए छल-कपट करने से रोकता है (मत्ती 23:11-12) और यह उन्हें एक दूसरे/दूसरे लोगों के लिए सही रवैया देता है (फिलिप्पियों 2:3-4)। दीनता है अपनी स्वाभाविक कमजोरी / मूर्खता और परमेश्वर की शक्ति / बुद्धि (जो यीशु में हमारी हो सकती है 1 कुरिन्थियों 1:25-31) को पहचानना, क्योंकि यह दीन ही हैं जो अपने व्यक्तिगत अधिकार और माँगों को त्याग सकते हैं ताकि दूसरे लोगों/दल के सदस्यों को अधिक चाहें / सहायता कर सकें। किसा ने एक बार कहा, 'दीनता है अपनी पूरी ऊँचाई में खड़े होना और जानना कि परमेश्वर कि फिर भी बड़ा है।'

(7) **दृढ़ता**

एक दृढ़ व्यक्ति वह है: जिसकी अपने बुलावे पर पकड़ है (यूहन्ना 4:34); जो धैर्य और तात्कालिक सोच का स्थान समझता है (याकूब 1:2-4); संगत है; और जिसके लक्ष्य उसके मन में स्पष्ट हैं और चाहे उनके लिए कीमत कुछ भी क्यों न हो, उन्हें पाने के लिए दृढ़ है (इब्रानियों 12:1-3; फिलिप्पियों 4:13)।

(8) **संगति**

हर मसीही दल में इसके प्रमुख सदस्य के रूप में यीशु मसीह को होना चाहिए (मरकुस 16:20)। दल के सब सदस्यों की उसके साथ नियमित संगति अनिवार्य है (हर दल के सदस्य को परमेश्वर के साथ प्रतिदिन के आधार पर मिलना चाहिए, और इस प्रकार उसके साथ उनके सम्बंध को विकसित करना और घनिष्ठ करना चाहिए; और उन्हें सीखने की आवश्यकता है कि वे अपने को प्रभु में कैसे प्रोत्साहित करें, और कैसे उसमें जड़ पकड़ें, विशेषकर उस समय जब वे कठिनाई में होते हैं)। दल के सदस्य का भक्तिपूर्ण जीवन व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों एक ऊँचे स्तर का होना चाहिए। एक दल की प्रभु की सेवा दूसरे लोगों की इसकी सेवा के विस्तार और प्रभावकारिता से आँकी जाएगी। असल में, यदि प्रभु किसी काम में नहीं है तो, यह या तो असफल होगा या धीमे से बेकार हो जाएगा। दल के सदस्यों को ऐसा हृदय का रवैया चाहिए जो परमेश्वर द्वारा चुनौती पाने और नया होने के लिए तैयार है। इसके बिना, वे उनके काम की माँगों को (या इस दर्शन के उनके अंश को) कभी भी सफलतापूर्वक पूरा नहीं कर पाएँगे, और वे बड़ी सरलता से शरीर में या आत्म-सुरक्षा तन्त्र से काम करना आरंभ करेंगे। दल के सदस्यों को उनकी संगति को और, एक दूसरे के साथ उनके सम्बंध को मजबूत करने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि एक अच्छे दल की भावना बने और मजबूत व्यक्तिगत सम्बंध और एकता विकसित हों जो किसी भी दल की प्रभावकारिता के लिए अत्यावश्यक हैं। दल के अगुवों को ईर्ष्या, प्रतिद्वन्द्व, क्षमा न करना, एक आलोचक आत्मा, गलतफहमी, गप-शप, निन्दा और शिकायत के विरुद्ध सतर्क रहना चाहिए क्योंकि ये सब अच्छी संगति/सम्बंध को नष्ट कर सकते हैं। याद रहे, सब संगति निस्वार्थ प्रेम द्वारा प्रेरित होनी चाहिए। यह भी याद रहे कि जो बुलावा परमेश्वर एक व्यक्ति के जीवन पर डालता है उसे सारे दल पर परमेश्वर के बुलावे के साथ और

दल के दूसरे सदस्यों पर उसके बुलावे के साथ संगत होना चाहिए (अर्थात् एक दल को परमेश्वर में एक साथ मिलकर कार्य करना चाहिए)।

(9) **दर्शन**

हर दल को एक परमेश्वर द्वारा दिए दर्शन की आवश्यकता है, नहीं तो यह लक्ष्यहीन / दिशाहीन होगा (या उससे भी बुरा, गलत दिशा में जाएगा) (आमोस 3:3; नीतिवचन 29:18)। दल के सदस्यों को उस दर्शन में रहकर कार्य करना है क्योंकि वहीं पर परमेश्वर की आशीष उमड़ रही है। दर्शन में से बाहर निकलने का अर्थ होगा 'मरे हुए', प्रभावहीन कार्य करना। दल के हर सदस्य को दर्शन के आकार में ठीक बैठना होगा, न कि उसे उसकी सेवा में ठीक बैठाने का प्रयत्न करना है। असल में, हर दल के सदस्य को उसके आत्मिक वरदान, योग्यताएँ और सेवाओं को दर्शन के सामने समर्पित करना होगा। आखिरकार, दर्शन व्यक्ति से बड़ा है। जैसे दल के सदस्य दर्शन के अधीन होते हैं, वे उससे अधिक अभिषेक में कार्य करेंगे जो वे अकेले कर पाते। दल के सदस्यों को दर्शन में हो रहे किसी भी परिवर्तन / विस्तार के विषय में जानकारी होनी चाहिए जो परमेश्वर दर्शन में ला रहा हो ताकि वे उस पूर्णता में काम करते रहें जो परमेश्वर चाहता है। उन्हें पूरे दर्शन के साथ भी अनुकूल होना है, चाहे वे इसके एक भाग में ही क्यों न कार्य करते हो। एक दल के बनने (उसमें जुड़ने) से पहले, हर सम्भावित सदस्य को परमेश्वर को खोजकर पता लगाना है कि क्या उनके लिए उसमें जुड़ने की उसकी इच्छा है। व्यक्ति को यह निश्चित करने के लिए कि क्या परमेश्वर ने उसे दल को दिए उस दर्शन के भाग को पूरा करने के लिए बुलाया है, परमेश्वर को खोजना चाहिए।

(10) **अगुआई**

दल के सब सदस्यों को उनके दल की अगुआई को पहचानने और अधीन होने की आवश्यकता है। दल की अगुआई का अगुवा दल के किसी दूसरे सदस्य से अधिक महत्त्व का नहीं है, परन्तु वे दल के कार्यो और फैसलों को व्यवस्थित करते और कार्यकुशलता से करते हैं।
किसी भी दल पर संकट आ सकता है यदि उसकी अगुआई प्रभावशाली नहीं है। दल के सदस्यों को (अगुवा भी) मसीह के भय में एक दूसरे के अधीन होना है (इफिसियों 5:21)। दल का एक सदस्य यदि वह अपनी इच्छा करने का फैसला करता है तो वह दल में बहुत उलझन और भंग उत्पन्न कर सकता है (विशेषकर इसकी एकता, संसक्ति और दल की भावना को)। दल के हर सदस्य को उसके अपने बहाव में प्रवाहित होने की आवश्यकता है। उन्हें अपने वरदान/योग्यता/अभिषेक/काम में कार्य करना चाहिए, परन्तु ऐसा सम्पूर्ण सेवा (अर्थात् इसकी अगुआई/दर्शन/लक्ष्य/आदि) की इच्छुक अधीनता में होना चाहिए। याद रहे, अगुवों को आवश्यक से अधिक करना चाहिए। उनकी सीमाओं / प्रतिबन्धों को पीछे धकेलना और हर वर्ष परमेश्वर के लिए अधिक करना है। उन्हें ऐसे भी लोग होना है जो उनकी विशेष जिम्मेवारी / रुचि के बाहर भी करने के इच्छुक हैं, और अधिक क्षमता में कार्य करने योग्य हैं (इसके लिए परमेश्वर में एक बड़े हृदय की आवश्यकता है और ऐसे व्यक्ति की जो परमेश्वर के लिए खींचे जाने का इच्छुक है)।

(11) **अनुशासन**

एक दल के सदस्य के जीवन का हर पहलू (अर्थात् परिवार, घर, काम, व्यक्तिगत, आदि) पवित्र आत्मा के अनुशासन में होना चाहिए और यह हर उसके लिए प्रकट होना चाहिए जो देखना चाहता है। अनुशासन दल के सदस्यों को परमेश्वर के साथ अखंडता के जीवन जीने और उसके साथ उनकी चाल में संगत होने में सहायता करता है (अविश्वासी जब ऐसे जीवन को देखेंगे तो वे निराश नहीं होंगे)। याद रहे, अनुशासन में इच्छा के साथ समर्पित होना होता है और परमेश्वर का समर्थ से इसे लागू करना होता है नहीं तो यह केवल मार डालेगा।

(12) **सामर्थ्य / अभिषेक**

दल के हर सदस्य को परमेश्वर के अभिषेक की कीमत जानने की आवश्यकता है। असल में, उन्हें इसके लिए सबकुछ त्याग देने के लिए तैयार रहना है (एलीशा नबी के समान)। परमेश्वर का अभिषेक सहने के लिए कोई सरल चीज नहीं है और अकसर अभिषिक्त व्यक्ति इसके विषय अच्छा महसूस नहीं करेगा (इसकी कीमत के कारण), परन्तु वे फिर भी किसी भी चीज से अधिक इसे चाहेंगे। यह इसलिए है क्योंकि वे उस काम को करने के लिए जो परमेश्वर ने उनके करने के लिए अलग रखा है, परमेश्वर के अभिषेक/सामर्थ्य की अत्यन्त आवश्यकता को समझते हैं। वे समझते हैं कि परमेश्वर

की सामर्थ्य बिना वे काफी दूर नहीं जा पाएँगे। असल में, कोई भी अगुआई परमेश्वर के अभिषेक पर निर्भर होती है और योग्यता पाती है। दल के सदस्यों को याद रखना है कि परमेश्वर से अभिषेक एक वरदान है, कोई भावना नहीं है। उन्हें यह भी समझना है कि परमेश्वर में अभिषेक को कैसे काम में लाना है; जानना कि यह अभिषेक कैसे कार्य करता है; और जानना कि किन क्षेत्रों में वे अभिषेक पाए हैं, ताकि वे लोगों के दबाव का सामना कर सकें जो उन कामों को करना चाहते हैं जिनके लिए उनके पास अभिषेक नहीं है (याद रखो कि परमेश्वर के पास उनके लिए एक नया अभिषेक हो सकता है, इसलिए उन्हें इसे बहाना बनाकर उसे सीमित नहीं करना है)।

दल का ढाँचा

जीवन बनाम संगठन

एक दल को एक संगठन के बजाय एक जीवन होना चाहिए। एक जीव एक जीवित, सक्रिय शरीर है जिसमें जीवन ढाँचे पर श्रेष्ठता रखता है। एक जीव को इसके जीवन को सहयोग देने के लिए एक ढाँचे की आवश्यकता होती है, परन्तु यह इससे दूसरे महत्त्व का है। ढाँचा आवश्यक है, परन्तु जीवन के बिना ढाँचा एक कंकाल के समान होता है। दूसरी ओर, एक संगठन में ढाँचा इसका प्रमुख तत्त्व होता है और जीवन इसका दूसरा। किसी भी दल को निश्चित करना है कि इसका ढाँचा/संगठन जीवन की सेवा करता है। याद रहेः परमेश्वर मशीनों को नहीं मनुष्यों को अभिषेक देता है!
एक दल / कलीसिया का एक संगठन के बजाय एक जीव के समान कार्य करने का एक अच्छा उदाहरण प्रारंभिक कलीसिया में पाया जाता है (प्रेरितों 4:32-35)।

सरलता की आवश्यकता

KISS – KEEP IT SIMPLE SAINTS!! (संतों, इसे सरल रखो!!)

दल में सेवा का ढाँचा सरलता है। दल के सरल ढाँचे का अर्थ यह नहीं है कि यह बढ़ेगी नहीं या इसे संगठन की आवश्यकता नहीं है, परन्तु इसे दल के हर अंश में से पवित्र आत्मा को प्रवाहित होने देता है। इसका कारण यह है कि संगठन द्वारा पवित्र आत्मा को बाहर नहीं रखा जा सकता है या दल के जटिल संगठन के द्वारा कार्य करने से रोका नहीं जा सकता है। कोई भी व्यक्ति या दल परमेश्वर के अभिषेक को बना सकता या संगठित कर सकता नहीं है। हर दल को इसके अभिषेक में बने रहना है और इसके ढाँचे को जितना सरल और अ-जटिल रख सकते हैं रखना चाहिए!

प्रतिनिधान और उत्तरदायित्व की कला

विचार: "मैं दस व्यक्तियों का काम करने के बजाय, काम के लिए दल व्यक्तियों को रखूँगा।"

परिचय

प्रतिनिधान की शब्दकोष में परिभाषा इस प्रकार है: 'दूसरे को एक प्रतिनिधि के रूप में अधिकार (इत्यादि) सौंपना; या एक व्यक्ति को, दूसरे के लिए काम करने के अधिकार के साथ, प्रतिनिधि के रूप में भेजना या नियुक्त करना।' प्रतिनिधान को समझने का एक और तरीका है 'दूसरे लोगों द्वारा काम करवाना।' अकेला अगुवा शक्ति, योग्यता और समय में सीमित होता है, परन्तु जब वही अगुवा उसकी जिम्मेवारी दूसरे लोगों के साथ बाँटता है तो यही तत्त्व बढ़ जाते हैं।

हम ने इस महत्त्वपूर्ण विषय को यहाँ रखा है, क्योंकि यदि प्रतिनिधान की कला को उचित रूप से सीखा नहीं गया तो एक दल प्रभावशाली तरीके से और कार्यकुशलता के साथ कार्य नहीं कर पाएगा। असल में, वास्तविक प्रभावशाली/फलवन्त सामूहिक कार्य में जरूरी है कि कार्यो/अधिकारों को उन लोगों को सौंपा जाए जो काम को अति उत्तम तरीके से कर सकते हैं (करना चाहिए)। आखिरकार, कोई भी एक व्यक्ति सबसे साधारण कलीसिया में भी सारा काम खुद नहीं कर सकता है (हालाँकि कुछ लोग प्रयत्न करते हैं)। परमेश्वर के अधिकाँश काम के लिए उसका तरीका है कि मसीही दल बनाए जाएँ, जो उन लोगों से बने होते हैं जिन्हें परमेश्वर ने बुलाया और वरदान दिया है कि वे कलीसिया या संस्था के काम/जिम्मेवारी/अगुआई का अंश उठा लें।

यित्रो की सलाह

मूसा के ससुर, यित्रो ने मूसा को एक सबसे उत्तम सलाह दी जो उसे कभी नहीं मिली थी। निर्गमन 18 में हम पढ़ते हैं कि मूसा इस्राएल के लोगों (और अतिरिक्त जो उनमें जुड़े हुए थे) की अगुआई, न्याय और काऊँसलिंग की सारी जिम्मेवारी अपने ऊपर लेकर, अपने को और लोगों को भी थका रहा था। यह कोई छोटा काम नहीं था जब हम सोचते हैं कि स्त्रियों और बच्चों को मिलाकर इस मण्डली में बीस लाख से अधिक लोग थे। अगुआई की बात में यहाँ मूसा कोई बुद्धिमान नहीं था। वह यह सब स्वयं करने का प्रयत्न करता और सुबह से लोकर शाम तक लोग उसके आसन के सामने उसकी सुनने/न्याय पाने के लिए कतार में खड़े होते। जब यित्रों ने देखा वह क्या कर रहा है तब उसे ताड़ना दी और फिर उसे निम्नलिखित सलाह दी:

> 'मूसा के ससुर ने उससे कहा, "जो काम तू करता है, वह अच्छा नहीं। इससे तू क्या, वरन् ये लोग भी जो तेरे संग हैं निश्चय थक जाएंगे, क्योंकि यह काम तेरे लिए बहुत भारी है; तू इसे अकेला नहीं कर सकता। इसलिए अब मेरी सुन ले, मैं तुझ को सम्मति देता हूँ, और परमेश्वर तेरे संग रहे! तू इन लोगों के लिए परमेश्वर के सम्मुख जाया कर, और इनके मुकद्दमों को परमेश्वर के पास तू पहुँचा दिया कर। इन्हें विधि और व्यवस्था प्रकट कर करके, जिस मार्ग पर इन्हें चलना, और जो जो काम इन्हें करना हो, वह इनको जता दिया कर। फिर तू इन सब लोगों में से ऐसे पुरुषों को छाँट ले, जो गुणी, और परमेश्वर का भय मानने वाले, सच्चे, और अन्याय के लाभ से घृणा करनेवाले हों; और उनको हज़ार-हज़ार, सौ-सौ, पचास-पचास, और दस-दस मनुष्यों पर प्रधान नियुक्त कर दे और वे सब समय इन लोगों का न्याय किया करें; और सब बड़े बड़े मुकद्दमों को तो तेरे पास ले आया करें, और छोटे छोटे मुकद्दमों का न्याय आप ही किया करें; तब तेरा बोझ हलका होगा, क्योंकि इस बोझ को वे भी तेरे साथ उठाएँगे। यदि तू यह उपाय करे, और परमेश्वर तुझ को यह आज्ञा दे, तो तू ठहर सकेगा, और ये सब लोग अपने स्थान को कुशल से पहुँच सकेंगे।"' (निर्गमन 18:17-23)

सौभाग्यवश, मूसा ने उसके ससुर की बात मानी और उसके सुझाव के अनुसार किया, नहीं तो मूसा अधिक देर बचा न रहता (या तो वह थकान से ठेर हो जाता, दबाव के कारण मानसिक रूप से बीमार हो जाता, या एक नाखुश/मोह-भंग/कुण्डित लोगों द्वारा बेकायदा मार डाला जाता)। यित्रो समझ गया था कि वर्तमान अगुआई के प्रबंध से न केवल मूसा परन्तु लोग भी असंतुष्ट हो जाएँगे; और यदि लोग खुश नहीं हुए तो मूसा की अगुआई खतरे में होगी। यित्रो की सलाह को चार भागों में बाँटा जा सकता है। उसने मूसा को कहा कि उसे:

- लोगों से उनकी समस्याओं के बारे में बातें करने के बजाय परमेश्वर के साथ अधिक समय बिताना होगा। मूसा ने ऐसा किया, और इसका परिणाम बाइबल की पहली पाँच पुस्तकें है। उसने मूसा को यह भी कहा कि वह उसकी सलाह को परमेश्वर जो अन्तिम अधिकार है सौंपे।

- सब समय एक-एक करके करने के बजाय लोगों को एक मण्डली के रूप में परमेश्वर की सच्चाई सिखाओ। इससे मूसा का काम बहुत ही कम हो गया।

- अगुआई / न्याय की जिम्मेवारी को सही प्रकार के लोगों को (किसी को भी नहीं) सौंपो (अर्थात् अगुआई के बोझ और दबाव को बाँट देना), ताकि काम का बोझ केवल मूसा द्वारा उठाने के बजाय कई लोगों में बाँटा जाएगा। सही प्रकार के लोग (यित्रो के अनुसार) योग्य/समर्थ, भरोसेमंद पुरुष थे जो परमेश्वर का भय मानते थे और बेइमानी के लाभ (लालच) से घृणा करते थे। तब इन पुरुषों को उनकी योग्यता के अनुसार जिम्म्मेवारी दो, अर्थात् कुछ को 1000 लोगों के ऊपर प्रधान ठहराया, जबकि कुछ को केवल 10 के ऊपर प्रधान ठहराया जा सकता था। ध्यान दो कि उन्हें लोगों के लिए न्यायियों के रूप में सब समय उपलब्ध होना था। ये लोग मूसा के सह-कर्मी बन गए (अर्थात् उन्होंने इस्राएल के लोगों की अगुआई/न्याय करने की जिम्मेवारी का एक अंश ले लिया और इसलिए उनकी अन्तःशक्ति को पहचाना, कार्य करने दिया और साकार किया गया था)। अगुआई के बोझ के इस फैलाव ने इस्राएल के लोगों में असंतोष की लहर को रोकने में भी सहायता की (क्योंकि उनकी देखभाल की जा रही थी) और इस से अगुआई के नमूने को निश्चित करने में बहुत सहायता मिली जो मूसा की मृत्यु के बाद चलता रहा (बहुत सारी संस्थाएँ असफल हो जाती हैं, क्योंकि जब आरंभ करनेवाले अगुवे की मृत्यु हो जाती है जब उसका स्थान लेने के लिए कोई अगुवा तैयार नहीं होता)। आज के अगुवों को वही गलती नहीं करनी है जो मूसा ने की थी, अर्थात् जितने कामों को वे पर्याप्त रूप से कर सकते और संतोषजनक समाप्त कर सकते हैं उनसे अधिक लेना। उस अगुवे के लिए कोई भविष्य नहीं है जो अपनी सीमाओं का पता नहीं लगा सकता और उनके भीतर नहीं जी सकता है (कभी-कभी सब अगुवों को उनके यित्रों की सुननी है जो उनके पास बुद्धिमान/भक्तिपूर्ण ताड़ना लाते हैं)।

- अगुवों के अगुवे बनो (अर्थात् जैसी मूसा का अधिकार का एक उच्च स्रोत और एक आत्मिक आवरण था वैसा ताकि अगुवे नियुक्त कर सको, ताकि लोग जान सकें कि उसने उनके चुनाव की पुष्टि की है; और उसे इन अगुवों की सहायता के लिए उपलब्ध रहना है यदि उनके पास ऐसा मामला आता है जिसे वे सम्भल नहीं सकते हैं, अर्थात् उसे उनके लिए एक पिता समान/पास्टर/सलाहकार होना है। यित्रो को पता था कि इन नए नियुक्त अगुवों को सहायता की आवश्यकता पड़ेगी, क्योंकि कभी-कभी उनको पता नहीं चलेगा उन्हें क्या करना है।

परमेश्वर द्वारा उपयुक्त ठहराया गया प्रतिनिधान

कुछ लोगों ने यित्रो की सलाह पर संदेह प्रकट किया है कि यह परमेश्वर से आरंभ नहीं हुई, परन्तु एक बुद्धिमान बूढ़े व्यक्ति में हुई थी। यह सत्य हो सकता है परन्तु यित्रो ने मूसा को सलाह दी थी कि वह निश्चय करने के लिए कि परमेश्वर सहमत होता है, उसे खोजे; और कोई ब्योरा नहीं है कि परमेश्वर ने उस सलाह को अस्वीकार किया था। असल में, बाद में गिनती की पुस्तक अध्याय 11 में, जब मूसा एक बार फिर अपने आपको अधिक काम के बोझ में पाता है तो परमेश्वर ने वैसे ही विचार की सिफारिश की थी। यहाँ मूसा को अपने ऊपर दया आ रही थी, और इसका कारण भी था। अधिकाँश लोग रो रहे और कराह रहे थे कि उनके पास खाने को मांस नहीं था और मूसा (जैसी उसकी रीति थी) मामले को लेकर परमेश्वर के पास गया। मूसा अभी तक इस्राएल के लोगों की अगुआई का अधिकाँश भाग स्वयं उठाए हुए था। वह इसके विषय में परमेश्वर से शिकायत करता है (परमेश्वर को याद दिलाता है कि सबसे पहले तो परमेश्वर ही ने उसे इस्राएल के लोगों की अगुआई के लिए राजी किया था) और स्वीकार करता है कि उसके पास वह नहीं है जिससे वह इन विद्रोही लोगों का पालन-पोषण करते हुए प्रतिज्ञा के प्रदेश में ले जा सके (अर्थात् वह अकेले उस काम को नहीं कर सकता है जिसे परमेश्वर ने उसे करने को कहा था)। उसे एहसास होने लगा था कि बोझ बहुत बड़ा है और उसे सहायता की आवश्यकता है। मूसा निराश लग रहा था, जैसे उसकी इस प्रार्थना से पता चलता है:
"मैं अकेला इन सब लोगों का भार नहीं सम्भाल सकता, क्योंकि यह मेरी शक्ति के बाहर है। और जो तुझे मेरे साथ यही व्यवहार करना है, तो मुझ पर तेरा इतना अनुग्रह हो, कि तू मेरे प्राण एकदम ले ले, जिससे मैं अपनी दुर्दशा न देखने पाऊँ।" (गिनती 11:14-15)
मूसा की पुकार का परमेश्वर का उत्तर था मूसा को कहना कि वह इस्राएल के प्राचीनों में से सत्तर को उसके पास लाए (इनमें से कुछ पहले न्यायी होने के लिए चुने गए होंगे)। इन लोगों को मूसा अगुवों/एल्डरों और अधिकारियों के रूप में जानता होगा (अर्थात् वे कोई भी साधारण लोग नहीं हो सकते थे)। उन्हें आकर मूसा के पास खड़े होना था जैसे मूसा परमेश्वर की बाट जो रहा था, और परमेश्वर न केवल मूसा की जिम्मेवारियों में से कुछ उन्हें सौंपेगा, बल्कि वह उस आत्मा/अभिषेक में से कुछ लेगा जो मूसा पर था और इन सत्तर पर डालेगा। इन पुरुषों को न केवल मूसा के साथ अगुआई के स्थान पर रखा जा रहा था, परन्तु उन्हें वह समर्थ करनेवाली सामर्थ्य भी मिलेगी जिसे परमेश्वर ने मूसा को दिया था। जब परमेश्वर ने उन्हें जिम्मेवारी सौंपी, तो उसने

उन्हें वह भी दिया जो उन्हें उनकी नई जिम्मेवारी को निभाने के लिए आत्मिक रूप से चाहिए था। परमेश्वर ने इस सारी घटना का बादल में से मूसा से बात करके बड़ा प्रदर्शन किया; और उसने यह प्रमाणित भी किया कि जो लोग चुने गए थे उसे स्वीकार्य थे और उन्हें भविष्यद्वाणी करने देने के द्वारा दिखाया कि उन्हें उसका आत्मा/अभिषेक मिला है (इसलिए लोगों को स्पष्ट चिन्ह मिला कि ये अगुवे परमेश्वर का समर्थन पाए हैं)। ऐसा जान पड़ता है कि जिन दो लोगों को मूसा चूक गया था उन्हें भी परमेश्वर ने आत्मा देकर और भविष्यद्वाणी करवाकर अगुआई में लाया था।

प्रतिनिधान के कारण

<u>कुछ चिन्ह कि एक कलीसिया/संस्था को प्रतिनिधान की आवश्यकता है:</u>

- काम के निर्धारित समय अकसर चूक जाते हैं।

- अगुवे तुच्छ/छोटे-मोटे काम कर करके बहुत समय बर्बाद करते हैं (ऐसे काम जिन्हें दूसरे लोगों को करना चाहिए) और, इसलिए, उसमें पर्याप्त समय नहीं लगाते जो काम उन्हें करने चाहिए।

- बड़-बड़े कामों को समाप्त किए बिना छोड़ दिया जाता है (और कभी-कभी तो आरम्भ ही नहीं किया जाता)।

- कुछ लोग उनके अपने स्वास्थ्य/भले के लिए बहुत परिश्रम करते हैं, जबकि दूसरे लोग कुछ अधिक नहीं कर रहे होते हैं, अर्थात् कुछ लोग दबाव से टूट रहे हैं तो दूसरे उदास और/या परेशान हैं क्योंकि उन्हें कम इस्तेमाल किया जा रहा है।

- संस्था/कलीसिया उस दिशा में नहीं जा रही है जहाँ इसे जाना चाहिए, क्योंकि गलत लोग गलत काम कर रहे हैं और, इसलिए, संस्था की गलत प्राथमिकताएँ हैं। कलीसिया/संस्था में लोगों की देखभाल शीघ्र नहीं हो पा रही है (उदाहरण, अगुवे 40 लोगों की देखभाल उसी प्रकार नहीं कर पाते हैं जैसा वे 4 या 5 लोगों की कर सकते हैं; यदि वे ऐसा करने लगते हैं तो तात्कालिक मामलों को बहुत देर हो जाती है क्योंकि वे उनकी बारी पर ही आ सकते हैं)।

- प्रतिनिधान का आचरण करने का मुख्य कारण है कि यह बाइबल का है। जैसा हम ने देखा है, मूसा ने प्रतिनिधान को इस्तेमाल किया और इसलिए वह अपनी सेवा पूरी कर पाया था। यीशु ने भी इसे इस्तेमाल किया और इसे प्रोत्साहन भी दिया, उदाहरण, उसने अपने चेलों को कुछ कार्य करने भेजा और बाद में उसने सब मसीहियों को महान अधिकार दिया (यह असल में एक अधिकार है जो सब मसीहियों को उस काम का उनका अंश करने के दिया गया है जिसे यीशु ने आरम्भ किया था और उसकी कलीसिया को वह करते रहना है जिसे करने की आवश्यकता है और इस प्रकार वे उनके अग्रदूत हैं जिन्हें आज डीकन कहा जाता है (प्रेरितों 6:1-7)। प्रतिनिधान के ये बाइबल के कुछ उदाहरण हैं।

- परमेश्वर नहीं चाहता है कि कोई भी व्यक्ति एक कलीसिया में हर भूमिका/जिम्मेवारी निभाने का प्रयत्न करे। वह चाहता है कि हर कलीसिया/संस्था एक देह हो जिसमें हर सदस्य अपना अंश करता है (1 कुरिन्थियों 12:12-31)। परमेश्वर का कलीसिया को अगुवे देने का एक कारण यह है कि जिम्मेवारियाँ सौंपी जाएँ, और कलीसिया के सदस्यों को उसमें बढ़ने का अवसर मिले (विशेषकर वरदानों और योग्यताओं में) और उसमें फलवन्त हों (इफिसियों 4:11-16)। एक कलीसिया/संस्था फिर संख्या में बढ़ने लगती है और इस बढ़त को बनाए रखने के लिए लोगों की कमी नहीं होती। कलीसिया के अगुवों को उन कामों को नहीं करना चाहिए (विशेषकर सेवकपन के नाम में) जिन्हें करने के लिए परमेश्वर ने दूसरे लोगों को बुलाया है । इससे उलझनें ही उत्पन्न होती हैं और जिनकी वे अगुआई करते हैं वे उपेक्षा किए / अवंछित महसूस करेंगे, क्योंकि उनसे कभी भी कुछ करने को नहीं कहा जाता। याद रहे, मसीह की देह में हर व्यक्ति का एक भिन्न, अनोखा, परमेश्वर द्वारा नियुक्त काम है जिसके लिए वे ही उत्तम हैं। यदि ये लोग काम नहीं कर पाएंगे (योग्य किए जाएँगे), तो सारी स्थानीय कलीसिया दुख उठाएगी, क्योंकि इसमें एक विशेष वरदान/सेवा/योग्यता की कमी रहेगी। कभी भी किसी व्यक्ति को परमेश्वर की सेवा करने से वंचित मत करो! असल में, अगुवों को उनकी जिम्मेवारी के क्षेत्र में सब प्रकार के वरदानों/सेवाओं के इस्तेमाल के लिए योग्य करना/प्रोत्साहित करना/स्थान देना चाहिए (ऐसा करना अगुआई की जिम्मेवारी है)। इसलिए, उनको उन सम्भावित अगुवों को जो उनके मध्य हैं और उनको जिन्हें परमेश्वर आत्मिक वरदान देता है पहचानना, प्रशिक्षण देना और कार्य करने देना चाहिए। कभी-कभी इस प्रशिक्षण में इन लोगों को एक कठिन / आवश्यक स्थिति में डालना सम्मिलित होता है जिसके लिए एक व्यक्ति को लगे वह तैयार नहीं है (ऐसा केवल तब कीजिए जब आपको लगे यह सही है और व्यक्ति में सहने की योग्यता है)। असल में, एक व्यक्ति को मसीह में और उसके वरदान

में बढ़ाने का अच्छा तरीका गहराई में छोड़ देना है, क्योंकि तब व्यक्ति को परमेश्वर को पुकारना होता है और उस पर निर्भर होना होता है (जबकि पहले वे उनकी अपनी शक्ति में आराम से चल रहे हों)। दूसरे लोगों को उनके विश्वास / वरदान में बढ़ने में स्वतन्त्र करने के लिए, अगुआई को ऐसी स्थितियाँ देनी हैं जहाँ ये लोग विकसित हो सकें। याद रहे, मसीहियों को परमेश्वर ने उसकी सेवा करने को बुलाया है और, इसलिए, यदि वे कुछ नहीं कर रहे हैं तो वे कुछ नहीं कर रहे हैं और, वे सम्भवतः उबे, परेशान, नाखुश, मोह-भंग या असंतुष्ट हैं।

- परमेश्वर चाहता है कि उसकी कलीसिया मर रहे संसार में उसके जीवन की सेवा अधिकाधिक कर सके। यह काम इतना बड़ा है कि प्रतिनिधान की आवश्यक है, और एक स्थानीय कलीसिया के संदर्भ में भी है। इसलिए वह चाहता है कि उसके अगुवे उन भरोसेमंद लोगों को जिनकी वे अगुआई करते हैं, परमेश्वर के राज्य के सिद्धान्तों को स्पष्टता और सरलता के साथ सिखाएँ और पवित्र आत्मा के सामर्थ्य में सेवा करें, ताकि वे भी विश्वास/सत्य/सामर्थ्य में सेवा कर सकें (2 तीमुथियुस 2:2)। जितने अधिक मसीहियों को प्रभावशाली सेवा के लिए तैयार किया जाएगा, उतने अधिक लोगों तक पहुँचा जाएगा/सहायता की जाएगी/आशीष पाएँगे, आदि। इसलिए, परमेश्वर के अगुवों को पता लगाना सीखना है कि ये भरोसेमंद लोग कौन हैं, और इन लोगों को सिखाने/चेले बनाने योग्य होना है, ताकि वे बदले में इस ज्ञान को दूसरे आत्मिक लोगों तक पहुँचा सकें। यह प्रगति वह मुख्य तरीका है जिसे परमेश्वर ने पृथ्वी पर उसके काम को करने के लिए चुना है; और, असल में, यह प्रतिनिधान की कला को कार्यान्वित करना है। याद रहे, कि इन सच्चाइयों/सिद्धान्तों को प्रभावशाली होने के लिए विश्वास से सिखाना है और विश्वास से स्वीकार करना है (रट लेना काफी नहीं है)। यदि स्थानीय मसीह की देह सेवाओं को विकसित करने में असफल होती है तो परिणाम निश्चलता, परेशानी और असन्तोष होगा। असल में, जो कलीसिया की अगुआई प्रतिनिधान करने में असफल होती है अपनी अगुआई में सीमित रहेगी। उदाहरणार्थ, एक पास्टर (जो स्वयं अगुआई करता है) जो 60 लोगों की देखभाल कर सकता है, यदि वह दसरी सेवाओं को पहचानने/योग्य होने का अवसर नहीं देता है तो 60 से बड़ी संख्या की कलीसिया नहीं पा सकेगा (चाहे वह इसकी चाह रखता हो), क्योंकि वह कलीसिया को अपनी क्षमता तक ही सीमित रखेगा। अगुवे, सबकुछ स्वयं करके प्राप्त करने के बजाय, समझदारी के प्रतिनिधान द्वारा कहीं अधिक प्राप्त कर पाएँगे।

- ऐसे लोग होते हैं जिन्हें यदि प्रशिक्षित किया जाए तो वे अगुवों से बेहतर काम कर सकते हैं। तब यह वर्तमान अगुवों को दूसरे क्षेत्रों में दूसरे कामों को करने में समय दे सकेगा। याद रहे, एक उत्साही मसीही की आग कभी मत बुझाओ। जब तक वे प्रेरित हैं तो वे अपने आपको सुधारने के लिए काफी कुछ करेंगे। यदि उन पर ढक्कन लगाया गया या उनको देर तक रोका गया (बिना कारण के) तो वे परेशान हो जाएँगे और कलीसिया/संस्था को छोड़ देंगे या अन्त में उनकी प्रेरणा को खो देंगे (और जो उन्हें परमेश्वर के लिए करना चाहिए उससे कम करना तय कर लेंगे)। यह भी याद रखो कि जिन लोगों के लिए काम किए जाते हैं वे अपने लिए करना कभी नहीं सीख पाएँगे और परिणामस्वरूप दूसरों के लिए कभी भी कुछ नहीं कर पाएँगे।

- एक अगुवे का बोझ हलका हो जाता है और जरूरी कामों की लम्बी सूची को समाप्त करने के प्रयत्न में इधर-उधर दौड़ने के बजाय, वह अपनी शक्ति महत्त्वपूर्ण कामों को करने में लगा सकता है।

- जिन लोगों को काम सौंपा जाता है वे उनके अगुवों को सहानुभूति दिखा पाएँगे, और सहयोग दे पाएँगे (कम से कम अंश में), क्योंकि वे उनके अगुवों के बोझ का एक अंश उठा सकेंगे। और सौंपे गए काम को करने में आई चुनौतियों/प्रोरणाओं के कारण, वे अकसर आत्मिक रूप से और विश्वास में बढ़ सकेंगे। बहुत से लोग उनके विश्वास/योग्यता/सामर्थ्य में या परमेश्वर में उनकी सम्भावना को तब तक समझ नहीं कर पाएँगे जब तक उनको ऐसे काम नहीं दिए जाते जो उन्हें खींचेंगे और उनको उनके स्वाभाविक योग्यताओं के परे जाने में विवश करेंगे (अर्थात् यह लोगों में श्रेष्ठता लाएगा और सामान्यता के जीवन से उन्हें बचाएगा - उदाहरण, पौलुस तीमुथियुस को प्रोत्साहित करता है)। अगुवों को कही-सही पता लगाना है कि किन लोगों को खींचा जा सकता है क्योंकि नहीं तो इस तरीके से गलत लोगों का नाश/टूट जाएँगे।

- जो अगुवे दूसरों को सौंपते हैं वे कई विभिन्न प्रकार के कामों या काम के नए मार्गों का आनन्द ले सकते हैं, क्योंकि कुछ क्षेत्रों में कुछ कामों को सौंपकर उन्होंने उनके लिए अधिक स्थान और समय निकाला होगा। असल में, यदि अगुवा नई जिम्मेवारियाँ लेता है, कोई आवश्यक योग्यता को विकसित करता है, या नई चुनौतियों को लेता है तो प्रतिनिधान होना आवश्यक है। जो अगुवे प्रतिनिधान करते हैं वे उनकी अगुआई/काम में कहीं अधिक कार्यकुशल/प्रभावशाली होंगे।

- जब कलीसिया/संस्था प्रतिनिधान का इस्तेमाल नहीं करती है तब सबकुछ रुक सा जाता है, अर्थात् प्रगति नहीं हो पाएगी और वर्तमान स्थिति का सबसे उत्तम परिणाम बनाया रखा जाएगा। यह इसलिए होगा क्योंकि जिन लोगों को परमेश्वर की ओर

और भविष्य की ओर देखना चाहिए वो प्रबंध/व्यावहारिक कार्यों, आदि में फँसे रहेंगे। जो काम किए जाते हैं, जल्दबाजी में किए जाते हैं (और अकसर ठीक से नहीं कि जाते), क्योंकि उनको पर्याप्त समय नहीं दिया जाता (विशेषकर तैयारी के लिए) क्योंकि सबकुछ तुरन्त करना होता है (या पिछले दिन!)। यह ऐसा होता है क्योंकि एक और काम का निर्धारिक समय आ पहुँचा है (इससे तात्कालिक कामों के बदले महत्त्वपूर्ण कामों को भुला दिया जाता है); इससे सम्भावित अगुवे विकसित नहीं हो पाते।

परमेश्वर के अगुवे प्रतिनिधान क्यों नहीं करेंगे उसके कारण

- वे डरते हैं कि दूसरा व्यक्ति उतना अच्छा काम नहीं कर पाएगा जितना वे करते हैं और इसलिए आ जाते हैं (अर्थात् घमण्ड)। दूसरे डरते हैं कि उनकी जरूरत नहीं रहेगी और इसलिए लोगों के कृपापात्र नहीं रहेंगे या अपनी नौकरी खो देंगे (अर्थात् उनका स्थान दूसरा ले लेगा)। अगुवों को कभी भी इस फँदे में नहीं फँसना है कि वे अपनी व्यस्तता का घमण्ड करें और उस गति का जिसमें वे काम करते हैं कि उनका कुछ काम दूसरों को न दें, और उन्हें कभी भी विश्वास नहीं करना है कि वे अनिवार्य हैं।

- वे कोई काम करने का इतना आनन्द लें कि वे इसे किसी दूसरे को सौंपने के अनिच्छुक हों (विशेषकर जब व्यक्ति काम को अलग तरीके से करने वाला है)।

- वे उनकी सीमाओं/कमज़ोरियों को अपने सामने या दूसरों के सामने स्वीकार नहीं करना चाहते हैं। अगुवे किसी क्षेत्र में अपर्याप्तता को अकसर छिपाने का प्रयत्न करेंगे, हालाँकि ये दूसरे लोगों को दर्दनाक तरीके से प्रत्यक्ष हैं। वे नहीं चाहेंगे कि उनके अधीनस्थ कर्मचारी जानें कि किसी चीज के बारे में वे उतना नहीं जानते जितना वे जानते हैं। कई लोग स्वीकार करने में सरलता अनुभव नहीं करते कि वे कुछ नहीं जानते हैं। ऐसे लोगों के लिए प्रतिनिधान यह स्वीकार करना होगा कि वे किसी क्षेत्र में ठीक से नहीं कर पा रहे हैं या कि वे उनके काम की मात्रा को सम्भाल नहीं पा रहे हैं।

- वे डरते हैं कि दूसरा व्यक्ति काम को ठीक से नहीं करेगा या उससे भी खराब करेंगे जैसा वे कर सकते हैं, और इसलिए लक्ष्य की प्राप्ती में बाधा डालेंगे या दल की कार्यकुशलता को कम करेंगे; या वे सोचते हैं कि वे उस समय तक इन्तज़ार नहीं कर सकते जब तक व्यक्ति काम प्रभावशाली तरीके से करना सीख नहीं लेता (अर्थात् व्यक्ति को एक काम ठीक से करने के लिए अनुभव और विश्वास में बढ़ने का समय)।

- वे विश्वास करते हैं कि परमेश्वर ने केवल उन्हें ही कलीसिया / संस्था का सारा काम अकेले करने के लिए बुलाया है। यह उनके सम्प्रदाय की पारम्पारिक स्थिति के कारण हो सकता है; वे उनकी स्थिति / प्रतिष्ठा को किसी दूसरे के साथ नहीं बाँटना चाहते; वे उनकी मण्डली / समूह पर से उनका नियंत्रण नहीं खोना चाहते; या वे उनकी कलीसिया/संस्था पर से उनका नियंत्रण नहीं खोना चाहते। वे सच्चाई से विश्वास करते हैं कि वे उनकी मण्डली/समूह की ओर विश्वासयोग्यता के कार्य कर रहे हैं; या वे नहीं चाहते कि किए गए काम का श्रेय किसी दूसरे को मिले (यह अकसर तब होता है जब अगुवे को निरन्तर उसके महत्त्व के विषय में आश्वासन दिलाते रहना पड़ता है)।

- वे विश्वास करते हैं कि उनके काम के विशेष तत्त्व प्रतिनिधान की प्रथा को असंभव बनाते हैं।

- वे एक व्यक्ति को पर्याप्त रूप से तैयार नहीं कर पाते हैं कि वह सौंपे हुए काम को कर सकें। यह समस्या तब उत्पन्न होती है जब अगुवों को संदेह होता है कि वे उनके तरीके से काम करने के लिए किसी दूसरे को प्रशिक्षित नहीं कर पाएँगे। दुर्भाग्यवश, एक अगुवे के लिए काम कैसे किया जाता है, काम किए जाने से अधिक महत्त्व का है (यह तब उचित विचार का है जब कोई काम अभक्त तरीके से किया जाता है)। दूसरे अगुवे इतने आलसी होते हैं कि वे अतिरिक्त भार नहीं लेते (अर्थात् समय व्यतीत करना और अपने आप को देना), दूसरे लोगों को आवश्यक प्रशिक्षण देना जिससे वे कोई दूसरा काम करने के योग्य हो जाएँ। वे सोचते हैं कि इसे स्वयं करना आसान है (और थोड़े समय के लिए, यह सम्भवतः है)।

- उनका काम करने का तरीका इतना अव्यवस्थित है कि उन्हें पता नहीं कि वे कोई काम दूसरे को दे सकते हैं या दल में और सदस्यों को ले सकते हैं या नहीं, क्योंकि उन्हें पता नहीं उन्हें क्या चाहिए या आवश्यकता है।

- उन्हें केवल थोड़ा सा ही विचार है कि दल के सब लोग क्या क्या करते हैं और इसलिए, वे सोचते हैं कि एक काम किया जा रहा है जबकि ऐसा नहीं है।

-	उन्होंने उनकी कलीसिया/संस्था में जिम्मेवारी के प्रति ऐसा डर/अरुचि बना रखी है कि कोई भी काम लेने के लिए तैयार नहीं है यदि उन्हें दिया जाए तब भी, अर्थात्, वे कीमत, वचनबद्धता या आलोचना माँगते हैं जो काम के साथ आते हैं।

-	उनका लोगों में जिनकी वे अगुआई करते हैं भरोसा इतना कम है कि वे कलीसिया/संस्था में उन पर कोई जिम्मेवारी लेने का भरोसा नहीं करेंगे। बहुत सारे अगुवे प्रतिनिधान द्वारा निराश हो गए हैं क्योंकि दूसरे लोग प्रतिक्रिया करने या काम को समाप्त करने में असफल रहे हैं। इन अगुवों को काम ठीक से सौंपना सीखना है ताकि वे व्यक्ति को सौंपे गए काम को प्रभावशाली तरीके से समाप्त करने के योग्य कर सकें। ध्यान दो, जितना अधिक एक अगुवा असुरक्षित होगा उतना अधिक वह उसके आस-पास के लोगों की क्षमता को तिरस्कार से देखेगा (यह अकसर इसलिए है क्योंकि ऐसा करने से वे बड़े और बेहतर दिखते हैं)। इस प्रकार के अगुवे अपने आप को 'कम ज्योतियों' से घेर लेते हैं ताकि वे अधिक चमकते नज़र आएँ। दूसरी ओर, जिन अगुवों में अह्म की समस्या है या जिनका श्रेष्ठ रवैया है उनको कोई भी ऐसा अच्छा व्यक्ति नहीं मिलता जिसे वे कोई काम सौंप सकें; या वे यहाँ तक ऊपर रहना चाहते हैं कि वे अधीनस्थों की योग्यताओं और काम करने की स्वतन्त्रता को बुरी तरह से रोके रहें।

-	वे विश्वास करते हैं कि उनके पास दूसरे लोगों को ठीक से काम सौंपने का समय नहीं है (दुर्भाग्यवश, जितनी देर वे प्रतिनिधान में करेंगे, उतना कम समय उनके पास होगा!)।

-	वे प्रतिनिधान के विचार को नहीं समझते (और अकसर सारे प्रबंध की प्रक्रिया को भी नहीं); या उन्होंने इसे कितनी बार गलत तरीके से होते देखा है कि उनकी इसे करने की हिम्मत नहीं होती।

-	वे उस तरीकों को बदलने से डरते हैं जैसा कलीसिया / संस्था में होता आया है; या वे अज्ञात से डरते हैं और वे एक नई निपुणता/विचार/आदि सीखना नहीं चाहते।

-	वे डरते हैं कि लोग प्रतिनिधान को काम से बचने के रूप में देखेंगे। सच्चाई यह है कि यह एक अगुवा का काम है कि वह एक कलीसिया / संस्था में सम्पूर्ण तस्वीर को देखे और सही काम पर लोगों को लगाए, ताकि कलीसिया/संस्था उस काम को कर सके जिसे इसे परमेश्वर में करना है।

याद रहे, यदि परमेश्वर ने तुम्हें अगुवा होने के लिए बुलाया है तो उसने तुम्हें योग्यता भी दी है: बुद्धि पाने के लिए जिसकी तुम्हें आवश्यकता है; प्रभावशाली तरीके से प्रतिनिधान करने के लिए (याकूब 1:5-8); और कोई डर/ईर्ष्या/विश्वास की कमी पर जय पाने के लिए (ये चीजें अकसर शत्रु से आती हैं) जो तुम्हें प्रतिनिधान इस्तेमाल करने से रोकता है (2 तीमुथियुस 1:7)।

<u>प्रतिनिधान कैसे करें:</u>

प्रतिनिधान की प्रक्रिया में मूल रूप से चार कदम होते हैं, अर्थात् योजना, प्रतिनिधान, प्रशिक्षण और पुनरीक्षण।

(1) योजना

प्रतिनिधान की इस प्रक्रिया में फैसला किया जाता है कि कौन से काम सौंपे जाने चाहिए। इसे सावधानी और विचार-विमर्श के साथ किया जाना चाहिए। याद रहे, अगुवे का कुछ काम सौंपना गलत होगा। इसलिए, यह फैसला करना महत्त्वपूर्ण है कि किन कामों को सौंपा जा सकता है और कौन से काम अगुवे को स्वयं करने चाहिए (अगुवों को कभी भी उनकी जिम्मेवारी से कतराना या बचना नहीं चाहिए)। प्रतिनिधान और अप्रिय कामों को दूसरों को देने में काफी अन्तर है। आप यह पता लगाने के लिए कि आप ऐसा नहीं कर रहे हैं अपने आप से यह पूछ कर जाँच सकते हैं कि क्या आप अपनी व्यक्तिगत सुविधा के लिए प्रतिनिधान कर रहे हैं या क्योंकि यह कलीसिया/संस्था/व्यक्ति के लिए अच्छा है।
जैसे हम ने पहले देखा है कि किसी भी दीर्घकालीन काम (उदाहरण, एक समूह की अगुआई आदि) के लिए काम का विवरण लिख लेना चाहिए। असल में, अल्पकालीन या एक बार के कामों के लिए भी, प्रतिनिधि को स्पष्ट विचार देना चाहिए कि उन कामों के लिए क्या आवश्यक है (उदाहरण, काम का लक्ष्य, आकार और अवधि, आदि)। योजना में सम्मिलित है: प्रार्थनापूर्वक फैसला करना/चुनाव करना कि और काम किसे देंगे (काम को व्यक्ति से जोड़ना); काम को करने के लिए व्यक्ति को क्या प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी; जिन्हें काम दिया जा रहा है उन्हें कौन प्रशिक्षण देगा/सहायता करेगा/सीधे जिम्मेवार होगा; और आप काम कैसे सौंपेंगे। याद रहे, कभी-कभार अगुवों को प्रतिनिधान में एक व्यक्ति के साथ सोच-

समझकर खतरा लेना होता है परन्तु ऐसा करने में असफलता का परिणाम कलीसिया/संस्था का प्रभावशाली/फलवन्त होने या परमेश्वर में आगे बढ़ने में असफलता हो सकती है।

(2) **प्रतिनिधान**

यह प्रार्थनापूर्वक चुने हुए व्यक्ति को असली में काम देना है। जो अगुवे काम दे रहे हैं उन्हें उन अगुवों को भी सम्मिलित करना चाहिए जो व्यक्ति के लिए सीधे जिम्मेवार होंगे। इन अगुवों को स्पष्ट कर देना चाहिए कि काम में क्या सम्मिलित होगा (अर्थात् एक स्पष्ट काम का विवरण दो जो काम से सम्बंधित छोटी से छोटी बातों को भी समझाता है, क्योंकि किसी से भी ठीक से काम करने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है यदि उन्हें स्पष्ट रूप से पता न हो उनसे क्या माँग की गई है)। इससे पहले व्यक्ति अपने आप को वचनबद्ध करे, तय करो कि काम का विवरण बहुत विस्तारित नहीं हो (क्योंकि इससे जो अपेक्षित है उसके विषय में उलझन होती है, व्यक्ति निराश हो जाता है जब उसे काम कैसे करना है समझाए बिना जिम्मेवारी दी जाती है)। काम की माँगों/विवरणों को एक समर्थन के वातावरण में दिया जाना चाहिए और व्यक्ति पर कोई भी दबाव नहीं डाला जाना चाहिए कि वह ऐसा कुछ लेने के लिए विवश हो जाए जिसे वह लेना नहीं चाहता। एक अनिच्छुक व्यक्ति का एक काम करना कठिनाई या असफलता ही लाएगा। व्यक्ति की नए काम में ठीक बैठने/जुड़ने में सहायता की जानी चाहिए (सही पूरक लोगों को काम के लिए इकट्ठे रखना ही विशेषकर जरूरी है)। एक बार जब व्यक्ति को पता चलता है कि काम में क्या सम्मिलित है (और उसने प्रार्थना करके निश्चय कर लिया है यह वही है जो परमेश्वर चाहता है वह करे) और वह काम को स्वीकार करता है, तब अगुवे को व्यक्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए और अपना विश्वास प्रकट करना चाहिए कि व्यक्ति काम कर सकता है, अर्थात् प्रेरित करना (अगुआई के परमेश्वर द्वारा दिए दर्शन और लक्ष्यों के साथ) और व्यक्ति का समर्थन करना। व्यक्ति को काम में लाना और उसे भक्तिपूर्ण तरीके से बनाना ताकि वह काम कर सकेगा अगुवे का काम है। अगुवों को प्रतिनिधियों को ऊँचे परन्तु विवेकी स्तर तय करने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जो परमेश्वर को महिमा लाते हैं, उन्हें बताना चाहिए एक अच्छा किया गया काम क्या होता है (उनके विचार से), और उन्हें व्यक्ति की उनके काम में आ सकनेवाली समस्याओं या कठिनाइयों से बचने या के लिए तैयार होने में सहायता करनी चाहिए।

(3) **प्रशिक्षण**

काम के लिए आवश्यक प्रशिक्षण योजना के चरण पर ही निश्चित कर लेना चाहिए और कम से कम प्रतिनिधि का कुछ प्रशिक्षण, इससे पहले वे काम को हाथ में लें, कर लेना चाहिए। कुछ लोगों ने पहले ही पर्याप्त प्रशिक्षण पाया होगा (उदाहरण, ऐसे ही एक काम में) और इसलिए उन्हें इस क्षेत्र में नए काम के विषय में अनुकूलन, पहचान के अलावा किसी चीज की आवश्यकता नहीं होगी। अधिकाँश लोग काम करते हुए पा रहे प्रशिक्षण से भी लाभ उठाते हैं। यह व्यावहारिक, साथ में करना और औपचारिक प्रशिक्षण दोनों हो सकता है। अगुआई को इसे उनके लिए जिन्हें वे जिम्मेवारी देते हैं जितना सरल हो सके बनाना चाहिए। इसमें सम्मिलित हो सकता है काम को कम कर देना या प्रतिनिधि के साथ काम करना (या किसी दूसरे अनुभव को इसके लिए लगाना) विशेषकर उस समय जब व्यक्ति पहली बार कर रहा है (अर्थात् उसे दिखाना काम कैसे किया जाता है)। याद रहे, अगुवों को मसीह का जीवन जो उन में है उसे दूसरों में उत्पन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए (इसलिए उन्हें मसीह समान उदाहरण बनना है और उदाहरण पेश करना है)। अगुवों को इसलिए कि उन्होंने काम को अपने ईर्द-गिर्द बनाया है नष्ट नहीं होने देना है। अगुवों को सीखा गया ज्ञान भी अपने पास नहीं रखना है (चाहें उन्हें इसे सीखने के लिए कई कष्ट भरे वर्ष लगे थे)। विशेषकर उस समय वह ज्ञान उस व्यक्ति के लिए लाभदायक होगा जिसे काम सौंपा जा रहा है। ज्ञान को तब ही प्रभावशाली तरीके से इस्तेमाल किया जा सकता है जब इसे बाँटा जाता है।

(4) **पुनरीक्षण**

एक बार जब व्यक्ति को काम सौंपा गया है, तो अगुआई को उसे भूलना नहीं है, अर्थात् एक विवेकी पुनरीक्षण होते रहना चाहिए। प्रतिनिधान के चरण में ही अगुवों को एक फीडबैक की प्रक्रिया की योजना बना लेनी चाहिए। निस्संदेह, इसे विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों के कारण लचीले रखना होगा, परन्तु पुनरीक्षण या फीडबैक का विचार आरम्भ से ही बना लेना चाहिए। प्रतिनिधान के पुनरीक्षण के चरण के कुछ महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त नीचे दिए गए हैं।

- जो अगुवे उन लोगों के लिए जिम्मेवार हैं जिनको काम दिया गया है, उनके लिए उपलब्ध रहना चाहिए। उन्हें व्यक्ति की आवश्यकता के अनुसार प्रोत्साहित करने, सुझारने, प्रेरित करने के लिए तैयार रहना चाहिए, और यह जानने का कि व्यक्ति को क्या चाहिए एक ही तरीका है कि ध्यान दें। पुनरीक्षण में व्यक्ति को प्रशंसा और श्रेय देना सम्मिलित है जहाँ इन्हें दिया जाना चाहिए विशेषकर जब एक काम सफलतापूर्वक समाप्त किया गया है। इसे करने में असफलता प्रतिनिधि की ओर से प्रोत्साहन और विश्वास की हानि हो सकती है। असल में, अगुवों को वह सब करना चाहिए जो वे कर सकते हैं ताकि प्रतिनिधि सफल हो सके।

- अगुवों को पता होना चाहिए कभी-कभी सब असफल होते या गलतियाँ करते हैं और इसलिए उन्हें पहले से फैसला करना है कि ऐसी परिस्थितियों में वे क्या करने वाले हैं। अगुवों को गलतियों पर पीठ नहीं फेरनी है, बल्कि पता लगाना है क्या गलत हुआ और व्यक्ति की गलती से सीखने में सहायता करनी है। अगुवों को व्यक्ति के विश्वास को बनाने में सहायता करनी है (न कि उनको नीचा दिखाना है और उनकी नाक रगड़नी है)। असफलताएँ / गलतियाँ एक व्यक्ति को शिक्षणीय बनाते हैं और अगुवों को सहायता / सुधार का अवसर देते हैं। गलतियों की पूर्व तैयार (जहाँ सम्भव हो) सहायक होती है क्योंकि यह अगुवों को उन गलतियों की ओर अधिक प्रतिक्रिया करने से रोक सकती है। ध्यान दो कि एक व्यक्ति जो बारम्बार गलतियाँ करता है, या तो काम गलत कर रहा है या अगुआई ने काम ठीक से समझाया नहीं है (और इसे सुधारा जाना चाहिए)।

- अगुवों को पता होना चाहिए कि काम, जो सौंपा गया था, समाप्त किया गया है और उनको यह तब तक पता नहीं चलेगा जब तक पुनरीक्षण की क्रियाविधि स्थापित नहीं की जाएगी। वे प्रतिनिधि को कह सकते हैं कि एक बार काम हो जाने के बाद वे आकर उन्हें बताएँ विशेषकर जब वे पहली बार काम कर रहे हैं (इन सत्रों में अगुवे प्रश्न पूछ सकते हैं, कठिनाइयों को पार करने में सहायता कर सकते हैं, प्रोत्साहित कर सकते हैं, आदि)। यदि प्रतिनिधि अगुआई के पास नहीं आता है तो उन्हें उसके पास जाना चाहिए। याद रहे अगुवों ने दूसरों को काम सौंपा होगा परन्तु वे अभी भी काम के लिए परमेश्वर के सामने जिम्मेवार हैं।

- अगुआई को निश्चय करना है कि वे उन सब अच्छे फैसलों का समर्थन करते हैं जिन्हें उन लोगों ने लिया है जिन्हें काम सौंपा गया था (विशेषकर जब व्यक्ति हाल में ही नियुक्त किया गया था) क्योंकि ऐसे लोग अवश्य होंगे जो किसी परिवर्तन का सामना/आलोचना करेंगे (विशेषकर उस समय जब यह नए नियुक्त किए अगुआई ने लाया है)।

- पुनरीक्षण क्रियाविधि शैतान के आक्रमणों को रोकने / के विरुद्ध बचाव करने में सहायता कर सकता है, क्योंकि अधिक अनुभवी अगुवा प्रतिनिधि को दिखा सकता है कि काम (विशेषकर बहुत जिम्मेवारी के स्थान) सौंपे जाने के समय कहाँ पर शत्रु घुस आ रहा होगा। व्यक्ति की आरम्भ में काफी सहायता करना बुद्धिमानी है (व्यक्ति के साथ काम किया भी जा सकता है)। बाद में व्यक्ति को अधिकाधिक स्वतन्त्र रूप से काम करने दिया जाना चाहिए, अर्थात् उन्हें अकेले काम करने दिया जाना चाहिए और केवल पुनरीक्षण फीडबैक रहना चाहिए। अच्छे लोगों को काम के लिए चुनने का कोई लाभ नहीं है यदि फिर अगुआई उन्हें करने के लिए स्वतन्त्रता नहीं देती। अगुवों को कभी भी पता नहीं चलेगा कि व्यक्ति काम करने के योग्य है कि नहीं यदि वे जब व्यक्ति काम कर रहा है तब हस्तक्षेप करते रहेंगे।

- काम सौंपने के बाद, अगुवों को नियंत्रण बनाने चाहिए जो उन्हें कठिनाइयों/समस्याओं का पता लगाने/पहले से जान लेने में सहायता करें और इससे वे अधिक हानि होने से पहले उनसे निपट सकेंगे। इसे करने का सबसे अच्छा तरीका नियमित रिपोर्टिंग सत्र होने हैं।

- अगुवों को निश्चित करना है कि प्रतिनिध जानते हैं कि ऐसे पुनरीक्षण का अर्थ यह नहीं है कि अगुआई का उनमें भरोसा नहीं है बल्कि यह उनकी सहायता करने और प्रोत्साहित करने का सरल तरीका है जिससे वे परमेश्वर और दल के लिए उनका अति उत्तम दे सकें। याद रहे, अगुवों को उनका भला ही सोचना है जिनकी वे अगुआई कर रहे हैं।

- पुनरीक्षण प्रगति को पहचानने, समर्थन करने और प्रशंसा करने, कठिनाइयों का मूल्याँकरन करने में सहायता करता है और यह अगुवों को यह देखने में भी सहायता करता है कि लक्ष्य कैसा चल रहा है।

प्रतिनिधान के सिद्धान्त

एक कलीसिया इसके कार्यों में उतार-चढ़ाव केवल एक ही तरीके से दूर रख सकती है कि यह इसके काम को जितने विस्तारित आधार पर हो सकता है फैला सके (परमेश्वर की इच्छा के साथ समझौता किए बिना)। इसका अर्थ होगा कि अगुवों को दूसरे स्तर की अगुआई भी तैयार करनी पड़ेगी और इस प्रकार उनके काम को कार्यकुशलता के साथ होने के लिए सब प्रकार के वरदानों को इस्तेमाल होने देंगे। कोई भी एक अगुवा परिवर्ती कलीसिया की प्रभावकारिता से बच नहीं सकता है (अर्थात् उनके मूड/काम/बोझ आदि के अनुसार बरम्बार उतार-चढ़ाव)। एक विस्तारित आधारीय अगुआई जिसमें काम उन लोगों को सौंपे जाते हैं जिन्हें काम करने के लिए बुलाया/अभिषिक्त किया/समर्थ किया है, कलीसिया को सब प्रकार की सेवाओं को करने में योग्य करता है ताकि कलीसिया प्रभावकारी तरीके से कार्य कर सके और बढ़ सके। बाकी सब सेवाओं की कीमत पर केवल एक (या कुछ) प्रकार की सेवा पर ध्यान लगाने से (क्योंकि ये वो क्षेत्र हैं जहाँ एक कलीसिया/संस्था की अगुआई वरदान पाई है), कलीसिया इसके सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर सकेगी और इसलिए यह असफल रहेगा (अकसर ऐसी एक कलीसिया छोटी/प्रभावहीन रहती है और सदा यह बताने के बहाने खोजती है कि ऐसा क्यों है)।

प्रतिनिधान अगुआई के साथ आरम्भ होता है। यह तब होता है जब अगुवा उसकी जिम्मेवारियों / कामों को दूसरे लोगों के साथ बाँटता है। जो अगुवे इसे करने में असफल होते हैं वे उनके अपने काम और आत्मिक वृद्धि पर संकुचन लगाते हैं। जो अगुवे प्रतिनिधान करते हैं उन्हें भी कभी-कभी आत्मिक रूप से बढ़ना होता है ताकि वे उनके साथ बने रहें जिनको उन्होंने जिम्मेवारी सौंपी है। अगुवों को उन्हें जिनकी वे अगुआई करते हैं अधिकार और प्रभावकारीता में अपने से आगे बढ़ने देना है क्योंकि वे अपने छोटे से साम्राज्य के लिए नहीं परन्तु परमेश्वर के राज्य के लिए काम कर रहे हैं। जो अगुवे प्रतिनिधान नहीं करते बढ़ते नहीं हैं क्योंकि वे बढ़ना नहीं चाहते (अर्थात् वे अपने आप चीजों को चलाए रखते हैं)। परन्तु वे अकेले परमेश्वर के लिए अधिक नहीं कर सकते हैं। अकसर ऐसा अगुवा मुख्य कारण है जो कलीसिया/संस्था के विकास को रोक रहा है (यह इसलिए है क्योंकि यह अगुवा अपनी क्षमता में कार्य कर रहा है और वह दूसरे लोगों को आने से रोकता है जिससे कलीसिया / संस्था की क्षमता बढ़ती नहीं)। जैसे एक व्यक्ति अगुआई के पोषण / प्रोत्साहन / प्रशिक्षण से परमेश्वर में विकसित होता है, तो जिस क्षेत्र में यह व्यक्ति वरदान पाया है वहाँ कलीसिया / संस्था में स्पष्ट वृद्धि होगी और इस प्रकार सारी देह आशीष पाएगी, सहायता पाएगी और बढ़ेगी।

प्रतिनिधान को भविष्य के लिए निवेश के रूप में देखा जाना चाहिए। एक काम सौंपने के तुरन्त बाद, अगुवों को अकसर अपना अधिक ध्यान लगाना पड़ता है और अपने आप को और अपने समय को खर्च करना पड़ता है ताकि प्रतिनिधि सफल हो सके। परन्तु दीर्घकालीन में जब एक समय के लिए जाँच / पुनरीक्षण / सुधार / आदि किया गया है तो इसका परिणाम एक ऐसा व्यक्ति है जो बिना अधिक निरीक्षण के अपना काम कर सकता है जिससे अगुवे अधिक महत्त्वपूर्ण काम कर सकते हैं। यह निवेश कुछ लोगों के साथ कुछ समय ले सकता है (और यह निराशा / परेशानी ले सकता है) परन्तु इस कारण से प्रतिनिधान को छोड़ नहीं देना चाहिए (जब तक प्रतिनिधान की कला का अभ्यास होता रहेगा यह आखिरकार फल लाएगा)।

कभी भी उन लोगों को काम / अधिकार मत दो जो इन्हें सह नहीं सकते हैं। एक कम योग्य व्यक्ति को अधिक खींचना उतना ही खराब है जितना एक योग्य व्यक्ति को दबाना है। अगुवों को सीमाओं और योग्यताओं/ताकतों का पता लगाने के योग्य होना चाहिए।

कभी भी एक काम दूसरे व्यक्ति को मत सौंपो जो पहले ही किसी दूसरे को दिया गया था। यदि यह आवश्यक हो तो, आपको निश्चित करना है कि आपको उस व्यक्ति का सहयोग और सहमति मिली है जिसे पहले काम दिया गया था क्योंकि नहीं तो उस व्यक्ति का विश्वास / स्थान बहुत कमज़ोर हो जाएगा।

जब एक व्यक्ति को अधिकार या एक काम सौंपा जाता है तो उस व्यक्ति को प्रभावशाली तरीके से काम करने के लिए जिस किसी प्रशिक्षण की भी आवश्यकता है देनी चाहिए। किसी भी अगुवे को पर्याप्त प्रशिक्षण के बिना (जब इसकी आवश्यकता है) एक व्यक्ति से ऊँचे स्तर के प्रदर्शन की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। परन्तु एक बार जब व्यक्ति पर्याप्त रूप से सज्जित/प्रशिक्षित किया गया है तो अगुआई को उनसे जिन्हें जिम्मेवारी सौंपी गई है एक अच्छे प्रदर्शन की अपेक्षा करनी चाहिए।

उस परिणाम के अनुसार जो आप प्राप्त करना चाहते हो काम सौंपो और व्यक्ति पर दबाव मत डालो कि वह उन परिणामों को पाने के लिए एक तरीका उपयोग करे। अकसर एक प्रतिनिधि अगुवे से एक काफी भिन्न तरीके से काम करेगा, औप वे अन्त में वैसे ही परिणाम प्राप्त करेंगे। निस्संदेह, हमें याद रखना है कि परमेश्वर के राज्य में अन्त साधनों को ठीक प्रमाणित नहीं करते हैं।

जो व्यक्ति प्रतिनिधान करने का प्रयत्न करता है उसे पता होना चाहिए कि उसके ऐसा करने का अधिकार है। इस की माँग है कि सब दल के सदस्य उनके दल की संगठनात्मक पदानुक्रम को जानते हैं और कि उस पदानुक्रम में वे किस की ओर उत्तरदायी हैं।

अगुवों को लोगों को जिम्मेवारी के उनके प्रतिनिधान के पक्के कारण सदा देने चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करते हैं तो वे उनके और उनके विश्वास के ईर्द-गिर्द एक दूसरी संस्था / परम्परा आरम्भ करने के खतरे में हैं।

जब एक काम सौंपा जाता है तो उसके साथ उसे प्रभावशाली तरीके से करने के लिए व्यक्ति को उपयुक्त अधिकार भी देने की आवश्यकता है, अर्थात् काम को सफलतापूर्वक समाप्त करने के लिए आरम्भ करने और करने का सामर्थ्य / अधिकार देना चाहिए। निस्संदेह, अगुआई को अभी भी कुछ नियंत्रण / दिशा उपयोग करनी चाहिए परन्तु उन्हें अधिक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। व्यक्ति को जो काम उसे सौंप गया है उसे प्रभावशाली तरीके से करने के लिए परमेश्वर से अभिषेक / तरीका खोजने दिया जाना चाहिए।

यह परमेश्वर है जो अपनी कलीसिया चलाता है, और वह अगुआई लेने के लिए और काम करने के लिए जिसे सौंपे जाने की आवश्यकता है लोगों को तैयार कर रहा है। इसलिए, अगुवों को उनके लिए योग्य स्थानापन्न खोजने में निराश नहीं होना चाहिए; और कलीसियाओं / संस्थाओं को अगुआई में परिवर्तन के कारण कभी भी डाँवाडोल होना / निराश होना नहीं चाहिए। याद रहे, यीशु मसीह कलीसिया का प्रमुख अगुवा है और अन्तिन नियंत्रण उसके पास है।

उचित रूप से किये गये प्रतिनिधान को दल के लक्ष्यों को प्राप्त करने पर ध्यान लगाना चाहिए न कि अगुआई के अधिकार या सामर्थ्य को बनाए रखने पर। इसलिए, निरंकुश अगुवे प्रतिनिधान के क्षेत्र में कमज़ोर होते हैं।

जब एक काम दिया जाता है तब अगुआई को लोगों को उनका काम करने देना चाहिए और हस्तक्षेप नहीं करते रहना चाहिए, अर्थात् व्यक्ति को काम करने के लिए स्थान दिया जाना चाहिए (और गलतियाँ करने का भी)। निस्संदेह, अगुआई को अभी भी कुछ नियंत्रण रखना चाहिए और व्यक्ति को कुछ दिशा देनी चाहिए, परन्तु उन्हें व्यक्ति के लिए कभी भी काम नहीं करना चाहिए (सिवाए इसके जब व्यक्ति प्रशिक्षण ले रहा है)।

जिन लोगों को काम सौंपा गया है उन्हें उनके अगुवों के साथ समान मन के होना चाहिए, अर्थात् उन्हें उनके मूल लक्ष्यों और उद्देश्यों से सहमत होना है। उन्हें उनके अगुवों की ओर वफादार और विश्वासयोग्य भी होना चाहिए और, किसी भी परमेश्वर के सेवक के समान, पवित्र, धर्मी और जो भी वे कर रहे हैं उसके लिए अपना 100% देने को तैयार होना चाहिए।

कभी-कभी, अगुवों को एक व्यक्ति को काम देकर, जिसमें व्यक्ति अपने आप को योग्य नहीं समझता हो, उसमें एक विश्वास और भरोसा व्यक्त करने की आवश्यकता होती है (अर्थात् क्योंकि उनको अपने में विश्वास नहीं है)। कभी-कभी उनको बिना किसी असली कारण से कि व्यक्ति में काम करने की योग्यता है, भी ऐसा एक फैसला करना होगा, अर्थात् उन्हें पता है कि यह परमेश्वर में सही है और कि व्यक्ति में अप्राप्त सम्भावना है।

किसी को भी एक विशेष क्षेत्र में काम करने के लिए स्वतन्त्र नहीं किया जा सकता है जब तक उस क्षेत्र में काम कर रहा व्यक्ति रुकता नहीं या पर्याप्त स्थान नहीं बनाता।

अगुवे की अनुपस्थिति में काम कैसा होता है उससे संकेत मिलता है कि अगुवे द्वारा किए गए किसी भी प्रतिनिधान की बुद्धि और प्रभावकारिता कैसी है।

एक सम्भावित अगुवे को अस्थाई रूप से अगुआई की जिम्मेवारी देने से पता चलता है कि व्यक्ति अगुआई के लिए तैयार है कि नहीं। अगुआई को यह तब ही करना है जब उन्हें लगता है व्यक्ति तैयार है (कुछ लोग जब उन्हें पानी में फेंका जाता है तैरने लगते हैं, और कुछ डूब जाते हैं!)। किसी भी अगुआई को उनके लोगों के विकास के लिए अवसर प्रदान करने चाहिए। यदि अगुवे हर समय तात्कालिक स्थितियों को उनके हाथों में लेते रहेंगे, तो उनके लोग उनके वर्तमान अनुभव से परे उनके विश्वास और अधिकार को विकसित नहीं कर पाएँगे। असल में, विश्वास और अधिकार केवल उपयोग करने से ही बढ़ते हैं। याद रहे, कई लोगों को उनकी सेवा का तब तक पता नहीं चलता जब तक वे विभिन्न चीजों में अपने हाथ नहीं डाल लेते। जब एक व्यक्ति अपनी सेवा का पता लगा लेता है, तब अगुवों को, जब तक परमेश्वर उन्हें किसी भिन्न चीज में नहीं ले जाता, उन्हें उस में लगे रहने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।

अगुवों को उन्हें प्रोत्साहित करना और उनका समर्थन करना चाहिए (जब सम्भव हो) जिन्हें उन्होंने काम सौंपा है। कभी-कभी ऐसा विश्वास में करना होगा। सही समय पर दिया गया प्रोत्साहन व्यक्ति के लिए सुधान लेने (और उसे काम में लाने) में सहायता करता है। याद रहे, प्रोत्साहन अकसर अधिक प्रभावशाली सेवा में, न कि घमण्ड में ले जाता है।

प्रतिनिधियों को कुछ गलतियाँ करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए (और अगुआई को उनकी नहीं करने में सहायता करनी है)। अगुआई को व्यक्ति पर सफल होने के लिए बहुत अधिक दबाव नहीं डालना है, विशेषकर तब जब वे काम आरम्भ करते हैं (और इसलिए अभी सीख रहे हैं)। परन्तु, अगुआई को उनके प्रतिनिधियों को नियमित पुनरीक्षण करना चाहिए, विशेषकर उनका जो काम के लिए नए हैं। लोग उनकी गलतियों से सीखते हैं, विशेषकर उस समय जब उन्हें कोई बताता है वे कहाँ गलत हैं और वे कैसे सुधार ला सकते हैं (अधिकाँश लोग प्रेम से दिए सुधार और सहायता की ओर शीघ्र प्रतिक्रिया दिखाते हैं)।

जब अगुआई एक व्यक्ति को काम सौंपती है और कुछ गड़बड़ होती है तब अगुआई को व्यक्ति के साथ होना है और कठिनाई में से उसकी सहायता करनी है। असल में, प्रतिनिधियों को जब वे कुछ करने में कोई क्रिया करते हैं तो उन्हें उनके अगुवों के सहयोग का पूरा भरोसा होना चाहिए। जब तक व्यक्ति ने उसके काम के विवरण के अन्दर क्रिया की है तो कोई फर्क नहीं पड़ता परिणाम क्या है (इसे मान कर चलता है कि उनकी जिम्मेवारी का क्षेत्र जितना स्पष्ट हो सकता है – लिखित में - उतना निश्चित किया हुआ है, ताकि कोई गलतफहमी न हो)। क्योंकि यदि कुछ गड़बड़ होती है तो यह अगुआई की भी उतनी गलती है जितनी यह व्यक्ति की है (अर्थात् गलत काम में गलत व्यक्ति; अपर्याप्त प्रशिक्षण दिया गया; अनुपयुक्त प्रोत्साहन / सुधार; आदि)।

जब एक जिम्मेवारी सौंपी जाती है तो निश्चित करना है आप काम की माँग/ विस्तार/ लक्ष्य आदि को समझाते / बताते/ निश्चित करते हो, अर्थात् एक स्पष्ट काम का विवरण देना और सौंपे गए काम को प्रभावशाली तरीके से पूरा करने के लिए सबकुछ जो आवश्यक हो व्यक्ति को समझाना। इससे गलतफहमी से बचा जा सकता है जो किसी भी दल की एकता और प्रभावकारिता को बहुत हानि पहुँचा सकता है। सामान्यीकरण प्रतिनिधान के काम को प्रभावहीन और एक दल / कलीसिया / संस्था के लिए हानिकारक भी बन सकता है। यह भी निश्चित करो कि व्यक्ति काम के लिए आवश्यक किसी भी क्षेत्र में प्रशिक्षण पाया है; उन्हें दिखाओ कि वे संस्था के ढाँचे में कहाँ ठीक बैठते हैं; और उन्हें आरम्भ करने में सहायता करो (विशेषकर व्यक्ति में अपना विश्वास / भरोसा प्रकट करके, क्योंकि वे अपने में या अपनी योग्यताओं में वास्तव में विश्वास न करते हों और, इसलिए, इसकी आवश्यकता है)।

प्रभावशाली अगुवा जानता है कि उसे उससे आरम्भ करना है जो व्यक्ति परमेश्वर के लिए कर सकता है, न कि उससे जो काम की माँग है। अगुवों को यह भी निश्चित करना है कि वे सही काम के लिए सही व्यक्ति पाते हैं।

अगुआई को निश्चित करने की आवश्यकता है कि जिस व्यक्ति को एक काम सौंपा जाता है वह समझता है कि वह उस अगुआई की ओर जिम्मेवार/उत्तरदायी है। असल में, प्रतिनिधान में उत्तरदायित्व बनाया गया होना चाहिए, क्योंकि अगुवों की यह देखने की अन्तिम जिम्मेवारी होती है कि काम पूरा किया जा रहा है। प्रतिनिधान जिम्मेवारी का अधित्याग नहीं है – यह बोझ का बाँटना है और इसलिए, अगुवों को अधिक काम करने में समर्थ करता है। यदि एक काम उस व्यक्ति द्वारा नहीं होता है जिसे अगुवों ने सौंपा था, तो यह आखिरकार अगुआई की गलती है। जैसे एक राष्ट्रपति ने कहा, 'जिम्मेवारी यहाँ समाप्त होती है!' अर्थात् अगुआई के साथ। एक अगुवा एक काम या जिम्मेवारी सौंप सकता है परन्तु जो वे अपने अधीनस्थों को सौंपते हैं उसके लिए वे उनके उच्च अधिकारियों की ओर जिम्मेवार हैं। जब कोई भी काम सौंपा जाता है तो उत्तरदायित्व और अवलोकन की रेखाएँ स्थापित करना महत्त्वपूर्ण होता है। अकसर लोग वही काम करते हैं जिसके लिए उन्हें उत्तरदायी ठहराया जाता है। इसलिए, अगुवों को उन पर नियंत्रण रखना चाहिए जिन्हें वे काम सौंप रहे हैं, और जरूरत पड़ने पर सुधार / सहायता / प्रोत्साहन / निर्देश देना चाहिए। दुर्भाग्यवश, 'लोग वह करते हैं जो निरीक्षण किया जाता है, वह नहीं जिसकी हम अपेक्षा करते हैं।'

एक काम सौंपते समय, अगुआई के लिए यह आवश्यक है कि वे व्यक्ति के चरित्र और व्यक्तित्व को हिसाब में लें, उसके अनुसार प्रोत्साहित / सुधार / पुष्टि आदि करें। कुछ लोगों के साथ कोमलता के साथ काम करना पड़ता है तो दूसरों के साथ दृढ़ता के साथ पेश आना पड़ता है ताकि वे अपनी उत्तम योग्यता दिखा सकें।

कई मसीहियों का उनकी योग्यताओं के विषय में अतिरंजित विचार है। कभी भी एक व्यक्ति को उससे अधिक काम मत लेने दो जो आपको प्रकट होता है उसका वरदान / योग्यता है। लोग क्या कर सकते हैं और वे क्या करना चाहेंगे में अकसर भिन्नता होती है। आप अपने आप से कुछ सहायक प्रश्न कर सकते हैं, यह पता लगाने के लिए कि क्या व्यक्ति को काम सौंपा जा सकता है, जैसे कि: क्या व्यक्ति काम के लिए पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित और समझने के योग्य है? क्या व्यक्ति को वाकई काम चाहिए (कई लोग काम स्वीकार कर लेते हैं क्योंकि वे मना करने के परिणाम से डरते हैं)? क्या दल / अगुआई / मण्डली के लोग व्यक्ति को उस काम में स्वीकार करेंगे?

स्थानीय कलीसिया में प्रतिनिधान

बहुत सारी कलीसियाएँ एक फुटबॉल टीम के समान कार्य करती हैं - खेल के मैदान में ग्यारह थके हुए सदस्य, और स्टैन्ड्स प्रशंसा करते परन्तु कम उपयोग जा रहे कलीसिया के सदस्यों से भरे हुए हैं।

एक स्थानीय कलीसिया के मुख्य रूप से स्वयंसेवक / बिना पगार के काम में, आवश्यक काम को करने के लिए कई अगुवों की आवश्यकता होती है। इन अगुवों के प्रभावशाली कार्य करने के लिए एक सौंपे गए अधिकार की आवश्यकता होती है, और उन्हें भी उनके कुछ काम जिनकी वे अगुआई करते हैं उन्हें सौंपने चाहिए। इस प्रकार, कलीसिया के सारे आवश्यक कार्य और काम के बोझ, कुछ लोगों के बजाय कई लोगों में बाँट दिए जाते हैं।

अनुग्रह और अभिषेक – दोनों की आवश्यकता है

परमेश्वर का अनुग्रह मार्ग बनाता है और परमेश्वर का अभिषेक हमें परमेश्वर की इच्छा पूरी करने की योग्यता देता है।

इस अध्ययन में हम परमेश्वर के अनुग्रह और अभिषेक के बारे में और उनका हम विश्वासियों के लिए क्या अर्थ है सीखेंगे। हम यहाँ इन विषयों की गहराई से अध्ययन नहीं करना चाहते हैं, परन्तु हम अगुवों को इन विचारों के महत्त्व की अन्त:दृष्टि देना चाहते हैं। हम परमेश्वर के लिए तब तक कुछ नहीं कर सकते जब तक हम उसके अनुभव को अनुभव नहीं करते और उसके अभिषेक को जानते और उसमें कार्य करते हैं। असल में, अनुग्रह और अभिषेक साथ-साथ चलते हैं, क्योंकि ये दोनों चीजें परमेश्वर में आरम्भ हुई हैं और उनका हमारे प्रयत्न से कोई सम्बंध नहीं। ये दो विषय प्रकट करते हैं कि हम मसीही और विशेषकर हम मसीही अगुवे वास्तव में परमेश्वर पर कितने निर्भर हैं।

परमेश्वर का अनुग्रह क्या है?

परमेश्वर का अनुग्रह पूरी तरह एक नए नियम का विचार है। नए नियम में, 'अनुग्रह' शब्द यूनानी शब्द 'charis' से अनुवाद किया गया है। सामान्य शब्दों में, इस शब्द का अर्थ है: 'जो सुख, आनन्द प्रदान करता या का कारण होता है या जो अनुकूल आदर उत्पन्न करता है; एक मित्रता का झुकाव जिस में से कृपालु कार्य निकलता है; प्रदान की गई एक कृपा की भावना; या कृतज्ञता की एक भावना।'

परमेश्वर के अनुग्रह का इससे काफ़ी बड़ा अर्थ है। यह परमेश्वर है जो परमेश्वर बना है। यह परमेश्वर पिता का हमारे जीवनों में उसकी दया और अनर्जित कृपा को प्रदान करना है। यह परमेश्वर है जो अयोग्य की सहायता करता है और अक्षम्य को क्षमा करता है। परमेश्वर का अनुग्रह कार्यों में परमेश्वर के सामर्थ्य की दृष्य अभिव्यक्ति है। परमेश्वर, जो दयालु, अनुग्रकारी और प्रेमी है, उसके लिए हमारी पुकार का उत्तर देता है, इसलिए नहीं कि हम उसकी सहायता के योग्य हैं, परन्तु इसलिए कि वह हमारी भयंकर आवश्यकता को पहचानता है और उसका प्रेम हमारी आवश्यकता को पूरा करने के लिए उसके सामर्थ्य को कार्य में लाता है। यह मसीह की कीमत पर परमेश्वर का धन है, क्योंकि यह, मसीह के बलिदान पर आधारित और उसके प्रेम से प्रेरित, परमेश्वर का उदार कार्य है, जो उन सब के लिए जो उसमें विश्वास करते हैं उद्धार करता और धर्मी ठहराता है।

परमेश्वर के अनुग्रह का स्रोत पिता परमेश्वर और उसके पुत्र यीशु मसीह दोनों में है (रोमियों 5:15; 2 कुरिन्थियों 1:12; गलातियों 1:3, 6; 2 थिस्स. 1:12)। यह परमेश्वर की कृपा को जीतने के मनुष्य के प्रयासों, और उस तरीके में जिसमें परमेश्वर के साथ एक व्यक्तिगत सम्बंध वास्तव में स्थापित किया और बढ़ाया जाता है अन्तर है। यह अपने में किसी भी भरोसे को ठुकराना है, हम जो पापी हैं और अपने आप से परमेश्वर को प्रसन्न करने में अयोग्य हैं, और अपने लिए सम्पूर्ण रूप से परमेश्वर पर भरोसा करना है जिसने यीशु में, हमें सच में धर्मी लोग होने के योग्य किया है जो परमेश्वर के असीम सामर्थ्य को अनुभव कर सकते हैं (1 कुरिन्थियों 15-10)।

परमेश्वर के अनुग्रह के चिन्ह

परमेश्वर का अनुग्रह:

- हमें पाप, शैतान और व्यवस्था के अधिकार से छुड़ाता है (रोमियों 6:1-14; इफिसियों 2:1-5)।
- हमारे उद्धार का मार्ग प्रदान करता है, क्योंकि परमेश्वर ने यीशु में हमारे लिए उद्धार, क्षमा और एक नया जीवन लाने के लिए कार्य किया है, जो यीशु के क्रूस पर प्रायश्चित के बलिदान के द्वारा है और हमारे अयोग्य पापी होने के बावजूद है (रोमियों 3:21-26; 5:15-21)।
- सबके लिए बराबर प्रकट है (मत्ती 20:1-16)।
- माँग करता है कि हम दया दिखाएँ (मत्ती 18:21-35)।
- सदा हमारे लिए उपलब्ध रहेगा, चाहे परमेश्वर की ओर हमारी प्रतिक्रिया कुछ भी हो (लूका 15:11-32)।
- हमारे कार्यों, जीने के तरीके, धर्म, संघर्ष, आत्म-बलिदान या अच्छाई पर निर्भर नहीं है (गलातियों 5:4; रोमियों 11:5,6)।
- परमेश्वर के सामने विश्वास के साथ आने देता और हमारी आवश्यकता के समय जो भी सहायता हमें चाहिए पाने देता है (इब्रानियों 4:16)।

- सदा पर्याप्त है (2 कुरिन्थियों 12:9)।
- हम से आरम्भ नहीं होता, परमेश्वर से आरम्भ होता है! इसे कमाया या इसके योग्य नहीं हुआ जा सकता – इसे परमेश्वर हमें मुक्त भाव से और प्रेम के साथ देता है (इफिसियों 2:8-10)।
- हमें परमेश्वर के विभिन्न वरदानों और बुलावे में कार्य करने के योग्य बनाता है (रोमियों 12:6-8; इफिसियों 4:7-13; 1 कुरिन्थियों 12:7-11)।

अनुग्रह और वरदान

जब हम अनुग्रह से उद्धार पाते हैं तो हम परमेश्वर के वरदानों और बुलावे के लिए उपयुक्त होते हैं। असल में, जो परमेश्वर चाहता है हम करें उसका बीज धर्मान्तरण के समय हमारे जीवनों में अकसर बोया जाता है, अर्थात् हमारे विश्वास और उद्धार के अनुग्रह में हमारे जीवनों के लिए परमेश्वर का बुलावा लिखा हुआ होता है। जब परमेश्वर पवित्र आत्मा के वरदानों को देता है, वह व्यक्ति को दूसरों से अधिक महत्त्व का नहीं समझता (इब्रानियों 2:4)।
"उस अनुग्रह के अनुसार जो हमें दिया गया है, हमें भिन्न-भिन्न वरदान मिले हैं।" (रोमियों 12:6)
"पर हम में से हर एक को मसीह के दान के परिमाण के अनुसार अनुग्रह मिला है।" (इफिसियों 4:7)
यूनानी शब्द 'वरदान' 'charisma' है, जिसका अर्थ, जैसे हम ने देखा, 'अनुग्रह' है 'charis' और 'ma' का अर्थ है 'चीज'। इसलिए, नए नियम में अनुवाद किया गया शब्द 'वरदान' का वास्तव में अर्थ है 'अनुग्रह की चीज'। दूसरे शब्दों में, जब पवित्रशास्त्र आत्मिक वरदानों की बात करता है तो यह वह हमारे जीवनों में परमेश्वर के अनुग्रह की अभिव्यक्ति की बात कर रहा है। 'charismata' ('charisma' का बहुवचन) मसीह की सारी देह के लिए पवित्र आत्मा के वरदान हैं और देह के सब सदस्यों के लिए उपलब्ध हैं। ये 'देह के वरदान' विशेष व्यक्तियों के जीवनों द्वारा प्रकट होते हैं और वे मसीह की देह, कलीसिया की उन्नति में योगदान देते हैं। देह में उस क्षण आवश्यकता के अनुसार पवित्र आत्मा इन वरदानों को उपलब्ध करता है और सबके लाभ के लिए देता है (1 कुरिन्थियों 12:7, 11)। वे समय-समय पर कार्य करते हैं और उनके साथ उनका अधिकार लाते हैं, अर्थात् जिस व्यक्ति को वरदान प्रकट करने के लिए इस्तेमाल किया जाता है उसे एक तात्कालिक और अस्थाई तौर पर ऐसा करने का अधिकार दिया जाता है।

"जिसको जो वरदान मिला है, वह उसे परमेश्वर के नाना प्रकार के अनुग्रह के भले भण्डारियों के समान एक दूसरे की सेवा में लगाए।" (1 पतरस 4:10)

हर मसीही को उनके जीवन में पवित्र आत्मा के वरदानों के लिए खुले रहना है और इन वरदानों के सामर्थ्य और अधिकार में कार्य करना सीखना है। एक आत्मिक वरदान इसके साथ दूसरे लोगों के जीवन में बहुत अधिकार लाता है, क्योंकि इस वरदान में वे परमेश्वर का अनुग्रह देखते हैं और वे उस अनुग्रह के अधीन होते हैं।

अनुग्रह का प्रदर्शन

परमेश्वर का अनुग्रह हमारे जीवनों और उसके लिए हमारी सेवा की बुनियाद है। मसीहियों के रूप में, स्वर्गीय पिता ने हम सबको एक विशेष बुलावा या वरदान दिया है और यह विशेषकर हमारे लिए परमेश्वर का अनुग्रह है। हमारे काम और उसके लिए हमारी सेवा का परमेश्वर का बुलावा, परमेश्वर के हृदय की अभिव्यक्ति है और, यह इसके साथ स्वर्ग की छाप लिए आता है। यह कुछ ऐसा है जिसे हमें कीमती जानना और सम्भाल कर रखना है और हमें ध्यान देना है इसे सबसे प्रभावशाली तरीके से काम में लाया जाए।
हमें परमेश्वर के इस बुलावे या वरदान को निरन्तर चमकाते रहना है और दूसरे के भले के लिए इसे सबसे अधिक सम्भावना के साथ इस्तेमाल करना है। (2 तीमुथियुस 1:6)

परमेश्वर का यह अनुग्रह (बुलावा या वरदान) हमारे सारे जीवन और काम के लिए एक प्रेरणात्मक शक्ति होनी चाहिए। हम परमेश्वर की इच्छा में रहते हुए उसका अनुग्रह पाते हैं। तब यह अनुग्रह हमें परमेश्वर की इच्छा पूरी करने की सम्भावना देता है। परन्तु परमेश्वर का अनुग्रह तब ही प्रभाव लाता है जब हम विश्वास में आगे बढ़ते हैं और परमेश्वर की इच्छा की ओर एक उचित तरीके से प्रतिक्रिया दिखाते हैं। दूसरे शब्दों में, हमें सबसे पहले परमेश्वर की इच्छा जाननी है, तब उस इच्छा के पूरे होने के लिए हमें परमेश्वर का अनुग्रह पाना है, और अन्त में, उस इच्छा को पूरा करने के लिए हमें व्यावहारिक तरीके से कदम उठाने हैं।
एक स्पष्ट उदाहरण के लिए नीचे दी गई आरेख को देखो।

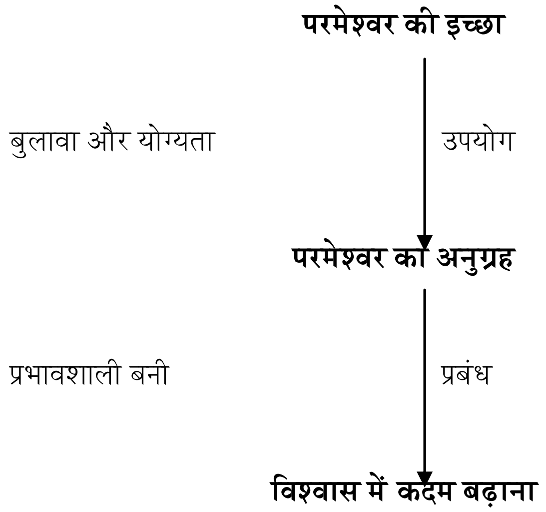

कुछ जो परमेश्वर में आरम्भ हुआ है, अब परमेश्वर के अनुग्रह के कारण, एक मनुष्य द्वारा कार्य में परिवर्तित किया जा सकता है। परमेश्वर का अनुग्रह लगभग स्पर्शनीय है। इसे एक छड़ी के समान माना जा सकता है जिसे परमेश्वर की इच्छा पूरी करने के लिए उठाया जा सकता है।

हम परमेश्वर के अनुग्रह को इसके प्रभाव से जानते हैं। प्रेरित पौलुस के लिए, यह हर उस चीज के लिए जो उसने की एक सबसे प्रमुख प्रेरणात्मक शक्ति थी। वह जानता था परमेश्वर का अनुग्रह क्या है। उसने और दूसरों ने भी उसके जीवन में परमेश्वर के अनुग्रह को पहचाना था (रोमियों 15:15-16; गलातियों 2:9)।

"परन्तु मैं जो कुछ भी हूँ परमेश्वर के अनुग्रह से हूँ। उसका अनुग्रह जो मुझ पर हुआ, वह व्यर्थ नहीं हुआ; परन्तु मैं ने उन सबसे बढ़कर परिश्रम भी किया; तौभी यह मेरी ओर से नहीं हुआ परन्तु परमेश्वर के अनुग्रह से जो मुझ पर था।" (1 कुरिन्थियों 15:10)

"मैं परमेश्वर के अनुग्रह के उस दान के अनुसार, जो उसकी सामर्थ्य के प्रभाव के अनुसार मुझे दिया गया, उस सुसमाचार का सेवक बना। मुझ पर जो सब पवित्र लोगों में से छोटे से भी छोटा हूँ, यह अनुग्रह हुआ कि मैं अन्यजातियों को मसीह के अगम्य धन का सुसमाचार सुनाऊँ।" (इफिसियों 3:7-8)

लाभदायकता और प्रभावकारिता असली चिन्ह हैं कि हम परमेश्वर के अनुग्रह में जी रहे हैं। परमेश्वर का अनुग्रह सदा प्रभावशाली है और हम में और उनके जीवन में भी जिनकी हम सेवा करते हैं फल लाता है (यूहन्ना 15:1-16)। वे प्रमाण हैं कि हम परमेश्वर द्वारा बुलाए और वरदान पाए हैं।

परमेश्वर का अभिषेक क्या है?

इब्रानी भाषा का मुख्य शब्द जिसे बाइबल में 'अभिषेक' अनुवाद किया गया है 'masah' (या 'mashach') है जिसका अर्थ है: 'लोपकर, उँडेलकर या फैलाकर तेल लगाना'। इब्रानी शब्द 'masiah' जिसका अनुवाद 'मसीहा' है, का अर्थ है 'अभिषिक्त' और इसी शब्द से लिया गया लगता है।

पुराने नियम के दिनों में, परमेश्वर का अभिषेक अकसर व्यक्ति पर तेल उँडेलकर प्रकट किया जाता था। तेल का यह पवित्र इस्तेमाल चीजों या व्यक्तियों को परमेश्वर के लिए पवित्र करने के लिए अभिषेक करना होता था (उत्पत्ति 28:18; निर्गमन 29:1-9)। यह याजक (निर्गमन 29:1-9; निर्गमन 28:41); राजा (1 शमूएल 10:1); और भविष्यद्वक्ता (1 राजा 19:16) होने के लिए परमेश्वर द्वारा प्रदान की गई योग्यताओं के साथ यह अलग करने का एक प्रतीक था। एक बार तेल से अभिषेक होने के बाद, इन लोगों को परमेश्वर द्वारा विशेष सम्मान के लिए और उसके अगुवों के रूप में उसकी नियुक्त सेवा करने के लिए चुना हुआ और अलग किया हुआ समझा जाता था। यह अभिषेक एक विशेष कार्य या कारण के लिए होता था, परन्तु जैसा राजा दाऊद के अभिषेकों से देखा जा सकता है यह बदल भी सकता था (1 शमूएल 16:13; 2 शमूएल 2:4; 2 शमूएल 5:3)।

यूनानी भाषा के दो मुख्य शब्द जिन्हें नए नियम में 'अभिषेक' अनुवाद किया गया है वे हैं 'aleipho' जो किसी भी प्रकार के अभिषेक के लिए सामान्य शब्द था; और 'chrio' (या 'chrisma' - अनुकूल संज्ञा) जो इसके उपयोग में अधिक सीमित है, यह पवित्र या प्रतीकात्मक अभिषेकों तक ही सीमित है। दोनों शब्दों का अर्थ है तेल, इत्र या मरहम रगड़कर कर लगाना या फैलाना। 'मसीह' दूसरा शब्द उपयोग करता है और इसका अर्थ है 'अभिषिक्त'।

नया नियम आराधना में तेल का शरीर पर लगाकर अभिषेक करने या अगुआई के लिए लोगों को पवित्र करने की बात नहीं करता है, हालाँकि एल्डरों को बीमारों के लिए प्रार्थना करते समय तेल लगाने को प्रोत्साहित किया गया है (याकूब 5:14)। परन्तु, नया नियम एक आत्मिक अभिषेक की बात करता है। इसके द्वारा परमेश्वर सब विश्वासियों को अपने साथ मिलाता है और पवित्र आत्मा द्वारा उसकी सेवा के लिए उन्हें सामर्थ्य देता है (2 कुरिन्थियों 1:21-22; 1 यूहन्ना 2:20, 27)।

प्रारंभिक कलीसिया ने लोगों को कलीसिया में विभिन्न अगुआई के कार्यों के लिए अलग करने के लिए तेल से अभिषेक नहीं किया होगा, परन्तु वे ऐसा करने के लिए उन पर हाथ रखते थे। कहा जा सकता है कि नए नियम के हाथ रखने ने पुराने नियम के तेल लगाकर अभिषेक करने को बदल दिया है, क्योंकि वे दोनों प्रतीक के रूप में परमेश्वर के अभिषेक को प्रदान करना और लोगों का उसके लिए अलग करना दिखाता है।

इन सब तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, परमेश्वर का अभिषेक है परमेश्वर का उसके पवित्र आत्मा को, जैसे हम खुद को उसके लिए अलग करते हैं, हम पर और हमारे जीवनों में उँडेलना, हमें उसके सामर्थ्य के साथ उसकी सेवा के लिए समर्थ करना और इस प्रकार उनके जीवनों में अपना जीवन प्रदान करना जिनके साथ हम सम्पर्क में आते हैं।

परमेश्वर के अभिषेक का महत्त्व

परमेश्वर की कलीसिया में एक अगुवा, जो उसके अभिषेक के बिना है, उसके राज्य के लिए कोई स्थाई फल नहीं उत्पन्न कर पाएगा। केवल परमेश्वर का अभिषेक ही सच्चा जीवन उत्पन्न कर सकता है। परमेश्वर के अगुवे जिन्होंने उसका अभिषेक पाया है केवल वे ही वह कर सकते हैं जो वह उनसे करने को कहता है। आखिरकार, पवित्र आत्मा द्वारा लाए परिवर्तन ही हैं जो उनके जीवनों में बने रहेंगे जिनकी हम अगुआई करते हैं। इसलिए, किसी भी अगुवे की सेवा का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह नहीं है कि वह कैसा दिखता या क्या जानता है, बल्कि वह परमेश्वर के अभिषेक के साथ कितनी अच्छी तरह कार्य कर सकता है।
"जो हमें तुम्हारे साथ मसीह में दृढ़ करता है, और जिसने हमारा अभिषेक किया वही परमेश्वर है, जिसने हम पर छाप भी कर दी है और बयाने में आत्मा को हमारे मनों में दिया।" (2 कुरिन्थियों 1:21-22)

पवित्र आत्मा का अभिषेक, न कि स्वाभाविक व्यक्तित्व, योग्यता, वाक्पटुता, प्रशिक्षण या वरदान परमेश्वर के लिए सच्चे प्रभाव का स्रोत है। परमेश्वर का यह अभिषेक हमारे कामों को सामर्थ्य, हमारे शब्दों को अधिकार, प्रस्तुतिकरण को ताज़गी, और हमारे कार्यों को संबद्धता देता है। यह अभिषेक परमेश्वर के सब अगुवों के लिए तात्त्विक, अनिवार्य पूर्वापेक्षा है (जकर्याह 4:6)। जब प्रारंभिक कलीसिया को भोजन के प्रबंध के लिए सेवकों की आवश्यकता थी तब उन्होंने ऐसे लोगों को खोजा जो पवित्रा और बुद्धि से भरे हुए थे (प्रेरितों 6:1-6)। इस प्रकार के अगुवों में एक बहुतायत होती है जो उन्हें दूसरों के लिए सप्लाई का स्रोत बनाता है।

परमेश्वर के अभिषेक का स्रोत

परमेश्वर का अभिषेक दीनता में मिलता और टूटेपन में कार्य करता है। परमेश्वर उसके अगुवों के जीवन में गहराई से कार्य करना चाहता है। इसमें हमारे लिए परख और कठिनाई के समय होंगे; परन्तु अन्तिम परिणाम वे जीवन होंगे जो परमेश्वर के सामने सच में दीन और टूटे हुए हैं। इस प्रकार के जीवनों में जिनमें हर अंश का यीशु प्रभु है परमेश्वर पवित्र आत्मा से अभिषेक दे सकता है। ऐसे ही जीवनों में, हम कम और वह अधिक होता है। ये लोग परमेश्वर के सामने पवित्र जीवन जीते हैं क्योंकि वे ऐसा कुछ नहीं करना चाहते जो परमेश्वर को बदनाम करेगा जिसने उनके लिए कितना कुछ किया है। वे परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करेंगे, क्योंकि वे उसे जानते हैं, वह उनसे कितना प्रेम करता है और वे समझते हैं कि वह उनके लिए भला ही चाहता है। ऐसे लोगों पर ही परमेश्वर उसका अभिषेक उंडेलता है, क्योंकि अभिषेक केवल उनके ही पास नहीं रहेगा बल्कि परमेश्वर की इच्छा पूरी करने के लिए उन्हें योग्य करेगा। ये लोग परमेश्वर के अभिषेक पर निर्भर रहते हैं और वे जानबूझकर ऐसा कुछ नहीं करेंगे जिससे वे इसे खो दें। वे परमेश्वर की इच्छा पूरी करने और संसार में उसके गवाह होने के लिए जीते हैं, और वे जानते हैं कि यदि वे उसके अभिषेक को खो देंगे तो यह सम्भव नहीं होगा (प्रेरितों 1:8)।

पवित्र आत्मा केवल उसे ही अभिषेक करता है जिसे परमेश्वर ने, अपने समय में, चुना है। इससे पहले हम किसी प्रकार की सेवा में कदम रखें हमें परमेश्वर के अभिषेक की प्रतीक्षा करनी है, और एक प्रकार से, अभिषेक को हमें ले चलने देना है। तब हम प्रभु के समय में सेवा में कार्य करेंगे, और प्रभु को, न कि परिस्थितियों के दबाव को या दूसरे लोगों को अपनी अगुआई करने देंगे। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम उन चीजों तक ही सीमित नहीं होंगे जो हम ने तैयार कीं या योजना बनाई हैं, क्योंकि हम परमेश्वर के लिए खुले रहेंगे और उस दिशा में चलने के लिए तैयार रहेंगे जहाँ उसका अभिषेक ले चल रहा है।

परमेश्वर का अभिषेक उस व्यक्ति पर आता है जो सम्पूर्ण रूप से परमेश्वर के अधिकार के अधीन होता है। असल में, हमारा अभिषेक परमेश्वर के साथ हमारे सम्बंध और बुलावा जो उसने हमारे जीवनों पर डाला है में से निकलता है। परमेश्वर उस चीज को अभिषेक नहीं करेगा जो उसने आरम्भ नहीं किया है, इसलिए यदि हम परमेश्वर के अभिषेक को जानना चाहते हैं तो हमें अपने जीवनों पर उसके बुलावे में रहना है। यह हमारे बुलावे के सामान्य भाव में भी उतना ही सत्य है जितना विशेष ब्योरों में है जिनमें हम उस बुलावे को कार्य में लाते हैं। हमें अपने काम के हर पहलू पर परमेश्वर का विशेष अभिषेक चाहिए।

एक अगुवे का अभिषेक निरन्तर नया किया जाना चाहिए (इफिसियों 5:18)। परमेश्वर को उसके अभिषेक के लिए रोजाना के आधार पर खोजने की एक बुद्धिमानी की आदत है। परमेश्वर के अगुवों के रूप में हमें पवित्र आत्मा के इस ताज़ा भराव की आवश्यकता है ताकि हम अपने परमेश्वर द्वारा दिए रोजाना के काम के लिए तैयार हों और सामर्थ्य पाएँ।

परमेश्वर के अभिषेक को कार्य करने देना

जब हम पवित्र आत्मा के अभिषेक को जानते हैं तो हमें पहचानने की आवश्यकता है कि यह कैसे कार्य करता है। हमें इसके साथ प्रवाहित होना सीखना है और कभी भी इसे विवश करने का प्रयत्न या प्रशिक्षण नहीं करना है। हमें यह भी सीखना है हम अपने अभिषेक को वापस कैसे लें। अपने जीवन के अधिकाँश समय, हम अपने अभिषेक में सक्रिय रूप से काम नहीं करेंगे। एक भाव से, यह हमारे भीतर निष्क्रिय पड़ा रहेगा (उदाहरण, जब हम सोते, आराम करते, खाते आदि हैं) और उन समयों की प्रतीक्षा करेगा जब इसे कार्य में लाया जाएगा। परन्तु, हमें सदा परमेश्वर के लिए उपलब्ध रहना और उसके लिए खुले रहना, और हमें जानना है कि जब हमें इसकी आवश्यकता हो कैसे इसे काम में लाना है। यह इसे जगाने जैसा है, क्योंकि सही समय पर परमेश्वर इसे उपलब्ध करेगा, परन्तु वास्तव में हमें इसके लिए जागना और इसके लिए अपने आप को उपलब्ध करना है। इसे करने का सबसे अच्छा तरीका परमेश्वर की प्रतीक्षा करना और अपने भीतर उन कुंजियों को सीखना है जो हमें पवित्र आत्मा के अभिषेक में कार्य करने देंगी। यह कुंजियाँ विभिन्न लोगों के लिए भिन्न होंगी और उसी व्यक्ति के लिए भी भिन्न होंगी, अर्थात् यह एक नुसखा नहीं है – यह किसी भी समय परमेश्वर और उसके मार्गों की ओर संवेदनशील होना है।

कुछ कुंजियाँ जिन्हें लोगों ने प्रभावशाली पाया है, वे हैं: स्तुति और आराधना (विशेषकर कुछ गीत जिन्हें परमेश्वर ने आपके लिए प्रेरित किया है), परमेश्वर से प्रार्थना करना, परमेश्वर पर मनन करना (विशेषकर उसकी पूर्व विश्वासयोग्यता पर), लोगों द्वारा जिनका आप भरोसा करते हो प्रार्थना करवाना, अपने लिए या उस स्थिति के लिए जिसमें आप सेवा करने वाले हो एक विशेष 'वचन' पाना, परमेश्वर के सामने शान्त होकर बैठना और उसकी प्रतीक्षा करना (विशेषकर जब उसकी उपस्थिति की एक असली भावना है), परमेश्वर के वचन के उपयुक्त भागों को पढ़ना, आदि। अपने आप को परमेश्वर के अभिषेक के लिए उपलब्ध करने के सम्भवत: और दूसरे भी अनेक तरीके हैं। सही चीज यह पता लगाना है कि आपके लिए क्या काम करता है, और निश्चय करो कि आप कोई नुसखा अपनाने का प्रयत्न नहीं करते हो जिसमें पवित्र आत्मा को कार्य करने का कोई अवसर नहीं है।

यह बड़े महत्त्व की बात है कि किसी भी सेवा के समय से पहले आप इस प्रकार परमेश्वर की प्रतीक्षा करें। यह आपको परमेश्वर के साथ एक होने में सहायता करेगा और उसके अभिषेक के साथ प्रवाहित होने के योग्य करेगा। परन्तु परमेश्वर के अगुवों के रूप में हमें इन कुंजियों के साथ एक जीवनशैली के रूप में रहना चाहिए और सदा उसके द्वारा इस्तेमाल किए जाने के लिए तैयार रहना चाहिए। यह अच्छा नहीं है कि हम अधिक समय एक स्वार्थी जीवन जीएं और जब सेवा का समय आए तब परमेशवर के पास आएँ और उसके अभिषेक की माँग करें।

अपने अभिषेक को बढ़ाना

एक अगुवे का अभिषेक तब ही बढ़ता है जब वह:

- वह छोटी-छोटी चीजों में जो परमेश्वर उससे करने को कहता है विश्वासयोग्यता दिखाता है, अर्थात् वह पता लगाता है परमेश्वर क्या चाहता है वह करे और करता है।

- अपने आप को और अपनी सम्पत्ति को बलिदान के रूप में परमेश्वर को देता है। परमेश्वर का यह अभिषेक हर अगुवे के लिए कीमती होता है, और जितनी गहराई में हम उसके साथ चलेंगे उतना अधिक वह हमें त्यागने को कहेगा।
- उसकी उपस्थिति में बारम्बार जाकर और प्रार्थना और परमेश्वर की आराधना की सेवा में अधिक गहराई में जाकर परमेश्वर को और अधिक जानो। आखिरकार, परमेश्वर के अभिषेक का स्रोत परमेश्वर ही है।
- परमेश्वर के सामने टूटे हुए हैं और वे कम होते जाते हैं परमेश्वर उन्हें अधिकाधिक लेता जाता है।
- पवित्र आत्मा के अभिषेक की कीमत जानो, रखवाली करो और रक्षा करो जिसे परमेश्वर ने पहले ही उपलब्ध कराया है।

हमें फिर भी तैयारी की आवश्यकता है

परमेश्वर का अभिषेक हमारे जीवन और हमारी सामग्री दोनों की तैयारी की आवश्यकता को नकारता नहीं है। परमेश्वर के वचन का कारीगर बनने के कोई सरल रास्ते नहीं हैं। इसमें आवश्यकता पड़ती है अनुशासन, अध्ययन, परिश्रम, कड़ी मेहनत और उपयोग की और परमेश्वर के अभिषेक के साथ दौड़ने की भी। बहुत से लोगों ने महान प्रचारकों को कहते सुना है कि जो संदेश उन्होंने प्रचार किया है उन्हें प्रचार करने के एक घंटा पहले ही मिला था या ऐसी ही कोई बात। यह सम्भवतः सच है परन्तु जो बात लोग भूल जाते हैं वह यह है परमेश्वर के वचन में कई घंटों का अध्ययन और जीवन की तैयारी के वर्ष जो इन प्रचारकों ने बिताए हैं। परमेश्वर का अभिषेक प्रभावकारिता के लिए केवल एक अंश ही है। निस्संदेह, बहुत से ऐसे हैं जो परमेश्वर के अभिषेक पर बिना निर्भर हुए कलीसिया में प्रचार करते हैं और वे उनकी तैयारी पर निर्भर होते हैं। यह भी गलत है। हमें मसीही सेवा के इन महत्त्वपूर्ण पहलुओं के बीच सही सन्तुलन बनाना आवश्यक है और यह सन्तुलन स्थिति, मसीह में हमारी परिपक्वता, हमारे ज्ञान और शिक्षा का स्तर, किस प्रकार के अगुवे हम हैं, हमारे अनुभव और परमेश्वर स्थिति में क्या करना चाहता है आदि के अनुसार भिन्न होगा।

उपवास भी सेवा की तैयारी का एक अंश हो सकता है। सेवा से पहले भोजन का उपवास हमें परमेश्वर की अगुआई और उसके अभिषेक की ओर अधिक प्रतिक्रियाशील बनाता है क्योंकि यह हमारे आत्मिक बोध को तेज करता है। किसी भी सेवा से पहले पेट भर खाने का उलटा प्रभाव हो सकता है।

परमेश्वर का अभिषेक पाने के लिए हाथ रखना

परमेश्वर से सब अगुवों को हाथ रखने के लिए परमेश्वर और कलीसिया के अधीन होना चाहिए। यह उनकी सेवा को पहचानने और कार्य करने के लिए स्वतन्त्र करने और आत्मिक वरदानों को प्रदान करने के लिए है; यह लोगों को प्रभु और कार्य के लिए अलग करने और परमेश्वर का अभिषेक पाने के लिए है (प्रेरितों 6:6; 13:2-3; 1 तीमुथियुस 4:14; 2 तीमुथियुस 1:6)। जिन अगुवों पर परमेश्वर के एक विशेष काम के लिए अलग करने के लिए हाथ रखे जाते हैं उन्हें अकसर एक भविष्यद्वाणी का वचन भी मिलता है जो उनके काम के लिए बुनियादी होता है।

हाथों का रखना बेतरतीब चुनाव के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए परन्तु इसे एक व्यक्ति के जीवन में परमेश्वर के हाथ को काम करते देखने के बाद किया जाना चाहिए, अर्थात् देखा जाता है कि परमेश्वर व्यक्ति को एक विशेष काम के लिए अलग करता है और दूसरी चीजों के साथ हाथों का रखना इसकी पुष्टि करने का एक तरीका है।

यह याद रखने की बात है कि एक कलीसिया में केवल अभिषिक्त अगुवों को ही हाथ रखने चाहिए, परन्तु अभिषेक अगुवों से नहीं परन्तु परमेश्वर से आता है। जिन लोगों पर हाथ रखे जाते हैं वे अपने आप अभिषेक नहीं पाएँगे परन्तु उन्हें इसे पाने के लिए प्रभु की ओर विश्वास से देखना चाहिए। परमेश्वर से कुछ भी पाने के लिए विश्वास लगता है।

पवित्रशास्त्र हमें आग्रह करते हैं कि हम हाथ रखने में उतावले न हों, क्योंकि किसी को समय से पहले अगुवा घोषित करना कलीसिया और व्यक्ति दोनों के लिए खतरनाक हो सकता है (1 तीमुथियुस 5:22)। इसी लिए इससे पहले कि हम व्यक्ति को काम के लिए अलग करें, यह प्रमाण देखना कि परमेश्वर व्यक्ति को अगुआई के स्थान में ले जा रहा है अच्छा होगा। यह भी महत्त्व का है कि हम व्यक्ति को परमेश्वर के समय में ही बढ़ाएँ (1 तीमुथियुस 3:6)। किसी को कलीसिया में अगुआई के स्थान पर रखना जिसे परमेश्वर ने बुलाया नहीं है एक गम्भीर बात है।

परमेश्वर के अभिषेक के परिणाम

यह हमें परमेश्वर के हमारे काम के योग्य बनाता और सामर्थ्य देता है (प्रेरितों 1:8; मत्ती 3:16-17; प्रेरितों 10:38)। असल में, इसके बिना, हम वह सब नहीं कर पाएँगे जो परमेश्वर चाहता है हम करें (2 कुरिन्थियों 3:4-6)। यदि हम प्रयत्न करेंगे तो मुँह के बल गिर पड़ेंगे। यह यीशु के बिना पानी पर चलने जैसा है। जब अगुवे उसके अभिषेक में कार्य करेंगे तो वे कभी-कभी आश्चर्य करेंगे कि वे परमेश्वर के लिए क्या-क्या कर सकते हैं। इसके बिना, वे वह नहीं कर पा रहे थे जो परमेश्वर चाहता था वे करें और उन आवश्यकताओं के सामने जो परमेश्वर उनके पास लाएगा वे दुर्बल महसूस करेंगे। एक आवश्यकता को पूरा नहीं कर पाने से अधिक कुछ भी परेशान करनेवाली बात नहीं है। इसलिए परमेश्वर के अगुवों को उसके अभिषेक के सामने रुकावट डालने के लिए लिए कुछ नहीं करना है और ऐसा भी कुछ नहीं करना है जिससे वह इसे पीछे खींच ले। अभिषेक को खोने का विचार हमें उसकी आज्ञाओं का पालन करते रहने के लिए और धर्मी जीवन जीते रहने के लिए जो उसे पसन्द हैं प्रेरित करे।

जो चीजें परमेश्वर के अभिषेक को नष्ट कर सकती हैं

अभिषेक को मान कर चलना (1 राजा 22:24)। परमेश्वर चाहता है कि उसके लोग निरन्तर उसकी ओर देखते रहें और कभी भी यह मानकर काम न करें कि जैसे उसने पहले किया था वह आज भी वैसा ही करेगा। हमें परमेश्वर की बोट जोहनी है और इसे अपनी जीवन शैली बनाना है। परमेश्वर के पुत्र यीशु को भी ऐसा करना होता था, और हमें उसके उदाहरण की नकल करनी है (1 यूहन्ना 2:6)।

पाप। जब हम पाप करते या अपने आप को संसार की चीजों में देते हैं। परमेश्वर तब भी कुछ हद तक हमारे द्वारा काम करेगा, परन्तु हम परमेश्वर के सम्पूर्ण आशीष और अभिषेक में जी नहीं सकेंगे।

फूट, विशेषकर कलीसिया के अगुवों के बीच। परमेश्वर वहीं पर अपनी आशीष देता है जहाँ एकता होती है (भजन 133:1-3)।

अविश्वास। यह परमेश्वर के अभिषेक को प्रभावहीन बनाता है, क्योंकि यह विश्वास का उलटा है और परमेश्वर विश्वास के उत्तर में ही कार्य कर सकता है (मरकुस 6:4-6)।

डर। यदि हम डर को अपने ऊपर शासन करने देंगे जैसा यह करने की कोशिश करता है, तो यह हमारे साहस को नष्ट करेगा और हमें प्रभावहीन बनाएगा। हमें केवल परमेश्वर से डरना है और किसी से नहीं, विशेषकर दूसरे लोगों के विचारों से तो नहीं (2 तीमुथियुस 1:7; 1 यूहन्ना 4:18)।

अपने अभिषेक में नहीं रहना। हम ऐसा तब करते हैं जब अपने अभिषेक का इन्कार करते हैं और ऐसे जीते हैं जैसे कि यह है ही नहीं। मूर्ख गलातियों के समान, हम भी अपने लक्ष्यों को अपनी शक्ति से पाने की कोशिश करते हैं (गलातियों 3:3)। परमेश्वर ने हमें उसके लिए एक काम करने के लिए दिया है और हम उसे उसके अभिषेक बिना वैसा नहीं कर पाएँगे जैसा वह चाहता है हम करें। असल में, हमारे जीवन का हर अंश पवित्र आत्मा के अभिषेक के अधीन होना चाहिए, क्योंकि नहीं तो यह हमारी अपनी शक्ति में जीया जाएगा। यदि आप किसी काम में परमेश्वर के अभिषेक को अनुभव नहीं करते हो तो सम्भवतः आपको उसे नहीं करना चाहिए हमें अपने वरदानों और अभिषेक को उकसाना चाहिए और उनमें जीना चाहिए - सब समय खुले और परमेश्वर के लिए उपलब्ध रहना (2 तीमुथियुस 1:6)।

अपने अभिषेक से बाहर काम लेना, तब भी जब वे हमारे काम में आते हैं। परमेश्वर के अभिषेक को ले चलने देने के बजाय ये लोग वह काम कर रहे हैं जो परमेश्वर की इच्छा नहीं थी वे करें, और इसलिए, वे उन चीजों को छोड़ दे रहे हैं जो उन्हें उसके लिए करनी चाहिए थीं, अर्थात् जिन चीजों को वह अभिषेक देगा। व्यस्तता हमारे अभिषेक को बहुत हानि पहुँचा सकती है, यदि गलत चीजें करने में व्यस्त हैं। हमें पता लगाना है परमेश्वर क्या चाहता है हम करें और अपने पूरे मन से उन चीजों की ओर लवलीन रहना है।

कलीसिया की अगुआई में पेशावर या सांसारिक तरीका अपनाना, कलीसिया को आत्मिक, बाइबल के सिद्धान्तों के अनुसार ले चलने के बजाय। परमेश्वर तब ही सामर्थ्य के काम करता है जब हम उसकी इच्छा उसके तरीके से करते हैं। काम वैसे करना जैसे संसार करता है या परमेश्वर के अभिषेक के स्थान पर पेशावर तरीके या युक्तियाँ अपनाना असफल ही रहेगा।

पुस्तकों या बाइबल कॉलेजों से सीखे हुए नुसखों के अनुसार अगुआई करना, परमेश्वर के अभिषेक पर निर्भर होने के बजाय। हमें परमेश्वर पर न कि सिद्धान्तों पर निर्भर होना है।

आत्मिक सुस्ती (2 थिस्स. 3:6-15)। यह बेकार बैठे रहना है और वह नहीं करना जो हम जानते हैं परमेश्वर हम से चाहता है हम करें। इसके कुछ कारणों में सम्मिलित है मोह-भंग, परेशानी, निराशा, असफलता, हार और आलसीपन।

केवल बातें और कोई सामर्थ्य नहीं (1 कुरिन्थियों 2:4-5; 1 कुरिन्थियों 4:20)। जो अगुवे उनकी आत्मा के बजाय जो परमेश्वर के पवित्र आत्मा से भरी हुई है, उनकी बुद्धि से अगुआई करते हैं वे परमेश्वर के अभिषेक और सामर्थ्य को नहीं जानते और ऐसे मसीही बनाएँगे जिनमें ज्ञान तो बहुत है परन्तु परमेश्वर का सामर्थ्य बहुत कम।

अभिषेक के साथ आनेवाले अधिकार और पद में उलझन। शक्तिशाली अगुवे केवल उनके व्यक्तित्व के बल पर लोगों को उनके पीछे कर लेते हैं। वे जानते हैं कि कई लोगों को कोई ऐसा चाहिए जिसके करीब वे हो सकते हैं और जो उनके सोचने का काम कर सकता है। ऐसे अगुवों को परमेश्वर से सामने टूटना है और सीखना है कि परमेश्वर के राज्य में प्रभावकारीता कितने लोग हमारे पीछे चल रहे हैं उससे नहीं आती परन्तु परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करने से आती है। परमेश्वर चाहता है कि लोगों को उसके जीवन में ले जाया जाए, और यह तब ही होगा जब लोग उन अगुवों के पीछे चलेंगे जिनके पास उसका अभिषेक है।

भावुकता को अभिषेक से उलझाना। एक अच्छा वक्ता लोगों से एक भावात्मक प्रतिक्रिया प्राप्त कर सकेगा, विशेषकर उस समय जब वह भीड़ से बात कर रहा है। परन्तु, भावनाएँ ठंडी पड़ जाती हैं और जिन लोगों ने एक भावात्मक आग्रह की ओर प्रतिक्रिया दिखाई थी शीघ्र ही उनके पुराने तरीकों में लौट जाते हैं। इस प्रकार की अगुआई परमेश्वर के अभिषेक का स्थान नहीं ले सकती है और ऐसे लोगों को उत्पन्न करती है जिनके विश्वास को जीवित रखने के लिए भावात्मक रूप से उत्तेजित सभाएँ आवश्यक होती हैं। जब लोग परमेश्वर के अभिषेक से मिलते हैं तो वे असल में परमेश्वर से मिल रहे हैं, और इसका उन पर स्थाई प्रभाव पड़ेगा, जो अगुवे चाहते हैं उनके लोगों पर हो।

परमेश्वर पर निर्भर होने के बजाय स्वाभाविक योग्यताओं या निपुणताओं पर निर्भर होना। यह आत्मा में जीने के बजाय शरीर में जीना है, और परमेश्वर नहीं चाहता उसका अभिषेक शरीर पर टिके। हमारी स्वाभावित योग्यताएँ और निपुणताएँ अपने में खराब नहीं हैं, उन्हें केवल परमेश्वर के लिए अलग करना है ताकि परमेश्वर उन्हें अभिषेक कर सके। तब वे उसकी सेवा में बहुत ही प्रभावशाली यन्त्र होंगे।

थकावट। यह हमारे मन की स्थिति को खराब कर देती है और परमेश्वर की बाट जोहते हुए उसके अभिषेक में जुड़ने से हमें रोकती है, परमेश्वर जो हमारी ताज़गी और शक्ति का स्रोत है।

एक अभक्त वातावरण। जब अविश्वास या अत्याचार का वातावरण होता है तब परमेश्वर के अभिषेक में रुकावट पड़ती है और लोगों का ध्यान उसे पाने से हट जाएगा। ऐसे समयों में हमें जैसा प्रभु हमें आज्ञा देता है, शत्रु का सामना करना है और अविश्वाश में विश्वास के शब्द बोलने हैं।

बीमारी। यदि बीमारी परमेश्वर के वचन को लोगों तक पहुँचाने में रुकावट उत्पन्न कर रही है तो हमें प्रभु के पास आना है और बीमारी का सामना करना है। याद रहे कि बीमारी और कमज़ोरी एक ही चीज नहीं हैं, क्योंकि परमेश्वर विशेषकर हमारी कमज़ोरियों के द्वारा अपना काम करता है (2 कुरिन्थियों 12:9-10)

चिड़। जब हम क्रोधित या चिड़चिड़े होते हैं तो पाएँगे कि हम लोगों की सेवा प्रभावशाली तरीके से नहीं कर पा रहे हैं। यदि शत्रु इसे उत्पन्न कर रहा है तो हमें उसका सामना करना है, और ध्यान रखना है कि वह हमारे जीवन में विजय हासिल न करने पाए। हमें हर उस व्यक्ति को क्षमा कर देना है जिसने हमें चोट पहुँचाई होगी, चाहे हमें कितना भी क्यों न लगे कि हम सही थे (मत्ती 6:14-15)।

चोट, असफलता और निराशा। इन सब चीजें के कारण हम अपने आप में और जो परमेश्वर हमारे द्वारा कर सकता है उसमें विश्वास खो देते हैं। हमें परमेश्वर के पास आने और उसके साथ मिलकर और उसके वचन को सुनकर अपने विश्वास को बढ़ाने की आवश्यकता है। हमें सीखने की आवश्यकता है कि हम कैसे इन चीजों को पार करें और सदा विजय का जीवन जीएँ, ताकि हम परमेश्वर के लिए चौबीसों घंटे उपलब्ध हो सकें।

अपने लाभ के लिए अभिषेक को उपयोग करना। यदि हम अपने अभिषेक से, परमेश्वर को महिमा देने के बजाय, प्रसिद्धि, शक्ति, धन, पद, आदर आदि पाना चाहते हैं तब तो हम न केवल अपने अभिषेक को खोने के खतरे में हैं बल्कि परमेश्वर का प्रकोप और न्याय भी हम पर पड़ सकता है। हमें अभिषेक को लूटकर परमेश्वर का अपमान नहीं करना है। उसने

अभिषेक काम के लिए दिया है। हमें परमेश्वर की महिमा करने से बढ़कर, उसे महिमा नहीं देनी है जो अभिषेक हमें करने के योग्य करता है।

विश्वास करना कि यह अनावश्यक है। कई मसीही अब भी विश्वास करते हैं कि परमेश्वर सामर्थ्य के काम प्रारंभिक कलीसिया में ही किया करता था। उन्होंने पवित्र आत्मा के कामों को पूर्व के समयों में पीछे धकेल दिया है और वे इसलिए आज परमेश्वर के काम के लिए सामर्थ्य और योग्यता के लिए उसकी ओर नहीं देखते हैं। बदले में वे उनकी अपना शक्ति, तर्क, अपेक्षाएँ, बुद्धि और योग्यता के साथ युद्ध करते हैं और जितना अच्छा वे कर सकते हैं करने का प्रयत्न करते हैं। उन्होंने खुद को ज्ञात तक सीमित कर लिया है और काफी हद तक परमेश्वर में विश्वास और खुद परमेश्वर को बाहर रखा है। बदले में वे, यीशु के समय के फरीसियों के समान, धार्मिक बन गए हैं।

पवित्र आत्मा के अभिषेक के फल और परिणाम

परमेश्वर ने कभी नहीं चाहा कि वह हमारी स्वाभावित सम्भावनाओं को दबाए परन्तु वह चाहता है कि वे पूरी तरह उपयोग की जाएँ। यदि हम अपनी स्वाभाविक योग्यताओं और क्षमताओं को परमेश्वर के लिए अलग करेंगे तो परमेश्वर का अभिषेक उन्हें बढ़ाएगा और उपयोग करेगा, और इससे हम परमेश्वर के सेवक के रूप में कहीं अधिक प्राप्त कर पाएँगे जो हम स्वाभाविक तरीके से नहीं कर पाते।

= यह हमें ऐसा फल उत्पन्न करने के योग्य बनाता है जो टिका रहेगा क्योंकि हम उनके जीवनों में जिनकी हम अगुआई करते हैं उसका जीवन प्रदान करने का सामर्थ्य पाएँगे (यूहन्ना 15:16)। यह परमेश्वर का अभिषेक ही है जो एक मसीही को प्रभावशाली तरीके से गवाह होने, बीमार को चंगा करने, मरे हुओं को जीवित करने, दुष्टात्माओं को निकालने, आदि के योग्य करता है।

= यह पुष्टि करता है कि हमारे पास अपनी सेवा करने के लिए परमेश्वर का अभिषेक है। जब दूसरे और हम खुद भी अपने जीवनों पर परमेश्वर के अभिषेक को देखते हैं तो हम जानते हैं कि उसने अपना अधिकार हमें सौंपा है और हमारी सेवा की पुष्टि कर रहा है। हमारे अधिकार की पुष्टि मनुष्य नहीं कर सकता है इसे परमेश्वर से ही आना अवश्य है। असल में, अधिकार को अभिषेक का जुड़वाँ भाई कहा जा सकता है। एक दूसरे के बिना बेकार है। जब लोग परमेश्वर के अभिषेक को हमारे जीवनों में कार्य करते देखेंगे तो वे हमारे अधिकार के अधीन होने के बहुत इच्छुक होंगे। यदि आपको परमेश्वर का अभिषेक नहीं मिला है तब तो आपको कलीसिया में किसी प्रकार के अधिकार के स्थान को त्याग देने के बारे में सोचना चाहिए।

= यह परमेश्वर के अभिषिक्तों की ओर उसकी अनन्त कृपा और विश्वासयोग्यता को प्रकट करता है (भजन 18:50)। ऐसा नहीं हो सकता कि परमेश्वर उसके लोगों को उसके लिए कुछ करने को कहे और फिर उसे करने के लिए सबकुछ जिसकी आवश्यकता हो उपलब्ध न करे।

= यह परमेश्वर के स्वभाव और हृदय को प्रकट करता है क्योंकि वह उसे ही करेगा जो उसके चरित्र के अनुसार है और जिसे उसने अपने वचन में प्रकट किया है।

= यह हमें परमेश्वर और दूसरे लोगों के लिए अधिक खोलता है, हमें उसके हाथों में अधिक उपयोगी बनाता है और उसके राज्य के काम अधिक प्रभावशाली करने के योग्य बनाता है।

= क्योंकि हम उसका काम उसकी शक्ति और सामर्थ्य से करेंगे, अपनी शक्ति में नहीं, यह हमें परमेश्वर में विश्राम, सच में स्वतन्त्र और उसकी शान्ति जानने देता है। यह परमेश्वर की सेवा में बहुत सारा पसीना, परेशानी और संघर्ष निकाल देता है। उसका जूआ सरल और उसका बोझ हल्का है (मत्ती 11:28-30)। परमेश्वर के अभिषेक के साथ, हम उसके अगुवे जो जिम्मेवारी उसने दी है उसे खुशी से निभा पाते हैं।

= यह इसके साथ संवेदनशीलता लाता है। जब परमेश्वर के अभिषिक्त अगुवे उसके अभिषेक में काम करते हैं तो जब वे लोगों से निपटते हैं, तो कठोर या कुचलनेवाले होने से बचे रहेंगे। वे परमेश्वर की उपस्थिति और जिस प्रकार वह उसके लोगों में कार्य करता है उसकी अधिक जानकारी रखते हैं और इसलिए जैसा यीशु एक स्थिति में करता वे भी देख सकते और कर सकते हैं। इसका परिणाम एक भविष्यसूचक संदेश होगा जो कलीसिया के सदस्यों के जीवन में बातें करेगा या लोगों के छुटकारे या चंगाई आदि के लिए प्रार्थना करना होगा। परमेश्वर चाहता है कि हम उसकी और उसकी अगुआई की ओर संवेदनशील हों और जैसे पवित्र आत्मा हमें उत्तेजित करे हम अगुवे उसकी आज्ञाओं का पालन करें।

= यह हमें परमेश्वर के लोगों की अगुआई करने का अधिकार देता है क्योंकि यह हमारे जीवनों पर परमेश्वर के समर्थन की छाप है, अर्थात् यह परमेश्वर के राज्य में व्यक्ति को प्रभावशाली अगुआई के लिए योग्य बनाता और सज्जित करता है।

= यह हमें सब चीजों की सच्चाई सिखाता है और हमें यीशु मसीह में रहना सिखाता है (1 यूहन्ना 2:20, 27)।

= यह हमें चीजों को वैसे ही देखने देता है जैसे परमेश्वर देखता है और उसकी अन्तर्दृष्टि, बुद्धि, समझ और पहचान देता है। ये चीजें हमें उनकी ही खातिर नहीं दी गई हैं परन्तु परमेश्वर की सेवा अधिक प्रभावशाली तरीके से करने के लिए दी गई हैं।

= यह हमारे लिए प्रभु का आनन्द लाता है (इब्रानियों 1:9)।

= जैसे हम अगुवे अपने अभिषेक में काम करेंगे तो यह उन्हें भी जिनकी हम अगुआई करते हैं उनके अभिषेक में ले जाएगा।

= परमेश्वर का अभिषेक हमारी स्थिति में परमेश्वर की उपस्थिति और सामर्थ्य लाता है। हम परमेश्वर के अभिषेक को जीवन के सांसारिक या नित्यक्रम दिखनेवाले काम जैसे कि भोजन करना या मित्रों के साथ बातें करना में जान सकते हैं। यह हमारे सब कार्यों को मनुष्य के क्षेत्र में से निकालकर परमेश्वर के पवित्र आत्मा के क्षेत्र में रखता है।

= जब हम परमेश्वर के अभिषेक में होंगे तो यह हमें उसकी इच्छा पूरी करने के लिए प्रेरित करेगा और उसकी आत्मा और सच्चाई में स्तुति और आराधना करने में प्रोत्साहित करेगा (यूहन्ना 4:23-24)। हम भी अपनी हर चीज में परमेश्वर को महिमा देना चाहेंगे और किसी भी व्यक्ति या किसी भी चीज से पहले उसे रखेंगे।

व्यक्ति के जीवन और सेवा में पवित्र आत्मा का अभिषेक

सेवा में एक अगुवे की सफलता उसके जीवन पर पवित्र आत्मा के अभिषेक पर बहुत निर्भर होती है। एक अगुवे की सेवा पर परमेश्वर के अभिषेक के बिना, यह परमेश्वर के राज्य के लिए कोई अनन्त फल नहीं उत्पन्न कर सकेगा। आत्मिक उत्तेजना के बिना जो केवल परमेश्वर ही प्रदान कर सकता है, एक अगुवे का जीवन मृत और निर्जीव होगा। एक अगुवे का बाहरी, पेशावर आकार प्रमुख मामला नहीं है, परन्तु पवित्र आत्मा की उसके जीवन को दूसरे लोगों के जीवनों और चरित्र में परिवर्तन लाने की योग्यता प्रमुख मामला है। जैसे पौलुस ने कहा, "क्योंकि परमेश्वर का राज्य बातों में नहीं परन्तु सामर्थ्य में है।" (1 कुरिं. 4:20; और 1 कुरिं. 2:4-5)।

आज कलीसिया को पवित्र आत्मा के अभिषेक में काम करने की बहुत ही आवश्यकता है। यह आवश्यकता कलीसिया की दूसरी दिशा में जाने की प्रवृति से और भी बढ़ गई है – पेशावरों के तरीकों पर निर्भर होना। कलीसिया की सफलता के लिए कुछ ईश्वरीय की आवश्यकता है। आज कलीसियाओं पर आई हुई आत्मिक सुस्ती इस आवश्यकता को प्रकट करती है। क्योंकि परमेश्वर का राज्य एक आत्मिक राज्य है, इसे आत्मिक सिद्धान्तों और आत्मिक सामर्थ्य में कार्य करना है।

अभिषेक के अनुपयुक्त स्रोत

दुर्भाग्यवश, कलीसिया के अगुवे जिन्होंने सांसारिक संस्थाओं या उच्च शैक्षिक सेमिनरियों में प्रशिक्षण पाया हुआ है परमेश्वर के अलौकिक अभिषेक के सामर्थ्य के विषय में लगभग कुछ नहीं जानते हैं। फिर भी कुछ सेमिनरी स्नातकों को ऐसा महसूस कराया जाता है कि वे स्थानीय कलीसिया की सफलता के "कैसे करें" सीखे हुए हैं। वे बड़े विश्वास के साथ उपाधि प्राप्त करते हैं, उन्होंने इस प्रकार के विषय सीखे होते हैं: एक संदेश कैसे तैयार करें, प्रचार कैसे करें, बपतिस्मा कैसे दें, प्रभु-भोज कैसे दें, कलीसिया की सभा कैसे चलाएँ, बेदारी की सभा कैसे चलाएँ, कलीसिया को कैसे बढ़ाएँ। प्रकट है, ये सब कलीसिया की सेवा के लिए आवश्यक हैं परन्तु उन में आत्मा का जीवन होना चाहिए।
जब स्नातक उनकी सेवाओं में प्रवेश करते हैं, तो कुछ उनके "कैसे करें" को प्रयोग में लाने में कठिनाई अनुभव करते हैं। संक्षिप्त पेशावर पास्टरों के किट कई आरम्भ कर रहे अगुवों के लिए मूलभूत सामान्य साजो-समान हैं। जब ये किट काम नहीं करते तो ये अगुवे बहुत परेशानी अनुभव करते हैं।

हमारी समस्या तुरन्त प्रकट होती है। बहुत सारे सिद्धान्त जो सांसारिक कॉलेजों और कुछ सेमिनरियों में सीखे जाते हैं परमेश्वर के वचन पर आधारित नहीं होते। मैं उन सेमिनरियों के लिए परमेश्वर का धन्यवाद देता हूँ जो परमेश्वर के वचन के लिए हृदय से समर्पित हैं, और उनके विद्यार्थियों में बाइबल की बातें बैठाते हैं।
दुर्भाग्यवश, कुछ सेमिनरियाँ यह नहीं सिखातीं हैं, और बदले में केवल शैक्षिक विषय देती हैं जो आत्मा को बुझाते हैं। तीन से आठ वर्ष तक ऐसे वातावरण में रहने के बाद एक व्यक्ति का जीवन कैसे प्रभावित न हो? बहुत सारी सेमिनरियाँ बाइबल को दूसरे संदर्भ के रूप में उपयोग करती हैं। कलीसिया की आवश्यकताओं के उत्तर में वे मनोविज्ञान, तत्त्वज्ञान, समाजविज्ञान, मानव-शास्त्र, सामाजिक तत्त्व-ज्ञान, सांसारिक इतिहास, व्यवसाय प्रबंध, आदि की ओर देखते हैं। जब ये सब चीजें अगुवे के अध्ययन का केन्द्र बन जाते हैं तो वे आत्मा के अभिषेक को सुखा देते हैं।

क्यों? क्योंकि परमेश्वर किसी मनुष्य को उसके सामने महिमा लेने नहीं देगा (1 कुरिन्थियों 1:2)। पवित्र अभिषेक करनेवाला तेल शरीर के कार्यों पर ठहर नहीं सकता। यह उसी पर टिकेगा जिसने मृत्यु और यीशु मसीह के लहू की शुद्धता को अनुभव किया है। जब एक अगुवा अपनी आत्मा के बजाय अपनी बुद्धि से सेवा करने पर जोर देता है तो वह ऐसे मसीहियों को उत्पन्न करेगा जिनके सिर भरे हुए परन्तु हाथ खाली हैं - बहुत ज्ञान परन्तु कोई सामर्थ्य नहीं। जैसे पहले भी हर पवित्र आत्मा के आत्मिक कार्यों में हुआ है, परमेश्वर एक बार फिर उन चीजों पर जोर दे रहा है जो उसके राज्य को बनाती हैं: प्रार्थना, वचन, पवित्रता, उपवास, आज्ञापालन और उसके पवित्र आत्मा के अभिषेक पर निर्भरता।

अभिषेक क्या नहीं है

इससे पहले हम निश्चित करें आत्मा का अभिषेक क्या है, आओ हम देखें यह क्या नहीं है। परमेश्वर का अभिषेक नहीं है:

- मात्र स्वाभाविक योग्यता या प्रवीणता।
- व्यावसायिकता।
- बाहरी प्रदर्शन।

- मात्र विचित्र वाक्पटुता।
- प्रसिद्ध प्रचार की शैलियों की नकल करना।
- औपचारिक उपदेश-कला कोर्स।
- कलीसिया-संबंधी पदवी या अधिकार।
- एक संस्था द्वारा पहचान।
- अच्छे प्रचार करने के तरीके।
- एक अच्छी शिक्षा के सीधे परिणाम।
- बाहरी धार्मिक ढंग।
- अच्छा लगनेवाला सुरूचिपूर्ण संगीत।
- मात्र भावात्मिकता।
- एक सरल "कैसे करें" सूची के अनुसार करना।
- एक शान्त धार्मिक सभा।

ऊपर दी कोई भी चीज एक जीवन, एक अगुवे या एक कलीसिया की सभा पर परमेश्वर का अभिषेक निश्चित नहीं कर सकती है। अभिषेक परमेश्वर के सामने एक दीन और टूटे हृदय पर आता है।

अभिषेक की परिभाषा

परमेश्वर के अभिषेक की एक सामान्य, वैचारिक परिभाषा बनाने से पहले, हमें उन मूल इब्रानी और यूनानी शब्दों पर नज़र डालनी होगी जिन्हें बाइबल "अभिषेक" अनुवाद करती है।

इब्रानी शब्दः

"बलाल": एक प्रथम मूल, अर्थ है उमड़ (विशेषकर तेल के साथ, और तात्पर्य है, मिलाना)।
"दाशेन" : एक प्रथम मूल, अर्थ है मूल, अर्थ है मोटा या, सकर्मकता, मोटा करना या मोटा मानना। इसका अर्थ है, विशेषकर, अभिषेक करना, या प्रतीकात्मक रूप से, तृप्त करना।
"यिशार": तेल के लिए एक संज्ञा, जैसे प्रकाश उत्पन्न करने के लिए, या प्रतीकात्मक रूप से अभिषेक करने के लिए उपयोग होता है।
"मिमशाच": एक प्रथम मूल से आता है, जिसका अर्थ है, फैलाने के भाव से, तेल से मलना।
"मशाच": एक प्रथम मूल, अर्थ है तेल से मलना, अभिषेक करना। तात्पर्य है, अलग करना। रँगना भी।
"मशीयाच": प्रायः एक अलग किए गए व्यक्ति के बारे में बताता है (राजा, याजक या सन्त) और विशेषकर मसीहा के लिए।
"कुव्क": एक प्रथम मूल, अर्थ है तेल से लोपना, अभिषेक करना।
"शेमेन": चिकनाई की एक प्रकार, विशेषकर तरल (जैसे जैतून का तेल), जो अकसर इत्र मिला होता है। प्रतीकात्मक रूप से, इस शब्द का अर्थ है समृद्धि।

नए नियम के यूनानी शब्दः

"अलिफो": तेल गलाना (प्रायः इत्र के साथ)।
"एग्क्रिओ": तेल से मलना, पोतना।
"एपिक्रिओ": पोतना।
"मुरिज़ो": किसी चीज को मरहम (इत्र) लगाना।
"क्रिओ": तेल के साथ पोतना या मलना; तात्पर्य है, एक पद या धार्मिक सेवा के लिए अलग करना।

संबंधित अँग्रेजी शब्दः

"अनाइन्ट": तेल या चिकनाई से मलना; एक पवित्र धर्मविधि के अंश के रूप में किसी चीज को तेल लगाना, विशेषकर बनाए रखने के लिए।
"अनाइन्टिड": एक व्यक्ति जो परमेश्वर के लिए अलग किया गया है।
"आइन्टमेन्ट": एक मरहम शरीर पर लगाना, अकसर किसी प्रकार की दवाई के साथ मिला होता है, चंगाई या सौंदर्य बढ़ाने के उद्देश्य से।

"उत्तेजक": जीवित करना, जीवित होना, आत्मिक रूप से जीवन डालना, आत्मिक रूप से उत्तेजित या उत्साहित करना, अधिक तेजी से जलने देना, जल्दी करना, सक्रिय वृद्धि और विकास के चरण में प्रवेश करना, अधिक चमक से जलना।
"अर्पित करना": परमेश्वर को उसके उद्देश्य के लिए अर्पित; चरित्र में पवित्र किया गया और, इस प्रकार, आत्मिक उपयोग के लिए सही और परमेश्वर की सेवा के लिए अलग करना।

अभिषेक की सामान्य परिभाषाएँ: आओ अब हम इन इब्रानी, यूनानी और अँग्रेजी शब्दों के अर्थों को अभिषेक के एक सामान्य और वैचारिक परिभाषा में इकट्ठा करें। यह हमें परमेश्वर के आत्मा के अभिषेक की कुछ आत्मिक समझ देगा:
परमेश्वर के आत्मा का अभिषेक मसीहा के जीवन की पवित्रता का एक मनुष्य में प्रवाहित होना है, जो मसीह के क्रूस के व्यक्ति अनुभव के द्वारा परमेश्वर को अर्पित किया गया है, जो इसे आत्मिक रूप से भरपूर बनाता है और इस प्रकार दूसरों के जीवन में परमेश्वर के वचन का प्रकाश और सुगन्ध प्रभाव के साथ डालता है, जिससे उनमें गहरी आत्मिक तृप्ति और प्रत्यक्ष मसीही फलदायकता उत्पन्न करता है।

अभिषेक के उदाहरण

इस समय इस सुसम्बद्ध परिभाषा को और अधिक व्यावहारिक बनाने के लिए, हम नीचे कुछ चीजें दे रहे हैं जो एक शिक्षक के जीवन में परमेश्वर के अभिषेक की अतिरिक्त परिभाषाएं और उदाहरण दोनों हैं। आत्मा के अभिषेक का प्रमाण है:

+ जब परमेश्वर एक अगुवे की स्वाभाविक योग्यताओं के परे कार्य करता है और उसे प्रचार करने, सिखाने या सलाह देने की अलौकिक योग्यता देता है।
+ जब एक अगुवा, आत्मा से उत्तेजना पाकर अपना तैयार किया हुआ संदेश छोड़कर, एक सारा संदेश अनायास प्रचार करता है, और मण्डली में एक विशेष तरीके से आत्मिक काम होता है। (यदि आप ने ऐसा पवित्र आत्मा के कार्य के बिना किए जाते देखा है तो आप को याद होगा कि यह प्रकट रूप से लाभ का नहीं था!)।
+ जब परमेश्वर की स्थाई और गतिमान उपस्थिति की सचेतन भावना प्रकट होती है।
+ जब एक अगुवे का संदेश उसके सुननेवालों के जीवनों में आत्मिक परिणाम लाता है, तब भी जब वह व्याकरण के नियम, उपदेश-कला, संगठन या पेशावर प्रस्तुतिकरण इन चीजों का पालन नहीं करता। (परन्तु यह इन वाक्पटुता की कुशलताओं को नकारता नहीं है। उनकी बहुत आवश्यकता है!)
+ जब एक अगुवा टूटे हृदय का या किसी पाप से पश्चाताप करता है, तो वह परमेश्वर को अपने निकट अनुभव करता है, और तब उसी आत्मा में वह उसके लोगों की सेवा करता है।
+ जब आत्मा का सामर्थ्य एक अगुवे के जीवन में प्रकट होता है जब वह बीमारों को चंगा करता, पापियों को छुटकारा देता, और उसके अर्पित पात्र द्वारा अपना सामर्थ्य दिखाता है।
+ जब कुछ मसीही गीतों या संगीत पर परमेश्वर की उपस्थिति का स्पर्श है, हालाँकि गायक या संगीतज्ञ पेशावर नहीं हैं।
+ जब एक गायक या एक संगीतज्ञ प्रभु के लिए अनायास एक गीत गाता है, जो आत्मिक रूप से मण्डली की उन्नति करता है।
+ जब एक अगुवा आत्मा में उत्तेजना पाता है और भविष्यसूचक प्रकाशन द्वारा परमेश्वर के वचन से सेवा करता है और लोगों के जीवनों में सीधे बोलता है।
+ जब एक मण्डली पर प्रार्थना और मध्यस्थता की आत्मा उतरती है और जैसे परमेश्वर विभिन्न व्यक्तियों के हृदयों में विशेष बोझ डालता है तो सब, बारी-बारी से, अनायास प्रार्थना करने लगते हैं।
+ जब परमेश्वर एक अगुवे का चरित्र और/या वरदान दिखाने के लिए प्रभु यीशु मसीह के द्वारा आत्मिक अधिकार देता है।
+ जब सच्ची चंगाई की उपयोगी सेवा, जो प्रेम, समझ और प्रार्थना द्वारा होती है, ऐसे व्यक्ति की सहायता करती है जिसका हृदय टूटा हुआ या चोट खाया हुआ है।
+ जब एक व्यक्ति का सारा अस्तित्व (आत्मा, मन, इच्छा-शक्ति, भावनाएँ और शरीर) पवित्र आत्मा की खोज की ओर सकारात्मक रूप से प्रतिक्रिया दिखाता है।

+ जब एक व्यक्ति पवित्र आत्मा की भीतरी अगुआई की ओर, जो कभी भी परमेश्वर के वचन का खण्डन नहीं करता, संवेदनशीलता और आज्ञापालन दिखाता है।

+ जब एक अगुवा आत्मा के द्वारा कलीसिया की सभा में मण्डली की विशेष आत्मिक या शारीरिक आवश्यकताओं को भाँप लेता है, और उनकी सेवा करता है।

हम ऐसे बहुत सारे विवरण दे सकते हैं, परन्तु परमेश्वर कितने सारे तरीकों से सामर्थ्य के साथ कार्य करता है। सब विवरणों का सार आत्मा की अगुआई का आनायास पालन करना है, जो सदा यीशु मसीह को महिमा देता है और लोगों की (चंगाई के लिए) आत्मिक स्थिति को प्रकट करता है। हम यहाँ कहना चाहते हैं कि एक अगुवा पहले से बनाई योजनाओं, पहले से बनाए संदेशों, आदि पर चलकर अभिषेक में कार्य कर सकता है, शर्त यह है कि वे पहले पवित्र आत्मा द्वारा इसी अवसर के लिए उत्तेजित किए गए थे। अभिषेक मनुष्यों के मन को व्यर्थ नहीं करता है। यह परमेश्वर के हृदय और आत्मा को किसी विशेष स्थिति में लाने के लिए एक पात्र के रूप में अगुवे के मन को इस्तेमाल करता है।

असल में, अभिषेक को आत्मिक वरदान प्रयोग करने के लिए बहुत प्रयत्न और अनुशासन की आवश्यकता होती है। एक गहरा प्रार्थना का जीवन होने, और परमेश्वर के वचन पर सच्चा आत्मिक मनन करने के लिए अनुशासन लगता है। यह भी आवश्यक है कि एक अगुवा हर सभा या घटना में अपने आत्मिक कान परमेश्वर पर परिश्रम के साथ केन्द्रित करे, और उस समय अपनी योजनाओं को बदलने के लिए तैयार रहे। जो अगुवे ये चीजें करते हैं उन्हें आत्मा अभिषेक की अतिरिक्त समझ देगा।

अभिषेक का विषय सच में एक नाजुक विषय है। यह बहुत ही रहस्यात्मक (आत्मिक) चीज है, और फिर भी विशेष स्थितियों में उपयोगी प्रयोग लाता है। अभिषेक में कार्य करने की एक महत्त्वपूर्ण कुंजी है: दीन हृदय बनाए रखो, और समझो कि परमेश्वर ने हमें अभी तक उतना उपयोग नहीं किया है जितना वह चाहता है। दूसरी कुंजी: उन विशेष और भिन्न तरीकों की ओर खुले रहो जिनमें आत्मा हमें लोगों को जीतने, कलीसिया की उन्नति करने, और सभाओं में यीशु मसीह की उपस्थिति और सामर्थ्य लाने के लिए अगुआई करेगा। परमेश्वर का वचन सन्तुलन, सुरक्षा जाँच और वो सिद्धान्त प्रदान करता है जो हमें आत्मा की अगुआई समझने में सहायता करता है।

अभिषेक के इस्तेमाल

पुराने नियम में, अभिषेक का तेल समृद्धि (व्यवस्थाविवरण 32:13), आत्मिक दशमाँश (12:17) का प्रतीक था, और आर्थिक भुगतान (1 राजा 5:11) का एक साधन था। इसके अतिरिक्त, अभिषेक के तेल का एक मुख्य उपयोग इस्राएल के कुछ विभिन्न बलिदानों और भेंटों में भी था।

हारून और उसके पुत्रों को पवित्र करने के लिए इस्तेमाल की गई अखमीरी रोटी की पपड़ियाँ तेल से चुपड़ी हुई होती थीं (निर्गमन 29:1,2)। इसका आज के अगुवों के लिए दो कारणों से महत्त्वपूर्ण उपयोग है। पहला, पवित्र आत्मा का अभिषेक पाने के लिए, एक अगुवे को उसके जीवन में से पाप (खमीर) निकालना है और उसके रवैये और प्रेरणा में केवल ईमानदारी और सच्चाई रखनी है (1 कुरिन्थियों 5:1-13)। दूसरा, जैसे हारून और उसके पुत्रों के साथ हुआ था, सब अगुवों को परमेश्वर की सेवा के लिए पवित्र होने के लिए अभिषेक पाना अवश्य है (निर्गमन 29:1, 23; लैव्यव्यवस्था 6:20-22; गिनती 6:13-15)।

सुबह और शाम दोनों समय तेल से सना हुआ मैदा मेमने के बलिदान के साथ अर्पित किया जाता था - इसके आज के लिए दो आत्मिक उपयोग हैं। एक अगुवे को पता होना चाहिए कि उसका अभिषेक निरन्तर (सुबह और शाम) नई होता रहना चाहिए। जब एक अगुवा परमेश्वर को बलिदान (पुराने नियम में एक मेमना) अर्पित करता है, तो वह जानता है कि अभिषेक (तेल) इसके साथ आएगा। हर अगुवे के लिए परमेश्वर को बलिदान करना लाभ की बात है। एक अगुवे के बलिदान के बदले में, परमेश्वर उसके जीवन और सेवा पर एक भरपूर अभिषेक देता है।

अन्नबलि जो अखमीरी मैदे के फुलके या अखमीरी चपातियाँ थीं तेल से चुपड़े होते थे (लैव्यव्यवस्था 2:4-5; 2:1-2, 6-7 और 9:4 और 14:10, 21 और 23:10-13 भी देखो)। उपयोग में, यह संकेत देता है कि परमेश्वर एक अगुवे को उसके आत्मा का अभिषेक देगा चाहे वह उसके अगुवे को कैसी भी परीक्षाओं और जाँचों (तन्दूर या तवा) में से क्यों न ले जाए। हर अगुवे को विश्वास के साथ यह कह पाना चाहिए, "हर चीज मेरे जीवन और मेरी सेवा के भले के लिए कार्य करती है, क्योंकि मैं परमेश्वर से प्रेम करता हूँ और उसके उद्देश्य के अनुसार बुलाया गया हूँ" (रोमियों 8:28 में से लिया गया)।

मेलबलि भी धन्यवाद के साथ तेल से सनी होती थी (लैव्यव्यवस्था 7:12)। यह इस आत्मिक सच्चाई को प्रकट करता है कि परमेश्वर उस अगुवे पर अपना अभिषेक उँडेलेगा जो अपनी सारी कठिन परिस्थितियों (उन्हें मित्रों के समान स्वीकार करना, जैसा

याकूब 1:1-3 में दिया है) के साथ "मेल करेगा"। जैसे एक अगुवा हर परिस्थिति में आत्मिक भलाई के लिए प्रभु का धन्यवाद करेगा तो वह उसके जीवन में और भी अधिक पवित्र आत्मा का अभिषेक अनुभव करेगा।

नर मेमने की होमबलि जो पहली उपज के पूले के साथ उसी दिन चढ़ाई गई थी जब इस्राएल ने प्रतिज्ञा के प्रदेश में किया था, तेल से सनी हुई थी (लैव्यवयवस्था 23:10-13)। यह संकेत देता है कि प्रभु अगुवे को जैसे वह प्रभु से मिले किसी नए सत्य में प्रवेश करेगा और आवश्यक बलिदान करेगा (परिवार की गलतफहमियाँ, कलीसिया से ठुकराहट, मित्रों की हानि), तो प्रभु उसे अपने पवित्र आत्मा का अधिक अभिषेक देगा (प्रदेश का एक नया अंश)।

अखमीरी रोटियाँ जो नाज़ीर के बलिदान का एक अंश थीं, तेल से चुपड़ी हुई होती थीं (गिनती 6:15)। यह संकेत देता है कि परमेश्वर अपना अभिषेक सदा उनको देगा जो प्रभु के लिए अपने आप को (जैसे नाज़ीर करते थे) गम्भीरता से अर्पित करते हैं। हर बार जब एक अगुवा अपने आप को इस संसार के तरीकों (शरीर की अभिलाषा, आँखों की अभिलाषा, जीवन का घमण्ड, कड़ुवाहट, घृणा, क्रोध) से अलग करता है तब परमेश्वर उसे अपने पवित्र मरहम से अधिक अभिषेक करता है। हर अगुवे को, अपने और अपने परिवार दोनों के लिए, जैसे वे उनके लोगों के लिए उदाहरण पेश करते हैं, पश्चाताप एक जीवन शैली के रूप में (केवल एक बार का काम नहीं) अपनाना है।

अगुवों के बलिदान के चाँदी के परात जो सने हुए मैदे से भरे हुए थे, उनमें तेल भी था (गिनती 7)। यह संकेत देता है कि केवल पवित्र आत्मा के अभिषेक (परमेश्वर का तेल) के द्वारा ही एक अगुवा पूरी तरह से उन प्रतिज्ञाओं और प्रबंधों में प्रवेश कर सकता है जो यीशु मसीह के उद्धार (जिसका रंग चाँदी का है) में अन्तर्निष्ठ हैं। केवल पवित्र आत्मा ही परमेश्वर के उद्धार की सच्चाइयों को एक अगुवे के जीवन में असली, व्यावहारिक और अनुभवात्मक रूप से ला सकता है।

लेवियों को उनकी याजकीय सेवा के लिए शुद्ध करने में तेल भी उपयोग होता था (गिनती 8:6, 8)। नए नियम का याजक (1 पतरस 2:5, 9) भी पवित्र आत्मा से शुद्ध किया गया होना चाहिए, उसके जीवन की अशुद्धताएँ प्रकट करना और फिर निकालना। यह सब मसीही विश्वासियों के लिए (जो सब नई वाचा के याजक हैं) सत्य है, परन्तु विशेषकर उन सब के लिए है जिन्हें परमेश्वर के लोगों को सत्य में ले चलना है।

हिलाने की भेंट की छाती और उठाने की भेंट की जाँध (हारून और उसके पुत्रों के लिए मेलबलि में से) उनका अभिषिक्त हक माना जाता था (लैव्यव्यवस्था 7:34-35)। यह हर अगुवे के लिए संकेत है कि उसके जीवन के दो सबसे महत्त्वपूर्ण भाग, उसके हृदय के स्नेह (छाती) और उसकी ताकत (शक्तिशाली जाँध) को सम्पूर्ण रूप से परमेश्वर को दिया जाना चाहिए जिससे आत्मा उसके जीवन को अभिषेक कर सके। जो भी एक अगुवे के हृदय के स्नेहों और ताकत से किया जाता है उससे उसकी सेवा या तो सफल होगी या असफल रहेगी। हर अगुवा उसकी आत्मिक "छाती" और "जाँध" परमेश्वर को दे।

जो बलिदान राजकुमार और लोग सब्त और नए चाँद के दिन चढ़ाया करते थे वे तेल से मिले होते थे (यहेजकेल 46:1-12)। यह एक बड़े महत्त्व के सत्य का संकेत देता है: कलीसिया के अगुवे (राजकुमार) और लोग (मण्डली) एक दूसरे के साथ मेल-मिलाप के लिए, और नए सत्य (नया चाँद) में प्रवेश करने के लिए जिसे परमेश्वर ने कलीसिया को दिया है सम्पूर्ण रूप से पवित्र आत्मा पर निर्भर हों।

मूसा के तम्बू और सुलेमान के मन्दिर को अर्पित करने के लिए, दूसरी चीजों के साथ अभिषेक का तेल उपयोग किया गया था (निर्गमन 40:9; गिनती 7:1, 10, 84, 88)। तम्बू के विभिन्न अंशों की यह सूची और सेवा के लिए जहाँ वे तेल से अभिषेक किए गए थे उनके संदर्भ, उनमें एक अगुवे के लिए आत्मिक उपयोग सम्मिलित हैं:

- पीतल की वेदी का अभिषेक (निर्गमन 29:36 और 30:25, 28 और 40:11) हर अगुवे को प्रोत्साहित करता है कि परमेश्वर के लिए बलिदान का स्थान आत्मा के अभिषेक का स्थान है।
- पीतल की हौदी का अभिषेक (निर्गमन 30:25, 28 और 40:11) हर अगुवे को प्रोत्साहित करता है कि वचन द्वारा शुद्धता का स्थान (इफिसियों 5:25-27) आत्मा के अभिषेक का स्थान है।
- सोने की दीवट और इसके सारे पात्रों का अभिषेक (30:25, 27) एक अगुवे को बताता है कि उसे अपने पात्र (जीवन) को रोजाना परमेश्वर के आत्मा से भरना है।
- भेंट की रोटियों की मेज और इसके सारे पात्रों का अभिषेक (30:25, 27) एक अगुवे को चुनौती देता है कि वह प्रभु-भोज की मेज के पास अधिक प्रकाश और समझ के लिए प्रार्थना किया करे, ताकि कलीसिया परमेश्वर का आत्मा अधिक अनुभव कर सके।
- सोने की धूप-वेदी का अभिषेक (30:25, 27) एक अगुवे को संकेत देता है कि जितना अधिक वह प्रार्थना की सेवा में (प्रकाशितवाक्य 5:8 और 8:4) और प्रभु की आराधना में प्रवेश करेगा उतना अधिक वह परमेश्वर का अभिषेक अनुभव करेगा।
- सोने की वाचा का सन्दूक का अभिषेक (30:25, 26) अगुवे से कहता है कि जितना अधिक वह यीशु मसीह के लहू द्वारा परमेश्वर की उपस्थिति में प्रवेश करेगा उतना अधिक वह अपने ऊपर प्रभु का अभिषेक अनुभव करेगा। सुलेमान के मन्दिर में वाचा के संदूक के ऊपर दो अभिषिक्त करूब और पवित्र-स्थान के दरवाजे जैतून की लकड़ी के बने थे (1 राजा 6:23, 31-35)।

भविष्यद्वाणी करने का अभिषेक

अभिषेक के यह सारे आत्मिक उपयोग परमेश्वर के अभिषेक के एक अन्तिम भविष्यसूचक उपयोग की ओर संकेत करते हैं। यह है यीशु मसीह की कलीसिया को बाहर जाने और मसीह के लिए सामर्थ्य के साथ गवाह होने के लिए अभिषेक करना (प्रेरितों 1:8; 2 कुरिन्थियों 1:21-22)। पुराने नियम में कलीसिया पर पवित्र आत्मा का अभिषेक आने का एक प्रतीक याकूब (तीन मुख्य कुलपति पिताओं में से तीसरा) है।

याकूबः

पत्थर के खम्बे पर
(कलीसिया – 1 तीमुथियुस 3:15)
तेल डाला
(पवित्र आत्मा)
जहाँ उसे स्वर्ग के फाटक का प्रकाश मिला था
(यीशु मसीह, यूहन्ना 1:51; उत्पत्ति 28:18 और 31:13 और 35:14)

तेल पत्थर के खम्बे पर उसी प्रकार आया जैसे आत्मा कलीसिया, जो सत्य का खम्बा और भूमि है, पर आया था और आएगा। नए नियम में भी यीशु मसीह की शारीरिक देह का अभिषेक (मरकुस 14:3-8 और 16:1) भी उसकी देह, कलीसिया पर आने वाले अभिषेक का भविष्यसूचक बनता है (1 कुरिन्थियों 12:12-27)।
और भी विशेष रूप से, नया नियम बड़े स्पष्ट रूप से पवित्र आत्मा की सही अन्तर्दृष्टि और प्रकाश पाने का महत्त्व सिखाती है। यूहन्ना ने लौदीकिया की कलीसिया को इस अभिषेक को पाने की उनकी आवश्यकता के विषय में लिखा था: "इसी लिए मैं तुझे सम्मति देता हूँ कि ... अपनी आँखों में लगाने के लिए सुर्मा ले कि तू देखने लगे।" (प्रकाशित. 3:18)। आज कलीसिया के अगुवों को आत्मा की सहायता से परमेश्वर के अनन्त उद्देश्यों और उसकी महिमा और सामर्थ्य के उपयोग को देखने की आवश्यकता है। क्योंकि यीशु मसीह को भी परमेश्वर ने अभिषेक किया था (प्रेरितों 4:27 और 10:38; इब्रानियों 1:9), उसी प्रकार उसकी कलीसिया भी ऊपर से उसके सामर्थ्य से भर जाएगी (लूका 24:49)।

उसकी देह पर परमेश्वर के अभिषेक के आने से सम्बंधित, हम अगुवे एक और सच्चाई देख सकते हैं। इस्राएल के दिनों में, याजक और राजा दोनों अभिषेक को उनके सिरों और कपड़ों पर पाया करते थे (1 शमूएल 9:16 और 10:1 और 12:3, 5 और 15:17 और 16:3, 12-13)। अभिषेक का तेल उनके सिरों से होकर उनके कपड़ों पर भी गिरता था। जब हारून और उसके पुत्रों को अभिषेक किया गया तब निर्गमन 28:41 बताता है, "अपने भाई हारून और उसके पुत्रों को ये ही सब वस्त्र पहिनाकर उनका अभिषेक और संस्कार करना, और उन्हें पवित्र करना कि वे मेरे लिए याजक का काम करें।" यहाँ अभिषेक का तेल का सम्बंध याजक के वस्त्र पहनने से है (लैव्यव्यवस्था 8:30)। इसके अतिरिक्त निर्गमन 29:7 कहता है, "तब अभिषेक का तेल ले उसके सिर पर डालकर उसका अभिषेक करना।" (निर्गमन 30:30 और 40:13, 15; लैव्यव्यवस्था 8:12 र 21:10; गिनती 3:3 और 35:25)।

ऐसा क्यों था कि इस्राएल के दो सबसे महत्त्वपूर्ण पद वालों को अभिषेक उनके सिरों पर लेना होता था? यह निश्चय ही कलीसिया के अगुवों के मनों में पवित्र आत्मा की अन्तर्दृषटि और प्रकाश का भविष्यसूचक था।

परमेश्वर के सब अगुवों के पास ऐसे मन और विचार (सिर) होने चाहिए जो सम्पूर्ण रूप से परमेश्वर की ओर अर्पित हैं जिससे वे वैसे अगुवे बन सकें जो उन्हें बनना चाहिए। दाऊद को इसका जब वह एक चरवाहा ही था एहसास हुआ था, जब उसने लिखा, "तू ने मेरे सिर पर तेल मला है" (भजन 23:5)। दाऊद उस तेल का जिक्र कर रहा था जिसे वह उसकी भेड़ों के सिरों पर मक्खियों से बचने के लिए लगाता था। परन्तु वह अपने सिर को प्रभु के सम्पूर्ण नियंत्रण में रखने की इच्छा भी प्रकट कर रहा था जिससे उसका सारा जीवन प्रभु को अर्पित रहेगा। वैसे ही एक स्त्री ने मरकुस 13:3 में इत्र से भरे हुए एक बर्तन को यीशु के सिर पर फोड़ा था जब उसने उसे प्रभु माना था। हर अगुवा इस बात को स्पष्ट अनुभव कर ले कि परमेश्वर अपने अभिषेक को उसके अगुवों को उसके आत्मा और उसके वचन के नियंत्रण में रखने के लिए इस्तेमाल करता है।

चरित्र से जुड़ा अभिषेक

अभिषेक का तेल बाइबल में विभिन्न चरित्र के गुणों को चित्रित करने के लिए भी प्रतीक के रूप में उपयोग किया जाता था जिन्हें परमेश्वर की आशीष मिलेगी। मसीही अगुवों को समझना है कि परमेश्वर उनमें आत्मा के वरदानों से अधिक कुछ बनाने में

दिलचस्पी रखता है। और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण, परमेश्वर उनमें आत्मा का फल विकसित करना चाहता है। जैसा पहले कहा गया है परमेश्वर हर अगुवे में चरित्र (सच्चाई) और योग्यता (सामर्थ्य) का सन्तुलन चाहता है।

कुछ सबसे महत्त्वपूर्ण चरित्र के गुण जिन्हें बाइबल आत्मा का अभिषेक पाने से जोड़ती है, वे हैं:

चिन्ता। "तू ने मेरे सिर (चरवाहा दाऊद उसकी भेड़ों के कल्याण की चिन्ता करता है) पर तेल मला है" (भजन 23:5)।

देना। "उदार (देनेवाला) प्राणी हृष्ट पुष्ट (तेल से भर जाते) हो जाता है" (नीतिवचन 11:25)।

परिश्रम। "कामकाजी हृष्ट पुष्ट (तेल से भर जाते) हो जाते हैं" (नीतिवचन 13:4)।

भरोसा। "जो यहोवा पर भरोसा रखता है वह हृष्ट पुष्ट (तेल से भर जाते) हो जाता है" (नीतिवचन 28:25)।

जिम्मेवारी। "कल इसी समय मैं तेरे (शमूएल) पास...एक पुरुष (शाऊल) को भेजूँगा, उसी को तू मेरी इस्राएली प्रजा के ऊपर प्रधान होने के लिए अभिषेक करना।" (1 शमूएल 9:16)।

धार्मिकता। "तू ने धर्म से प्रीति और दुष्टता से बैर रखा है। इस कारण परमेश्वर ने हाँ, तेरे परमेश्वर ने तुझ को तेरे साथियों से अधिक हर्ष के तेल से अभिषिक्त किया है।" (भजन 45:7)।

शुद्धता। "तू स्नान कर तेल लगा, और अच्छे वस्त्र पहिनकर खलिहान को जा।" (रूत 3:3)।

साहस। "भोजन की तैयारी हो रही है, पहरूए बैठाए जा रहे हैं, खाना-पीना हो रहा है। हे हाकिमो, उठो, ढाल में तेल मलो। क्योंकि प्रभु ने मुझ से यों कहा है, 'जाकर एक पहरूआ खड़ा कर दे'" (यशायाह 21:5-6)।

आज्ञापालन। "हे गिलबो पहाड़ो, तुम पर ओस न पड़े, और न वर्षा हो, और न भेंट के योग्य उपजवाले खेत पाए जाएँ! क्योंकि वहाँ शूरवीरों की ढालें अशुद्ध हो गई, और शाऊल की ढाल बिना तेल लगाए रह गई।" (2 शमूएल 1:21; 2 शमूएल 15:22)

अधीनता। "कोढ़ी के शुद्ध ठहराने की व्यवस्था यह है। वह याजक के पास लाया जाए…तब याजक…लोज भर तेल को समीप लाए, और इन दोनों को हिलाने की भेंट के लिए यहोवा के सामने हिलाए।" (लैव्यव्यवस्था 14:2, 12; और आय. 10, 14-18, 21, 24, 26-29 में भी तेल देखो)

एकता। "देखो, यह क्या ही भली और मनोहर बात है कि भाई लोग आपस में मिले रहें! यह तो उस उत्तम तेल के समान है।" (भजन 133:1-2)

आनन्द। "प्रभु यहोवा का आत्मा मुझ पर है…कि उनका विलाप दूर करके हर्ष का तेल लगाऊँ।" (यशायाह 61:3)

दीनता और टूटापन। "उस नगर की एक पापिनी स्त्री…संगमरमर के पात्र में इत्र लाई, और उसके पाँवों के पास, पीछे खड़ी होकर, रोती हुई…उसके पाँव बार-बार चूमकर उन पर इत्र मला।" (लूका 7:36-50)।

ये एक अगुवे के जीवन के चरित्र के कुछ सबसे मूलभूत गुण हैं। उनके विकास के साथ अगुवा परमेश्वर पर अधिक अभिषेक के लिए विश्वास कर सकता है।

अन्त में, तेल के कई दूसरे उपयोगों का परमेश्वर के लोगों के अगुवे के लिए कुछ आत्मिक सत्य हैं। उन्हें सामान्य रूप से सामाजिक उपयोग कहा जा सकता है।

- तेल को भोजन पकाने के लिए उपयोग किया जाता था (1 राजा 17:12-16)। आत्मिक भोजन जिसे एक अगुवा उसके लोगों को वचन की शिक्षा और प्रचार के द्वारा खिलाता है, पचाने के लिए पवित्र आत्मा द्वारा जीवित होना चाहिए।
- तेल को घरेलू और दूसरे प्रकार के दीपकों के लिए इन्धन के रूप में इस्तेमाल किया जाता था (मत्ती 25:1-13); यशायाह 42:3 में टिमटिमाती बत्ती को भी देखो। हर अगुवे को उसके लोगों के जीवनों के दीपकों को आत्मा के तेल के साथ भरने की उसकी जिम्मेवारी के अंश को स्वीकार करना है, जिससे वे सच में वह बन सकें जो यीशु ने आप कहा वे होंगे: जगत की ज्योति (मत्ती 5:14)।
- तेल को विभिन्न दवाइयों में उपयोग किया जाता था (यशायाह 1:6; मरकुस 6:13; लूका 10:34)। हर अगुवे को एक शुद्ध माध्यम होना है जिसमें से पवित्र आत्मा आत्मिक रूप से घायलों के मनों और जीवनों को चंगा कर सके।

- तेल कुछ अंगराग मरहमों में मिलाया जाता था (2 शमूएल 14:2; रूत 3:3; भजन 104:15)। हर अगुवे को कलीसिया पर आत्मा के अभिषेक को उपयोग में लाना है ताकि वह यीशु मसीह का प्रतिबिम्ब और मुखाकृति दिखा सके।
- तेल को प्रथा के रूप में घर में आए मेहमानों को अभिषेक करने और ताज़ा करने के लिए उपयोग किया जाता था (लूका 7:46)। हर अगुवा अतिथि-सत्कार (1 तिमुथियस 3:2) दिखाते हुए उसके घर में आए हर एक की आत्मिक ताज़गी की सेवा करे।
- तेल को गन्धरस के साथ मृतकों को लगाने के लिए उपयोग किया जाता था (मरकुस 14:8; लूका 23:55-56)। परमेश्वर के आत्मा का अभिषेक एक अगुवे के यीशु मसीह के क्रूस के अनुभव (गन्धरस) के साथ ऐसा मिल जाना चाहिए कि वह उन में आत्मिक जीवन ला सकेगा जो उनके पापों और अपराधों में मरे हुए हैं।

अभिषेक के उद्देश्य

अभिषेक के तेल के उद्देश्य उसके उपयोग के काफी समान हैं। परन्तु हम ने यहाँ कइयों का जिक्र किया है जो हमारी समझ को बढ़ाएँगे। उन में से हर एक नए नियम के अगुवे पर लागू हो सकते हैं। अभिषेक (तेल) के कुछ मुख्य उद्देश्य थे:

1. परमेश्वर के अगुवों को उनके शत्रुओं को हराने के लिए समर्थ करना (जैसे प्रभु का आत्मा न्यायियों पर इसी उद्देश्य से उतरता था: न्यायियों 3:10 और 11:29 और 13:25 और 13:25 और 14:6, 19 और 29:29)।
2. चीजों और लोगों को परमेश्वर और उसकी सेवा के लिए अर्पित करना (निर्गमन 28:41 और 29:29)।
3. लोगों को प्रभु के लिए उनकी सेवाओं को करने के योग्य करना।
4. पीड़ितों के लिए सुसमाचार लाना (यशायाह 61:1)।
5. टूटे हृदय वालों पर मरहम लगाना (यशायाह 61:1)।
6. बन्दियों को छुटकारे का प्रचार करना (यशायाह 61:1)।
7. कैदियों को स्वतन्त्रता का प्रचार करना (यशायाह 61:1)।
8. प्रभु के प्रसन्न रहने के दिन का प्रचार करना (यशायाह 61:1-2)।
9. प्रभु के पलटा लेने के दिन का प्रचार करना (यशायाह 61:1-2)।
10. विलाप करनेवालों को शान्ति देना (यशायाह 61:1-2)।
11. सिय्योन के विलाप करनेवालों के सिर पर की राख दूर करके सुन्दर पगड़ी बाँधना (यशायाह 61:3)।
12. सिय्योन में विलाप करनेवालों पर हर्ष का तेल लगाना (यशायाह 61:3)।
13. सिय्योन के विलाप करनेवालों की उदासी हटाकर यश का ओढ़ना ओढ़ाना (यशायाह 61:3)।
14. जो विलाप करते हैं उन्हें धर्म के बांजवृक्ष और प्रभु के लगाए हुए कहना (यशायाह 61:3)।
15. प्रभु की, न कि मनुष्य की महिमा करना (यशायाह 61:3)।
16. हारून के पुत्रों को उनकी सेवाओं के लिए योग्य करना (निर्गमन 40:15।
17. हारून को उसकी भेंटों की सेवा के लिए योग्य करना (गिनती 18:8)।
18. भेंट के मैदा को गीला करना (यहेजकेल 46:13-15)।
19. प्रति दिन की भेंट का एक अत्यावश्यक भाग होना (यहेजकेल 46:13-15)।
20. अंधी आँखों को खोलना (यूहन्ना 9:6)।
21. मसीही को प्रभु के वरदानों और सेवाओं के साथ समर्थ करना (1 कुरिन्थियों 12; इफिसियों 4:11-12)।

ये सब उद्देश्य एक अगुवे के जीवन और सेवा में उनकी आत्मिक पूर्ति खोजते हैं। सम्भवतः ऊपर दी सूची में से, अगुवों को अभिषेक में कार्य करने में सहायता के हमारे उद्देश्य के प्रकाश में, 3, 16 और 17 इन सब उद्देश्यों में से सबसे अधिक महत्त्व के हैं। संक्षिप्त में, ये उद्देश्य लोगों को प्रभु के लिए उनकी सेवाओं को करने, और उन्हें उनके पद में योग्य करने के लिए हैं।

जैसे पहले कहा गया है, मसीहियत में एक सबसे बड़ा विवाद है: "सेवा के लिए कौन योग्य है? कौन प्रभु के नाम में अधिकार के साथ बोल सकता है? एक व्यक्ति को एक सेवा के लिए क्या योग्य करता है?" इन प्रश्नों पर आज भी तर्क होता है। अभिषेक का उद्देश्य जिन्हें हम ने अभी अलग किया है (3, 16 और 17) हमें इन प्रश्नों के एक अंश की ओर ले जाते हैं।

सेवा के लिए योग्यता की एक ओर चरित्र और अखंडता है (1 तीमुथियुस 3:2-7), और इसका कोई इन्कार नहीं कर सकता। जब कभी एक व्यक्ति बाइबल में दिए चरित्र और आचरण के नैतिक निर्देशों के पार जाता है तो वह अपने आपको सेवा से अयोग्य करता है। परन्तु सेवा में चरित्र से कुछ अधिक की आवश्यकता है। एक व्यक्ति एक बहुत ईमानदार और भला नलसाज हो सकता है, परन्तु यदि वह एक चू रही मोरी को ठीक नहीं कर सकता है तो वह उस व्यक्ति के लिए किस काम का है जिसकी मोरी चू रही है? उसी प्रकार, एक व्यक्ति को एक सेवा करने के लिए चरित्र के अतिरिक्त परमेश्वर के अभिषेक (योग्यता) की आवश्यकता है। व्यक्ति के पास उस सेवा को प्रभावशाली तरीके से करने के लिए प्रभु में सामर्थ्य और योग्यता होनी चाहिए।

परमेश्वर ने तम्बू के साजो-समान की चीजों को बनाने के लिए बसलेल और ओहोलीआब को चुना था (निर्गमन 31:2 और 35:30 और 36:1-2 और 37:1 और 38:22; 2 इतिहास 2:14 भी देखो)। परमेश्वर ने उनको इसलिए नहीं चुना क्योंकि वे अखंडता और अच्छे नैतिक गुणों के लोग थे। उसने उनको चुना था क्योंकि वह उन्हें अपने आत्मा से अभिषेक करने वाला था, वह उनके स्वाभाविक विकसित निपुणताओं पर उसके आत्मा की योग्यता डालने वाला था ताकि वे एक विशेष काम के लिए तैयार हो सकें।

जब दाऊद ने गायकों और संगीतज्ञों को परमेश्वर के तम्बू में सन्दूक के सामने सेवा करने के लिए चुना, तो उसने लोगों को इसलिए नहीं चुना क्योंकि उनमें कुछ आत्मिक गुण थे। उसने उन्हें इसलिए भी चुना क्योंकि वे प्रभु के सामने कुशलता के साथ गाएंगे और बजाएँगे (1 कुरिन्थियों 15:22 और 28:21; 2 इतिहास 34:12 और भजन 33:3 और 78:72)। जब परमेश्वर ने नए नियम की तेरह पुस्तकों को लिखने के लिए एक मनुष्य को चुना तो उसने मछुवे पतरस को नहीं चुना। उसने मूसा की व्यवस्था के एक बहुत ही योग्य फरीसी – पौलुस को चुना।

इसलिए यह केवल चरित्र नही है जो लोगों को सेवा के लिए योग्य बनाता है। यह आत्मा का अभिषेक भी होता है जो परमेश्वर उनको देता है। सच है, प्रभु स्वाभाविक योग्यताएँ या निपुणताएँ को सदा उपयोग नहीं करता है। कुछ योग्यताओं को क्रूस का अनुभव पाना होता है इससे पहले वे परमेश्वर को महिमा देने के लिए जीवित हो सकें। परन्तु यहाँ बात यह है कि परमेश्वर हर व्यक्ति को एक विशेष अभिषेक देता है जिससे वह अपनी सेवा प्रभावशाली तरीके से कर सकता है। परन्तु अगुवों को ध्यान देना है कि वे व्यवसायिकता के आत्मा में प्रवेश न करें जो मनुष्य की योग्यताओं को महिमा लाता है। हो सकता है अभिषेक स्वाभाविक निपुणताओं पर आए या न आए; यहाँ महत्त्व की बात अभिषेक है न कि निपुणता। कभी-कभी परमेश्वर कमज़ोरियों, निपुणताओं या योग्यताओं की कमी और लोगों में आवश्यकताों को लेता है और फिर उन्हें एक काम के लिए अलौकिक रूप से अभिषेक देता है।

पवित्र अभिषेक के तेल के संघटकों पर ध्यान देना भी दिलचस्पी की बात है। पवित्र अभिषेक का तेल सबसे उत्तम मसालों से बना हुआ था (निर्गमन 30:23-25)। ये उत्तम मसाले थे: गन्धरस, दालचीनी, अगर, तज और जैतून का तेल। अभिषेक के तेल में कुछ भी घटिया या पतित नहीं था। यह तथ्य बताता है कि परमेश्वर अपने अगुवों को उनकी सेवा में केवल उत्तम अनुग्रह ही देना चाहता है। इस अभिषेक को पाने के लिए, अगुवे को उसका समय और शक्ति परमेश्वर के आत्मा की अच्छी चीजों को न कि संसार की चीजों को देना चाहिए। परमेश्वर उसके हर अगुवे को अभिषेक करेगा। परन्तु वह अगुवे के उत्तम वरदानों और योग्यताओं को अभिषेक करना चाहता है, और वह शैतान के राज्य का कुछ भी अभिषेक नहीं करेगा।

अभिषेक के तेल की विशेषताएँ

अभिषेक के तेल का वर्णन करने के लिए बाइबल नीचे दिए शब्द उपयोग करती है:

= कूटकर (निर्गमन 29:40)
पुराने नियम में अभिषेक का तेल जैतून में से कूट कर निकाला जाता था। परमेश्वर के अगुवे में पवित्र आत्मा का अभिषेक परमेश्वर के कठोर और गहरे व्यवहार में से आता है (जो उसके जीवन में पवित्र आत्मा के जीवन को स्वतन्त्र करता है)।

= टटके (ताज़ा) (भजन 92:10)
अभिषेक के तेल को उपयोग के लिए ताज़ा और नया होना होता था। कोई भी अगुवा परमेश्वर की सेवा के लिए पूर्व अभिषेक पर निर्भर नहीं रह सकता है। हर अगुवे को प्रतिदिन नया अभिषेक चाहिए होता है।

= पवित्र (निर्गमन 30:25, 31-32; भजन 89:20)

अभिषेक का तेल पवित्र था। पवित्र आत्मा एक अगुवे के जीवन में उसे पवित्र बनाने के लिए आता है, परन्तु वह उसमें से दूसरों तक तब ही पहुँचेगा जब वह पवित्रता को गले लगाता है।

= सुगन्धित (निर्गमन 30:25)
पवित्र अभिषेक का तेल एक सुगन्धित मिश्रण था। पवित्र आत्मा जब एक अगुवे के जीवन में कार्य करता है तो परमेश्वर के लिए एक सुगन्धित इत्र निकालता है।

= मिलाना (निर्गमन 30:25)
पवित्र अभिषेक का तेल मसालों का मिश्रण था। एक अगुवे के जीवन में पवित्र आत्मा का जीवन विभिन्न आत्मिक सिद्धान्तों और अनुभवों के एक मिश्रण में से विकसित होगा और व्यक्त होगा।

= हाथ से बनाना (निर्गमन 30:25)
पवित्र अभिषेक का काम हाथ की कारीगरी था। एक अगुवे के जीवन में पवित्र आत्मा उसे परमेश्वर की सिद्ध इच्छा में ढालने के लिए कार्य करेगा।

= जैतून (निर्गमन 27:20; 30:24)
पवित्र अभिषक का तेल जैतून को मसलकर करके निकाला जाता था। एक अगुवे के जीवन में पवित्र आत्मा का अभिषेक उसके जीवन में पवित्र आत्मा का फल विकसित करने के लिए (गलातियों 5:21-22), और उस फल के उत्तर में आता है।

= निर्मल (निर्गमन 27:20; 1 राजा 5:11)
पवित्र अभिषेक का तेल निर्मल था। पवित्र आत्मा एक अगुवे के जीवन में से तब ही उमड़ेगा जब वह प्रभु के सामने शुद्ध है (नैतिक, भावात्मिक और आत्मिक रूप से)।

= अभिषिक्त (निर्गमन 37:29)
पवित्र तेल को कुछ सेवाओं को अभिषेक करने के लिए अलग रखा गया था। हर अगुवे को आत्मा के परख के सामर्थ्य के साथ सहयोग देने के लिए कहा गया है, ताकि उसे मसीह की देह में कुछ सेवाओं को नियुक्त और अभिषेक करने के लिए इस्तेमाल किया जाए।

= बहुमूल्य (नीतिवचन 21:20)
अभिषेक का तेल बहुत बहुमूल्य था। हर अगुवे को उसके जीवन में पवित्र आत्मा के बहुमूल्य अभिषेक की देखभाल करनी और रक्षा करनी चाहिए, और उसे इसे उसकी सेवा में सबसे बहुमूल्य सम्पत्ति समझना चाहिए।

= निर्धारित (यहेजकेल 45:13-14)
अभिषेक के तेल को परमेश्वर ने इस्राएल की कुछ भेंटों में उपयोग के लिए निर्धारित किया हुआ था। पवित्र आत्मा उस मात्रा के अनुसार जो अभिषेक वह देता है बलिदान के विभिन्न स्तरों की माँग करेगा।

= उत्तमता (आमोस 6:6; निर्गमन 30:23; गिनती 18:12)

अभिषेक के तेल में इस्राएल के सबसे उत्तम तेलों को उपयोग किया गया था। हर अगुवे को यह एहसास होना चाहिए कि उसके जीवन में से पवित्र आत्मा के काम की उत्तमता काम की मात्रा से अधिक महत्त्व की है।

= कीमती (मरकुस 14:3)
अभिषेक के तेल में कीमती संघटक लगे हुए थे। हर अगुवे को पता होना चाहिए कि अभिषेक के हर नए अनुभव के लिए जिसकी वह चाह रखता है, उसे अपनी कीमती चीजों को परमेश्वर को देना होगा। अगुवे के लिए अभिषेक की कुछ कीमत होती है। इसके लिए यीशु मसीह को उसके जीवन की कीमत देनी पड़ी थी।

पवित्र आत्मा के अभिषेक के लिए आवश्यकताएँ

इस्राएल में तेल, बारिश या मन्दिर कलीसिया के लिए पवित्र आत्मा के अभिषेक के भविष्यसूचक बन गए हैं। स्वाभावित आत्मिक की ओर संकेत करता है।

पवित्र आत्मा का अभिषेक जैसे यह एक मसीही अगुवे पर लागू होता है, इन चीजों पर निर्भर है:

एक अगुवा परमेश्वर के वचन का पालन करता और उसके लोगों को सिखाता है (व्यवस्थाविवरण 7:12-13 और 11:13-14 और 28:1-68)

एक अगुवा पवित्र आत्मा के उमड़ में प्रवेश करता है (व्यवस्थाविवरण 11:13-14; योएल 2:23-24)।

एक अगुवा प्रभु के भवन, कलीसिया को बनाता है (हाग्गै 1:7-11)।

एक अगुवा पहचानता है कि उसके अभिषेक और समृद्धि का स्रोत वह खुद नहीं परन्तु परमेश्वर है (होशे 2:8-9)।

एक अगुवा अपने आत्मिक अभिषेक और समृद्धि को प्रभु के लिए, न कि शैतान के लिए उपयोग करता है (होशे 2:8-9)।

एक अगुवा परमेश्वर से अधिक अपने आत्मिक अभिषेक और समृद्धि को महिमा नहीं देता है (होशे 2:8-9)।

एक अगुवा प्रभु के भवन कलीसिया के निमार्ण के लिए अपने आपको स्वेच्छा से देता है और लोगों को भी ऐसा करना सिखाता है (निर्गमन 35:2-29)।

एक अगुवा अभिषेक की अपने जीवन में और उसके लोगों के जीवनों में कीमत जानता और रखवाली करता है (गिनती 4:9, 16; नीतिवचन 21:20)।

अभिषेक से मिलनेवाले फल

परमेश्वर ने उनको क्या प्रतिज्ञाएँ दी हैं जिन्होंने पवित्र आत्मा का अभिषेक पाया है? आत्मा के अभिषेक का पालन करने के कुछ अच्छे प्रभाव क्या हैं? नीचे दिए हर संदर्भ के वचनों को अगुवा अतिरिक्त अध्ययन के लिए उपयोग कर सकता है।

<u>पवित्र आत्मा के अभिषेक के कुछ मुख्य परिणाम हैं:</u>

- परमेश्वर की सहायता (भजन 89:19)।
- प्रतिष्ठा और अधिकार (भजन 89:19, 24, 27, 29)।
- प्रभु का सेवक कहलाना (भजन 89:20)।
- परमेश्वर का हाथ आपके साथ होना (भजन 89:21)।
- परमेश्वर की ताकत (भजन 89:21)।
- धोखे से स्वतन्त्रता (भजन 89:22)।
- दुष्टों के सताव से स्वतन्त्रता (भजन 89:22)।
- अपने शत्रुओं पर परमेश्वर की विजय (भजन 89:23)।
- परमेश्वर की विश्वासयोग्यता और करुणा (भजन 89:24-28)।
- देशों पर प्रभाव (भजन 89:25 में 'समुद्र' और 'महानद')।
- एक पिता-पुत्र का सम्बंध (भजन 89:26)।
- परमेश्वर के उद्धार का सामर्थ्य (भजन 89:26)।
- परमेश्वर की अनन्त वाचा में भागी होना (भजन 89:28, 30-37)।
- पहलौठे की कलीसिया में सदस्यता (भजन 89:27)।
- अपनी पीढ़ियों का सदा के लिए स्थापित होना (भजन 89:27)।
- चमकता मुख (भजन 104:15)।
- बन्धन के जूए का तोड़ा जाना (यशायाह 10:27)।
- शरीर की चंगाई (मरकुस 6:13)।
- सम्पूर्ण ग्रह कलीसिया भी इत्र की सुगन्ध से भर जाती है (यूहन्ना 12:1-3)।
- आत्मिक दृष्टि और अन्तर्दृष्टि (प्रकाशित. 3:18)।
- परमेश्वर का सामर्थ्य (प्रेरितों 10:38)।
- आगे बढ़ने और भला करने की योग्यता (प्रेरितों 10:38)।
- जो शैतान के सताए हुए हैं उनकी चंगाई करने की योग्यता (प्रेरितों 10:38)।
- परमेश्वर की उपस्थिति (प्रेरितों 10:38)।
- सबसे अधिक आनन्द (इब्रानियों 1:9)।

- छल का पर्दापाश करके सत्य में बने रहना (1 यूहन्ना 2:26-29)।
- आरम्भ से लेकर शक्ति और सामर्थ्य में चलते रहना (1 शमूएल 16:13)।
- अपने परिवार में पहचान (1 शमूएल 16:13)।
- भविष्यद्वाणी की आत्मा (1 शमूएल 19:18-24)।
- भविष्यद्वक्ता का पद (2 शमूएल 23:1-7)।
- आत्मिक फलदायकता (गिनती 17:1-11)।

आज कलीसिया में सबसे अधिक आवश्यकताओं में से अभिषिक्त सामर्थ्य और उपस्थिति की आवश्यकता हैं। कई कलीसियाओं और अगुवों के उनके कार्यो में अभिषेक की कमी है। परिणामस्वरूप, अगुवों को ऐसी जीवनशैली में प्रवेश करना है जो परमेश्वर के सामर्थ्य के अभिषेक में ले जाता है और उनके लोगों को भी वैसा ही सिखाना है। केवल इस तरीके से ही हम मनुष्यों की उस फसल को ला पाएँगी जिसकी परमेश्वर इच्छा रखता है।

सेवकपन, अगुवों के जीवन भर अनुसरण करने के लिए एक नमूना

सेवकपन के विचार को बेहतर समझने के लिए, इसे इसके प्रारंभिक स्थापन में अध्ययन करना अच्छा होगा, विशेषकर इसे नए नियम में कैसे उपयोग किया गया था और इसके यूनानी अर्थ। यूनानी शब्द "diakoneo" में एक ऐसे दास का संकेत है जो दूसरों के लिए उसका जीवन देता है, यह प्रतीकात्मक रूप से दूसरे की छोटी से छोटी आवश्यकता की सेवा में हो सकता है, या अक्षरक्षः, जैसे उदाहरण के लिए कोई पोत में चप्पू चलाता है जो काम करते-करते मर सकता है।

यूनानी विचार में, इस प्रकार की सेवा शर्मनाक थी। यूनानी नागरिक की पहली सेवा अपने लिए होती थी, उत्तमता के लिए अपनी अन्तःशक्ति को प्राप्त करना (क्या इन में से कोई शब्द आज की हमारी संस्कृति में परिचित लगते हैं ?)। अपनी इच्छा दूसरे के अधीन करने के लिए विवश करना, या अपना समय और प्रयास दूसरों के लिए देना, एक यूनानी के लिए नापसन्द और अपमानजनक था।

नया नियम, मसीही सेवा के स्तर के रूप में, सेवक के बारे में मसीह के संदेश को इन्हीं शब्दों को इस्तेमाल करके समझाता है, जो यूनानियों के लिए कितना अरुचिकर है। यीशु ने खुद इसका उदाहरण पेश किया था। मसीह में, सेवा महानता का महामार्ग है। हम मसीह और कलीसिया को देकर, न कि छीनकर, अपनी पूरी सम्भावना को प्राप्त करते हैं।

एक प्रेम-सेवक ऐसा व्यक्ति था जिसने अपना जीवन दूसरे की सेवा में देने का फैसला किया था, किसी बन्धन के कारण नहीं, परन्तु सेवा करते रहने की इच्छा से। प्रेम-सेवक के कान की लोलकी में, उसकी स्थिति की छाप के रूप में, एक छेद किया गया जाता था। प्रेरित पौलुस उसके अधिकाँश पत्रों में अपने आपको मसीह का एक प्रेम-सेवक या एक दास बताता है।

सेवक / देनेवाले मसीह में, हम एक ऐसा सेवकपन देखते हैं जिसने हमारे लिए, एक स्वतन्त्र और बिना-विवश फैसले में, अपना जीवन त्याग दिया और अपने से पहले हमारा भला देखा। हमारी छुड़ौती के रूप में, मसीह ने स्वेच्छा से, सम्पूण रूप से और बलिदान द्वारा पाप के गुलामों को छुड़ाने के लिए सबकुछ जो आवश्यक था दे दिया। मसीह ने हमारे लिए अपनी शिक्षाओं को अपने जीवन द्वारा चित्रित किया। उसने दिखाया कि महानता खोजने के लिए एक लक्ष्य नहीं है, परन्तु दूसरों की सेवा करना सीखने का एक उपोत्पादन है। महानता को प्राप्त करने के लिए, हमे पहले इसके विषय में अपने विचार त्यागने हैं।

सच्ची सेवा में बाधाएँ

1) मनुष्य के तरीकों को परमेश्वर के तरीकों से उलझाना। बाइबल हमें स्पष्ट सिखाती है कि परमेश्वर और कलीसिया की सेवा करना सीखने की माँग है कि हम मनुष्य की सहज-बुद्धि को जीतें। यह हमें सिखाती है कि इससे पहले कि फल लाएँ, हमें एक गेहूँ के दाने के समान भूमि पर गिरकर मरने की योजना बनानी है (यूहन्ना 12:24-25)। यह हमें बताती है कि परमेश्वर के विचार और परमेश्वर के तरीके हमारी समझ से परे हैं (यशायाह 55:10-11)। यह हमें बताती है कि यदि हमें परमेश्वर की सेवा वैसे करनी है जैसा वह योग्य है, तो हमें संसार के सृदश होने का सामना करना है, और अपने सोच-विचारों में परमेश्वर का नयापन लाना है (रोमियों 12:1-2)। नीचे दिया गया चार्ट, जहाँ तक सेवा का सम्बंध है, स्वाभाविक मनुष्य और आत्मिक मनुष्य में संघर्ष चित्रित करता है।

महानता के लिए मनुष्य का तरीका	**महानता के लिए परमेश्वर का तरीका**
अधिकार पर ध्यान	अधीनता पर ध्यान
स्वतन्त्रता पर जोर	जिम्मेवारी पर जोर
लाभ की चिन्ता	देने की चिन्ता
तुरन्त पूर्ति की इच्छा	टिकाऊ प्राप्ति की इच्छा
मनुष्यों की प्रशंसा की चाह	परमेश्वर की पुष्टि की चाह
सेवा करवाने की अभिलाषा	दूसरों की सेवा करने की अभिलाषा
आत्म-तृप्ति की चाह	संयम की चाह
आगे बढ़ने की आवश्यकता	धैर्य की चाह
लोगों की अगुआई में प्रयत्न	परमेश्वर के पीछे चलने में प्रयत्न
प्रतियोगिता की इच्छा	सहयोग की इच्छा

2) आत्म-केन्द्रित जीवन। "विरोध या झूठी बड़ाई के लिए कुछ न करो, पर दीनता से एक दूसरे को अपने से अच्छा समझो। हर एक अपने ही हित की नहीं, वरन् दूसरों के हित की भी चिन्ता करे।" (फिलिप्पियों 2:3-4)। इसका अर्थ है स्वार्थी संघर्ष या तुच्छ अभिलाषा के अभिप्रायों से काम करना बन्द करो।

"मैं-पीढ़ी" के लिए यह कितना विदेशी विचार है! हमारी संस्कृति में आज कुछ सबसे लोकप्रिय बुद्धि है: अपना घोंसला बनाओ और पहले स्थान की चिन्ता करो। विज्ञापन ने प्रतिशोध के साथ इस आत्मा को पकड़ लिया है। आपको बताया जाता है: "अपने तरीके से करो", कि आप: "अपना भला करो", कि "आपका श्रेय आपको जाता है", कि "आज आपको छुट्टि चाहिए" और आप को "अपने आपको प्रसन्न करना चाहिए"।

यह वास्तव में कुछ भी नया नहीं है जैसे विभिन्न संस्कृतियों में से शक्तिशाली प्रभाव दिखाते हैं:

संस्कृति	**वक्तव्य**
यूनानी	बुद्धिमान बनो, अपने आप को जानो
रोम	शक्तिशाली बनो, अपने आपको अनुशासित करो
एपिकूरी	एंद्रिय बनो, मजा करो
शिक्षा	उपायकुशल बनो, अपना विस्तार करो
मनोवैज्ञान	आत्मविश्वासी बनो, अपना दावा करो
भौतिकवाद	तृप्त हो जाओ, अपने को प्रसन्न करो
मानववाद	योग्य बनो, अपने में विश्वास रखो

परन्तु यीशु एक बिलकुल भिन्न कार्यक्रम के साथ आया। उसने कहा, "सेवक बनो, अपने आप को दो और अपना इन्कार करो।" सच्ची मसीहित कभी भी लोकप्रिय नहीं हुई है, हालाँकि सच्चे मसीहियों ने कभी-कभार लोगों का अनुग्रह पाया है। (परन्तु, यह अधिक देर तक नहीं चलता है)। नया नियम तेरह स्थानों पर इन्कार के लिए यूनानी शब्द 'aparneomai' उपयोग करता है। इस शब्द का अर्थ है: पूरी तरह से, परित्याग करने तक, इन्कार करना, परहेज करना, त्यागना।

यीशु ने कहा, "यदि कोई मेरे पीछे आना चाहे, तो अपने आप का इन्कार करे और अपना क्रूस उठाए, और मेरे पीछे हो ले।" (मत्ती 16:24)। वह हमारी इच्छा की मृत्यु की बात करता है ताकि हम परमेश्वर की इच्छा पूरी करें। यह स्वयं की मृत्यु है। हमें यह भी बताया गया है कि, "तुम तो मर गए, और तुम्हारा जीवन मसीह के साथ परमेश्वर में छिपा हुआ है" (कुलुस्सियों 3:3)। और "तुम अपने नहीं हो क्योंकि दाम देकर मोल लिए गए हो" (1 कुरिन्थियों 6:19-20)।

स्पष्ट है, मसीही सेवा का तरीका आधुनिक संस्कृति के "स्वतन्त्रता" के तरीके के बिलकुल उलटा है। सच्ची मसीही सेवा न केवल अवांछनीय है बल्कि वास्तव में "मैं-पीढ़ी" के लिए असम्भव है। सच्ची सेवा के लिए एक मजबूत आत्म-प्रतिमा और असली आत्मा-ज्ञान की आवश्यकता है, और दोनों की कमी है। जब यीशु ने अपने चेलों के पैर धोए थे (यूहन्ना 13:1-16) तो उसने उन्हें दिखाया था कि सच्चे सेवक बनने के लिए उन्हें किस प्रकार दृढ़ता के साथ आत्म-केन्द्रित भावना को जीतने का प्रयत्न करना होगा।

3) "शीघ्र-इलाज" मनोवृत्ति। यह "शीघ्र-इलाज" रवैया कलीसिया और शैतान के बीच आत्मिक युद्ध के लिए हानिकारक है, क्योंकि इस युद्ध का परिणाम अनन्त है। मसीह ने अपने चेलों को बताया था कि वह सेवा करने आया है और अपनी इस सेवा में वह "बहुतों की छुड़ौती के लिए" (मरकुस 10:45) अन्तिम कीमत अपना प्राण देगा।

बलिदान का सिद्धान्त सदा से परमेश्वर का तरीका रहा है, मनुष्य का नहीं।

समस्याओं और दबावों से निपटना

मसीहियों के रूप में, हम समस्याओं की परिभाषा क्या बताएँ?

शब्दकोष समस्या शब्द की परिभाषा इस प्रकार बताता है: एक संदेहास्पद या कठिन प्रश्न या चीज जो समझने में कठिन है। समस्या के लिए यूनानी शब्द: 'proballein'' ('pro' अर्थ है: आगे और 'ballein' का अर्थ है: फेंकना) हमें अधिक दिलचस्प परिभाषा देता है। इसका अक्षरक्षः अर्थ है: फेंकी गई या आगे रखी गई चीज। परमेश्वर चाहता है कि हम मसीही समस्याओं को यूनानी परिभाषा के प्रकाश में देखें। वह चाहता है हम उन्हें सकारात्मक चीजों के रूप में देखें। वे उत्तरों के द्वार हैं! वे ऐसी चीजें हैं जो हमें, एक ही जगह खड़े रहने के बजाय, आगे बढ़ाती हैं। वे कठिन हो सकती हैं और हमें सम्भव है उनके कारण तकलीफ भी हो परन्तु उनको जीतने या उनसे सीखने के बाद हम परमेश्वर में आगे बढ़ गए होंगे। असल में, समस्याओं के बिना हम परमेश्वर में कहीं नहीं बढ़ पाएँगे।

मसीहियों के लिए समस्याओं के तीन स्रोत

(1) **परमेश्वर**

मसीही अकसर समस्याओं का आरोप शत्रु पर लगाते हैं, जब वास्तव में समस्या का स्रोत परमेश्वर है। वह हमें उसमें बढ़ने और उसके पुत्र, यीशु जैसा होने का अवसर दे रहा है। परमेश्वर ने हमें उसकी महिमा के लिए, न कि हमारे सुख के लिए चुना है। हमें परमेश्वर पर भरोसा करना और उस में अपना विश्वास डालना चाहिए, चाहे हम कैसी भी समस्याएँ या कठिनाइयाँ क्यों न सह रहे हों (रोमियों 8:28-30)।

(2) **शरीर और प्राण**

हम विश्वासियों में एक युद्ध चल रहा है, हमारे पुराने सोच-विचार और काम करने के तरीके और वह जो परमेश्वर ने हमारे जीवनों में किया है और कर रहा है के बीच। इस क्षेत्र में विजय प्राप्त करने के लिए हमें अपने शरीर और प्राण परमेश्वर के हाथों में देना चाहिए। इसमें आवश्यकता होती है: संयम, आत्म-ज्ञान और एक इच्छा की, जो परमेश्वर को सिंहासन पर रखता है (1 कुरिन्थियों 9:24-27; रोमयों 12:1-2; इफिसियों 4:22-24। इस क्षेत्र में विजयी जीवन जीने के लिए हमें:

- कभी भी परमेश्वर को नहीं कहना है वह क्या करे बल्कि उसकी आज्ञा का पालन करना है।
- न केवल विश्वास करना है कि परमेश्वर का वचन अचूक है। परन्तु इस का लाभ उठाना है। हमें हर तात्कालिक शब्द को जो हमें परमेश्वर से मिलता है परमेश्वर के स्थापित वचन से जाँचना चाहिए जैसा यह बाइबल में प्रकट है।
- हमें पता होना चाहिए हम मसीह में कौन हैं और उसका लाभ उठाना चाहिए, परन्तु एक झूठे विजयाभास में नहीं जीना है जो इन्कार करता है कि मसीहियों को समस्याएँ और तकलीफें होती हैं।
- कभी भी दूसरे लोगों को हमारे लिए सोचने या फैसले नहीं करने देना है, जब इन्हें हम खुद कर सकते हैं। अपने मनों को न्यूट्रल में डालना, और दूसरे लोगों के पीछे-पीछे चलते रहना खतरनाक है और हमें कच्चे, कमज़ोर मसीही बनाए रखेगा।

(3) **विरोध**

कुछ समस्याएँ शत्रु से आती हैं। जब हम परमेश्वर की इच्छा पूरी करना चाहते हैं और कुछ हमारा विरोध करता है तो हमें सामना उसका करना है और युद्ध करना है। इस युद्ध में शैतान और उसकी दुष्टात्माएँ मुख्य लक्ष्य हैं और यह विश्वास करना मूर्खता है कि वह हम में रुचि नहीं रखता है (अय्यूब 1 और 2; लूका 22:31-34)। शैतान हमें समस्याओं से कुचलने का प्रयास करेगा। परन्तु, हमें याद रखना है कि परमेश्वर नियंत्रण में है और वह हमें बोझ से दबने नहीं देगा। यदि हम उसकी ओर देखते रहें और अपने आप को उसके अधीन करें। जब तक हम वैसे जीएँगे जैसा परमेश्वर चाहता है तो हमें शत्रु से डरने की आवश्यकता नहीं होगी (याकूब 4:7; 1 पतरस 5:8-10)।

बारह कारण कि क्यों समस्याएं सकारात्मक चीजें हैं:

- वे परमेश्वर में हमारी परिपक्वता की गहराई प्रकट करती हैं। वे हमें बताती हैं कि हम परमेश्वर में कहाँ हैं और हमें कहाँ सुधार लाना चाहिए।

- वे हमें जीवन का असली मूल्य दिखाती हैं। जब सताव और कठिनाइयाँ आती हैं तब यह पता चलने में अधिक समय नहीं लगता कि क्या वास्तव में महत्त्वपूर्ण है और मात्र दिखावा है।

- वे आत्म-ज्ञान उत्पन्न करती हैं (अर्थात् हमें दिखाती हैं कि हम वास्तव में कौन हैं) और हमारे चरित्र की ताकतों और कमज़ोरियों को प्रकट करती हैं (धातु की जाँच करने जैसा)।

- वे आत्मिक अध्यवसाय विकसित करती हैं। यदि हम एक समस्या हल करना या पार करना चाहते हैं तो हमें लगे रहना होगा और हिम्मत नहीं हारनी होगी। बहुत सारे मसीही जीतने से पहले हार मान लेते हैं।

- वे दूसरे लोगों और उनकी आवश्यकताओं की ओर हमारी संवेदनशीलता और उनके साथ सहानुभूति बनाती हैं क्योंकि हम अनुभव से सीखते हैं कि उनके स्थान पर होना कैसा होता है।

- वे हमारे वरदानों और योग्यताओं को शुद्ध करती और चमकाती हैं। समस्याओं का दबाव, जब हम उन्हें परमेश्वर के तरीके से और परमेश्वर के सामर्थ्य में सम्भालते हैं तो वे खुरदरे किनारों को मुलायम करतीं और हमारे जीवनों से कचड़ा निकालती हैं।

- वे अपने बजाय परमेश्वर में हमारे विश्वास को बनाती हैं। हम परमेश्वर में भरोसा करना सीखते हैं जो सदा विश्वासयोग्य रहता है।

- वे परमेश्वर में हमारी क्षमता को बड़ा करतीं और उसमें हमारे विश्वास को बढ़ाती हैं क्योंकि वे हमें खींचतीं और हमारे अन्दर आवश्यकता उत्पन्न करतीं और हमारे विश्वास को बढ़ाती हैं।

- वे हमारी सुरक्षाओं को परखती हैं। वे हमें सिखाती हैं कि हमें परमेश्वर पर निर्भर होना है और कि हम उस पर भरोसा कर सकते हैं जो अटल, स्थाई रूप से स्थिर है।

- वे हमें उत्तेजित करतीं और आत्मसंतोष को रोकती हैं। समस्याएं हमारे पीछे जलते हुए कुरेदनी के समान हैं।

- वे रचनात्मकता को समर्थ करतीं और नए विचारों को सोचने और विकसित करने में हमारी सहायता करती हैं। वे हम ने सदा ऐसा ही किया है संलक्षण को चुनौती देने और चीजों को नए और अधिक प्रभावशाली तरीके से करने में हमें विवश करती हैं।

- वे बुद्धि विकसित करती हैं क्योंकि तुरन्त अपनी समस्याओं की ओर प्रतिक्रिया दिखाने के बजाय हम सीखते हैं यदि हम उसकी बाट जोहें तो परमेश्वर हमारी स्थिति में क्या करता।

परमेश्वर चाहता है हम बालिग हो जाएँ

परमेश्वर हमारा पिता है और हम उसके बच्चे हैं। हमारे मसीही जीवन के आरम्भ में, वह हमारी रक्षा करता और हमें अपने हाथ से खिलाता है क्योंकि वह जानता है कि हमें इसकी आवश्यकता है। परन्तु, वह नहीं चाहता कि हम अपरिपक्वता की इस स्थिति में रहें (इब्रानियों 5:11-14)। वह चाहता है हम बड़े हो जाएँ! इसलिए, वह हमारे सामने चुनौतियाँ और समस्याएँ लाता है जो उसमें हमारी स्थिति के अनुसार हैं और वह हमें अनुभव के द्वारा सीखने का स्थान देता है। वह हमें फैसले और गलतियाँ भी करने देता है। निस्संदेह, वह हमें शिक्षा देने, सुधान लाने और ताड़ना देने का प्रयत्न करता है जिससे हम सीमाओं को जाने और सही मार्ग पर बने रहें और गलत चीज करने से रुकें या ऐसा कुछ जो हमारे लिए हानिकारक हो सकता है परन्तु वह हमें समस्याओं से बचाता नहीं है।

"वह (परमेश्वर) तो हमारे लाभ के लिए (ताड़ना) करता है, कि हम भी उसकी पवित्रता के भागी हो जाएँ। वर्तमान में हर प्रकार की ताड़ना आनन्द की नहीं, पर शोक ही की बात दिखाई पड़ती है; तौभी जो उसको सहते-सहते पक्के हो गए हैं, बाद में उन्हें चैन के साथ धर्म का प्रतिफल मिलता है। इसलिए, ढीले हाथों और निर्बल घुटनों को सीधे करो, और अपने पाँवों के लिए सीधे मार्ग बनाओ कि लँगड़ा भटक न जाए पर भला चंगा हो जाए। (इब्रानियों 12:10-13)

याद रहे कि परमेश्वर हमें समस्याओं से कभी भी दबाएगा नहीं। वह हमें हमसे अधिक अच्छी तरह जानता है और वह उन्ही समस्याओं को हमारे मार्ग में आने देगा जिन्हें हम सम्भाल सकेंगे। जितनी बड़ी समस्याएं वह हमें देता है उतना बड़ा विश्वास और भरोसा उसे हमारे ऊपर है। परमेश्वर को परिपक्व मसीही चाहिए जो न केवल जानते हैं परमेश्वर उन्हें किसी स्थिति में क्या करना चाहेगा परन्तु वास्तव में करते भी हैं! यदि उसने हमारी हर समस्या से रक्षा की और कोई भी कठिनाई आने से पहले हस्तक्षेप किया तो हम कभी भी उसमें परिपक्व नहीं हो पाएँगे। वह चाहता है कि हम न केवल उसके सत्य को जानें परन्तु उसका लाभ भी पाएँ।

इसलिए, हमें पता होना चाहिए कि सत्य अनुभव द्वारा कार्य करता है। परमेश्वर हमें उसकी बनी-बनाई समस्याओं को भेज कर यह अवसर देता है और फिर अनुभव द्वारा सीखने का स्थान देता है।

परमेश्वर की समस्याओं से भागने का परिणाम कच्चे मसीही होता है

कई मसीही आजकल परमेश्वर में बच्चे बने रहते हैं क्योंकि वे उन समस्याओं या जाँचों को लेने से इन्कार करते हैं जिन्हें परमेश्वर ने उनके लिए बनाया है ताकि उनकी बढ़त हो सके। जब समस्याएँ आती हैं तो ये लोग:

- परमेश्वर से नाराज हो जाते हैं और माँग करते हैं कि वह उनसे समस्या हटा ले। ये लोग सब समय शिकायत करते रहते हैं।
- समस्या को जीतने के बजाय उसे सहते रहते हैं। ये लोग बहुत भाग्यवादी होते हैं और कुछ भी झेल लेते हैं क्योंकि वे विश्वास करते हैं ये उनके लिए परमेश्वर की इच्छा है।
- उदास हो जाते, झल्लाहट प्रकट करते और परमेश्वर से याचना करते हैं कि वह समस्या को उनसे ले ले। ये लोग सब समय कराहते रहते हैं।
- समस्या से निपटने और उसे पार करने के बजाय शैतान को दोष देते और उसके साथ युद्ध में लग जाते हैं। ये लोग उलझन में, निराश और फिर मोह-भंग हो जाते हैं क्योंकि उनका युद्ध अकसर काम नहीं करता है।

सच्चाई तो यह है कि एक समस्या अकसर परमेश्वर का उसके लोगों की प्रार्थना का उत्तर होता है। वे प्रार्थना करते हैं कि परमेश्वर उन्हें बदले या उन्हें वह अधिक परिपक्व बनाए और फिर भी जब वह समस्या के साथ उन्हें उत्तर देता है तो उन्हें यह नहीं चाहिए। यह अकसर इस लिए है क्योंकि वे पहले से जानते हैं परमेश्वर को कैसे कार्य करना चाहिए या वे चाहते हैं कि वह उन्हें चमत्कार द्वारा बदल दे। परमेश्वर एक प्रेमी परमेश्वर है, और जिस समस्या को उसने व्यक्ति के लिए बनाया है कुछ समय के लिए रहने देगा, यदि वह व्यक्ति इसकी ओर नकारात्मक तरीके से प्रतिक्रिया दिखाता है तब भी, क्योंकि परमेश्वर जानता है कि उसके लिए यह सबसे अच्छा विकल्प है। परन्तु, यदि वे परमेश्वर से समस्या को निकालने में अड़े रहते हैं या यदि वे गलत तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं कि यह उनके मसीही जीवन को हानि पहुँचा सकता है तो परमेश्वर इसे हटा देगा। वह अकसर ऐसे लोगों को कुछ समय के लिए उनकी इच्छा पर छोड़ देता है, परन्तु आखिर में वह उन्हें वापस उसी समस्या में ले जाएगा. या उसके समान दूसरी में, इस आशा के साथ कि इच्छित लक्ष्य इस समय पूरा होगा। दुख की बात यह है कि कई मसीही परमेश्वर में बढ़ते रहने में असफल रहे हैं, क्योंकि वे उन समस्याओं का सामना करने और उन्हें हल करने में असफल रहे हैं जिन्हें परमेश्वर ने उनके लिए बनाया है।

मसीही अगुवों को परमेश्वर ने अधिक कठिन समस्याओं से निपटने के लिए चुना है। वह ही उन्हें ये समस्याएँ देता है क्योंकि वह जानता है कि यदि वे उसकी ओर देखते रहेंगे तो वे उनसे निपट सकेंगे। दबाव में, एक अगुवा का परमेश्वर के साथ सम्बंध प्रकट होना चाहिए। जब चलना कठिन होता है तब आपके कार्य प्रकट करेंगे आपने अपना प्रेम और भरोसा वास्तव में कहाँ डाला है।

<u>मसीहियों के लिए समस्याओं के दस सामान्य क्षेत्र:</u>

परमेश्वर हमारे जीवन में कई प्रकार की समस्याएँ लाता है ताकि हम उसमें परिपक्व हो सकें। नीचे दिए प्रश्नों का प्रार्थनापूर्वक उत्तर दो। वे आपका पता लगाने में सहायता करेंगे कि आप परमेश्वर में कहाँ हैं।

(1) **रुपया-पैसा**

- क्या आप रुपये-पैसे के अच्छे भण्डारी हो जिसे परमेश्वर ने आपके दिया है ?
- क्या आप रुपये-पैसों के मामले में विश्वास से जीते हो ?
- क्या आप अपनी आवश्यकताओं के लिए परमेश्वर की ओर देखते हो या संसार की ओर देखते हो ?
- क्या आप अपने रुपये-पैसों या अपनी कलीसिया के पैसों के बर्ताव में ईमानदार हो ?
- क्या आप जानते हो कि आप अपने पैसों के साथ वही कर रहे हो जो परमेश्वर चाहता है आप करें ?
- क्या आप प्रचार के निमंत्रण इसलिए स्वीकार हो क्योंकि वे अच्छा पैसा देते हैं या परमेश्वर ने कहा है ?
- प्रभु की सेवा करने की आपकी प्रेरणा में पैसा क्या महत्त्व रखा है ?

(2) **सैक्स**

- क्या आपका प्रतिजाति के साथ व्यवहार वैसा ही है जैसा परमेश्वर चाहता है (1 तीमुथियस 5:1-2) ?
- क्या आप जब प्रतिजाति के साथ होते हो, विशेषकर जब उनके साथ अकेले होते हो, तो उचित सावधानी बरतते हो ?

- आप जो अपने मन में टीवी, रोडियो, पुस्तकों, मैगेज़ीनों, आदि द्वारा डालते हो सहायक है या हानिकारक ?

(3) **अधिकार**

- क्या आप अगुआई को एक हक या एक सौभाग्य मानते हो ?
- एक अगुवे के रूप में, क्या आप अपने आप को एक बॉस या एक सेवक के रूप में देखते हो ?
- क्या आप अपने आप को घमण्डी या दीन देखते हो ?

(4) **डर, चिन्ता और बेचैनी**

- क्या आपके जीवन में कोई ऐसे डर हैं जो आपको कष्ट देते हैं और जिन्हें आप जीत नहीं पा रहे हो ?
- क्या आप को पता है चिन्ता करना पाप है, क्योंकि तब आप परमेश्वर में भरोसा नहीं कर रहे और उसमें अपना विश्वास नहीं डाल रहे हो (मत्ती 6:25-34) ?
- क्या आपको पता है कि डर सम्भवत: शैतान का मसीहियों के विरुद्ध सबसे प्रभावशाली हथियार है ?
- क्या आप दूसरे लोगों को इतना प्रसन्न करना चाहते हो कि उन्हें "नहीं" नहीं कह पाते हो जब वे आपसे उनके लिए कुछ करने को कहते हैं, जब आपको पता भी है कि उस समय यह आपके लिए परमेश्वर की इच्छा नहीं है ?

(5) **निराशा, हतोत्साह और मोह-भंग**

- क्या आपको लगता है आपको भाग जाना चाहिए और निराशा, हतोत्साह और मोह-भंग के दबाव में दे देना चाहिए ?
- यह कैसे हो सकता है कि मसीही, जो परमेश्वर को जानते हैं, जिनका अन्धकार से उद्धार हुआ है और जिनके पास अनन्त जीवन है, इस प्रकार की चीजों के वश में हो सकते हैं ?
- ऐसी चीजों को अकसर शत्रु प्रोत्साहन देता है, तो आप उनके बारे में क्या कर सकते हो ?

(6) **प्रतियोगिता**

- क्या आप दूसरों के साथ अपनी तुलना करते हो या केवल परमेश्वर की ओर देखते हो और जो उसके आपको करने को कहा है उसमें लगे रहते हो ?
- क्या आप कलीसिया में दूसरे लोगों की सफलता को एक खतरे के रूप में देखते हो ?
- क्या आप दूसरे लोगों की सफलता में जैसे वे प्रभु के काम करते हैं आनन्द लेते हो ?

(7) **विश्वास की कमी**

- क्या आप परमेश्वर, उसके वचन और आपके लिए उसकी प्रतिज्ञाओं पर भरोसा करते हो, क्या आप प्राकृतिक परिस्थितियों को अधिक देखते और उन पर भरोसा करते हो, विशेष यदि वे उसके अनुसार नहीं लगतीं जो परमेश्वर ने कहा है ?
- क्या आपको लगता है आप अपनी शंकाओं को पूरी तरह जीत नहीं पाते हो ?

(8) **सम्बंध**

- क्या आपको गप-शप, निन्दा या गलतफहमियाँ अच्छी लगती हैं ?
- क्या आपके हृदय में अभी भी किसी के प्रति क्रोध है ?
- क्या आप दीन और क्षमाशील हैं ?
- आप झगड़ा और मनमुटाव के साथ कैसे निपटते हो - प्रेम के साथ या विरोध को दबाकर ?
- क्या आप परिवारिक समस्याओं को जीतने के लिए एक चुनौती के रूप में देखते हो ताकि आपकी और आपके परिवार की परिपक्वता में वृद्धि हो सके ?
- क्या आप सम्बंधों को कठिनाइयों के रूप में देखते हो जिन्हें सहना अवश्य है या क्या आप उन्हें आत्मा के फल और परमेश्वर के राज्य के सामान्य सिद्धान्त प्रकट करने के अवसर के रूप में देखते हो ?

(9) **आदतें**

- क्या उन्होंने आपको वश में कर रखा है या आपने उन्हें वश में किया हुआ है ?
- क्या परमेश्वर से बाहर ऐसा कोई कोई चीज है जिसे आप छोड़ नहीं पा रहे हैं ?

(10) **परिस्थितियाँ**

- क्या आप उन्हें परमेश्वर के सामर्थ्य में वश में करते हो या क्या आप उन्हें आपको और आपके जीवन को वश में करने देते हो ?
- क्या आप परमेश्वर को पूछने की तकलीफ करते हो कि वह क्या चाहता है आप अपनी परिस्थिति में करो ?
- क्या आपको लगता है कि परमेश्वर इतना बड़ा है कि बड़ी से बड़ी समस्या जो आपको सता रही है उससे निपट सके ?

पराजित करना

मसीही अगुवों के रूप में हमें सीखना है कि परमेश्वर के तरीके से कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना कैसे करें; हमें जीवन से निपटना आना और जो कुछ हमारे साथ होता है उसे परमेश्वर की महिमा के लिए उत्पादक बनाना आना चाहिए; हमें अपनी सीमाओं को पार करना आना चाहिए ताकि मसीह में परिपक्व हो सकें और हमें सफलता और असफलता दोनों सम्भालना आना चाहिए ताकि शैतान को हमारे जीवनों में घमण्ड द्वारा कोई अवसर न मिल सके। घमण्ड विश्वास को अनुमान में बदलता है और हमें अपने हक माँगने को उकसाता है; और जीवन का घमण्ड और पद हमारे काम और सेवा के अभिप्राय बन जाते हैं। हमारी सफलताओं को भी यीशु के क्रूस पर मरना अवश्य है।
"हम उसके द्वारा जिसने हम से प्रेम किया है, जयवन्त से भी बड़ कर हैं।" (रोमियों 8:37)
परमेश्वर के अगुवों के रूप में, हमें पता होना चाहिए हम परमेश्वर में कहाँ हैं। हमें पहचानने की आवश्यकता है हमें क्या प्रभावित करता है, किन क्षेत्रों में करता है, और हमें मसीह की विजयी सामर्थ्य को जानने की आवश्यकता है और कहाँ हमें अपनी प्रतिक्रियाओं को नकारात्मक से सकारात्मक में बदलना है जिससे हम उस क्षेत्र में बिना डर के कार्य कर सकें जहाँ परमेश्वर ने हमें बुलाया है। यह सकारात्मक अंगीकार नहीं है, जो इससे निपटने के बजाय अकसर उसे छिपाने के की कोशिश करता है जो हमारे जीवनों में है। आप अंगीकार करके विजय नहीं प्राप्त कर सकते हो। कई मसीही सच्चाई का सामना नहीं करना चाहते हैं, और इसलिए वे अति आत्मिक काल्पनिकता में जीते हैं, जो उन्हें परमेश्वर के लिए लगभग प्रभावहीन बना देता है। जीतने के बजाय, ये लोग ढोंग करते हैं कि उनकी समस्याएँ नहीं हैं। जब कुछ काम नहीं बनते तब यह अकसर अत्यधिक आत्म-दोष लाता है और उनके जीवन में स्वतन्त्रता और मैत्री की कमी बनी रहती है।
"यदि तुम लोग इस बात की प्रतीति न करो तो निश्चय तुम स्थिर नहीं रहोगे।" (यशायाह 7:9)
मसीही अगुवों के रूप में, हमें उनके लिए उदाहरण पेश करना है जो हमारे पीछे आते हैं। चाहे कुछ भी हमारे सामने आए, हमें स्थिर खड़े रहना है और इस प्रकार परमेश्वर, उसके मार्ग और उसके सामर्थ्य को जानना है कि कुछ भी हम पर हावी नहीं हो सकता है। हमें सिर होना है पूँछ नहीं और दूसरे लोगों को दिखाना है कि जयवन्त मसीही जीवन जीना सम्भव है, अपनी शक्ति में नहीं परन्तु परमेश्वर के अनुग्रह में।
यूनानी भाषा का मुख्य शब्द जो जीतना अनुवाद किया गया है 'nikao' है जिसका अर्थ है 'एक जीत हासिल करना' या 'जीतना'। मसीहियों के रूप में, हमें जीतने की आवश्यकता है!

अगुआई में प्रगति और बाधा

एक अगुवे के जीवन में परमेश्वर की इच्छा पूरी होने के मार्ग में कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं। एक अगुवे के पास उसके जीवन और सेवा के विभिन्न समयों में विभिन्न प्रश्न हो सकते हैं। परमेश्वर के अधिकाँश पुरुष और स्त्रियाँ उनके जीवन में कभी न कभी नीचे दिए प्रश्नों द्वारा चुनौती पाएँगे।

- कलीसिया में मेरा आखिरकार स्थान क्या है ?
- मैं सेवा के लिए अवसर कैसे पाऊँ ?
- मुझे कैसे पता चले कि मैं उचित रूप से तैयार किया जा रहा हूँ ?
- जब मैं दूसरे की सफलता के कारण जलन अनुभव करता हूँ तो मैं क्या करूँ ?
- मैं एक सेवा में शुरुआत कैसे करूँ ?
- मुझ पर आई भविष्यद्वाणियाँ कैसे पूरी होंगी ?

- मेरी सेवा के विकास में समय क्या भूमिका निभाता है ?
- कोई मेरी सेवा को क्यों पहचानता नहीं है ?
- सफलतापूर्वक सेवा करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए ?

यहाँ हम यह समझाने के लिए, कि सेवाएं परमेश्वर में उनके अन्तिम बुलावे में कैसे प्रगति कर सकती हैं या भटक सकती हैं, कुछ बाइबल की बुनियादें रखेंगे। ऐसे करने में ऊपर के काफी सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाएँगे। कुछ अगुवे अच्छी शुरूआत करते हैं परन्तु रास्ते के किनारे गिर जाते हैं (शिमशोन, शाऊल और सुलेमान)। दूसरों की उतनी अच्छी शुरूआत नहीं होती जितना अच्छा वे अन्त करते हैं। फिर भी, हर अगुवा उसके जीवन के लिए परमेश्वर की इच्छा जानना चाहता है, परन्तु यह भी जानना चाहता है कि उसके सारे जीवन भर उसके मध्य में कैसे बना रहे। आज की कलीसिया की अगुआई प्रभु के मार्ग में से बहुत अधिक इधर-उधर मुड़ती रहती है। यहाँ हम न केवल उन फँदों के विषय में बताएँगे जो मार्ग में पड़ते हैं परन्तु उन सकारात्मक कदमों के विषय में भी बताएँगे जिन्हें परमेश्वर का एक पुरुष या स्त्री प्रभु में उसके लक्ष्य तक पहुँचने के लिए ले सकता है। नीचे दिए चित्र पर विचार करो।

दबाव के द्वारा रवैयों की परख

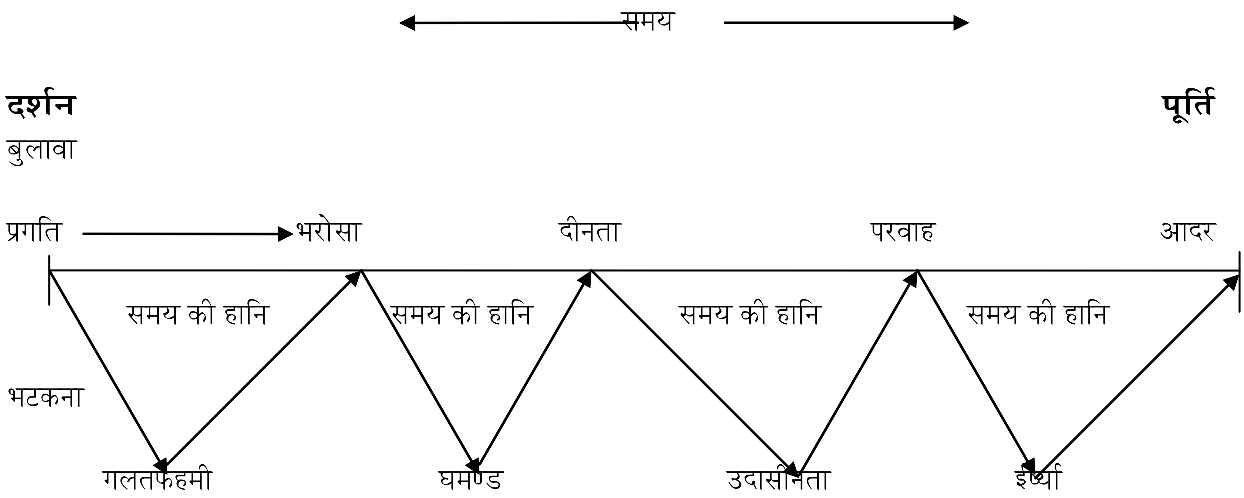

दबाव द्वारा रवैयों की परख

इस चित्र में मुख्य समतल रेखा एक अगुवे के जीवन को दर्शाती है। चित्र के आरम्भ में, बाईं ओर, वह स्थान है जहाँ परमेश्वर के पुरुष या स्त्री को सेवा के लिए बुलावा और दर्शन मिलता है। चित्र के अन्त में, दाईं ओर, वह स्थान है जहाँ अगुवे का सेवा के लिए बुलावा और दर्शन पूरा होता है। इन दो स्थानों के बीच वह समय है जहाँ परमेश्वर उस अगुवे का रवैया परखता है।
एक अगुवे का रवैया (जीवन और सेवा की ओर उसके मानसिक और भीतरी झुकाव) सेवा में उसकी सफलता या असफलता निर्धारित करने में सहायता करेगा। यदि एक अगुवा उसके जीवन में भक्तिपूर्ण रवैये विकसित करने में परमेश्वर को सहयोग देता है तो वह सफल होगा। परन्तु, यदि एक अगुवा उसके अन्दर अभक्त रवैये की जड़ों को बढ़ने देता है तो वह उसे करने में असफल रहेगा जो करने के लिए परमेश्वर ने उसे बुलाया है। उदाहरण के तौर पर, चार्ट में, आप देख सकते हैं कि "गलतफहमी" के रवैये ने इस अगुवे के जीवन को परमेश्वर की सिद्ध इच्छा से भटका दिया था। परन्तु, जब बदले में अगुवा "भरोसे" को उसका भीतरी रवैया बनने देता है तो उसकी प्रगति चलती रहती है। बाकी का चार्ट भी इस नमूने पर चलता है। "उदासीनता" भी भटकाता है परन्तु "परवाह" प्रगति लाती है। ऐसा ही हर अगुवे के जीवन में होता है। जब परमेश्वर एक अगुवे को एक पापी रवैये के विषय में कायल करता है तो उसकी सबसे अच्छी प्रतिक्रिया पश्चाताप और पवित्रता के लिए प्रार्थना होनी चाहिए।
ऊपर दिए विषयों की अतिरिक्त अध्ययन के लिए, कृपया अगले अध्याय में चलिए।

नकारात्मक चीजों से बाइबल के दृष्टिकोण से निपटना

मसीही के लिए उन नकारात्मक चीजों को जीत पाना / दूर रहना सम्भव है जो संसार के लोगों सताती हैं।

कई प्रकार की नकारात्मक चीजें हैं जिन्हें किसी भी मसीही को वैसा जीवन जीने के लिए जैसा परमेश्वर चाहता है जीतना होगा। इन में से कुछ नकारात्मक चीजें विशेषकर मसीही अगुवों के लिए समस्या हैं। इस अध्याय का उद्देश्य इन नकारात्मक चीजों की एक सम्पूर्ण सूची पेश करना नहीं है, बल्कि एक सहायता के रूप में है जिससे परमेश्वर के अगुवे उन में कुछ अधिक विनाशक और निराश करनेवाली चीजों को देख सकें और जीत सकें / दूर रह सकें।

प्रतियोगिता

आज मसीही एक बहुत ही घोर प्रतियोगी संसार में रह रहे हैं, और प्रतियोगिता की यह आत्मा कलीसिया में भी घुस गई है। परमेश्वर ने उसके लोगों को मसीह की देह के सदस्यों के रूप में मिलकर काम करने के लिए बुलाया है। दुर्भाग्यवश, कुछ मसीही दूसरे लोगों को जिन्हें परमेश्वर के राज्य में उनके साझेदार और साथी मजदूर होना चाहिए, खतरे के रूप में देखते हैं। पास्टर दूसरे के विषय में जिसकी कलीसिया उनकी कलीसिया से बड़ी है दुर्भाव रखते हैं; प्रचारक दूसरों की लोकप्रियता को उनकी अपनी से तुलना करते हैं; कलीसिया के सदस्य उनकी कलीसिया में अच्छे से अच्छे अगुआई के पद को पाने के लिए प्रतियोगिता करते हैं। जब एक प्रतियोगी आत्मा जड़ पकड़ती है तो हर दूसरे की सफलता हमारे लिए खतरा बन जाती है। यह एक खतरनाक स्थिति है, क्योंकि हम अपनी आँखें प्रभु पर रखने और उस मार्ग पर चलने के बजाय जिस पर चलने के लिए उसने हमें बुलाया है, हम सदा उस मार्ग को देखते रहेंगे जिस पर दूसरे चल रहे हैं। एक प्रतियोगी आत्मा दूसरे लोगों की ओर संदेह पैदा करती है, विशेषकर उनकी ओर जो हमारे समान पद पर हैं, और इससे हम उनके साथ सतही सम्बंध ही बना पाते हैं। प्रतियोगिता कलीसिया में संभ्रांति और बड़ी असुरक्षा पैदा करती है, और जहाँ कहीं भी यह जड़ पकड़ती है, यह परमेश्वर की शान्ति और एकता नष्ट करती है। ये सब चीजें उस मसीही के लिए को धर्मी जीवन, पवित्र जीवन जीना चाहता है और जो परमेश्वर का सम्पूर्ण हृदय से आज्ञापालन करना चाहता है, बहुत की निराशा ला सकती हैं।

आलोचना

यह है जब हम कलीसिया (और हर वह जिसके साथ हमारा सामना होता है) में समस्याओं और कठिनाइयों को देखना आसान पाते हैं, और इन्हें दूसरों को बताने में आनन्द लेते हैं। यह हर स्थिति में नकारात्मक पर जोर देने की प्रवृति है; सबकुछ जो कहा गया है उसके बदले वैचारिक या सैधान्तिक भिन्नता पर जोर देना; बाकी के व्यक्ति को नहीं देखना परन्तु चरित्र के दोष को देखना; और समाधान खोजने के बजाय एक कार्यक्रम में कमियों को खोजने में ध्यान लगाना। अगुवे अकसर इस फँदे में पड़ जाते हैं जब वे दूसरे अगुवों को वह करते देखते हैं जो उन्हें लगता है सही नहीं है। आलोचक लोग आलोचना करने में इतना समय बिताते हैं कि असली समस्या हल करने और काम समाप्त करने के लिए उनके पास समय और शक्ति नहीं रह पाते। ये लोग हर चीज को आलोचनात्मक आँख से देखते हैं और वे अकसर सकारात्मक नहीं देख पाते हैं। ऐसी आलोचनाएँ प्रभु की सेवा करने की किसी भी प्रेरणा को जो हम में पहले होगी नकार देता है, मुख्य रूप से क्योंकि हम देख नहीं पाते कि कैसे एक काम जिसमें इतनी सारी कमियाँ हैं किया जा सकता है।

मसीहियों को सीखना है कि दूसरे लोगों की आलोचना को परमेश्वर के तरीके से कैसे सम्भालना है; और कड़ुवाहट या नाराजगी से प्रतिक्रिया नहीं करना है, परन्तु क्षमा के साथ करना है जैसा यीशु ने हमें सिखाया है (मत्ती 6:14-15)। आलोचना चोट पहुँचा सकती है परन्तु पीठ पीछे होने से खुले में होना भला है। ऐसा होना असम्भव है कि अगुआई के स्थान में हों और, यदि हम अपना काम उचित रूप से करना चाहें, तो कुछ आलोचना न मिले। जब हमें किसी प्रकार की आलोचना मिले तो हमें अधिक प्रतिक्रिया नहीं करनी है, विशेषकर यह जब एक ऐसे क्षेत्र में हैं जहाँ हम जानते हैं हम कमज़ोर हैं। हमें शान्त रहना है, और तब अपने हृदय में स्थापित करने के लिए ईमानदारी के साथ मूल्याँकन करना है कि जो कहा गया है सत्य है या नहीं। फिर हमें समस्या को परमेश्वर के हाथों में सौंपना है और निश्चय करना है कि हम अपने हृदय में बदले की कोई भावना नहीं रखेंगे (नीतिवचन 20:22)। याद रहे, हर आलोचना में सच्चाई की कुछ मात्रा तो होती ही है; यदि हम उस सत्य का पता लगाकर उससे सीख सकें तो हम एक बेहतर व्यक्ति बनेंगे (भजन 141:5; नीतिवचन 25:12)।

मिथ्याभिमान

यह है जब हम चाहते हैं कि लोग हमें चाहें, और हम ऐसा कुछ नहीं करते जिससे यह जोखिम में पड़े। यह चाहे जाने की भातरी आवश्यकता हमारी अपनी असुरक्षाओं में से निकलती है। यहाँ, दूसरे लोगों को प्रभावित करने की हमारी इच्छा प्रभु की, उसके तरीके से और उसके समय में, सेवा करने की हमारी प्रेरणा को जीत लेती या कम से कम उसके साथ समझौता करती है। मसीहियों के रूप में हमें हमारी पुष्टि परमेश्वर से न कि दूसरे लोगों से खोजनी चाहिए।

अभिलाषा

यह आगे बढ़ने और अपने आप को शक्तिशाली और निश्चित तरीके से स्थापित करने की चाह है। यह वो शक्ति है जो सर्वोच्च पद पर पहुँचने के लिए, हमें दूसरे लोगों पर चढ़ता और चालाकी से उन्हें प्रभावित कराता है, चाहे इसका लोगों पर कोई भी प्रभाव क्यों न हो। अभिलाषा को प्रसिद्धि, नाम, सफलता, अधिकार और इनके साथ मिलनेवाले इनाम चाहिए, और यह इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए हर स्थिति को परखता है। एक बार हम अभिलाषा के जाल में फँस जाएँ तो हर अवसर को पकड़ने का प्रयत्न करेंगे जिनमें हम अपने वरदानों और अपने को प्रमाणित कर सकें। अभिलाषी लोग दूसरे लोगों को उनके कान में नाम डालकर प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं और वे अपने पद की न कि दूसरे लोगों और सेवकपन की अधिक चिन्ता करते हैं। अभिलाषी लोगों के जीवन में एक तस्वीर पैदा करना अकसर एक प्राथमिकता बन जाता है। यह तो केवल उनके ध्यान और शक्ति को दूसरों से हटाकर अपने ऊपर लाता है। ऐसे लोग डरते हैं कि लोगों को पता न चले वे क्या हैं, क्योंकि वे उन लोगों को कुछ भिन्न दिखाने का प्रयत्न करते रहते हैं। इन लोगों को उनकी तस्वीर को बनाए रखने और ढोंग करते रहने के लिए काफी परिश्रम करना पड़ता है। इस के लिए उनको नियमित रूप से झूठ बोलना और धोखा देना पड़ता है। असल में, ऐसे लोग निरन्तर दूसरों के सामने अपने को प्रमाणित करते फिरते हैं (उदाहरण, घमण्ड करते हैं कि वे उनसे जिनकी वे अगुआई करते हैं एक कदम आगे हैं)।
यदि अभिलाषा को नियंत्रण में नहीं रखा जाता है तो प्रभु के लिए हमारी सेवा विकृत रूप ले लेगी। असल में, अभिलाषा प्रभु की सेवा करने की हमारी प्रेरणा को सुखा देगी, क्योंकि हम जहाँ पर हैं, हमारे पास जो है, या जो हम कर रहे हैं उससे कभी भी सन्तुष्ट नहीं होंगे (फिलिप्पियों 2:3-4)। अपनी उन्नति करना या अगुआई की चाह रखना ठीक है यदि ऐसा सही कारणों से किया जाता है, अर्थात् परमेश्वर को महिमा लाना और उसके काम करने को योग्य बनाना। यदि हम में 'कोई' बनने की अत्यधिक अभिलाषा है तो हम अपना अधिक ध्यान उस पर लगाएँगे, न कि दूसरों की सेवा करने पर (और उनको बनने पर)।

घमण्ड

मसीही भाषा में, यह है लोकप्रियता, सफलता, पद या वरदान, जिन्हें परमेश्वर ने हमें सौंपा है, सम्भालने की अयोग्यता (1 कुरिन्थियों 4:7; 2 कुरिन्थियों 10:12-13)। यह ऐसी स्थिति है जिसमें हम अपने आपको पहले स्थान पर रखते हैं और हम ही हैं जो सबसे अधिक महत्त्व के हैं। यहाँ, शाबासी और चापलूसी हमें मतवाला करते, बहकाते और अंधा करते हैं, और यही उसकी प्रेरणा बन जाते हैं जो हम करते हैं। हमारे प्रेरणा प्रभु की सेवा करने के बजाय अपनी सेवा करना और सिंहासन पर रखना है। यही फँदा था जिसने लूसीफर का सत्यानाश किया था। यह सत्य कि हम अगुआई के स्थान पर पहुँचे हैं एक गुप्त आत्म-बधाई और घमण्ड पैदा कर देता है। इस फँदे में से निकलने का एक तरीका है, अपने को प्रभु के हाथ के नीचे दीन करना और उसे अपने समय में ऊँचा करने देना (1 पतरस 5:6)। अगुवों को दूसरे लोगों द्वारा दिए गए किसी भी अतिरंजित सम्मान पर नज़र रखनी है और उसे रोकना है। ऐसे किसी भी प्रशंसा और सम्मान को अपने सिर में जाने देना और घमण्ड बनने देना बड़ी आसान है (सभोपदेशक 7:5)। अगुवों का सम्मान और आदर किया जाना चाहिए, परन्तु कभी भी उन्हें एक पीठिया पर नहीं चढ़ाना है और पूजा नहीं करनी है। बदले में, अगुवों को मिलने वाली हर प्रशंसा और सम्मान को प्रभु की ओर भेज देना है (याकूब 4:1-10)। यदि लोग हमें पीठिया पर चढ़ाते हैं तो उनकी हम से अपेक्षा बहुत अधिक हो सकती है जिसे किसी भी अगुवे के लिए बनाए रखना बहुत कठिन होता है। यह अगुवे के जीवन में अत्यधिक तनाव और प्रतिबन्ध लाता है, क्योंकि अगुवे जानते हैं कि जिन लोगों ने उन्हें पीठिया पर चढ़ाया है वही लोग एक छोटी सी कमी देखने पर उन्हें नीचे उतार देंगे। अगुवों को इसे हर कीमत पर दूर रखना है।

असफलता

परमेश्वर द्वारा बुलाए, आत्मा से भरे हुए, आत्मा द्वारा चलाए और सामर्थ्य पाए अगुवे भी कभी-कभार असफल होते और गलतियाँ करते हैं। हमें कभी नहीं सोचना है कि हम अचूक हैं, चाहे हम ने दूसरों से अधिक किसी चीज के विषय में प्रार्थना की है या हम अकसर सही होते हैं। दूसरी ओर, हमें असफलता के कारण कभी भी हिम्मत नहीं छोड़नी है और न ही अधिक देर तक निराश रहना है। यदि हम पाप द्वारा असफल होते हैं तो हमें मन फिराना और परमेश्वर के साथ सही हो जाना है (1 यूहन्ना 1:9); और फिर खुद को क्षमा कर देना है और आत्म-दया या आत्म-निन्दा में नही लगना है। यदि हमारी असफलता हमारी अगुआई या सेवा से सम्बंधित है, उदाहरण, लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफलता, सेवा करने के समय गलत परख, आदि, तब हमें परमेश्वर के पास

जाना है और समस्या को उसके हाथों में देना है। वह हमें कुछ दिखा सकता है जिससे हमारी असफलता को स्वीकार करना आसान हो सकता है या वह हमें दिखा सकता है हमें आगे क्या करना है। हमें हमारी असफलताओं से दुख हो सकता है, परन्तु हमें उन्हें अपने मन में बहुत बढ़ने और अपने विचारों और अपनी भावनाओं पर छाने नहीं देना है। एक बार जब असफलता में से चुभन निकाल जाए तो हमें पता लगाना चाहिए कि क्या स्थिति को सुधारने के लिए कुछ किया जा सकता है। यदि नहीं तो हमें अनुभव से कुछ सीखना है, और इसे अपने पीछे छोड़कर, आगे बढ़ जाना है। असफलता के कारण हो सकता है हमें फिर से आरम्भ करना पड़े, परन्तु कम से कम हम अपने अनुभव से सीख सकते हैं; परमेश्वर की इच्छा हुई तो, हम अगली बार बेहतर काम करेंगे।
कई अगुवे कटुस्वभाव के बनकर अपने आपको उनकी पूर्व गलतियों और असफलताओं से दूर कर लेते हैं। यदि यह हमारे जीवन में जड़ पकड़ता है तो यह प्रभु की सेवा में हमारी आशा, साहस और प्रेरणा के लिए विनाशक हो सकता है।
मसीहियों को असफलता को पसन्द नहीं करना है परन्तु उन्हें इससे डरना भी नहीं है। यदि हम असफलता से डरते हैं तो हम परमेश्वर के लिए असल में फलवन्त नहीं हो पाएँगे, क्योंकि हम खतरे नहीं लेंगे, चुनौतियों का सामना नहीं करेंगे या उतने रचनात्मक नहीं होंगे जितने होना चाहिए। (विश्वास का जीवन जीने का अर्थ है खतरे लेना)। सच्चाई तो यह है कि गलतियाँ और असफलताएँ बाधाएँ नहीं है, परन्तु उनका डर है। यदि हमें प्रभु के लिए अपनी सेवा में प्रेरित बने रहना है तो असफलताओं और गलतियों के ऊपर उठना अत्यावश्यक है। हमें सीखना है हम असफलताओं के लिए अपने आप को क्षमा कैसे करें, जिससे हम नए लक्ष्यों की ओर स्पष्ट मन और विवेक के साथ बढ़ सकेंगे।

सफलता

कुछ तरीकों से, सफलता को असफलता की तुलना में सम्भालना अधिक कठिन है, यह मतवाला बनाती है और यह घमण्ड को बढ़ावा देती है (जो कितनी सरलता से हमें नष्ट कर सकता है)। हमें याद रखने की आवश्यकता है कि परमेश्वर के काम में सफलता परमेश्वर का काम है और, इसलिए, सारी महिमा उसे ही जानी चाहिए। परमेश्वर के राज्य में अगुआई उसके कहने पर ही ली जानी चाहिए और इसे उसे महिमा लाने के लिए ही उपयोग किया जाना चाहिए। अपनी व्यक्तिगत अभिलाषाओं को प्राप्त करने, अपना नाम बनाने, या अपनी प्रगति के लिए काम करने के एक औजार के रूप में मसीही अगुआई को इस्तेमाल करना गलत है। हमें अपने मन में केवल परमेश्वर के अभिप्राय और उसकी महिमा को रखना है। अगुवों के रूप में, इसे हमें अपने जीवनों के आरम्भ में अपने लक्ष्य के रूप में रखना है, क्योंकि परमेश्वर ने अभी उन अनेक रवैये की समस्याओं को जिन्हें हम अपने भीतर दबाए रखे हैं, प्रकट नहीं किया है।

ईर्ष्या

ईष्यालु लोग दूसरे लोगों की सफलता, वरदान या सम्पत्तियों का लालच करते हैं, इतना करते हैं कि यह उन्हें, उनके कार्यों और उनके अभिप्रायों को प्रभावित करने लगता है। उन्हें वह चाहिए जो दूसरे लोगों के पास है। मसीही अगुवों के रूप में, हमें केवल परमेश्वर के लिए ईर्ष्या रखनी है और सब समय केवल उसे सारी महिमा देनी है। यह तब हमें दूसरे लोगों से ईर्ष्या करने का कोई स्थान नहीं देगा। हमें उन सीमाओं में जीना और सेवा करना सीखना है जिन्हें परमेश्वर ने हमारे लिए निर्धारित किया है, और दूसरों को आशीष देनी है जिन्हें परमेश्वर ने वरदान दिए हैं।

अनिवार्यता

अपने विषय में यह सोचना एक बड़ी गलती है कि हम अद्वितीय हैं या एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जिसे परमेश्वर उपयोग कर सकता है (रोमियों 12:3)। सच्चाई यह है कि यह परमेश्वर है जो काम करता है और वह ऐसा हमारे बिना कर सकता है। विशेषकर कई पुराने अगुवों को इस क्षेत्र में समस्या होती है और, इसलिए वे काफी लम्बे समय तक उनके पद पर बने रहते हैं हालाँकि उन्हें इसे जवान पुरुषों को दे देना चाहिए था (जिन्हें काम करने के लिए उन्हें तैयार करना चाहिए था)। कितनी सारी संस्थाओं का यही कारण है जिन्होंने शुरूआत तो अच्छी की थी, परन्तु अब क्षीण हो गई हैं। अगुवे एक ऐसे तरीके से अगुआई कर सकते हैं जिससे लोग उन पर निर्भर हो जाते हैं (यह अकसर असुरक्षा, घमण्ड, और आवश्यक होना और कीमत जानना से प्रेरित होता है); या वे ऐसे तरीके से अगुआई कर सकते हैं जिससे लोग प्रभु पर निर्भर होते हैं, और उसके साथ वे दूसरे व्यक्ति को तैयार कर सकते हैं जिससे वह भविष्य में उनका स्थान ले सके। प्रभु के किसी भी काम का दीर्घकालीन तक सफलता का यही एक तरीका है। एक काम के विषय में स्वत्वबोधक होना और किसी की सम्भावना का गला घोंट देना जो हमारी अगुआई का स्थान ले सकता था, परमेश्वर के काम में रुकावट उत्पन्न करना है। सम्भवतः हमने काम आरम्भ किया था और उसकी अगुआई करने के लिए हम ही सबसे उत्तम व्यक्ति हों, परन्तु सच्चाई यह है कि काम परमेश्वर का है और यदि हम उसे करने देंगे तो वह हमारा स्थान लेने के लिए दूसरे को खड़ा करेगा जैसा उसने पहले हमें किया था।

हीनता और अकेलापन

हीनता आत्मशंका है कि हम कौन हैं और क्या कर सकते हैं। यदि शत्रु हमें हीन महसूस कराने में सफल हो जाता है तब हम जो दूसरे लोग चाहते हैं उसके अनुसार होने और उसमें ठीक बैठने की कोशिश करेंगे ताकि वे हमें प्रेम और स्वीकार करते रहें। ऐसे लोगों के लिए डर या अस्वीकरण एक शक्तिशाली प्रेरणा है। हीनता लोगों को अपने में से प्राप्त करवाता और दूसरे लोगों से अलग कराता है। जो व्यक्ति इससे पीड़ित है पाएगा कि वह दूसरे लोगों की प्रभावशाली तरीके से अगुआई नहीं कर सकता है।
एक अगुवा होना बड़ा अकेलापन लाता है और यह हमें कभी-कभी बहुत दुख दे सकता है। अकेले अगुवे अकसर अपनी रक्षा लोगों के बीच रहकर करते हैं। इसलिए वे ऐसा कुछ कहने से दूर रहते हैं जो अप्रिय न हो; जिन्हें डाँटना है उन्हें नहीं डाँटते; जो दूसरे उनसे अपेक्षा करते हैं वैसा बनते हैं; जो दूसरे लोग माँगते उन्हें देते हैं; और दूसरे लोगों का ध्यान, समर्थन और सहानुभूति पाने के लिए मैं बेचारा तरीका अपनाते हैं। असल में, कई अगुवे जो हीनता, असुरक्षा या अकेलेपन से पीड़ित हैं उनके आस-पास ऐसे लोगों को रखते हैं जो सदा उनका समर्थन करते और सहमत होते हैं। निस्संदेह **अगुवों** को अनावश्यक अपमान करने से बचना चाहिए परन्तु **उन्हें याद रखना है कि वे परमेश्वर की इच्छा पूरी करने और लोगों को मसीह में परिपक्वता में लाने के व्यवसाय में हैं**। लोगों को खुश महसूस करवाने और अपनी अगुआई को स्वीकार (अर्थात् पसन्द होने और स्वीकार होने की अपनी आवश्यकता पूरी करने) करवाने को अपना लक्ष्य बनाना, उससे चूक जाना है जो परमेश्वर ने हम अगुवों करने के लिए बुलाया है। समझौता करके लोकप्रियता प्राप्त करना सरल होगा परन्तु यह अन्त में हमारी आत्मिक सेवा को नष्ट कर देगा। याद रहे कि अगुवा होने का हमारा मूल्य दूसरे लोगों का हमें पसन्द करने या सम्मान करने पर निर्भर नहीं है, यह परमेश्वर पर और वह हमें कैसे देखता है उस पर निर्भर है। सच्चाई यह है कि वह हमें प्रेम करता है और हमारा भला ही चाहता है। परमेश्वर की नज़रों में हमारा मूल्य तय हो चुका है और हमें इसके विषय में निश्चिन्त रहना है। हमें अपने आप को प्रमाणित करने या दूसरों को अच्छा दिखने की आवश्यकता नहीं है। हमें परमेश्वर की आज्ञाओं का पालन करके और प्रेम और सम्पूर्ण हृदय से उसकी सेवा करके जो सही है करना है (2 कुरिन्थियों 10:12-18; 1 थिस्स. 2:4-6)।

दोष

असली या काल्पनिक, दोष हमें हमारे उद्धार के लिए काम करने में प्रेरित कर सकता है क्योंकि हमें लगता है हम परमेश्वर या मानवजाति के ऋणी हैं और हमें इसके लिए काम करना होगा। असल में, इसके कारण, 'क्यों' जाने बिना, हम बहुत परिश्रम करेंगे और अपने आप को थका देंगे। दोष से प्रेरित होकर हम एक बड़ा नाखुश जीवन जीएँगे जिसमें तृप्ति नहीं मिलती। क्योंकि दोष कभी भी तृप्त नहीं होता। परमेश्वर चाहता है हम उसके क्षमा, स्वीकरण और प्रेम को जानें और ऐसा जीवन जीएं जो दोष से स्वतन्त्र है।

डर

यह एक बहुत सामर्थी प्रेरणात्मक शक्ति है। यह हमें भुला देता है जो हम जानते हैं सही है और वह करते हैं जिसके लिए पछताना पड़ता है। केवल जिस तरीके से हम सोचते हैं उससे भी डर पैदा हो जाता है, उदाहरण, किसी अज्ञात अस्वीकरण या असफलता के बारे में सोचना। इस डर के कारण हम अगुवे अपनी रक्षा करने और चोट और अस्वीकण से बचने के लिए उनसे अपने आपको दूर कर लेते हैं जिनकी अगुआई हम करते हैं। भयभीत अगुवे अकसर अपने आपको दूसरों के सामने खोलने से इन्कार करते हैं क्योंकि उन्होंने फैसला कर लिया है कि दूसरों के अधिक करीब जाने से उन्हें बहुत अधिक तकलीफ हो सकती है। ये अगुवे लोगों को दूर रखते हैं और उनके बदले उनका ध्यान और वचनबद्धता को कामों को देते हैं। दुर्भाग्यवश, ये अगुवे भूल गए हैं कि परमेश्वर की कलीसिया में अगुआई काम के बजाय लोगों के बारे में अधिक है। अगुवों को उनके लोगों से प्रेम करना और निस्वार्थ के साथ उनको देना है। यह भविष्यद्वक्ताओं, शिक्षकों और प्रबंधकों के विषय में भी सच है जो सामान्य रूप से इस समस्या के शिकार है। यदि हमें प्रभावशाली अगुवे होना है तो हमें उनके करीब होना होगा जिनकी हम अगुआई करते हैं। परमेश्वर के राज्य में लोगों को सेवा के लिए तैयार करना सम्बंधों द्वारा होता है, किसी दूर बैठे अगुवे द्वारा नियमों की एक सूची देकर नहीं।
अतिसावधानी अकसर एक डर से भरे हुए जीवन का परिणाम है। अतिसावधान, भयभीत लोगों के पास अकसर आर्थिक और स्वास्थ्य समस्याओं के बिना कुछ नहीं होता। वे हर उस चीज से दूर रहते हैं जिसमें खतरे का संकेत होता है और इसलिए बिरले ही रचनात्मक या सफल होते हैं। 'विवरण पुस्तकों से पता चले कि आप विजयी हुए हैं, या पता चले कि आप हारे हैं, परन्तु यह पता न चले कि आप खेले ही नहीं!' हमें याद रखना है कि हम मसीहियों को परमेश्वर ने भय की नहीं पर सामर्थ्य और प्रेम और संयम की आत्मा दी है (2 तीमुथियुस 1:7)।

सन्देह और निराशावाद

यदि हम नकारात्मक विचार सोचते रहेंगे, और सन्देह को विश्वास के बजाय अविश्वास बनने देंगे, तो हम पाएँगे कि हम अपने मसीही जीवन में पूरी तरह उत्साह भंग, प्रेरणा भंग और भ्रंम-भंग हो गए हैं। असल में, उदासी और इससे जुड़ी दूसरी चीजें, इस प्रकार के निराशावादी सोच-विचार का अन्तिम परिणाम हैं जो लम्बे समय तक चलता रहता है।

आलस्य और आत्मसंतोष

ये दोनों परमेश्वर का कहना मानने और उसकी इच्छा पूरी होते देखने की हमारी प्रेरणा और गति को चुरा लेते हैं, विशेषकर जब हम परमेश्वर और उसके वचन के साथ अपने समय में सुस्त होते हैं (नीतिवचन 18:9; 2 थिस्स. 3:6-15)। परमेश्वर के राज्य में आलस्य या आत्मसंतोष का कोई स्थान नहीं है। हमें अपने जीवन और अपने काम को उसी प्रकार देखकर जैसा परमेश्वर देखता है इनसे रक्षा करनी है। वह हमें अपने पुत्रों के समान जिनसे वह प्रेम करता है, और जिन्हें उसने अपनी इच्छा सौंपी है देखता है। प्रेरित पौलुस के समान हमें लगे रहना है जब तक हम उस काम को पूरा म कर लें जिसे परमेश्वर ने हमारे सामने रखा है (फिलिप्पियों 3:12-14)।

उदासीनता और अनिश्चय

उदासीनता भाग्यवाद पैदा करता है और कुछ भी हो परवाह नहीं कराता है। इससे किसी भी प्रकार की सफलता से हम वंचित रह जाते हैं। यह अनिश्चितता भी लाता है, जो अवसर का चोर है। मसीहियों के रूप में हमें, हर अवसर का भरपूर लाभ उठाना है (गलातियों 6:10; इफिसियों 5:15-16; कुलुस्सियों 4:5)। उस बहुतायत के जीवन को जानने का यही एक तरीका है जिसकी प्रतिज्ञा प्रभु ने की थी (यूहन्ना 10:10)।

अन्त में

सम्भवत: और भी कई दूसरी नकारात्मक चीजें होंगी जिन्हें आप जानते होंगे जो एक विश्वासी की प्रेरणा को नष्ट कर सकती हैं और प्रभु के लिए उसकी सेवा की प्रभावकारिता में रुकावट डाल सकती हैं। परन्तु, जिन नकारात्मक चीजों का ऊपर जिक्र किया गया है उनसे आरम्भ करना अच्छा होगा ताकि आप उन फँदों में फँसने से बच सको जिनमें कई दूसरे मसीही फँसे हुए हैं। हमारे मसीही जीवन का एक अत्यावश्यक भाग है प्रेरित रहना। बहुत सारे मसीही, जब कठिनाई आने लगती है, दौड़ में से अपने आप को हटा लेते हैं और हार मान लेते हैं। हमारे लिए बहुत आवश्यक है कि हम पता लगाएँ हमें क्या प्रेरित करता है और हमें क्या प्रेरित किए रखता है, ताकि हम परमेश्वर की इच्छा पूरी करने के लिए, चाहे कैसी भी कठिनाई या कीमत क्यों न हो, किसी भी स्थिति में तैयार रहें।

"यह मतलब नहीं कि मैं पा चुका हूँ, या सिद्ध हो चुका हूँ; पर उस पदार्थ को पकड़ने के लिए दौड़ा चला जाता हूँ, जिसके लिए मसीह यीशु ने मुझे पकड़ा था। हे भाइयो, मेरी भावना यह नहीं कि मैं पकड़ चुका हूँ; परन्तु केवल यह एक काम करता हूँ कि जो बातें पीछे रह गई हैं उनको भूल कर, आगे की बातों की ओर बढ़ता हुआ, निशाने की ओर दौड़ा चला जाता हूँ, ताकि वह इनाम पाऊँ जिसके लिए परमेश्वर ने मुझे मसीह यीशु में ऊपर बुलाया है।" (फिलिप्पियों 3:12-14)।

प्रेरित पौलुस के भूलने के लिए काफी कुछ था। पूर्व में, उसने उस विश्वास की ओर जिसे वह अब अंगीकार करता था, भयानक तरीके से व्यवहार किया था, और उसके विरुद्ध अपनी पूरी शक्ति से लड़ा था जो अब उसका प्रभु था। परन्तु, बाद में, पौलुस सबसे प्रेरित मसीही बना जिसे जाना गया है। वह अपने प्रारंभिक जीवन में असफल रहा था, परन्तु अब वह इन चीजों को अपने पीछे रखने और प्रभु की सेवा करने में हर सम्भव प्रयास करने के लिए निश्चित था!

अगुआई में क्षमा की आत्मा की आवश्यकता

यहाँ हम अखंडता के एक दूसरे मामले का अध्ययन करना चाहते हैं। यह हृदय पर हमला होने की बात नहीं, परन्तु हृदय के दूषित होने की बात है। यह अगुवे और क्षमा की आत्मा की बात है।
क्षमा का मुख्य विचार है छोड़ना या जाने देना। जब प्रभु ने हमें क्षमा किया, तो हम पाप के सामर्थ्य से छोड़े गए थे। हम अनन्त मृत्यु के बन्धन से मुक्त किए गए थे। इसलिए हम समझ सकते हैं कि क्षमा का रिहाई से क्या सम्बंध है। परन्तु बाइबल क्षमा की आत्मा की बात करती है। यह उस जीवन को अनुभव करना है जो रिहाई की आत्मा में वास करती है। जब हमारा हृदय और हाथ परमेश्वर और मनुष्य की ओर एक स्वतन्त्र रवैये में हैं, तब वे उन मामलों से नहीं भरेंगे जो नाराजगी या कड़ुवाहट के मामले हैं। सेवा की स्वतन्त्रता में रिहाई की आत्मा पर निर्भर करती है जो अगुवे के हृदय पर छाई हुई है।

नीचे दिए बचनों का अध्ययन करोः मत्ती 18:21-35
= हम यहाँ एक सच्चा प्रश्न देखते हैं:

1. पतरस का प्रश्न एक स्थिति प्रकट करता है जो उसके समय की शिक्षा के हाथ से निकल चुकी थी।
2. इस प्रकार के वचनों के आधार पर जैसे किः आमोस 1:3, 6, 9, 11, 18 (आदि, आमोस के दूसरे अध्याय में भी), यीशु के समय के रब्बियों ने मान लिया था कि परमेश्वर स्वयं भी तीन बार से अधिक क्षमा नहीं करता है।
3. परन्तु प्रभु ने पतरस से नम्रता से कहा, नहीं पतरस, परन्तु सात के सत्तर बार।
4. यीशु यह नहीं कह रहा था कि 490 बार परन्तुः <u>अनिश्चित</u> बार
   (1 कुरिं. 13:4-7; यूनानीः "प्रेम हिसाब नहीं रखता!"

<u>एक नया आयाम</u> मत्ती 18:22-23)।

1. यीशु न केवल उसके सीमित दृष्टिकोण को बढ़ाता है, परन्तु वह इस शिक्षा में राज्य का सिद्धान्त जोड़ देता है।
2. जब यीशु राज्य की बात करता है, तो दो चीजें सच हैं:
   क) वह उस चीज की बात कर रहा है जिसमें परमेश्वर ने हमें उद्धार के वातावरण के सम्बंध में बुलाया है। यह ऐसा नहीं है जिसे हम अपने में नहीं कर सकते हैं, उसके राज्य में जन्म लेने पर, वह हमें सामर्थ्य देगा।
   ख) राज्य में आज्ञा है।
   एक शिक्षा ने स्पष्ट कर दिया कि यदि प्रतिक्रिया नहीं की गई तो यीशु भयानक परिणाम दिखाता है (मत्ती 18:34-35)।
3. दण्ड देनेवालों के हाथ में सौंपने का अर्थ क्या है?
   क) अक्षमा-शील सेवक को उसके प्रारंभिक स्थिति में नहीं भेजा गया था (मत्ती 18:25, 34)।
   ख) उससे भुगतान लेनेवाले संग्राहकों का सताव भी था (मत्ती 18:34)।

<u>शिक्षा:</u>

1. सबकुछ क्षमा किया जाना और जानना कि उद्धार क्या है सम्भव है।
2. यदि हम भूल जाते हैं कि हमें कितनी बड़ी क्षमा दी गई थी, और दूसरों की ओर उसी क्षमा की आत्मा में नहीं जीते हैं, तो ऐसे दुख होंगे जो क्षमा नहीं करने के कारण हमारे प्राण को निरन्तर सताते रहेंगे।
3. अक्षमा की आत्मा आनन्द, आत्मिक सामर्थ्य, और शारीरिक स्वास्थ्य को ले जाएगी। अक्षमा का रवैया आप में से आशीषों/चीजों को ले लेगा।
4. चिकित्सा अध्ययन प्रमाणित करते हैं कि मनुष्य की बीमारी का 70% मनुष्य के अन्दर कड़ुवाहट, नाराजगी और अक्षमा का परिणाम हैं।

<u>अक्षमा-शील सेवक</u> (मत्ती 18:24-34)।

1. एक अविश्वसनीय ऋण (मत्ती 18:25)
   क) मत्ती 18:25। उस विनाश पर ध्यान दो एक व्यक्ति के जीवन, परिवार और भविष्य पर पड़ने वाला था। उसका ऋण, जो उसके सन्निकट विनाश की पूर्वसूचना थी, हमारी स्थिति के, परमेश्वर के अनुग्रह और मसीह में क्षमा के बाहर, सम्पूर्ण भटकाव को चित्रित करता है।

ख) मत्ती 18:26। सेवा के निवेदन पर ध्यान दो, जो एक असम्भव प्रस्ताव रखता है। करोड़ों रुपयों का ऋण, कितना भी समय लगता, चुकाया नहीं जा सकता था। वह तो सूद की रकम ही नहीं चुका सकता था, मूल की बात ही नहीं की जा सकती है।

ग) मत्ती 18:27। मनुष्य के मालिक की अत्यधिक दया पर ध्यान दो। उसका चरित्र तब या आज के समाज के व्यवहार के बिलकुल विरुद्ध है। ऋण की ओर यह सामान्य प्रतिक्रिया नहीं है: यीशु हमारे बोझ और पाप और दोष के ऋण की ओर पिता का हृदय चित्रित कर रहा है।

2. एक अविश्वसनीय प्रतिक्रिया (मत्ती 18:28-29)

एक अविश्वसनीय असंवेदनशील तरीके से, जिस सेवक को इतना बड़ा ऋण क्षमा किया गया था, एक साथी-सेवक के पास जाकर, उससे एक ऋण के भुगतान की माँग करता है जो उनके बीच था (कृपया ध्यान दो: इस ऋण का मालिक और सेवकों के बीच सम्बंध से कोई सम्बंध नहीं है। यह पूरी तरह उन दोनों के बीच था। यह शिक्षा के लिए महत्त्व का है।)

क) मत्ती 18:28। दो ऋणों की तुलना किसी प्रकार भी नहीं की जा सकती है: पहला ऋण, सारे जीवन भर भी, एक अदा न कर सकनेवाली रकम थी। परन्तु यह ऋण एक मजदूर की 3-4 महिनों की पगार जितनी था।

ख) मत्ती 18:28। "क्षमा" किए गए सेवक का तरीका देखो: वह अपने साथी-सेवक को तुरन्त गर्दन से पकड़ता है, वह घुटनों पर हो जाता है। वह न केवल उसे दिखाई गई क्षमा के बारे में भूल गया है, वह दूसरे सेवक की ओर क्रूर हृदय का है।

ग) मत्ती 18:29। दूसरे सेवक द्वारा बोले शब्दों पर ध्यान दो: वे बिलकुल वही शब्द हैं जो पहले सेवक ने मालिक के सामने कहे थे। आश्चर्य की बात है, वह अपने साथी-सेवक के होठों से अपने निवेदन की ध्वनि भी नहीं सुनता है।

घ) मत्ती 18:30। दूसरे निवेदन को याद करो, "मैं सब भर दूँगा", उचित था। दो स्थितियों में यह कठोर भिन्नता है। अक्षमा का दिखाना अनिश्चित रूप से कम ऋण के वातावरण में था, और इसलिए उचित था कि धैर्य पाता।

अक्षमा की आत्मा नियंत्रण करना चाहती है, और एक बार जब इसने ले लिया है चुका नहीं सकती है।

अक्षमा एक अगुवे के हृदय में कैसे प्रवेश करता है?

किसी के जीवन और हृदय में अक्षम की आत्मा प्रवेश करती है:

- ईर्ष्या,
- चोटें,
- आलोचना,
- नाराजगी (नाराज होने का अर्थ है लोगों को अपने क्रोध के कैदखाने में रखना),
- न्याय करना के द्वारा
  - मेरा विचार है: वह व्यक्ति गलत है और मैं सही हूँ। इस प्रकार हम दूसरों को अपने विचारों के कैदखाने में रखते हैं। यह दूसरों की सेवा करने की शैली पर भी लागू हो सकता है।
  - दुख की बात है, ये रवैये मसीह की देह में भरे पड़े हैं। ये जीवित कलीसिया की प्रभावकारिता को अशक्त बनाते हैं। ये अगुवों की आत्मिक शक्ति को दुर्बल कर देते हैं। वे मसीह की देह के अंशों में विभाजन की दिवारें खड़ी करते हैं।

जो अगुवा निरन्तर क्षमा में नहीं जीता, और जिसके हृदय में अक्षमा है उसके लिए उपयोग:

= यह उसकी सेवा को अशक्त करती है।

= यह अगुवे को बाँध देती है।

= यह लोगों को भी बाँध देती है।

इसलिए, खुद से पूछो: मैं दूसरे सेवकों से कितनी अच्छी तरह सम्बंध बनाता हूँ?

झगड़ों के समाधान की कुछ बाइबल की कुंजियाँ

किसी भी दल में, और एक "सेवा के दल" में भी, झगड़ों की कुछ मात्रा की सम्भावना है। अधिकाँश दल आरंभ में निपुण व्यक्तियों से बने होते हैं। एक कोच या प्रशिक्षक का काम इन विभिन्न निपुणताओं को सम्पूर्ण के भले के लिए इकट्ठा करना है।

1. कुछ आरंभिक झगड़े लगभग अनिवार्य हैं।

विविध प्रकार की निपुणताओं और सुविज्ञता की आवश्यकता होने पर और यह तथ्य कि ऐसी निपुणताएँ विभिन्न प्रकार के चरित्र, व्यक्तित्व और स्वभाव में पाई जाती हैं, यह लगभग अनिवार्य है कि गलतफहमी और झगड़ों के कुछ आरंभिक क्षेत्र होंगे। यह यीशु के चेलों के बीच भी सत्य था। उनकी पृष्ठभूमियाँ, जीवन के अनुभव और स्वभाव प्रत्यक्ष रूप से काफी भिन्न थे और जब वे उसके साथ जुड़े थे उस समय पदों और भूमिकाओं के लिए खुलेआप धम्मकधक्का होता था। प्रतिद्वन्द्व और झगड़े के स्पष्ट चिन्ह दिखते थे परन्तु यीशु उसके चेलों के आरंभिक बचपने के साथ बना रहा, धीमे-धीमे उनके जीवनों को बनाया और बदला और वे अधिक परिपक्वता और योग्यता पाने में सफल हुए।

2. उन्हें पहचाना और शीघ्रता और उचित रूप से समाधान किया जाना चाहिए।

झगड़े या सम्भावित झगड़ों को पहचानना और उनका समाधान करना आवश्यक है। कोई भी दल इसकी उत्तमता में कार्य नहीं कर सकता है यदि उसमें अनसुलझे वर्तमान झगड़े हैं। किसी भी सामूहिक संस्था की प्रभावकारिता इसके सदस्यों के उद्देश्यों की एकता पर बहुत कुछ निर्भर करती है। परन्तु, यह एक मसीही सेवा दल के लिए सत्य है। परमेश्वर एकता को विशेष मूल्य देता है और जो भाई लोग एकता में रहते हैं उन के लिए विशेष आशीष रखता है (भजन 133)। इसलिए यह आवश्यक है कि अनबन को शीघ्रता के साथ और ऐसे तरीके से जो सब सम्बंधित लोगों के लिए उचित और न्यायोचित है निपटा जाना चाहिए। परमेश्वर ऐसे कार्यों को सदा आशीष देगा।

3. दल का समाधान सकारात्मक और उत्पादक होना चाहिए।

अगुवे को किसी भी झगड़ों को जो दिखाई देते हैं धीरज के साथ निपटने के लिए तैयार रहना चाहिए। ऐसी समस्याओं के समाधान से ही अकसर सच्चे सम्बंध गहरे होते हैं। एक सेवा का दल जो इस प्रकार की समस्याओं से उचित रूप से निपटने के खुलेपन और ईमानदारी को प्राप्त नहीं करता सम्भवतः कभी भी सम्बंध की असली शक्ति नहीं प्राप्त कर पाएगा। ऐसे मामलों का समाधान करने और उनसे आगे बढ़ने में प्रेम में सत्य बोलने की सुविधा की आवश्यकता होती है, और केवल तब ही जब यह गुण प्राप्त किया जाता है कि एक दल सतही से अधिक गहरे और परिपक्व सम्बंधों में पहुँच सकता है। प्रेरित पौलुस, जिसमें यूहन्ना मरकुस से सम्बंधित गम्भीर प्रतिबन्ध थे, बाद में विशेषकर लिखता है कि "वह मेरे बहुत काम का है"। (2 तीमुथियुस 4:11)।

4. दल की सभाएँ नियमित और निरन्तर आयोजित करो।

सामूहिक दर्शन से सम्बंधित चीजों पर बात करने के लिए इकट्ठे होने के अवसर अत्यावश्यक हैं। ऐसी सभाएँ निरन्तर और नियमित होनी चाहिए। प्रत्यक्ष रूप से कई ऐसी सभाएँ दर्शन की प्रगति का ब्योरा देने, विचार-विमर्श करने और प्रार्थना के लिए होंगी। वे आगे की योजना बनाने और प्रबंध के लिए आवश्यक हैं, जिनरप नियमित ध्यान न देने के कारण इसका तीखापन और प्रभावकारिता को खो देगा।

परन्तु, दल के सदस्यों को संगति और विश्राम के अनौपचारिक समयों के लिए भी नियमित इकट्ठे होना चाहिए। जीवन के इन साधारण पहलुओं में जीवन बाँटने के द्वारा ही सदस्य अपने को और दल को सच में खोज सकते हैं। इस स्तर पर सम्बंध और संगति सच्चा भाईचारा बनाने और गहरा करने के लिए अत्यावश्यक हैं।

5. खुलापन और ईमानदारी को प्रोत्साहन दो।

एक सेवा के दल के प्रभावकारी कार्य के लिए अत्यावश्यक है कि सब सदस्य एक दूसरे के साथ सच्चे, खुले और ईमानदार हों। प्रभावकारी कार्य के लिए जो एकता चाहिए उसके लिए यह अत्यावश्यक है। सम्बंधों का यह गुण दल के सब सदस्यों की सुरक्षा के लिए अनिवार्य है। ऐसे सम्बंध परीक्षा की समस्याओं को हल कर सकता है जिनका अधिकाँश अगुवे समय समय पर सामना करते हैं।

6. लोगों का वे जो हैं होने और उनके अनोखेपन को व्यक्त करने का स्थान दो।

दल के सब सदस्यों में अनुरूपता की माँग करना बहुत बड़ी गलती है। जिस एकता को परमेश्वर खोजता और चाहता है वह 'सुव्यवस्था में विविधता' है। बहुरुखी कार्य को करने के लिए वरदानों की विस्तृत विविधता की आवश्यकता है। इसके लिए भिन्न प्रकार की निपुणताओं और व्यक्तित्वों की आवश्यकता है। ऐसी विवधता को चुनने के बाद उन सबसे एक समान होने और एक व्यक्तित्व किस्म के सदृश बनने की अपेक्षा करना मूर्खता है। अगुआई का एक महत्त्वपूर्ण पहलू बहुत ही भिन्न व्यक्तियों के दल से सुव्यवस्थित सहयोग पाने की योग्यता है।

7. अपने दल के सदस्यों पर भरोसा करो। उनमें विश्वास व्यक्त करो और दिखाओ।

एक मुख्य कारण कि कुछ अगुवे प्रतिनिधान क्यों नहीं करते हैं, वह है कि वे उनके साथी कर्मियों पर भरोसा नहीं करते। प्रतिनिधान प्रभावकारिता और वृद्धि के लिए अत्यावश्यक है परन्तु इसे करने के लिए आपको अपने साथियों पर भरोसा करना सीखना होगा। प्रतिनिधान में तीन महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं:

- सही लोगों को चुनो।
- उपयुक्त व्यक्ति को निश्चित काम सौंपो।
- उसे करने के लिए उन पर भरोसा करो।

8. उनको धमकाते मत रहो।

एक काम और भूमिका सौंपने के बाद, व्यक्ति को उसके अनिवार्य तरीके से उसे करने के लिए स्थान दो। कार्यकर्त्ता अकसर योग्यता के उस स्तर तक पहुँचेंगे जिसके लिए आप उन पर भरोसा करते हो। उस दौरान, वे सम्भवतः कुछ गलतियाँ भी करेंगे और आपको उस के लिए तैयार रहना चाहिए। जो व्यक्ति कभी कोई गलती नहीं करता कुछ नहीं करता है।

9. लोगों को सुनना सीखो।

एक सफल अगुवे को एक अच्छा वक्ता होना चाहिए। परन्तु, यह भी बहुत महत्त्व का है कि वह दीनता के साथ सुने भी। प्रभावकारी वार्तालाप एक आवश्यक दो-तरफा कार्य है। जो अगुवा कभी नहीं सुनता, कभी नहीं सीखता है। यदि वह अपने दल के सदस्यों को सुनना और उन पर ध्यान देना नहीं सीखता तो वह कभी उन्हें जान और समझ नहीं पाएगा।

10. उनसे बातें करने के अवसर निकालो।

एक छोटी कलीसिया में, आप अकसर सब समय अपने लोगों के बीच हो सकते हो। जितनी बड़ी संस्था होगी उतनी अधिक लोगों के साथ व्यक्ति सम्बंध रखने की आवश्यकता होगी। इसे करने के लिए नियमित सम्पर्क में रहना पर्याप्त है। आपको लम्बी, गम्भीर बातें करने की आवश्यकता नहीं है। मित्रभाव, व्यक्तिगत स्तर पर बातें करके एक साथ होने की भावना को बनाए रखा जा सकता है। यह एकता, वफ़ादारी और दल की वचनबद्धता को बढ़ावा देता।

11. सच्ची प्रशंसा व्यक्त करो।

कई अगुवे अकसर प्रशंसा महसूस करते हैं परन्तु बोलने में असफल रहते हैं, और बारम्बार दूसरा व्यक्ति उपेक्षित अनुभव करता है। ऐसी एक आदत विकसित करना आसान सी बात है, जब आप एहसास करें तब प्रशंसा व्यक्त करो। आप ईमानदारी के साथ बोलकर कर सकते हैं: "आपका धन्यवाद, मैं वाकई आभार मानता हूँ जिस प्रकार आपने यह काम किया और आप मेरे लिए एक कार्यकर्त्ता के रूप में बेहद मूल्यवान हैं।" कभी-कभी एक लिख कर या कार्ट ऊेजकर व्यक्त कर सकते हैं। आप व्यक्ति को बाहर खाने पर ले जा सकते हैं या एक साधारण तोहफा दे सकते हैं। प्रशंसा प्रकट करने के कई तरीके हैं और उन में से हर एक पानेवाले के लिए कीमती होगा।

12. सुधार की कार्यवाही एकान्त में करो।

जबकि प्रशंसा और धन्यवाद सबके सामने दिए जा सकते हैं, सुधार की कार्यवाही, परम या विशेष परिस्थितियों के अलावा, सदा एकान्त में और विश्वस्त रूप से की जानी चाहिए। किसी को भी उनके अभिजात के सामने आलोचना पाना, डाँटा जाना या सुधारा जाना अच्छा नहीं लगता है। यह विश्वास को दुर्बल करता और सम्बंध नष्ट करता है। जब आपको व्यवहार, रवैया या प्रदर्शन को सुधारने की आवश्यकता होती है तब व्यक्ति को एकान्त में ले जाकर उससे बात करो।

13. लोगों के विश्वास और योग्यता के स्तरों को बनाने का प्रयत्न करो।

प्रभावकारी अगुआई का एक अत्यावश्यक पहलू दूसरे अगुवों तो तैयार करना है। हर पौलुस का अपना तीमुथियुस होना चाहिए। हर अगुवा कुछ चेलों का तो परामर्शदाता होना ही चाहिए। हर संस्था को इसके अगुवों को भविष्य के लिए तैयार करने में कुछ समय और प्रयास लगाना चाहिए। यह कलीसिया के मामलों में तो सच है ही जहाँ पास्तरीय / शिक्षक की सेवा का मूल उद्देश्य सन्तों को सेवा के कार्य के लिए तैयार करना है (इफिसियों 4:11-12)।

14. सकारात्मक पर जोर दो, नकारात्मक पर नहीं।

जीवन सकारात्मक और नकारात्मक दोनों से बना हुआ है, और इस संसार में दोनों अनिवार्य और अत्यावश्यक हैं। परन्तु, नकारात्मर शक्तियों की अनिवार्य सच्चाई को पहचानते हुए, अगुवों को उनके विचारों और रवैयों को सकारात्मक पर न कि नकारात्मक पर केन्द्रित करना चाहिए। सकारात्मक पहलुओं पर मुख्य रूप से ध्यान केन्द्रित करने से व्यक्ति जीवन के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों का सामना करने के लिए तैयार हो सकता है। निस्संदेह, आदर्श रवैया दोनों का एक अच्छा सन्तुलन है परन्तु जहाँ तक हो सके सकारात्मक पर झुकाव होना बेहतर है।

15. उन्हें एक साथ अच्छा समय बिताने के लिए प्रोत्साहित करो।

जीवन के हर क्षेत्र में एक साथ अच्छा समय बिताने के अलावा दल सम्बंध या एकता नहीं बना सकते हैं। यीशु ने अपना जीवन पूरी तरह बारहों के साथ बाँटा था। वे तीन वर्ष से भी अधिक समय लगभग दिर-रात इकट्ठे थे। उन्होंने एक दूसरे को लगभग हर परिस्थिति में देखा और अनुभव किया। वे एक साथ चले, काम किया, खाना खाया और बातें कीं।

16. अकेले और सामूहिक रूप से उनके लिए उपलब्ध रहो।

एक सच्चा अगुवा अपने दल से अलग नहीं रह सकता है। उसे उनके लिए सुगम्य, अभिगम्य और उपलब्ध होना है। उसे उनके साथ अकेले या इकट्ठे, लगातार मिलते रहने के लिए तैयार और इच्छुक होना चाहिए।

17. सब समय अगुआई का आदर्श होने का प्रयत्न करो।

जाने में या अनजाने में, यह एक सच्चाई है कि अगुवा सब समय एक आदर्श है। अगुआई की विश्वासनीयता को पाने और बनाए रखने के लिए उसे एक अच्छे अगुवे की तस्वीर को चित्रित करते रहना है। उसके दल के सदस्य हर समय उनके अगुवे की जानकारी रखते हैं और उससे रवैये और संदर्श लेते रहते हैं। इसलिए, उसकी भूमिका का एक महत्त्वपूर्ण पहलू अच्छी अगुआई की विशेषताओं को प्रदर्शित करना है।

18. हर एक को विशेष और उत्पादक काम दो।

दल के हर सदस्य को विशेष और उत्पादक काम सौंपे जाने चाहिए। उन्हें स्पष्ट पता और समझना चाहिए कि उनकी भूमिका और काम क्या हैं और उनमें कुछ काम ऐसे अवश्य होने चाहिए जो सकारात्मक रूप से उत्पादक हैं। उन्हें पता होना चाहिए कि परियोजना की सफलता के लिए उनका काम अनिवार्य है।

19. उनकी सम्भावना को चुनौती दो। उन्हें ऊपर उठने के लिए कुछ दो।

अधिकाँश लोग, यदि अनुकूल अवसर पाएँ तो, उनकी योग्यता के स्तर तक पहुँचेंगे परन्तु ऐसा होने के लिए उन्हें निरन्तर चुनौतियों की आवश्यकता होगी। ऐसी चुनौतियाँ तीव्रता में स्थिर रूप से बढ़ती जानी चाहिए, अर्थात् जैसे व्यक्ति निपुणता और योग्यता में बढ़ता है उन्हें भी अधिकाधिक चुनौतीपूर्ण और प्रेरणात्मक होते जाना चाहिए।

20. व्यक्ति के अनुसार कामों को व्यवस्थित करो।

एक व्यक्ति जो काम सौंपता है उसका सबसे बड़ा डर यह होता है कि व्यक्ति जिसे काम सौंपा गया है काम को उस प्रकार नहीं कर पाएगा जैसा वह खुद करता है। उसे समझना है कि लोगों के उसी काम काम को करने के भिन्न पहुँच और तरीके हो सकते हैं। कभी-कभी किसी व्यक्ति की पहुँच में उचित बैठने के लिए काम को थोड़ा व्यवस्थित करना पड़ सकता है परन्तु इसे प्रदर्शन की अन्तिन उत्तमता को बलिदान किए बिना भी किया जा सकता है।

कलीसिया में अनुशासनः क्यों, कब और कैसे?

जहाँ कहीं लोगों का एक समूह होता है, वहाँ व्यवस्था होनी चाहिए, वहाँ आचार-शास्त्र के नियम होने चाहिए। यदि व्यक्ति अकेला है तब पारस्परिक सम्बंधों को नियंत्रण करने के लिए नियमों की आवश्यकता नहीं। लोगों के बीच व्यवस्था और सुख-शान्ति और अच्छे सम्बंध बनाए रखने के लिए नियमों की आवश्यकता होती है। यदि नियम हैं तब व्यवस्था बनाए रखने के लिए इन नियमों के अधीन होने की आवश्यकता भी है। यदि लोग इन नियमों को तोड़ते हैं तब अनुशासन की आवश्यकता उपत्पन्न होती है (रोमियों 13:2; मत्ती 5:25-26)। इन नियमों को, परमेश्वर के सामने एक शुद्ध विवेक बनाए रखने के लिए, बाहर से नहीं परन्तु अन्दर से, मानना जरूरी है (रोमियों 13:5)। इसलिए, अवश्य है कि हर व्यक्ति की 'मैं' सर्वोच्च्य इच्छा, परमेश्वर की इच्छा के सामने झुके। परमेश्वर की इच्छा परमेश्वर के नियमों में प्रकट है। पवित्रशास्त्र दिखाता है कि उसकी इच्छा नियम है और उसका नियम उसकी इच्छा है। परमेश्वर का नियम राजा है। मनुष्य के पाप और विश्वासियों की अपूर्णताओं के कारण, कलीसिया में परमेश्वर के अनुसासन की अकसर आवश्यकता पड़ती है।

यह अनुशासन सीधे परमेश्वर द्वारा लागू किया जा सकता है, या पवित्रशास्त्र के सिद्धान्तों पर चलकर, मनुष्य द्वारा लागू किया जा सकता है। एक स्वाभाविक परिवार में अनुशासन बिना, अव्यवस्था और अस्तव्यस्तता होगी। यही बात परमेश्वर के परिवार, कलीसिया में भी सत्य है।

कलीसिया के बारे में जब प्रभु दूसरी बार बात करता है, जो मत्ती के सुसमाचार में दिया गया है, तो यह कलीसिया में अनुशासन की आवश्यकता और कार्यविधि के बारे में है। मत्ती 16:15-20 और 18:15-20 पढ़ो। कलीसिया में अनुशासन इसके जीवन का एक सबसे कठिन और नाजुक क्षेत्र है। यह अनुशासन की प्रकृति और उद्देश्य से सम्बंधित गलतफ़हमी के कारण है या मनुष्य की सहानुभूतियों के कारण है, जो इसके आत्मिक प्रशासन के विरुद्ध खड़े होते हैं। परन्तु, एक मजबूत, स्वस्थ्य और पवित्र कलीसिया बनाए रखने के लिए कलीसिया में अनुशासन बहुत जरूरी है।

अनुशासन शब्द की परिभाषा

अनुशासन शब्द का अर्थ है:

1. सिखाना, सीखना, चेला बनाना।
2. प्रशिक्षण देना जो मानसिक क्षमताओं या आचरण को सुधारता, बनाता या सिद्ध करता है।
3. दण्ड, पीड़ा या दण्ड देने कि लिए।
4. एक नियम या नियमों की प्रणाली, जो आचरण या क्रियाओं का शासन करते हैं।

अनुशासन का अर्थ

निस्संदेह, नया नियम अनुशासन सिखाता है। इसके बिना शिष्यता असम्भव है। इसका रेंज संयम से कलीसिया में अनुशासन, और उपदेश से वार्तालाप तक है।

इसका तात्पर्य क्या है कि पवित्रशास्त्र आवश्यकता पड़ने पर इसके सदस्यों को अनुशासित करने की कलीसिया की जिम्मेवारी सिखाता है?

1. इसका अर्थ है कि मैं अपने भाई का रखवाला हूँ? "यदि कोई मनुष्य किसी अपराध में पकड़ा भी जाए तो तुम जो आत्मिक हो, नम्रता के साथ ऐसे को संभालो। तुम एक दूसरे का भार उठाओ।" (गलातियों 6:1-2)।
2. यह दिखाता है कि "हम में से न तो को अपने लिए जीता है" (रोमियों 14:7)। कभी-कभी कोई हमें कहता है कि हम अपने काम से काम रखो और दूसरों के काम में हाथ न डालो, परन्तु सच्चाई यह है कि परमेश्वर के परिवार होने के नाते आपका भाई आपका काम है।
3. यह स्पष्ट बताता है कि परमेश्वर पवित्र है और पाप कोई निरर्थक चीज नहीं है। आरंभिक कलीसिया में शुद्धता और सामर्थ्य थे जबकि आज की कलीसिया में दोनों की कमी है।
4. यह सिखाता है कि पाप छुतहा है। अनुशासन अच्छे और बुरे में भाग करने के लिए नहीं है, परन्तु यह छुतहा पाप को संगरोध करता है ताकि दूसरे इसे पकड़ न लें, क्योंकि हम इतने समान है कि उसी बुराई के शिकार हो सकते हैं। यह दण्डात्मक नहीं परन्तु पुष्टिकर है।

5. यह इस तथ्य को प्रकट करता है कि मसीही जीवन एक सामूहिक जीवन है। हम सबका एक देह में बपतिस्मा हुआ है, और एक सदस्य दुख उठाता है तो सब दुख उठाते हैं। व्यक्तिवाद विभाजन का पाप है (1 कुरिन्थियों 12:13, 23)।
6. यह आत्मिक सदस्यता का मन प्रकट करता है जो नए नियम में वर्तमान थी। लोग नए नियम की कलीसिया का अंग बन गए थे, नहीं तो उन्हें इसमें से निकाला नहीं जा सकता था (मत्ती 18:17)। जो लोग केवल रहस्यवादी, अदृश्य, विश्वव्यापी कलीसिया के सामान्य सदस्य हैं पवित्रशास्त्र में पाए गए नमूने को पूरा नहीं कर सकते हैं।
7. यह स्थानीय कलीसिया की प्रभुसत्ता प्रकट करती है। मत्ती 18:17 के अनुशासित किए गए लोग स्थानीय कलीसिया में पृथ्वी की एक सर्वोच्च न्यायालय पाते हैं। कोई कलीसिया-संबंधी ढाँचा, जिला अगुवे, निरीक्षक, विशप, या पोप नहीं थी जहाँ वे अपील कर सकते थे। स्थानीय कलीसिया का प्रमुख स्वर्ग में है।

अनुशासन की आवश्यकता

जैसा स्वाभाविक परिवार में है, वैसा ही आत्मिक परिवार में है। अनुशासन निम्नलिखित कारणों से आवश्यक है:

1. अनुशासन व्यवस्था और सुख-शान्ति सम्भव करने के लिए बनाया गया है। इसके बिना, अराजकता और अव्यवस्था होगी (न्यायियों 18:1; 19:1; 21:25)।
2. अनुशासन अधीनता का सिद्धान्त लाता है; मेरी इच्छा परमेश्वर के अधीन है या प्रतिकूल है।
3. स्वार्थीपन और हठ कलीसिया और परिवार में विनाश और दुर्दशा लाते हैं (यशायाह 14:12-14)।
4. प्रेम में किया गया अनुशासन व्यक्तियों और मण्डली को सुरक्षा की एक भावना देता, धर्मत्यागी को नरक से बचाता, और बुरी से बुरी समस्याओं को रोकता है।
5. परमेश्वर के वचन के नैतिक स्तर, कलीसिया में परमेश्वर की पवित्रता बनाए रखने के लिए अनुशासन आवश्यक है।
6. अनुशासन कच्चों का मार्गदर्शन करता, दुर्बलों को स्थिर करता, और लोगों को परिपक्वता में लाता है।

अनुशासन का दो-तरफा उद्देश्य

पवित्रशास्त्र में अनुशासन के दो मुख्य पहलू देखे जा सकते हैं, वे हैं:

1. पुनःस्थापना के लिए अनुशासन (गलातियों 6:1; प्रकाशितवाक्य 3:19; इब्रानियों 12:5-11)।
   यह पुनःस्थापना के लिए पश्चाताप लाने के लिए सुधार है। यह भ्रम का सुधार है, व्यक्ति का अस्वीकार नहीं है। व्यक्ति की पुनःस्थपित के दृष्टिकोण से उसका स्वीकरण है। व्यक्ति को बिना स्वीकार किए उसे पुनःस्थापित नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति से बिनाशर्त प्रेम और सम्पूर्ण स्वीकरण आवश्यक हैं परन्तु बुरा व्यवहार नहीं है।

   यह चंगा होने के लिए एक घाव है। कुरिन्थियों के मामले में भी बेदखल करना पश्चाताप और पुनःस्थापना लाया था (2 कुरिन्थियों 2:6-8; याकूब 5:19-20; 1 यूहन्ना 5:16; नीतिवचन 10:12; भजन 51:12; यिर्मयाह 3:22; 20:16-17; होशे 14:4; मीका 7:18-19)। परमेश्वर चाहता है कि हम किसी को मृत्यु से बचाएँ और उसे जीवन दें। यह बाइबल के अनुशासन द्वारा हो।

2. दण्डज्ञा के लिए अनुशासन (1 कुरिन्थियों 11:29-32; 2 कुरिन्थियों 2:6-8, 11)। कुरिन्थियों का मामला सामने है। वह कलीसिया से बेदखल किया गया था परन्तु फिर भी पश्चाताप द्वारा पुनःस्थापना के दृष्टिकोण से किया गया था।

परमेश्वर अपने साथ और विश्वासियों के साथ संगति की पुनःस्थापना लाने के लिए न्याय करेगा और दण्ड देगा। यदि लोग पाप पर परमेश्वर के न्याय को स्वीकार करने से इन्कार करते हैं तब वह अनन्त न्याय के साथ उनका न्याय करता है (यूहन्ना 5:24-29; 3:36; 1 पतरस 4:17; 1 कुरिन्थियों 5:1-5, 12-13; 6:1-11; यशायाह 4:4)।

अनुशासन के उदाहरण

<u>पुराने नियम के अनुशासन</u>

पुराने नियम के समयों में ईश्वरीय अनुशासन के अनेक उदाहरण हैं। हम उन में से कई एक का जिक्र करते हैं:

1. आदम और हव्वा को पाप के लिए ईश्वरीय अनुशासन और न्याय मिला (उत्पत्ति 3)।
   उन्हें अदन से निकाला गया, पाप के लिए मृत्यु की सजा के अधीन रखा गया।
   'पाप की मजदूरी मृत्यु है' (रोमियों 6:23)।
2. अब्राहम को फिरौन ने आचार-शास्त्र के कारण फटकारा था (उत्पत्ति 20)।

3. कैन का परमेश्वर ने मेमने को अस्वीकार करने और कत्ल के पाप के लिए न्याय किया था (उत्पत्ति 4)।
4. हारून को सोने के बछड़े के पाप के लिए फटकार मिली थी (निर्गमन 32:20-21)।
5. मरियम को अगुआई की आलोचना के पाप के लिए कोढ़ का न्याय मिला था (गिनती 13)।
   उसे 7 दिनों के बाद पुनःस्थापित किया गया था।
6. कोरह, दातान और अबीराम का परमेश्वर और उसकी अगुआई के विरुद्ध विद्रोह के कारण न्याय किया गया था (गिनती 16)।
7. आकान का लालच के पाप के कारण मृत्यु द्वारा उसके परिवार समेत न्याय हुआ (गिनती 7)।
8. शाऊल को उसके पाप के कारण खुले आम फटकार मिली और न्याय हुआ (1 शमूएल 13:13; 15:14)।
9. एक हठी विद्रोही पुत्र पत्थरवाह करके मार डाला गया था (व्यवस्ताविवरण 21:18-21)।
10. होप्नी और पीनहास का अनैतिकता और परिकल्पना के पाप के कारण मृत्यु से न्याय हुआ (1 शमूएल 2:23)।
11. राजा आहाब को एल्लियाह नबी ने उसके बुरे कामों के कारण फटकारा था (1 राजा 18:18)।
12. राजा उजिय्याह को घमण्ड और परिकल्पना के कारण मृत्यु तक कोढ़ी होना पड़ा था (2 इतिहास 26)।
13. एज्रा ने उनको फटकारा था जिनकी विचित्र पत्नियाँ थीं (एज्रा 10:18-23)।
14. नहेम्याह ने शासकों और अधिकारियों के साथ सब्त के उल्लंघन और परमेश्वर के घर को त्यागने के कारण विवाद किया था (नहेम्याह 13:11, 17)।
15. दानिय्येल ने राजा को उसके घमण्ड और परिकल्पना के कारण फटकारा था (दानिय्येल 5:22-23)।
16. नूह के दिन न्याय के दिन थे (उत्पत्ति 6-8; लूका 17:26-27)।
17. सदोम और अमोरा के दिन न्याय के दिन थे (उत्पत्ति 18-19; यहूदा 7; मत्ती 11:20-24)। लूत की पत्नि को याद करो।
18. मिस्र के देश का परमेश्वर ने न्याय किया था (उत्पत्ति 15:14; निर्गमन 5-14)।
19. बेबिलोन के गुम्मट पर परमेश्वर का न्याय (उत्पत्ति 10-11)।
20. इस्राएल और यहूदा के देशों पर परमेश्वर का न्याय आया था हालँकि वे परमेश्वर के लोग थे (निर्गमन 31-33; व्यवस्थाविवरण 27-28)।

इस्राएल में कुछ ईश्वरीय अनुशासन बहिष्करण होता था और कभी-कभी मृत्यु का दण्ड होता था। ये सब हमारे लिए प्रतीक और उदाहरण थे जो जगत के अन्तिम समय में रहते हैं (1 कुरिन्थियों 10:6, 11)।

बहिष्करण:

नीचे दिए पुराने नियम के उदाहरणों में, हम उन ईश्वरीय कारणों को पाते हैं जो लोगों को इस्राएल के कैम्प से निकालने के समय दिए गए थे, या "लोगों में से नष्ट किया जाए" भी कहा जाता था। उनमें से कुछ कारण हैं:

* खतने की वाचा की छाप स्वीकार करने में असफलता (उत्पत्ति 17:4)।
* अखमीरी रोटी के पर्व के समय खमीरी रोटी खाना (निर्गमन 12:15)।
* पवित्र अभिषेक का तेल या धूप का नकली बनाना (निर्गमन 30:33, 37)।
* लहू खाना (लैव्यव्यवस्था 7:27)।
* तम्बू के द्वार से दूर होमबलि चढ़ाना (लैव्यव्यवस्था 17:8-9)।
* बलिदान के बाद तीसरे दिन मेलबलि खाना (लैव्यव्यवस्था 19:7)।
* एक स्त्री के साथ उसके प्रकृतिक अशुद्धता के समय सम्बंध बनाना (लैव्यव्यवस्था 20:18)।
* पवित्र चीजों के पास अशुद्ध स्थिति में आना (लैव्यव्यवस्था 22:3)।
* फसह के पर्व को मनाने में असफलता (गिनती 9:13)।
* व्यक्ति में कोढ़ की विपत्ति होना (गिनती 5:2-4)।
* ढीठ होकर पाप करना (गिनती 15:31)।
* मृत्यु की अशुद्धता से अपने को शुद्ध करने में असफलता (19:13)।

मृत्यु दण्ड

परमेश्वर की व्यवस्था के कुछ गम्भीर उल्लंघनों का दण्ड, दो या तीन की गवाहियों के साथ, मृत्यु दण्ड था। उनमें से कुछ नीचे दिए गए हैं:

* मूर्तिपूजा (व्यवस्थाविवरण 17:2-6)।
* कुछ मामलों में याजकों के निर्णय के विरुद्ध तिरस्कार और विद्रोह (व्यवस्थाविवरण 17:8-13)।
* झूठी गवाही (व्यवस्था. 19:18)।
* हठी और विद्रोही पुत्र (व्यवस्था. 21:18)।
* एक पति को कुँआरेपन के उल्लंघन का पता चलना (व्यवस्था. 22:13-21)।
* व्यभिचार (व्यवस्था. 22:22)।
* मँगनी हुई के साथ अनैतिक व्यवहार (व्यवस्था. 22:23-24)।
* समलिंगकामुकता (लैव्यव्यवस्था 18:22; 20:13) और पशुगमन (लैव्यव्यवस्था 18:23-30; 20:15-16)।

नए नियम के अनुशासन

नया नियम भी विभिन्न चीजों का वर्णन करता है जिन्हें कलीसिया में ईश्वरीय अनुशासन के अधीन होना चाहिए। यदि अगुआई भ्रम में पड़े हुओं से नहीं निपटती, तो सारी मण्डली अशुद्ध हो सकती है। इस सच्चाई का कुरिन्थियों की कलीसिया उदाहरण है। हम ने कुछ चीजें लिख ली हैं, जो एक कलीसिया में अनुशासन के अधीन थीं और होनी चाहिए।

कोई भी कलीसिया यदि पाप का न्याय नहीं करती उन्नति नहीं कर सकती है। प्रभु उसकी आशीष खींच लेगा (प्रकाशित. 1-2-3)। पाप छुतहा है। देह का आत्मिक स्वास्थ्य खतरे में है। एक सदस्य में पाप "खमीर" के समान है (1 कुरिन्थियों 5:6-7)। पाप सारी देह को प्रभावित कर सकता है (यहोशू 7, आकान; 1 कुरिन्थियों 5, व्यवभिचारी; और प्रकाशित. 2:14-16, 20-23, मूर्तिपूजा, अनैतिकता और झूठी शिक्षा)।

किन अपराधों के लिए कलीसिया के अनुशासन की आवश्यकता है?

अ - सिद्धान्त-सम्बंधी अपराध

पौलुस हुमिनयुस और सिकन्दर से पुनरुत्थान के सिद्धान्त के बारे में निपटा था (1 तीमुथियुस 1:20; 2 तीमुथियुस 2:17-26)। हुमिनयुस और फिलेतुस भी।
जो सिद्धान्त भक्तिपूर्ण जीवन के अनुसार नहीं थे उनसे निपटा गया था (1 तीमुथियुस 6:3-5)।
मूर्तिपूजा और अनैतिकता के सिद्धान्तों के साथ निपटा गया था (प्रकाशित. 2:12-17)।
जो सिद्धान्त विभाजन लाते है और प्रेरितों की शिक्षा के विरुद्ध हैं उनसे निपटा गया था (रोमियों 16:17-18)।
विधर्म और दुष्टात्माओं की शिक्षाएँ (1 तीमुथियुस 4:1-3; तीतुस 3:9, 11; 1 यूहन्ना 4:1; मत्ती 7:15; गलातियों 1:7-10; 2 पतरस 2:1-4; यहूदा 4)।
इनसे "बचे रहना" (2 तीमुथियुस 2:16); "अलग रहना" (2 तीमुथियुस 2:23); "झगड़े से बचना" (2 तीमुथियुस 2:25); "अलग होना" (1 तीमुथियुस 6:3, 5); "शैतान को सौंप देना" (1 तीमुथियुस 1:20); "न तो घर में आने दो और न नमस्कार करो" (2 यूहन्ना 10); और "दूसरी शिक्षा देने से मना करना" (1 तीमुथियुस 1:7)।
इन्हें "उलाहना दे और डाँट और समझा" कि वे खरी शिक्षा में बने रहें (2 तीमुथियुस 4:1-2; तीतुस 1:1; 2 पतरस 1:3)। मत्ती 5:9; यूहन्ना 15:9; मत्ती 24:11-13; रोमियों 16-17-18; तीतुस 3:10; गलातियों 1:7-9 भी पढ़ो।
झूठी शिक्षा लोगों का 'विश्वास दूर करती' और 'जहाज डुबा देती' है (1 तीमुथियुस 1:19)। कलीसिया के अनुशासन में, इनसे परमेश्वर की सुरक्षा ले ली जाती है, और उन्हें शैतान के हाथ में सौंप दिया जाता है जिनसे उन्होंने उनकी झूठी शिक्षा पाई थी।

आ - व्यवहार-सम्बंधी अपराध

मसीह की देह के सदस्यों के विरुद्ध अपराध भी निपटे जाने चाहिए। एक दूसरे के अंग होने के कारण, हम में से कोई भी अपने लिए नहीं जीता है (मत्ती 25:40; 1 कुरिन्थियों 8:2; मत्ती 10:40; 18:5; लूका 10:16; प्रेरितों 9:4)।

इसका सम्बंध किसी एक घटना या गलती से नहीं है, बल्कि एक भाई या बहन के निरन्तर जीवनशैली से है। यह परमेश्वर के परिवार में, भाईयों और बहनों से निपटा जाना है - बाहरवालों से नहीं। उनसे परमेश्वर निपटता है - कलीसिया नहीं (1 कुरिन्थियों 5-12-13)।

➢ **व्यभिचारी** - 1 कुरिन्थियों 5:1

सामान्यतः, यह अविवाहितों के बीच अनैतिकता है। मत्ती 19:5; 5:32 में, यह व्यभिचार को सम्मिलित करता है (विवाहितों के बीच अनैतिकता)। यह नैतिक अशुद्धता से निपटता है। कुल मिलाकर, इसमें समलिंगकामुक, स्त्रीसमलिंगकामुक, नैतिक कामविकृति सम्मिलित है। 1 कुरिन्थियों 5:1-5 में यह कौटुम्बिक व्यभिचार है: अपने पिता की पत्नी के साथ।
विस्तृत शब्दों में, इसमें सब अनुचित लैंगिक सम्बंध सम्मिलित हैं। यदि निपटा न गया तो यह कलीसिया में खमीर का काम करता है (1 कुरिन्थियों 5 और 2 कुरिन्थियों 12:20-21 पढ़ो)। अनैतिक लोगों के साथ खाओ मत और न सम्बंध रखो। अनैतिक लोग कलीसिया की आड़ में छिपे रहते हैं। जब कलीसिया निष्कासित करती है तब परमेश्वर उनसे निपट सकता है।

- **लोभी** - 1 कुरिन्थियों 5:11
  जो अत्यन्त इच्छुक, लालची है। अवैध कामुकता।
  हनन्याह और सफीरा (प्रेरितों 5:1-11)।
  गेहजी (2 राजा 5:20-27)। लालच प्रदर्शित हुआ था।
  जादूगर शिमौन (प्रेरितों 8:18-23)।
  सगुनिया भविष्यद्वक्ता बिलाम (गिनती 22; यहूदा 11)।
  लालच में काफी चीजें आती हैं, परन्तु अनेक मामलों में (1 पतरस 5:2) यह रुपये-पैसे के प्रेम में दिखता है। लालच मूर्तिपूजा है (इफिसियों 5:5)। फिलिप्पियों 3:15-19; लूका 12:15, 34; यूहन्ना 6:26, 27; रोमियों 1:29; 13:9; कुलुस्सियों 3:2-6; 1 थिस्स. 2:5; 1 तीमुथियुस 3:3; 6:5-17; 2 तीमुथियुस 3:2; इब्रानियों 13:5; याकूब 4:2; 2 पतरस 2:3; 1 यूहन्ना 2:15 भी पढ़ो।
  यहूदा को याद रखो!

- **मूर्तिपूजक** - 1 कुरिन्थियों 5:11
  एक व्यक्ति या चीज पर अत्यधिक स्नेह। कुछ भी जो परमेश्वर और मनुष्य के बीच आता है मूर्तिपूजा है।
  1. **आक्षरिक मूर्तियाँ** - 1 कुरिन्थियों 6:9; 10:14, 20; प्रकाशितवाक्य 21:8। इसलिए, चित्र, प्रतिमाएँ, सन्तों की उपासना, बुद्धा, आदि, और भौतिक, शारीरिक या आत्मिक वस्तुएँ, और आत्मवाद - सब मूर्तिपूजा हैं। हमारे सामने या परमेश्वर के अलावा दूसरा देवता नहीं होना चाहिए।
  2. **आत्मिक मूर्तियाँ** - इफिसियों 5:5; कुलुस्सियों 3:5। लालच मूर्तिपूजा है। रोमियों 1:23। परमेश्वर और विश्वासी के बीच कुछ भी मूर्ति बन जाती है।

- **निन्दक** - 1 कुरिन्थियों 5:11; 1 पतरस 3:9; नीतिवचन 26:4
  "एक मौखिक उपद्रवी, बुरा बोलनेवाला, झगड़ालू, अत्यधिक विवादी।" यह निन्दात्मक भाषा, घृणात्मक, एक जो सबकुछ के विरुद्ध है, अगुवों और भाइयों के बारे में बुरी बातें बोलता और निन्दा करता है। एक जिसके साथ जीना असम्भव है।
  1 तीमुथियुस 6:4; कुलुस्सियों 3:8; इफिसियों 4:31। बुराई करने की निन्दा की गई है। कुछ अधिकारियों की बुराई करने से डरते नहीं हैं (2 पतरस 2:10)। यूहन्ना को दियुत्रिफेस से उसके अहंकार के लिए निपटना पड़ा (3 यूहन्ना 9-10)।

- **शराबी** - 1 कुरिन्थियों 5:11
  एक जो आदतन् पीता है, और निरन्तर शराब के नशे में रहता है। आदतन् नशा करना एक नैतिक कमज़ोरी है।
  गलातियों 5:19, नशा शरीर का काम है।
  इफिसियों 5:18, हमें शराब के नशे में नहीं होना है।

  रोमियों 13:13; 1 थिस्स. 5:7; नीतिवचन 20:1; 23:20-21; 23:29-35; यशायाह 5:11; व्यवस्थाविवरण 21:20-21 भी पढ़ो।

- **लुटेरा** - 1 कुरिन्थियों 5:11
  "एक व्यक्ति से अत्याचार, या अधिकार के दुरुपयोग द्वारा लेना।" यह लाभ उठाने की गहरी इच्छा है और ऐसे व्यक्ति की बात करता है जो उन पर छपट पड़ता है और बल से उन्हें ले लेता है, या जो रुपया-पैसा (या जो भी वह चाहता है) धमकी, बल, धोखा, या अधिकार के अवैध उपयोग द्वारा लेता है। यह लालच के समान है।

  यह ऐसे व्यक्ति का अपराध है जो रुपया-पैसा या कुछ भी कीमती चीज गैर कानूनी तरीके से (अर्थात् झूठे चैक लिखकर, आदि) अपने अधिकार का उपयोग करके ले लेता है।

चोर....अन्धेर करनेवाला (1 कुरिन्थियों 6:10)। भजन 109:11; यशायाह 16:4; यहेजकेल 22:12; मीका 3:2-3; मत्ती 23:25; लूका 18:11 भी पढ़ो।

- **उपद्रवी व्यवहार** - 2 थिस्स. 3:6-15
  "अनुचित चाल चलता", जैसे सेना की एक टुकड़ी मार्च कर रही है और उनमें से एक कदम से कदम नहीं मिलाता। ऐसा जो अवज्ञाकारी और रवैये में हठी है; जो परिश्रम और आश्रय का सिद्धान्त बारम्बार तोड़ता है। आलसी दस्तंदाज! ऐसे एक व्यक्ति से "संगति नहीं करनी" है (2 थिस्स. 3:5)। इसलिए यह निष्कासन का मामला नहीं है जैसा मत्ती 18:17 में है।
  अनुचित चाल चलनेवालों को चुपचाप काम करके अपनी ही रोटी खानी है (1 थिस्स. 5:11-12, 14; 2 थिस्स. 3:11)। खाना नहीं = यदि काम नहीं करता तो राशन नहीं।

  अस्तव्यस्तता = "सुस्ती, आलसपन, आलसी, दस्तंदाज"। इसमें गैरजिम्मेवारी सम्मिलित है (लूका 16:11; 1 तीमुथियुस 5:8, 13; 2 थिस्स. 3:7-9; नीतिवचन 6:6-11; 18:9; 19:15; मत्ती 25:26; रोमियों 12:11)।
  उसे काम करने के लिए और कलीसिया के सन्तों के अतिथि-सत्कार पर "परजीवी" नहीं बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस प्रकार वह अपनी आवश्यकताएं पूरी कर सकेगा और दूसरों की भी सहायता कर सकेगा।

- **फूट डालनेवाले** - रोमियों 16:16-18
  जो खरी शिक्षा के विपरूत फूट डालते हैं उन्हें अनुशासित किया जाना चाहिए। उन पर ध्यान देकर उनको दूर रखना चाहिए। जानबूझकर उनकी संगति मत करो। अगुआई भी उनके पीछे चेलों को खींचकर कलीसिया के भाग करते हैं (प्रेरितों 20:28-32)।

  जो सिद्धान्त विशेषकर बाइबल के उद्धार-सम्बंधी सच्चाइयों के विपरीत हैं दूर रखे जाने चाहिए।

- **साम्प्रदायिकता** - 1 कुरिन्थियों 3:1-3; फिसियों 5:12; 2 कुरिन्थियों 7:11-12।
  साम्प्रदायिकता सांसारिकता का प्रमाण हैं और अनुशासित की जानी चाहिए। पौलुस का पत्र सुधार लाने और इससे निपटने के लिए लिखा गया था।

- **अक्षमाशील रवैया** - मत्ती 5:25; 18:15-35; लूका 12:58।
  क्षमा करने में असफलता के कारण व्यक्ति अपने आप को परमेश्वर के न्याय में लाता है।

- **देह को न पहचानना** - 1 कुरिन्थियों 23-32।
  इस पर पहले बात की गई है। परन्तु, कमज़ोरी, बीमारी और अकाल मृत्यु ये सब परमेश्वर के न्याय के अंश हैं। यदि हम अपने को परखें तो न्याय से बच सकते हैं, परन्तु परमेश्वर हमारी ताड़ना करता है ताकि हम संसार के साथ दण्ड न पाएँ।
  - जादूगर का मसीह के सुसमाचार का विरोध करने के लिए न्याय किया गया था (प्रेरितों 13:6-12)।
  - जो अपने भाई से मेल-मिलाप करने से और गवाहों की बात और कलीसिया की सुनने से इन्कार करता है निष्कासित किया जाएगा (मत्ती 18:15-20; 5:21-26)।
  - पवित्र आत्मा से झूठ बोलना न्याय लाया था (प्रेरितों 5:1-1)।

ये चीजें खमीर या कोढ़ के समान काम करती हैं और यदि निपटी न गई तो सारी देह में फैल जाती हैं। कलीसिया परमेश्वर का घर और उसके लोगों के लिए आवरण है। इस आवरण में रहकर, वे अनुशासन से बच सकते हैं। कभी-कभी परमेश्वर उनसे निपटने के लिए उन्हें बाहर लाएगा (1 शमूएल 2:25)।
बंजर भूमि में अज्ञानता के पापों से कलीसिया में निपटा गया था (लैव्यव्यवस्था 4; गिनती 15: 24-31), और उनके साथ, प्रकल्पना के पाप, व्यक्ति, कपड़ों या घर में कोढ़ निराला जाना चाहिए (लैव्यव्यवस्था 13, 14)।

अनुशासन कौन लाता है?

वह कौन है या वे कौन हैं जो कलीसिया के संदर्भ में अनुसासन ला सकते हैं।

1. **परमेश्वर का अनुशासन**

कभी-कभी अपनी प्रभुसत्ता में अनुशासन लाता है। वह अपने लोगों की ताड़ना करता है (इब्रानियों 12:5; नीतिवचन 3:11, 12; 1 कुरिन्थियों 11:29-32; याकूब 5:14, 15; 1 यूहन्ना 5:16, 17)। कभी-कभी "ऐसा पाप भी है जिसका फल मृत्यु है।"

2. **आत्मिक सदस्य** (गलातियों 6:1)

"तुम जो आत्मिक हो, नम्रता के साथ ऐसे को सम्भालो।" सांसारिक तरीके से समस्या से निपटने पर अधिक गड़बड़ होगी (1 कुरिं. 6:4)। केवल आत्मिक रूप से परिपक्व ही अनुशासन लाएँ और वे भी जो एल्डर हैं वे ही। सामान्यतः माता-पिता बच्चों को अनुसासित करते हैं बच्चे माता-पिता को नहीं। इसलिए वैसा ही कलीसिया के माता-पिता को करना चाहिए। पौलुस जो प्रभु में एक पिता था, ने कुरिन्थियों को पूछा वे क्या चाहते हैं वह उनके पास छड़ी लेकर आए (1 कुरिन्तियों 4:15-21)।

3. **सम्पूर्ण कलीसिया**

कभी-कभी सारी कलीसिया एक व्यक्ति के अनुशासन का अनुप्रमाणित करती है। यह मत्ती 18:15-20 के अध्ययन से प्रमाण मिलता है।

"तो कलीसिया से कह दे, परन्तु यदि वह कलीसिया की भी न माने...।"

"शरीर के विनाश के लिए शैतान को सौंपा जाए, ताकि उसकी आत्मा प्रभु यीशु के दिन में उद्धार पाए" (1 कुरिन्थियों 5:4)।

"यह दण्ड जो भाइयों में से बहुतों ने दिया...।"

इस प्रकार, व्यक्ति को संगति से निकाया या निष्कासित किया गया था। इसे सारी कलीसिया को स्वीकार करना है। उसके साथ सम्पर्क का एक ही कारण था उसे पश्चाताप करना और पुनःस्थपित होना, नहीं तो उन्हें उसके साथ खाना-पीना भी नहीं है।

अनुशासित क्रिया के सिद्धान्त

कलीसिया के अनुशासन में कुछ सिद्धान्त उपयोग होने चाहिए। याद रखने की बात है कि अनुशासन की सारी क्रिया पुनःस्थापना के उद्देश्य से है।

अनुशासन किया जाना चाहिएः

1. वचन द्वारा और वचन के अनुसार (यूहन्ना 12:47, 48; 2 कुरिन्थियों 11:3; प्रकाशितवाक्य 2:2; मत्ती 24:11; 2 पतरस 2:1)।
2. परमेश्वर की दया के सन्तुलन में (याकूब 2:12-13; लूका 17:2-4; लैव्यव्यवस्था 19:17)।
3. सच्चाई और धार्मिकता में (जकर्याह 7:9-10; यहेजकेल 44:17-24; यशायाह 32:1, 16; 16:5; भजन 122:5; 101:1)। दया और सच्चाई, धार्मिकता और शान्ति परमेश्वर का सन्तुलन है।
4. परमेश्वर के प्रेम में (1 कुरिन्थियों 13; प्रकाशितवाक्य 3:19)।
5. नम्रता और दीनता की आत्मा में, अपनी दीनता को मन में रखते हुए (2 तीमुतियुस 2:25; गलातियों 6:1; इफिसियों 6-4)।

प्रेम और नम्रता के बिना अनुशासन विद्रोह लाता है। दण्ड के बिना अनुशासन अकसर प्रभावहीन होता है, कुछ परिणाम नहीं लाता।

अनुशासन की बाइबल की क्रियाविधि

ऐसा नहीं हो सकता कि अगुआई कलीसिया के अनुशासन में अन्धाधुन्ध कार्य करे और परमेश्वर से उसके समर्थन की अपेक्षा करे।

1. **ऐकान्तिक अनुशासन**

अधिकाँश अनुशासन व्यक्तिगत स्तर पर किए जाने चाहिए। साधारणतः कोई भी अपनी गुप्त बातें पड़ोसी को नहीं बताता। यदि अपराध या दोष निजी है तो इससे ऐकान्त में निपटा जाना चाहिए।

यदि मत्ती 18:20 का पहला मूल सिद्धान्त माना जाए तो कलीसिया के सदस्यों में कितनी समस्याएँ टाली जा सकती हैं। "तो जा...।" "जा" के जोर पर ध्यान दो। 9मत्ती 5:24; 18:15; लूका 17:3-4; लैव्यव्यवस्था 19:17)।

2. **खुला अनुशासन**

मत्ती 18:5-20 स्पष्ट रूप से कलीसिया के सदस्यों के मेल-मिलाप का क्रम और निष्कासन यदि वे हठ के कारण और जानबूझकर मेल करने और कलीसिया की सुनने से इन्कार करते हैं, बताती है। इसके लिए यीशु द्वारा बताए कदमों पर ध्यान दो।

अ) पहला कदम और चेतावनी

यदि भाइयों (या बहनों) के बीच कुछ नाराजगी है तो "जो और अकेले में बातचीत करके उसे समझा।"
इसमें सम्मिलित है:

- पहुँच में सही रवैया और तरीका;
- सही हृदय से कहे गए सही शब्द;
- भाई के साथ मेल-मिलाप की सच्ची इच्छा;
- मेल-मिलाप करनेवाले व्यक्ति का स्वीकरण।

(मत्ती 18:15; गलातियों 6:1; नीतिवचन 25:9; 16:28; मत्ती 5:24; लूका 17:3-5)। आपको उसके पास **अकेले** जाना है। मसीह के अनुसार मेल-मिलाप का यह **पहला** और मूल कदम है।

आ) दूसरा कदम और चेतावनी

परमेश्वर के सामने सच्चाई और ईमानदारी और नम्रता के साथ और पहला कदम उठाने के बाद यदि भाई मेल-मिलाप से इन्कार करता है, तब पवित्रशास्त्र कहता है एक या दो जन को अपने साथ और ले जा (मत्ती 18:16)।
इसमें सम्मिलित है:

- सम्भवतः व्यक्ति के कुछ करीबी मित्र।
- जिन व्यक्तियों में उसको भरोसा है।
- आत्मिक रूप से परिपक्व व्यक्ति हैं।
- व्यक्ति जिनमें समझ है।
- व्यक्ति जो खुद भी मेल-मिलाप होता देखना चाहते हैं।

गलातियों 6:1; रोमियों 15:14; 1 कुरिन्थियों 4:14; कुलुस्सियों 3:16 दोबारा पढ़ो।
यह दो या तीन गवाह मेल-मिलाप लाने के दृष्टिकोण से, प्रेमभरी समझबूझ, नम्रता और अनुमान उपयोग करते हुए सारी बात को सुन और परख सकते हैं।
दूसरी चेतावनी अपराधी को जगाने के लिए और उनको उनकी गलती जताने के लिए और उसे सुझारने की आवश्यकता के लिए बनाया गया है। इसे आत्मिक सदस्यों का प्रभाव और उनकी चेतावनी को लाने के लिए है ताकि अपराधी के मेल-मिलाप की ओर विरोध को तोड़ा जा सके। इसका उद्देश्य अपराधी को कलीसिया के पास जाने से पहले अगला कदम दिखाना है, यदि वह इन दो कदमों की ओर प्रतिक्रिया नहीं दिखाता (नीतिवचन 25:9-12; 27:5-6; 16:28)।

इ) अन्तिम कदम और चेतावनी

मत्ती 18:17; 1 तीमुथियुस 5:20; 1 कुरिन्थियों 5:13; यूहन्ना 20:23। अन्तिम कदम और चेतावनी व्यक्ति को जो मेल-मिलाप से इन्कार करता है कलीसिया के सामने लाना है। यह ऐसा लगता है जैसे कि सारी स्थानीय कलीसिया को, या कई लोग जो मण्डली के प्रतिनिधि हैं, उठना है और व्यक्ति से मेल-मिलाप करने के लिए आग्रह करना है। नाराज व्यक्ति की सुनने के बाद, दो या तीन गवाहों को सुनने के बाद, और फिर कलीसिया के सामने लाने के बाद, निश्चय ही वह कलीसिया की सुनेगा।
इसमें बेशक कलीसिया की सेवकाई सम्मिलित होगी, दो या तीन गवाह भी होंगे, और सारी बात मण्डली के सामने रखी जाएगी। यह कदम भी मेल-मिलाप लाने के लिए है। उद्देश्य जैसा अदालत में होता है वैसा न्याय करना या दण्ड देना नहीं परन्तु उसे जीतना है। उसे नीचा दिखाना नहीं परन्तु मेल-मिलाप कराना है। वह हृदय कितना कठोर होगा जो इन तीन कदमों का इन्कार करता है।
"यदि वह कलीसिया की भी न माने..." यह अन्तिम पाप है, आवश्यक नहीं यह आरम्भिक पाप है जिससे निपटने चले थे। यह उसके भाई की, दो या तीन गवाहों की सुनने से इन्कार, और अन्त में उसकी कलीसिया की सुनने से इन्कार है।
अब चौथे कदम के अलावा कोई कदम नहीं है।

ई) चौथा कदम – बहिष्करण

जब बाकी सबकुछ असफल हुआ है, तो यह आखिरी सहारा है। उसे सबके सामने फटकारा गया है (1 तीमुथियुस 5:19-21)।

अब बहिष्करण होता है। उसे स्थानीय मण्डली से अलग कर किया जाता है जैसे पुराने नियम के लोगों को "नष्ट किया" जाता था (निर्गमन 12:15-19; लैव्यव्यवस्था 17:4-9; गिनती 19:20)।

जैसे दूसरों को अराधनालय में से निकाल दिया जाता था, वैसे ही इस व्यक्ति को कलीसिया से निकाल दिया जाता है (लूका 6:22; यूहन्ना 9:22; 12:42; 16:2)। एक यहूदी को आराधनालय और समाज से भी निकाल दिया जाता था। यह देशनिकाला, शाप देना होता था। यहूदियों ने यीशु को शाप दिया था (1 कुरिन्थियों 12:3)। यदि कोई प्रभु से प्रेम न करे तो वह शापित हो (1 कुरिन्थियों 16:22)।

यहाँ व्यक्ति को कलीसिया से बाहर फेंक दिया जाता है, और वह एक सांसारिक और पापी बन जाता है। यह सारी कलीसिया के अधिकार से हुआ है और परमेश्वर इसका समर्थन करता है। 1 कुरिन्थियों 5:4; 2 कुरिन्थियों 2:6; 1 शमूएल 2:25 पढ़ो।

यहाँ कलीसिया उन में से दुष्ट व्यक्ति को निकाल देती है। कलीसिया में एकता होना जरूरी है। सब सदस्यों को चिन्ता है और सब इस कार्य के लिए सहमत होने चाहिए। यदि कुछ विश्वास नहीं करते तो विचारों में विभाजन होता है और परमेश्वर के वचन के विरुद्ध सहानुभूति खड़ी होती है (1 कुरिन्थियों 1:10)।

यह "बाँधना और खोलना" है जो कलीसिया के अनुशासन के संदर्भ में कहा गया है। व्यक्ति को "बाँध" दिया जाता है और जब तक वह मन नहीं फिराता "खोला" नहीं जा सकता है।

उ) पाँचवा कदम – पश्चाताप / मेल–मिलाप

यदि इच्छित अनुशासन काम करता है तो व्यक्ति को सच्चा पश्चाताप करना चाहिए, अंगीकार करना, नाराज व्यक्ति के साथ मेल-मिलाप करना चाहिए, और कलीसिया में सार्वजनिक अंगीकार और मेल-मिलाप करना चाहिए। तब उसे "खोला" जाता है और वापस पहले समान कृपापात्र बन जाता है।

अनुशासन के बाइबल के प्रभाव

अनुशासन के क्षेत्र को अच्छी तरह समझने के बाद, हम कुछ चीजों पर ध्यान देंगे जो अनुशासन में होती हैं।

1. अपश्चातापी व्यक्ति को कलीसिया में से निकाला जाता है और अन्यजाति और महसूल लेनेवाले या पापी समान माना जाता है। वे तब तक बँधे रहेंगे जब तक कलीसिया उन्हें खोलती नहीं (मत्ती 18:15-20)।
2. व्यभिचारी व्यक्ति को शरीर के नाश के लिए शैतान के हाथ में कर दिया गया था (1 कुरिन्थियों 5:3-5)।
3. हनन्याह और सफीरा पवित्र आत्मा से झूठ बोलने के कारण मारे गए, पतरस ने केवल घोषित किया (प्रेरितों 5:1-11)।
4. जादूगर को मसीह के सुसमाचार का सामना करने के कारण पौलुस द्वारा अंधा कर दिया गया था (प्रेरितों 13:6-13)।
5. फूट डालनेवालों को ध्यान में रखा गया और निकाल दिया गया (रोमियों 16:16-18)।
6. भाई जो 1 कुरिन्थियों 5:1-13 में गुट के थे सन्तों द्वारा संगति से बाहर किए गए थे ।
7. जो भाई अव्यवस्थित जीवन जीते थे उनसे दूर रहना है, परन्तु शत्रु नहीं मानना है (2 थिस्स. 3:6-15)।
8. पाप लोगों के विरुद्ध रखे जाएँगे जब तक वे मन नहीं फिराते और मेल-मिलाप नहीं करते (मरकुस 2:7; यूहन्ना 20:23; मत्ती 18:18; 2 कुरिन्थियों 5:19)।

सेवा का अनुशासन

पवित्रशास्त्र कहता है कि सेवा को भी अनुशासन में होना है। जब तक अगुआई वालों से जो भ्रम में हैं, निपटा नहीं जाता, तो जो उनके अधीन हैं उनकी अगुआई से प्रभावित होंगे।

यदि एल्डर के अपराधों का सबको पता है तो उनसे मण्डली में निपटा जाना चाहिए।

किसी भी मण्डली के लिए यह जानना आवश्यक है कि यह परमेश्वर है जो अगुआई की सेवाओं को अनुशासित करता है - लोग **नहीं**!

यदि लोग इसे करने के लिए उनके हाथों में लेते हैं तो, परमेश्वर लोगों का न्याय करेगा हालाँकि सेवा को अनुशासन की आवश्यकता थी। उसने कहा है, "मेरे अभिषिक्तों को मत छूओ, न मेरे नबियों की हानि करो।" (भजन 105:15)।

दाऊद ने राजा शाऊल को जो प्रभु का अभिषिक्त था, हाथ नहीं लगाया, हालाँकि राजा शाऊल गलत था (1 शमूएल 26:9)। दाऊद ने पद का सम्मान किया - हालाँकि शाऊल ने अभिषेक और प्रभु के आत्मा को खो दिया था। हालाँकि दाऊद के लोगों ने उसे शाऊल का वध करने को उकसाया, परमेश्वर ने इन अवसरों को दाऊद के हृदय को परखने के लिए उपयोग किया।
प्रकाशितवाक्य 1-2-3 दिखाते हैं "स्वर्गदूत" उसके हाथ में हैं, मसीह जो कलीसिया का सिर है उन्हें थामे हुए, सम्भाले हुए है और अनुशासित करता है।

1. **प्रभु के अभिषिक्त को मत छूओ**

अ) तारे अनुशासित करने के लिए उसके हाथ में हैं (प्रकाशित. 1:20)।

आ) अगुआई अनुशासित करने के लिए उसके द्वारा अभिषेक पाई हुई है (1 कुरिन्थियों 16:22)।

इ) मरियम और हारून ने जब मूसा को छूआ उनका न्याय किया गया (गिनती 12)।

ई) कोरह और साथियों ने जब मूसा और हारून को छूआ उनका न्याय किया गया (गिनती 16)। यहूदा 11 भी पढ़ो।

उ) नदाब और अबीहू का सेवा के रूप में मृत्यु द्वारा न्याय हुआ (लैव्यव्यवस्था 10:1-3)।

ऊ) परमेश्वर ने, न कि दाऊद ने, समय पर शाऊल का न्याय किया (1 शमूएल 26:9-11)।

ए) एल्डरों के विरुद्ध, दो या तीन गवाहों के बिना कोई दोषारोपण मत सुनो (1 तीमुतियुस 5:1, 19-21)।

ऐ) परमेश्वर अपने लोगों के चरवाहों का न्याय करेगा (यिर्मयाह 23:1-3; यहेजकेल 34:1-10)।

2. **ईश्वरीय प्रभुसत्ता**

अ) कभी-कभी परमेश्वर उसकी प्रभुसत्ता में, उसके अगुवों को अनुशासित करता है। इसे लोगों के लिए नहीं छोड़ा जाता है।

आ) नदाब और अबीहू का परमेश्वर ने खुद न्याय किया था (लैव्यव्यवस्था 10:1-3)।

इ) मरियम को कोढ़ लगा, और हारून को प्रभु से फटकार मिली (गिनती 12)।

ई) परमेश्वर ने शाऊल को युद्ध में मरने दिया, इससे शमूएल का वचन पूरा हुआ (1 शमूएल 15)।

उ) कोरह और उसके विद्रोही साथियों ने परमेश्वर का न्याय देखा (गिनती 16)।

ऊ) जिन्होंने हारून के याजकपन को छूआ उन पर परमेश्वर ने विपत्ति भेजी (गिनती 16-17)।

ए) मूसा और हारून, अगुआई के रूप में, ईश्वरीय अनुशासन में, प्रतिज्ञा के प्रदेश में जाने से चूक गए (गिनती 20:12; भजन 106:30-33)।

ऐ) हनन्याह और सफीरा का ईश्वरीय न्याय हुआ (प्रेरितों 5:1-11)।

3. **मनुष्य की जिम्मेवारी**

कभी-कभी परमेश्वर ने सेवाओं से निपटने के लिए सेवाओं को उपयोग किया; परन्तु, लोगों को कभी नहीं।

अ) नातान ने दाऊद को उसके पाप के लिए फटकारा (2 शमूएल 12:7)। एक नबी ने एक राजा को फटकारा।

आ) एक नबी, शमूएल ने एक राजा, शाऊल को उसके पाप के लिए फटकारा (1 शमूएल 13:13)।

इ) एक परमेश्वर के जन ने एली याजक को फटकारा (1 शमूएल 12:27-29)।

ई) पौलुस ने प्रेरित पतरस को फटकारा (गलातियों 2:11-14)।

उ) मूसा ने कोरह और साथियों को फटकारा (गिनती 16)।

ऊ) प्रेरितों और एल्डरों ने यहूदियों और अन्यजातियों के सिद्धान्तीय मामलों पर विचार-विमर्श किया (प्रेरितों 15)।

ए) पुराने नियम के दिनों में नबियों को राजाओं को उनके बुरे कामों के लिए फटकारने और डाँटने भेजा जाता था।

ऐ) प्रेरित यूहन्ना दियुत्रिफेस से निपटा (3 यूहन्ना 9, 10)।

ओ) निस्संदेह एल्डर झूठे नबियों को परखा करते थे (प्रकाशितवाक्य 2:2)।

औ) एल्डरों को जब दूसरे असफल होते हैं और उन्हें डाँट की आवश्यकता होती है निपटना चाहिए (1 तीमुथियुस 5:19-21)। एल्डरों पर बहुत आक्रमण, आलोचना, शिकायतें आदि होते हैं। परन्तु, यदि अधिकार का उल्लंघन होता है तो उससे निपटा जाना चाहिए। नहीं तो, कलीसिया में आदर और अधिकार की हानि होगी। एक एल्डर को एल्डरों के सामने फटकारा जाना चाहिए। यदि यह खुले में है तो इसे कलीसिया के सामने स्पष्ट किया जाना चाहिए। ऐल्डरों का आदर, प्रेम और आज्ञापालन किया जाना चाहिए क्योंकि वे झुँड के लिए परमेश्वर के सामने जिम्मेवार हैं (इब्रानियों 13:7, 17, 24)।

4. **सेवा और आचार-शास्त्र**

सम्भवत: सेवा में खराबी का एक सबसे सर्वनाश क्षेत्र है जो आचार-शास्त्र से सम्बंधित है। अनैतिकता नीचे दिए जीवन के क्षेत्रों में व्यक्ति को प्रभावित करती है, और सेवा में तो विशेषकर करती है, और इसलिए पवित्रशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार निपटा जाना चाहिए; नहीं तो, उद्धार के पुनःस्थापना को उचित रूप से लागू नहीं किया जा सकता है।
हम यहाँ आचार-शास्त्र से सम्बंधित सेवा के अनुशासन में कुछ महत्त्वपूर्ण चीजों को बता रहे हैं।

अ) **आचार-शास्त्र में** - जब विशेषकर आचार-शास्त्र में खराबी होती है तब सेवक अपने आपको अयोग्य कर देता है। एक पत्नी भी उसके अनैतिक आचरण के कारण उसके पति को अयोग्य कर सकती है।

आ) **घर में** - यदि एक एल्डर (सेवक) का अपना घर व्यवस्थित नहीं है तो वह परमेश्वर के घर पर शासन नहीं कर सकता है। इस व्यवस्था और शासन में पति / पत्नी और उसके बच्चे सम्मिलित हैं। पति / पत्नी के सम्बंध को दोबारा बनाना और स्थापित करना है।

इ) **मानसिक और भावात्मक रूप से** - आचार-शास्त्र की खराबी से व्यक्ति के मन और भावनाओं पर भी प्रभाव पड़ता है। इससे हुई बड़ी हानि और दोष की यातना को परमेश्वर के तरीके से निपटा जाना चाहिए। इसे सच्चे पश्चाताप, अंगीकार, शुद्धीकरण और नवीकरण से किया जाता है। पाप की सफाई को सहन नहीं किया जा सकता है; नहीं तो व्यक्ति बड़े धोखे का शिकार हो सकता है।

ई) **नैतिकशास्त्र** - यदि कोई सेवक नैतिक रूप से गिरता है, और यदि वह पवित्रशास्त्र के नियंत्रण में है तो उसे कुछ समय के लिए सार्वजनिक सेवा से त्यागपत्र देना चाहिए।

उ) **आत्मिक रूप से** - नैतिक खराबियों का विशेषकर सेवा में बहुत ही हानिकारक और सर्वनाश प्रभाव पड़ता है, क्योंकि व्यक्ति लोगों की नज़रों में बहुत होता है और एक भक्तिपूर्ण जीवनशैली के एक उदाहरण के रूप में देखा जाता है। इसलिए पहले आत्मिक पुनःस्थापना होनी चाहिए।

ऊ) **कलीसिया-सम्बंधी** - क्योंकि सेवक कलीसिया के सामने होता है, उसके प्रभाव का क्षेत्र महान होता है। क्योंकि हम में से कोई भी अपने लिए नहीं जीता है, हम सब दूसरों को प्रभावित करते हैं, इसलिए उचित और पवित्रशास्त्र पर आधारित अनुशासन होना चाहिए। नहीं तो कलीसिया को हानि उठानी पड़ती है और हम सब या किसी भी नैतिक खराबी की मिसाल छोड़ देते हैं। जो एल्डर पाप करता है उसे सबके सामने फटकारा जाना चाहिए ताकि दूसरे डरें। ये चीजें अकसर कलीसिया या सार्वजनिक घटना बन जाती हैं और इसलिए बाइबल के अनुसार निपटा जाना चाहिए। इससे गपशप और कल्पनाएँ रुक जाती हैं क्योंकि पाप से बाइबल के तरीके से निपटा गया है।

ए) **व्यावहारिक तरीके से** - पुनःस्थापना के सामान्य और उपयोगी निर्देश इन प्रकार हैं:

1. दोषी की ओर से सच्चा पश्चाताप और अंगीकार, सम्मिलित व्यक्तियों पर और लोक या निजी जानकारी थी पर भी निर्भर होना चाहिए।
2. परमेश्वर की ओर से और कलीसिया में जो लोग सम्मिलित हैं उनकी ओर से क्षमा। पाप की ओर और प्रभु के नाम, पति और पत्नी, परिवार, अगुआई और कलीसिया की बदनामी की ओर।
3. सार्वजनिक सेवा से हट जाने के लिए उठाए अनुशासित कदम।
4. परीक्षण का एक समय निर्धारित करना। अनैतिकता के द्वारा ऊपर दिए क्षेत्रों में टूट गई दीवारों को बनाने के लिए समय देना। हुई हानि को साफ करना और विवाह के सम्बंध को दोबारा बनाने में समय लगता है, परन्तु पहली प्राथमिकता है। परमेश्वर का क्रम क्षमा, परीक्षण का समय, और तब पुनःस्थापना, जैसा सारी बाइबल भर में उद्धार की योजना दिखाती है।
5. काउन्सलिंग चलती रहनी चाहिए, किसी के साथ सम्बंध में जो उद्धार को पुनःस्थापना के तरीके से ला सकता है।
6. परीक्षण के उचित समय के बाद सेवा में पुनःस्थापना।

   इसे एक कर्मकाण्डवाद तरीके से या "मैं तुम से पवित्र हूँ" रवैये से नहीं किया जाना चाहिए। इसे दीनता की आत्मा में किया जाना चाहिए, और अपने ऊपर भी ध्यान रखना है ताकि तुम भी परीक्षा में न पड़ो।

ये निर्देश एल्डरों की योग्यता पर आधारित हैं, जैसा पास्तरीय पत्रों में दिया गया है (1 तीमुथियुस 3:1-7; तीतुस 1:5-9 और 1 तीमुथियुस 5:17-25)।

अनन्त न्याय

कई चीजें हैं तो कलीसिया के अनुशासन और न्याय से छूट जाती हैं। उनसे मसीह के न्याय आसन, या महान सफेद सिंहासन न्याय के सामने निपटा जाएगा।

नोट (1 तीमुथियुस 5:24-25)

1. परमेश्वर का वचन भविष्य के एक न्याय के विषय में सिखाता है (2 कुरिन्थियों 5:10-11; 1 यूहन्ना 4:17; रोमियों 14:10-12; यूहन्ना 12:47-48; प्रकाशित. 11:18)।
2. अनन्त न्याय से सम्बंधित परमेश्वर के वचन में दो न्याय हैं:

अ. **विश्वासियों का न्याय**

यह विश्वासी के शब्दों के अनुसार है (1 कुरिन्थियों 3:11-15; 2 कुरिन्थियों 5:10; 1 यूहन्ना 4:17; रोमियों 14:10-12; यूहन्ना 12:47-48)।

1. विश्वासी के न्याय के तीन-तरफा पहलू

- पूर्व का न्याय - क्रूस पर एक पापी के रूप में।
- वर्तमान का न्याय - प्रभु की मेज पर एक पुत्र के रूप में (1 कुरिन्थियों 11:23-24)।
- भविष्य का न्याय - मसीह के बीमा सिंहासन पर एक सेवक के रूप में।

2. विश्वासी के इनाम के लिए पाँच मुकुट

- जीवन का मुकुट (याकूब 1:12; प्रकाशितवाक्य 2:10)।
- धार्मिकता का मुकुट (2 तीमुथियुस 4:8)।
- महिमा का मुकुट (1 पतरस 5:2-4)।
- आनन्द का मुकुट (1 थिस्स. 2:19-20)।
- अविनाशी मुकुट (1 कुरिन्थियों 9:25-27; 1 यूहन्ना 2:28)।

आ. **अविश्वासियों का न्याय**

यह भी कार्यों के लिए हैं। यह महान सफेद सिंहासन का न्याय है - अनन्त न्याय।

1. परमेश्वर सिद्ध न्यायी है। वह न्याय में कोई भी गलती नहीं कर सकता है क्योंकि उसके तात्त्विक गुणों के कारण उसके सामने सब तथ्य होते हैं (उत्पत्ति 18:25; इब्रानियों 12:23; भजन 89:14; 19:7-8; 94:2; 96:13; 98:9; यिर्मयाह 11:20; 1 पतरस 1:17)।
2. दुष्ट स्वर्गदूतों का न्याय होगा (2 पतरस 2:1-3; 3:7; 2 पतरस 2:4-9; यहूदा 6)।
3. शैतान का आग की झील में अनन्त न्याय किया जाएगा (प्रकाशित. 20:1-15)।
4. सब अभक्तों का जिन्होंने परमेश्वर के वचन और मसीह को अस्वीकार किया है न्याय होगा। उनका वचन के द्वारा न्याय होगा (जन 149:1-9; 1:5; 9:7, 16; प्रकाशितवाक्य 14:7; 1 तीमुथियुस 5:24; इब्रानियों 9:27; 10:27; रोमियों 2:5)।

यह अनन्त न्याय होगा - अनन्त अनुशासन। यदि मनुष्य मसीह में पुनःस्थापना के लिए परमेश्वर के अनुशासन को स्वीकार करने से इन्कार करते हैं, तब सारे अनन्तकाल के लिए नरकवास के परमेश्वर के अनुशासन को जानने के अलावा कोई विकल्प नहीं है।

परिवर्तन की चुनौती का सामना करना

यशायाह 43:18-19 कहता है, "अब बीती हुई घटनाओं का स्मरण मत करो। न प्राचीनकाल की बातों पर मन लगाओ। देखो, मैं एक नई बात करता हूँ; वह अभी प्रकट होगी।"

एक सबकी बड़ी चुनौती जिसका आज कलीसिया को सामना करना पड़ रहा है परिवर्तन की चुनौती है। संसार हर क्षेत्र में तेजी से बदल रहा है। उसमें से अधिकाँश परिवर्तन अच्छा है और कुछ बुरा है। हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती यह पता लगाने की है कि कलीसिया को इन परिवर्तनों से कैसा सम्बंध बनाना चाहिए। कई कलीसिया के अगुवे और संस्थाएँ किसी भी और सब परिवर्तनों का विरोध करते हैं, फिर भी कई उचित परिवर्तन हैं जिन्हें काफी पहले लागू किया जाना चाहिए था। यदि कलीसिया को इसकी विश्वसनीयता को बनाए रखना है तो इसे समय के साथ संगत होने की आवश्यकता को पहचानना होगा। हमें परमेश्वर के वर्तमान उद्देश्य के साथ सुव्यवस्था होना चाहिए। परमेश्वर पुराने जमाने का, पुराना, समय के पीछे चलनेवाला नहीं है। वह अनन्त वर्तमान का परमेश्वर है।

कम ही लोग परिवर्तन में सुविधा अनुभव करते हैं। हम उन चीजों में जैसी वे होती रही हैं एक सुरक्षा अनुभव करते हैं। तेजी से परिवर्तित हो रहा संसार विस्मयकारी है और हमारी सुरक्षा और कल्याण की भावना को चुनौती देता है। सच्चाई यह है कि परिवर्तन हो रहा है और हम न तो इसका इन्कार कर सकते और न ही इसे रोक सकते हैं। अपने आधुनिक संसार में संबद्धता बनाए रखने के लिए कलीसिया में कुछ मूलभूत परिवर्तन होने चाहिए।
सकारात्मक और उत्पादक परिवर्तन अगुआई द्वारा ऊपर से नीचे आरम्भ करने चाहिए। जो अगुवे परिवर्तन के इच्छुक नहीं हैं पाएँगे कि वे हमारे बदल रहे संसार में वर्तमान अवसरों से वंचित हो रहे हैं।
जो परमेश्वर यशायाह (43:18) द्वारा कह रहा है, वह है: "अतीत में मत बने रहो क्योंकि मैं एक नया काम करने वाला हूँ और यदि तुम अतीत को पकड़े रहने पर जोर दोगे तो तुम भविष्य को पकड़ नहीं सकोगे।" एक सरल सा सादृश्य एक कलाबाजी के कलाकार का है जो एक झूले से दूसरे पर झूलता है। यदि वह पहले झूले को नहीं छोड़ता तो वह दूसरे को पकड़ नहीं पाएगा। इसलिए उसका झूलना धीरे धीरे कम होता जाएगा और अन्त में वह सारी गति खो देगा। हमें अतीत पर अपनी दृढ़ पकड़ को छोड़ना होगा ताकि हम आगे बढ़कर उस भविष्य को पकड़ सकें जिसे परमेश्वर प्रकट कर रहा है। "हे भाइयो, मेरी भावना यह नहीं कि मैं पकड़ चुका हूँ; परन्तु केवल यह एक काम करता हूँ कि जो बातें पीछे रह गई हैं उनको भूल कर, आगे की बातों की ओर बढ़ता हुआ उस निशाने की ओर दौड़ा चला जाता हूँ।" (फिलिप्पियों 3:13-14)।
यदि अगुआई अतीत को छोड़ने और उसे पकड़ने की इच्छुक नहीं है जिसे परमेश्वर ने भविष्य में हमारे लिए रखा है, तब तो लोग उनकी मीरास को प्राप्त नहीं कर सकेंगे।
असंख्य वचन परिवर्तन की चुनौती का सामना करने की आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं। मैं उन में से कुछ का ही जिक्र करूँगा।

यिर्मयाह 12:5, "तू प्यादों ही के संग दौड़कर थक गया है तो घोड़ों के संग कैसे बराबरी कर सकेगा? और यद्यपि तू शान्ति के इस देश में निडर है, परन्तु यरदन के आसपास के घने जंगल में तू क्या करेगा?"
1 इतिहास 12:32, "इस्साकारियों में से जो समय को पहचानते थे कि इस्राएल को क्या करना उचित है, उनके प्रधान दो सौ थे, और उनके सब भाई उनकी आज्ञा में रहते थे।"
गिनती 10:14, "सब से पहले यहूदियों की छावनी के झंडे का प्रस्थान हुआ।" आय 15, "और इस्साकारियों के गोत्र का सेनापति सुआर का पुत्र नतनेल था।"
हाग्गै 2:6-7, "अब थोड़ी ही देर बाकी है कि मैं आकाश और पृथ्वी और समुद्र और स्थल सबको कम्पित करूँगा। मैं सारी जातियों को कम्पकपाऊँगा, और सारी जातियों की मनभावनी वस्तुएँ आएँगी।"
इब्रानियों 12:26-27, "एक बार फिर मैं न केवल पृथ्वी को वरन् आकाश को भी हिला दूँगा; और यह वाक्य 'एक बार फिर' इस बात को प्रकट करता है कि जो वस्तुएँ हिलाई जाती हैं, वे सृची हुई वस्तुएँ होने के कारण टल जाएँगी; ताकि जो वस्तुएँ हिलाई नहीं जातीं, वे अटल बनी रहें।"

जैसे हम तेजी के साथ नई सदी में प्रवेश कर रहे हैं, हम ने एक नाटकीय, तेज, घातीय परिवर्तन के समय में प्रवेश किया है, एक अनुत्क्रमणीय घटना जो मनुष्य के जीवन के हर पहलू को चुनौती देती है, विशेषकर कलीसिया को। यदि हम इसके विशाल तात्पर्य को नहीं पहचानते और घटना के साथ उपयुक्त रूप से निपटते नहीं, तो कलीसिया अपनी अधिकाँश नियती को बलिदान कर देगी।

सकारात्मक परिवर्तन सफलतापूर्वक आरम्भ करने की योग्यता या अयोग्यता एक अगुवे की प्रभावकारिता की अन्तिम परीक्षा हो सकती है

<u>परिवर्तन की परिभाषाएँ:</u>

- भिन्न बनाना या बनना।
- बदलना या परिवर्तन करना।
- एक को दूसरी चीज से बदलना।
- सुधार लाने के लिए अधुनिक बनाना और मूल्य बढ़ाना।

हम चीजों को क्यों बदलते हैं ? उनके प्रदर्शन या कार्य को बदलने के लिए।

नया जन्म और पवित्रीकरण मूल परिवर्तन हैं:

अ) 2 कुरिन्थियों 5:17, "यदि कोई मसीह में है तो वह नई सृष्टि है : पुरानी बातें बीत गई हैं; देखो, सब बातें नई हो गई हैं।"

आ) 2 कुरिन्थियों 3:18, "परन्तु जब हम सब के उघाड़े चेहरे से प्रभु का प्रताप इस प्रकार प्रगट होता है, जिस प्रकार दर्पण में, तो प्रभु के द्वारा जो आत्मा है, हम उसी तेजस्वी रूप में अंश अंश करके बदलते जाते हैं।"
राज्य का आगमन सबसे उग्र परिवर्तन होगा।

इ) 1 कुरिन्थियों 15:51-52, "हम सब बदल जाएँगे, और यह क्षण भर में होगा।"

परिवर्तन जीवन का एक अंगभूत, अनिवार्य पहलू है

सांसारिक और बाइबल दोनों इतिहास इसे प्रमाणित करते हैं।
प्रकृति इसे प्रमाणित करती है। हर जीवित चीज जैसे यह बढ़ती है बदलती है।
परिवर्तन की प्रक्रियाएं हर उस चीज में हैं जिसे परमेश्वर ने बनाया है। कुछ भी परिवर्तन की प्रक्रियाओं के बिना विकसित होता और बढ़ता नहीं है।
संसार की सृष्टि से लेकर यह परिवर्तन की प्रक्रियाओं में से गुज़र रहा है। यह जीवन का एक अनिवार्य तत्त्व है। इससे छिपने, या इससे भागने का कोई लाभ नहीं क्योंकि यह आपको पकड़ने वाला ही है।
परिवर्तन की प्रक्रिया हमारे दिनों में तेज हो रही है।
बाइबल की भविष्यवाणी इसका जिक्र करती है: "अन्त के दिनों में!" - गति पकड़ता हुआ परिवर्तन।
(मत्ती 24:22 "यदि वे दिन घटाए न जाते" - 'बढ़ती हुई गति')
दानिय्येल 12:4, "अन्त समय...बहुत से लोग पूछ-ताछ और ढूँढ़-ढाँढ़ करेंगे, और इस से ज्ञान बढ़ भी जाएगा।"
("Rabah" = तेजी से बढ़ना)
संसार का हर क्षेत्र प्रभावित होगा।
हर संस्था, कम्पनी, और संस्थान प्रभावित होगा।

<u>परिवर्तन जीवन के हर पहलू को प्रभावित करेगा, जिसमें सम्मिलित है:</u>

1. **राजनीतिक**

उदाहरणार्थ, मार्क्सवाद का पतन और साम्यवाद का सारे संसार पर अधिकार करने के सपने का विघटन।

2. **शिल्प-विज्ञानीय**

कम्प्यूटर युग के निर्गमन और इसके द्वारा लाई तमाम आश्चर्यचकित नवीनता से विशाल परिवर्तन आरम्भ हुए हैं। अन्तरिक्ष उड़ान एक वास्तविकता बन गई है, और तथाकथित इन्फरमेशन हॉईवे से सम्पूर्ण जीने का तरीका ही बदल रहा है।

3. **आर्थिक**

संसार की अर्थ-व्यवस्था में भी अत्यधिक परिवर्तन हुए हैं। आर्थित शक्ति का केन्द्र पश्चिम से पूर्व में बदल रहा है। इन परिवर्तनों का सम्पूर्ण महत्त्व अभी पहचाना नहीं गया है।

4. **सामाजिक**

संसार भर में भारी सामाजिक बदलाव हो रहे हैं। इन परिवर्तनों में एक हिस्सा गाँवों से शहरों में लोगों का आना सम्मिलित है।

5. **धार्मिक**
संसार के कई धर्म तीव्रीकरण (मूलभूत) और मोह-भंग अनुभव कर रहे हैं। संसार के धर्मों में बड़े-बड़े शून्य ऊपर रहे हैं।

6. **आत्मिक। "सब मनुष्यों पर आत्मा उँडेला जाएगा।"**
यह प्रकट हो जाएगा कि इन दिनों में जो सबसे विशाल परिवर्तन हुए हैं वे परमेश्वर के भविष्यसूचक उद्देश्यों से जुड़े होंगे। परमेश्वर का कार्यक्रम विश्व के हर क्षेत्र को प्रभावित करेगा, जैसा उसने कहा है "अन्त के दिनों में पूरा होगा" हमारे दिनों में देखा जाएगा।

कलीसिया के समान कोई भी परिवर्तन का विरोध नहीं करता और अप्रसन्न नहीं होता।

कलीसिया, अधिकाँश समय, खड़ी रहती है और सब सम्भावित परिवर्तन का विरोध करती है।
वे पुराने को पवित्र, और आधुनिक को अपवित्र मानते हैं।
पश्चिमी कलीसिया अतीत में फँसी हुई है। (इमारतें, हिम्स, उपासना-पद्धति, दर्शन)।

इस निश्चलता और परिवर्तन होने में अनिच्छा के कुछ कारण क्या हो सकते हैं:

अ. हमारा विश्वास एतिहासिक है।
मसीहियत 2000 वर्ष पहले आरम्भ हुई थी। जैसे हम अपने एतिहासिक विश्वास का अध्ययन करते हैं तो हमारे मन निरन्तर उन घटनाओं पर टिके रहते हैं जो 2000 वर्ष पहले घटी थीं। इसलिए, अपने विचारों में हम प्राचीन अतीत में रहते हैं। हम आरंभिक कलीसिया को कलीसिया के जीवन और व्यवहार के आदर्श नमूने के रूप में देखते हैं, परन्तु हम कलीसिया के विषय में एक महत्त्वपूर्ण बात भूल जाते हैं, कि यह अपने दिन और स्थापन में संबद्ध और समकालीन थी।

आ. हमारी बाइबल प्राचीन है।
हमारी बाइबल का अधिकाँश भाग हजारों वर्ष पहले लिखा गया था। नया नियम भी 2000 वर्ष लिखा गया था। इसलिए, पवित्रशास्त्र का हमारा पढ़ना और अध्ययन हमें एतिहासिक अतीत में ले जाता है। पवित्रशास्त्र के कई अनुवाद भी कई सौ वर्ष पुराने हैं।

इ. हम धार्मिक परम्पराओं को पकड़े रहते हैं।
हमारी अधिकाँश मसीही संस्कृति बाइबल के विचारों के बजाय मानवीय परम्पराओं से बनी है। हम यीशु के दिनों के फरीसियों के समान हो गए हैं जो "अपनी परम्पराओं के कारण परमेश्वर की आज्ञाओं को टालते" हैं। (मत्ती 15:3; मरकुस 7:5)।

ई. हम किसी भी प्रकार के परिवर्तन की ओर संदिग्ध होते हैं और विरोध करते हैं।
प्रचीन संस्कृति और परम्परा में घिरे हुए, कई कलीसिया के अगुवे समकालीन दृश्य को उनके विश्वास को धोखा देना मानते हैं। कुछ भी "आधुनिक" संदिग्ध है। यीशु मसीह की कलीसिया को पुराने जमाने की और पुराने लोग होने के लिए नहीं बनाया था; हमें एक भविष्यसूचक लोग होने के लिए बनाया है। भविष्य के लोग। परमेश्वर नहीं चाहता कि उसके लोग निरन्तर पीछे घिसटते चले आते रहें, और जो सारा परिवर्तन हो रहा है उसके साथ बने नहीं रहें। वह चाहता है हम बिलकुल सामने हों, और जो मार्ग देशों को लेना है उसकी ओर संकेत करें।

उ. परिवर्तन की ओर अनिच्छा विश्वास की कमी के कारण है।
जैसा परिवर्तन में वैसा विश्वास में जोखिम का एक तत्त्व सदा होता है। कई मसीही जोखिम नहीं चाहते। जो हम जानते हैं वर्तमान में है उसमें हम सुविधा और सुरक्षा अनुभव करते हैं, और भविष्य में अज्ञात की रग होती है जिससे हम डरते हैं। परन्तु, चाहे हमें पसन्द हो या नहीं, परिवर्तन हो रहा है, हमें इसका सामना डर से नहीं, विश्वास से करना है।

परमेश्वर परिवर्तन के विरुद्ध नहीं है।

वह कभी नहीं बदलता: मलाकी 3:6, "मैं यहोवा बदलता नहीं।"
"यीशु मसीह कल और आज और युगानुयुग एक-सा है।" इब्रानियों 13:8
उसका स्वभाव, चरित्र, स्थिति, नियम और उद्देश्य बदलते नहीं।
परमेश्वर के नियम कभी बदलते नहीं: उदाहरण, प्रकृति, गुरूत्व, वायुगतिकी के नियम बदलते नहीं।

आधुनिक विज्ञान परमेश्वर के कुछ मूल नियमों का अभी पता लगा रहा है।
परन्तु, उसके तरीके और नीतियाँ बदलते हैं।
निर्गमन 3:16, "मैं अब्राहम, इसहाक और याकूब का परमेश्वर हूँ।"
परवर्ती पीढ़ियों और बदलती हुई परिस्थितियों का परमेश्वर।
परमेश्वर ने दाऊद को कीमती जाना और उसकी प्रशंसा की क्योंकि उसने "परमेश्वर की इच्छा के अनुसार अपने समय में सेवा" की थी (प्रेरितों 13:36)।
प्रतिज्ञा के प्रदेश को जीतने और उस पर कब्ज़ा करने के उसके तरीके हर स्थान पर बदलते रहे। उदाहरण, कनान, यरीहो, ऐ, आदि की विजय।
भविष्यद्वाणी प्रकट करती है कि मसीह के लौटने और राज्य के प्रकट होने से पहले कई चीजें नाटकीय तरीके से बदलेंगी।
इब्रानियों 12:25-29, "एक बार फिर मैं न केवल पृथ्वी को वरन् आकाश को भी हिला दूँगा...ताकि जो वस्तुएँ हिलाई नहीं जातीं, वे अटल बनी रहें।" इस हिलाए जाने में से हमें एक राज्य मिलेगा, जो अटल रहेगा।

लोग परिवर्तन का विरोध क्यों करते हैं।

1. गलत विश्वास।

कई मसीहियों की यह गलत धारणा है कि "पुराना बेहतर है"। यीशु ने भी इसका जिक्र किया था। "कोई मनुष्य पुराना दाखरस पीकर नया नहीं चाहता क्योंकि वह कहता है, कि पुराना ही अच्छा है।" (लूका 5:39)। वह यह बात इसे समझाने के संदर्भ में करता है कि नई दाखरस को पुरानी मशकों में भरना मूर्खता है, क्योंकि पुरानी मशकें निस्संदेह फट जाएंगी और दाखरस नष्ट हो जाएगी। उसने आगे कहा कि, "नया दाखरस नई मशकों में भरते हैं और वे दोनों बचे रहेंगे।"
जो शब्द वह "नया" के लिए उपयोग करता है 'Kainos' है, जिसका अर्थ है नई स्थिति में लाया गया। यीशु एक प्रक्रिया की बात कर रहा है जिसमें पुरानी मशकों को नया किया जाता है और फिर वे वह काम करती हैं जो नई मशकों का है। इस प्रक्रिया में पुरानी मशकों को कई दिनों तक पानी में डुबो कर रखा जाता है जिस से वे पूरी तरह भीग जाती हैं। पानी में से निकालने के बाद उन्हें जैतून के तेल से रगड़ा जाता है। तेल से तब तक मला जाता है जब वे दोबारा लचीली और मजबूत हो जाती हैं।
इस प्रक्रिया का आत्मिक उपयोग है जिसमें पुरानी मशकों को जो इस्तेमाल के साथ भुरभुरी हो गई हैं, उन्हें पहले पानी (परमेश्वर के वचन) में काफी समय के लिए डुबाया जाता है और फिर तेल (पवित्र आत्मा) से नया अभिषेक किया जाता है। इस प्रक्रिया का परिणाम यह है कि मशक यहाँ तक नई हो जाती है कि उसमें फिर से नई दाखरस रखी जा सकती है।
कई मसीहियों को ऐसे ही एक नवीकरण के अनुभव की आवश्यकता है ताकि वे परिवर्तन की चुनौतियों का सामना कर सकें। उनके पुराने, कर्मकाण्डवाद रवैये परिवर्तन के अस्थिर स्वभाव को पाने और रखने के लिए बहुत ही भुरभुरे, अनम्य और कमज़ोर हैं। इसलिए, मशकों को कुछ आत्मिक नवीकरण होना जरूरी है ताकि वे परिवर्तन को स्वीकार कर सकें और परमेश्वर के प्रगतिशील उद्देश्यों में प्रवेश कर सकें।

2. उनके सुरक्षा के क्षेत्रों को छोड़ने में अनिच्छुक।

कई लोगों ने उनके लिए एक "सुरक्षित क्षेत्र" बनाया हुआ है, अर्थात् एक जीवनशैली जो जितनी सुविधाजनक और आरामदेह हो सकती है उतनी है। परिवर्तन की सम्भावना उस आरामदेह अस्तित्व के लिए खतरा है और लोग इस असुविधा से बचने का प्रयत्न करते हैं जो परिवर्तन अकसर लाता है।

3. यथापूर्व स्थिति से तृप्त।

यह अकसर सुधार और पूर्ति की खोज होती है जो लोगों को परिवर्तन की प्रक्रिया में ले जाती है। परन्तु, जब लोग जैसी चीजें हैं उनमें सुखी और संतुष्ट होते हैं तब परिवर्तन की कोई आवश्कता नहीं होती। चीजों को सुधारने का अर्थ है परिवर्तन लाना और कई लोग सुधार और परिवर्तन की आवश्यकता को स्वीकार करने के इच्छुक नहीं हैं।

4. परम्पराओं में धँसे हुए।

वक्तव्य से बुद्धि प्राप्त करो: "सिद्धान्त के मामलों में चट्टान के समान डटे रहो; स्वाद के मामलों में धारा के साथ तैरो।" या जैसा किसी दूसरे ने स्थिरता और परिवर्तन दोनों पर जोर दिया है। "चट्टान से लंगर गला हुआ और समय के साथ अनुकूल होना।" यह अच्छा विचार है जिस पर हर मसीही को विचार करना चाहिए।

5. पवित्र गाएँ और सफेद हाथियों की उपासना करना।

"पवित्र गाएँ" प्रिय परम्पराएं हैं जिन्होंने हमारे समाज में गहरी जड़ पकड़ी हुई है। कलीसियाओं में भी उन में से कई हैं। मनुष्यों की आदतें और परम्पराएं जिनका अकसर कोई बाइबल का आधार नहीं है। वे मनुष्यों की परम्पराएँ हैं जो जैसा यीशु ने कहा "परमेश्वर के वचन को टालती हैं"।
"सफेद हाथी" पूजनीय चीजें या परियोजनाएं हैं जिन्हें बनाए रखना कीमती है और वे अपेक्षाकृत अनुत्पादक हैं। कहा जाता है कि सियाम के राजा ने उसके दरबार के सदस्यों को जिन्हें वह नष्ट करना चाहता था सफेद हाथी दिए थे। प्राणी पवित्र थे और काम पर नहीं लगाए जा सकते थे - परन्तु उन्हें फिर भी खाना-पिलाना और देखभाल करनी थी।

6. खतरे लेने के अनिच्छुक।

परिवर्तन आरम्भ करने में कुछ जोखिम सम्मिलित होता है। इसमें अकसर अज्ञात तत्त्व सम्मिलित होते हैं और हमें बारम्बार ज्ञात की सुरक्षा में से एक परिवर्तित स्थिति की अनिश्चितता में कदम रखना होता है। कुछ अगुवे विभिन्न कारणों से कोई भी जोखिम लेने के इच्छुक नहीं होते, परन्तु विश्वास का प्रयोग सदा इसकी माँग करता है।

परिवर्तन के पारगमन में से गुज़रना कलाबाजी के एक झूले से दूसरे में झूलने के समान है। निस्सदेह आपने इस अभ्यास को कहीं न कहीं देखा होगा। कलाकार एक झूले में से दूसरे को पकड़ने की इच्छा से झूलता है। इसके लिए समय अचूक होना चाहिए। उसे एक झूले से उसकी पकड़ को छोड़ना चाहिए ताकि दूसरे को पकड़ सके। कोई भी हिचकिचाहट या देरी खेल को समाप्त कर देगी और वह सीधा नीचे आ जाएगा। जोखिम का कोई भी डर आवश्यक प्रवाह को नष्ट कर देगा। यदि कलाकार पहले झूले को ठीक समय पर छोड़ता नहीं तो बराबर परिवर्तन का अवसर खो जाएगा। कई अगुवे अतीत पर उनकी पकड़ को छोड़ने से डरते हैं और इसलिए भविष्य को प्रभावशाली तरीके से पकड़ नहीं पाते।

7. विश्वास उपयोग किया जाना चाहिए।

इब्रानियों में लिखा है कि, "विश्वास अनदेखी वस्तुओं का प्रमाण है।" (इब्रानियों 1:1)।
जैसे परिवर्तन के आरम्भ करने में जोखिम सम्मिलित होता है उसी प्रकार विश्वास के प्रयोग में भी जोखिम की गुँजाइश होती है। हमारे पास कोई गारंटी नहीं है परन्तु हमारा विश्वास जो हमें जान पड़ता है परमेश्वर का वचन है उस पर आधारित होता है।

परिवर्तन का सामना कैसे करें।

1. इसकी अनिवार्यता को पहचानना, मान लेना और स्वीकार करना।

कई लोग परिवर्तन लाने की आवश्यकता से नाराज होते और विद्रोह करते हैं। हमें पहचानना है कि जीवन में परिवर्तन अनिवार्य हैं। उनसे छिपना नहीं और न ही उनका विरोध करना है, परन्तु परमेश्वर में विश्वास और भरोसे के साथ उनका सामना करना है।

2. स्पष्ट जान लो कि परमेश्वर इससे आश्चर्यचकित या अभिभूत नहीं होता।

कई मसीहियों के अवचेतन में परमेश्वर की एक तस्वीर है, जो बूढ़ा व्यक्ति है जो बहुत पुराने विचारों का है। यह सच्चाई से दूर है। परमेश्वर पुराने विचारों, पुराना या अप्रचलित नहीं है। वह भूत, वर्तमान और भविष्य का परमेश्वर है। परमेश्वर न केवल आधुनिक है, वह निश्चित रूप से भविष्यवादी है। ऐसा कोई परिवर्तन नहीं जो परमेश्वर को आश्चर्यचकित करेगा या उसका सन्तुलन बिगाड़ देगा। अनेक सच्चे मसीहियों के मन में विचार है कि यदि कोई चीज आधुनिक है तो इसे परमेश्वर का समर्थन नहीं है। वे सोचते हैं कि जीवन के विषय में उनके विचारों में अनोखे और पुराने विचारों के होने से वे दूसरों से अधिक आत्मिक हैं।

3. समझो कि सब परिवर्तन नकारात्मक, सांसारिक या पापी नहीं हैं।

हालाँकि अधिकाँश परिवर्तन जो संसार में घटित हो रहे हैं उस सड़न के कारण हैं जो संसार में पाप के कारण हुए हैं, परन्तु सब परिवर्तन नकारात्मक नहीं हैं। कई अच्छे परिवर्तन भी संसार में हो रहे हैं।
कुछ परिवर्तन बुरे के लिए हैं तो कुछ अच्छे के लिए हैं। हमें प्रार्थनापूर्वक उन परिवर्तनों का पता लगाना है जो सुसमाचार के प्रसार में मदद करते हैं और उनका लाभ उठाना चाहिए।

4. भविष्य के परिवर्तन का परमेश्वर में विश्वास, उसके वचन, उसके उद्देश्यों, उसकी अनिवार्य विजय, और उसके प्रकट राज्य के साथ सामना करना चाहिए। (रोमियों 8:28)

किसी ने परमेश्वर के विषय में कहा है कि इतिहास उसकी कहानी है। सृष्टि का प्रभु परमेश्वर मानवीय इतिहास के नियंत्रण में है। बाइबल बताती है कि अन्त के दिनों में संसार में भयानक परिवर्तन होंगे और जीवन, नैतिक-शास्त्र और स्तरों का सामान्य बिगाड़ होगा। परन्तु, परमेश्वर के महिमायुक्त राज्य के प्रकट होने से पृथ्वी का सारा अन्धकार और उदासी लुप्त हो जाएँगे। चाहे कितनी भी बुराइयाँ भविष्य लाए, अन्तिम वास्तविकता परमेश्वर के अनन्त, महिमायुक्त राज्य का प्रकट होना होगा।

5. **हमें, एक पेड़ के समान, दृढ़, फिर भी लचीले होना है। भजन** 1:3

वह उस वृक्ष के समान है, जो बहती नालियों के किनारे लगाया गया है, और अपनी ऋतु में फलता है, और जिसके पत्ते कभी मुरझाते नहीं।

एक पेड़ जो पानी के किनारे लगा होता है गहरी और शक्तिशाली जड़ें बना लेता है जो उस पेड़ को अटल बनाती हैं। परन्तु, उसका तना और डालियाँ लचीली और आनम्य बनी रहती हैं, जो तेज हवा के साथ झुक जाती हैं। हमें ऐसा ही होना है, ताकि हम भी परिवर्तन की हवाओं का सामना कर सकें जो हम पर चलती हैं। शक्तिशाली जड़ों के द्वारा परमेश्वर के वचन में लंगर डाले रखना फिर भी डालियों को सदा लचीला और आनम्य रहना।

अगुआई और परिवर्तन

1. **अगुवों को वैध परिवर्तन की अनिवार्य आवश्यकताओं को पहचानना चाहिए।**

अगुवे भविष्य की कुछ भविष्यसूचक अन्तर्दृष्टि के लिए जिम्मेवार हैं। प्रभावशाली अगुआई का एक अत्यावश्यक पहलू भविष्य की प्रवृतियों को देख पाने और उपयुक्त नीतियाँ बनाने की योग्यता है। कई व्यवसाय इस योग्यता के कारण असफल हुए हैं और कई कलीसियाओं और संस्थाओं ने भविष्य को देख पाने की अयोग्यता के कारण या भविष्यसूचक अन्तर्दृष्टि पर कार्य करने की अनिच्छा के कारण महान चीजें प्राप्त करने के अवसरों को खो दिया है।

हालाँकि इस्साकार के पुत्र संख्या में कम थे परन्तु उन्होंने उनके देश के जीवन और गति में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, क्योंकि वे "समय को पहचानते थे कि इस्राएल को क्या करना उचित है।" 1 इतिहास 12:32, "इस्साकारियों में से जो समय को पहचानते थे कि इस्राएल को क्या करना उचित है, उनके प्रधान दो सौ थे, और उनके सब भाई उनकी आज्ञा में रहते थे।"

गिनती 10:14, 15 में हम "इस्साकारियों के गोत्र" के विषय में कुछ दिलचस्प बात और इस्राएल की यात्राओं में जो स्थान उन्होंने पाया था पाते हैं। जब कभी भी इस्राएल प्रभु की आज्ञा पर आगे बढ़ता था तो वे ऐसा एक विशेष क्रम में करते थे। यहूदा का गोत्र (स्तुति के लोग), अगुआई करते हुए, सदा आगे होते थे। उनके तुरन्त पीछे इस्साकार का गोत्र हुआ करता था। इस संगठन ने मुझे यशायाह 30:21 का एक वचन याद दिलाया है, "जब कभी तुम दाहिनी या बाई ओर मुड़ने लगो, तब तुम्हारे पीछे से यह वचन तुम्हारे कानों में पड़ेगा, 'मार्ग यही है, इसी पर चलो।" मैं देख सकता हूँ कि यहूदा परमेश्वर की स्तुतियों के साथ देश की अगुआई कर रहा है, परन्तु उनके पीछे इस्साकार का गोत्र है जो जैसा उन्हें लगा परमेश्वर चाहता है उन्हें चलना चाहिए यहूदा को दिशा दिखा रहा है।

इन निर्णायक समयों में जहाँ हम जी रहे हैं, कलीसिया को जो मार्ग लेना है और जो परिवर्तन लाने हैं उनके भविष्यसूचक निर्देश की आवश्यकता है। यह निर्देश अगुआई से आने चाहिए जिन्हें "इस्राएल के लोगों के 2000 हाथ आगे" रहना है।

2. **परिवर्तन के लिए परिवर्तन नहीं।**

परिवर्तन और इसकी अनिवार्यता के विषय में इतनी बात करते हुए मैं यह बिलकुल स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि मैं परिवर्तन का परिवर्तन की खातिर समर्थन नहीं कर रहा हूँ। मैं यह भी नहीं कह रहा हूँ कि सब परिवर्तन वांछनीय या लाभकारी है। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि सब कलीसियाओं को सबकुछ मूलतः बदल देना चाहिए। नहीं! परिवर्तन सदा परवेश्वर को आरम्भ करने चाहिए। परन्तु, जब वह स्पष्ट रूप से किसी परिवर्तन का संकेत देता है तो हमें उन परिवर्तनों को लाने के लिए निडर और साहसिक होना चाहिए।

3. **कुछ परिवर्तन अच्छे के लिए, तो कुछ बुरे के लिए हैं।**

परिवर्तन एक अत्यधिक प्रभावशाली शक्ति है जो हमारे समकालीन संसार में प्रभाव डाल रही है। अधिकाँश परिवर्तन दुखभरे और हानिकारक हैं तो कई दूसरे परिवर्तन सकारात्मक और लाभकारी हुए हैं। परिवर्तन चाहे अच्छे या बुरे के लिए हैं, अनिवार्य है। केवल परमेश्वर ही परिवर्तन के प्रवाह को रोक सकता है। हमारे जीवन काल में कई और चीजें बदलेंगी। हमें यह निश्चित करने के लिए कि जिन परिवर्तनों में हम सम्मिलित हैं वे अच्छे के लिए हैं बुरे के लिए नहीं, परमेश्वर के संग बने रहना है।

4. **किसी भी परिवर्तन से पहले प्रार्थनापूर्वक सोच-विचार होना चाहिए।**

हमें प्रार्थनापूर्वक सोच-विचार और विचार-मिवर्श बिना परिवर्तन लाने में उत्सुक नहीं होना चाहिए। कोई सम्भावित परिवर्तन मार्गदर्शन के लिए उत्सुक प्रार्थना का विषय बनना चाहिए। एक बार जब बहुत प्रार्थना के उत्तर में परमेश्वर हरी बत्ती दिखाता है तब प्रार्थना में रह कर उन परिवर्तनों को लाना है ।

5. **इससे पहले हृदयों और मन की एकता होनी चाहिए। प्रेरितों** 15:25

आरंभिक कलीसिया को कई परिवर्तनों की चुनौती का सामना करना पड़ा था जिनको उन्होंने तीव्र प्रार्थना का विषय बनाया था। वे ऐसे मामलों को प्रेरितों, भविष्यद्वक्तों और शिक्षकों के समूह के पास भी लाए थे ताकि वे एकमत हो सकें।
ऐसी ही एक स्थिति खतना या नहीं-खतना के मामले से सम्बंधिक प्रेरितों 15 में खड़ी हुई थी।
आय. 25 कहता है, "इसलिए हम ने एक चित्त होकर ठीक समझा...।"
आय. 28, "पवित्र आत्मा को और हम को ठीक जान पड़ा कि इन आवश्यक बातों को छोड़, तुम पर और बोझ न डालें।"
पहला, उन्होंने पहले पवित्र आत्मा को जानने और फिर जो वहाँ इस उद्देश्य से जमा हुए थे उनकी सहमती पाने का प्रयत्न किया। वे कोई भी कदम या कोई परिवर्तन नहीं लाने वाले थे जब तक उनका विषय पर एक हृदय और मन न होता।

6. शिक्षा और व्याख्या दिए जाने चाहिए।

कोई भी मूल परिवर्तन लोगों को पहले तमाम परिणामों के विषय में सिखाए और सम्पूर्ण से जानकारी दिए बिना उन पर थोपे नहीं जाने चाहिए। परिवर्तन को हल्की बात नहीं माना जाना चाहिए। इसे केवल एक व्यक्ति के फैसले पर लागू नहीं किया जाना चाहिए। दूर तक प्रभाव होनेवाले परिवर्तनों के फैसले सामूहिक होने चाहिए।

7. आवश्यक परिवर्तन बुद्धि और साहस के साथ लाया जाना चाहिए।

एक बार जब प्रस्तावित परिवर्तनों का दृढ़ फैसला कर लिया है तब फैसलों को बड़े साहस और बुद्धि के साथ लागू किया जाना चाहिए। परिवर्तन लाने में अकसर काफी साहस और बुद्धि की आवश्यकता होती है।

8. लाभप्रद परिवर्तन अकसर परिवर्ती, अवस्थाओं में होता है।

कभी-कभी परिवर्तन तूफान के समान लाया जाता है, परन्तु अकसर ऐसा नहीं होता। अधिक बार यह अवस्थों में होता है, उत्तरोत्तर किया जाता है। लाभप्रद परिवर्तन परिवर्ती बदलाव होता है, अर्थात् स्वस्थ बच्चे स्थिर रूप से बढ़ते जाते हैं।

कलीसिया की बढ़त और आवश्यक परिवर्तन

अ. कलीसिया की बढ़त में अनिवार्य है परिवर्तन सम्मिलित होगा। प्रेरितों 6:1-7; प्रेरितों 15

बढ़त में सदा परिवर्तन की प्रक्रियाएँ सम्मिलित होती हैं। ऐसा हुए बिना बढ़त हो नहीं सकती। जैसे एक प्राणी बढ़ने लगता है, यह परिवर्तित होने लगता है। किसी प्रकार, माता-पिता उनके बच्चे को बढ़ते हुए देखकर दुखी होते होंगे। वास्तव में, माता-पिता शीघ्र ही व्याकुल होने लगेंगे यदि प्रकृतिक परिवर्तन नहीं होते हैं। बढ़त और परिवर्तन सामान्य हैं। उनकी कमी असामान्य है।

आ. यदि आपकी कलीसिया बढ़ नहीं रही है तो सम्भवतः कुछ चीजें बदलनी चाहिए।

बढ़त किसी भी प्राणी के लिए सामान्य है। यदि कोई वृद्धि नहीं हो रही है तब कुछ मूलतः खराबी है। स्थिति अवसामान्य है और उपयुक्त परिवर्तनों के लिए खुल जानी चाहिए जो बढ़त को उत्तेजित करेंगी। हम लाख बहाने बना सकते हैं और बढ़त की कमी के कारण दे सकते हैं। इन में से कुछ कारण वैध हो सकते हैं, परन्तु अकसर वे वास्तविकता का सामना करने और बढ़त को प्रेरित करने के लिए आवश्यक कदम उठाने की हमारी अनिच्छा के बहाने होते हैं।

हमें अपने आप से कुछ भेदक प्रश्न पूछने चाहिए, जैसे कि:

- क्या कलीसिया, जैसा इसे होना चाहिए, कार्य कर रही और बढ़ रही है?
- क्या कलीसिया की प्रभावकारिता में उन्नति की कोई गुँजाइश है?
- वे कुछ चीजें क्या है जो बढ़त को रोक रही हैं?
- हम उन समस्याओं को कैसे ठीक कर सकते हैं?
- हमारी प्रभावकारिता को सुधारने के लिए क्या परिवर्तन किए जा सकते हैं?
- हम ने पहले ही उन परिवर्तनों को क्यों नहीं लाया है?
- हम अपने रवैये को कैसे ठीक कर सकते और आवश्यक परिवर्तन ला सकते हैं?

इ. कुछ परिवर्तन बढ़त उत्तेजित करते हैं।

कई असंख्य परिवर्तन हैं, आवश्यक नहीं उग्र, जो शीघ्र ही बढ़त को तेज कर देते हैं। उदाहरणार्थ, स्थान को बदलना, ऐसे स्थान में जाना जो अधिक प्रवेश्य है, बढ़त आरम्भ कर सकते हैं। हमारे प्रचार के बल से कभी-कभी बढ़त हो सकती है।

ई. कुछ परिवर्तन बढ़त बनाए रखने के लिए अकसर आवश्यक होते हैं।

कई कलीसियाओं में अनुपयुक्त फालो-अप कार्यक्रम के कारण एक समस्या है। वे उन मछुवों के समान हैं जिनके जालों में छेद हैं। जाल में कई मछलियाँ पकड़ी जाती हैं परन्तु वे शीघ्र ही छेदों में से निकल जाती हैं। इस समस्या का समाधान यह है कि कई लोगों को नए लोगों का और विशेषकर जो वचनबद्धता करते हैं उनका विश्वासयोग्यता और प्रभावशाली तरीके से फालो-अप करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाए। नए विश्वासियों के लिए शिक्षा के कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए।

उ. बढ़त के कारण परिवर्तन घटित होते हैं।

एक सबसे बड़ा परिवर्तन जो आरम्भिक कलीसिया में हुआ था प्रेरितों 6:1-7 में वर्णन पाता है। यह तेजी से हो रही बढ़त के कारण खड़े हुए संकट से हुआ था। कुछ नए विश्वासी कलीसिया की सेवा द्वारा उपेक्षित हो रहे थे। डीकनों की नियुक्ति और कामों के प्रतिनिधान करने से समाधान किया गया था।

ऊ. कलीसिया को परमेश्वर के उद्देश्यों के साथ कदम मिलाकर चलना है।

कलीसिया की लाभप्रद बढ़त लाने के लिए जो सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लाए जाने हैं वे परमेश्वर के उद्देश्यों के साथ कदम मिलाकर लाए जाने चाहिए। पता लगाओ परमेश्वर क्या करना चाहता है, और उसके साथ मिलकर करो।

प्रभावशाली परिवर्तन परमेश्वर द्वारा आरम्भ किए जाने चाहिए।

1. स्पष्ट रूप से परमेश्वर संकेत देगा।

परमेश्वर के काम में सब वैध परिवर्तन खुद परमेश्वर ने आरम्भ किए होने चाहिए। असल में, कुछ भी जो हम परमेश्वर के लिए "करते हैं" उसके साथ सम्बंध में से "निकलना चाहिए"। मुझे निश्चय है कि कई अगुवे परमेश्वर के लिए उन परियोजनाओं पर काम कर रहे हैं जिन्हें परमेश्वर ने आरम्भ नहीं किया है। इसलिए, हमारे काम और सेवाएँ परमेश्वर से मिली होनी चाहिए और वैसे ही परिवर्तन भी जिन्हें उन सेवाओं में लागू करना होता है।

2. परमेश्वर के वचन से पुष्टि होगी – अकसर सिद्धान्तों द्वारा।

इससे पहले हम परिवर्तन के पथ पर निकलें, हमें बाइबल में से पक्की पुष्टि पा लेनी चाहिए। हम अकसर पाएँगे कि जिस विषय में हमारी रुचि है उसका विशेषकर बाइबल में कोई जिक्र नहीं है। परन्तु, यह सदृश विषयों से निपटती है और इसलिए हमें कुछ सिद्धान्त दे सकती हैं जिन्हें हम अपने विषय पर लागू कर सकते हैं। ऐसा करने में, हमें बाइबल में ईमानदारी और खुले हृदय से जाना है। इससे वह नही कहलाना है जो हम सुनना चाहते हैं जिसे "परमेश्वर के वचन में मिलावट" करना कहा गया है (2 कुरिन्थियों 4:2)।

3. कई परिपक्व अगुवों द्वारा पुष्टि होगी।

(ईश्वरीय मार्गदर्शन की आपके "भाई" द्वारा सदा पुष्टि की जानी चाहिए।)
हमें सदा आत्मिक परिपक्व अभिजातों का मार्गदर्शन खोजना चाहिए। बाइबल हमें बताती है कि, "सम्मति देनेवालों की बहुतायत के कारण बचाव होता है।" (नीतिवचन 11:14; 24:6)।

4. परिस्थितिक संकेत।

एक बार जब आप परिवर्तन लाना आरम्भ करते हो तब आप पाओगे कि परिस्थितियाँ वैसी बनने लगती हैं जो उस मार्ग के साथ लय में हैं जो आपने लिया है। परमेश्वर आवश्यकताओं को पूरा करने लगता है। वह सही लोगों को सामने लाता है। जो चीजें घटने लगती हैं आकस्मिक लगती हैं, परन्तु परमेश्वर द्वारा लाई होती हैं। परमेश्वर परिस्थितियों को आपकी योजनाओं के साथ मेल खाने के लिए आदेश देता है।

परिवर्तन की प्रक्रिया

जिन परिवर्तनों को परमेश्वर ने आरम्भ किया है वे परिवर्तन की प्रक्रियाओं द्वारा होता है।
"परन्तु जब हम सब के उघाड़े चेहरे से प्रभु का प्रताप इस प्रकार प्रगट होता है, जिस प्रकार दर्पण में, तो प्रभु के द्वारा जो आत्मा है, हम उसी तेजस्वी रूप में अंश अंश करके बदलते जाते हैं।" 2 कुरिन्थियों 3:18
यशायाह 28:10, "क्योंकि आज्ञा पर आज्ञा, आज्ञा पर आज्ञा, नियम पर नियम, नियम पर नियम, थोड़ा यहाँ, थोड़ा वहाँ।"
अनुचित जल्दी करके कोई लाभ नहीं होता। हमें प्रार्थनापूर्वक और ध्यानपूर्वक विचार किए बिना परिवर्तन लाने में दौड़ना नहीं है। एक बार जब हम परिवर्तन लाने के विषय में पूरी तरह कायल हुए हैं तब हमें साहस और निडरता के साथ काम करना है।

1. परिवर्तन सदा एक चुनौती है।

परिवर्तन हमारी सुरक्षा, परम्पराओं और हमारे सुविधाओं के क्षेत्रों, हमारे विश्वास और दर्शन को चुनौती देता है। कुछ लोगों के लिए जो स्वभाव से रूढ़िवादी और सावधान हैं यह बहुत बड़ी चुनौती है उनकी तुलना में जो स्वभाव से अधिक साहसिक और आवेशी हैं। फिर भी, यह सदा एक चुनौती है और हमें इससे आश्चयचकित या घबराना नहीं है। हमें साहस के साथ चुनौती का सामना करना है।

2. जीवन के हर क्षेत्र में इसकी अनिवार्यता को पहचानो।

यशायाह 43:18-19, "अब बीती हुई घटनाओं का स्मरण मत करो। न प्रचीनकाल की बातों पर मन लगाओ। देखो, मैं एक नई बात करता हूँ, वह अभी प्रगट होगी।"

हम परिवर्तन की अनिवार्यता से बच नहीं सकते हैं। यह हमारे आप-पास जीवन के हर क्षेत्र में हो रही है। यह इसकी प्रक्रिया में अथक है। हमें कई परिवर्तन पसन्द न हों परन्तु वे हो रहे हैं। हमें यह पता लगाना है कि हम उनकी चनौतियों का सामना कैसे करें। हमारे आप-पास जो अत्यधिक परिवर्तन हो रहे हैं उनके प्रकाश में परमेश्वर क्या चाहता है हम करें ? वह निश्चय ही नहीं चाहता हम ढोंग करें वे नहीं हो रही हैं। हमें वास्तविकता का सामना करना है, परन्तु हमें बुद्धि, विश्वास और परमेश्वर के सामर्थ्य में उसका सामना करना है।

परमेश्वर परिवर्तन से आश्चर्यचकित या हानिकर नहीं होता। ऐसा नहीं उसे पता नहीं होता। वह सब चीजों को अन्त में उसके राज्य के लिए उपयोग करेगा। "हम जानते हैं कि जो लोग परमेश्वर से प्रेम रखते हैं, उनके लिए सब बातें मिलकर भलाई ही तो उत्पन्न करती हैं; अर्थात् उन्हीं के लिए जो उसकी इच्छा के अनुसार बुलाए हुए हैं।" (रोमियों 8:28)

3. परिवर्तन की चुनौती संकट लाती है।

संकट के लिए चीनी शब्द दो शब्दों के मिश्रण से बना है। पहला है "खतरा" और दूसरा है "अवसर"। मेरा विश्वास है कि यह संकट के लिए सही चित्र है। पहले, खतरे की सम्भावना है, जिसे कम नहीं समझना चाहिए। परन्तु, यदि उस संकट का सही रवैये से सामना करें तो यह अकसर अवसर के अत्यधिक द्वार खोलता है। किसी सम्भावित संकट को हल करने के संदर्भ में ही हम प्राय अपनी सबसे बड़ी उपलब्धी अनुभव करते हैं।

4. परिवर्तन के लिए सही स्थितियों को प्रोत्साहित करना।

- दर्शन स्पष्ट होना चाहिए, धुँधला नहीं।
- इसे स्पष्ट रूप से और पूर्ण रूप से बताया गया होना चाहिए।
- इसके तात्पर्यों को प्रार्थनापूर्वक सोचा-समझा और डरों को शान्त किया गया होना चाहिए।
- सेवा के दल को सच्चाई से कायल और उत्तेजित होना चाहिए।
- परिपक्व लोगों को दर्शन की पुष्टि करनी चाहिए।
- सम्पूर्ण वचनबद्धता करने से पहले इसे परख लो।
- जहाँ कहीं और जब कभी आवश्यकता हो इसे ठीक करो।

5. सही लोगों को भरती करो।

आखिरकार और आदर्श रूप से, आप चाहेंगे कि हर कोई सक्रिय रूप से इसमें लग जाए, परन्तु यह तुरन्त नहीं होगा।

- दिव्यदर्शियों के साथ आरम्भ करो।
- आगे बढ़ानेवालों को कायल करो।
- कार्य करनेवालों को प्रेरित और भरती करो।
- योगदान देनेवालों को सम्मिलित करो।

6. दर्शन के स्वामित्व को उत्सुकता के साथ प्रोत्साहित करो।

- उद्देश्य और लक्ष्य पूरी तरह समझाओ।
- सबको जानकारी देते रहो।
- विचार-विमर्श और योजना में लोगों को सम्मिलित करो।
- परिवर्तन की सम्भावना के लिए खुले और अनुकूलनीय बनो।
- उनकी भूमिका और योगदान को निरन्तर उनके सामने रखो।
- जहाँ उचित हो पहचान और प्रशंसा दो।

7. परिवर्तन अकसर अवस्थाओं में होता है।

यशायाह 30:21, "तुम्हारे पीछे से यह वचन तुम्हारे कानों में पड़ेगा, 'मार्ग यही है, इसी पर चलो।" यशायाह 28:10, "आज्ञा पर आज्ञा, आज्ञा पर आज्ञा, नियम पर नियम, नियम पर नियम, थोड़ा यहाँ, थोड़ा वहाँ।" परिवर्तन में का सफर एक विश्वास का सफर है। परिवर्तन अनिश्चितता के तत्त्वों को लाता है। विश्वास भी वैसा ही है। पौलुस कहता है, "हम रूप देखकर नहीं, पर विश्वास से चलते हैं।" (2 कुरिं. 5:7)। विश्वास का सफर अक्सर एक-एक कदम का अनुभव है। हम आज्ञापालन का एक कदम उठाते हैं और जैसे उसे पूरा करते हैं, अगला कदम हमारे सामने खुल जाता है। क्योंकि परिवर्तन की प्रक्रिया भी विश्वास के प्रयोग के समान है, यह भी अकसर वैसा ही नमूना लेता है।

8. परिणामों को मानीटर करना।

परिवर्तन प्रभावकारिता और उत्पादकता को बढ़ाने के लिए हैं। इसे सकारात्मक परिणाम लाने होते हैं। इसलिए, हमें निश्चित करने के लिए कि यह हो रहा है परिणामों को मानीटर करते रहना है। यदि लाए गए परिवर्तन वांछनीय परिणाम नहीं ला रहे हैं तो उनमें हेर-फेर करने होंगे।

9. उपयोग को व्यवस्थित करना।

लागू किए गए परिवर्तनों में आवश्यक रुपान्तरण लाने से कभी भी डरो मत। यह निश्चय ही असफलता का संकेत नहीं है। आवश्यक समंजन लाने से पहले योजनाओं और परिवर्तनों को गति में रखना आवश्यक है। वैमानिक भाषा में इसे उड़ान के समय लाया गया समंजन कहते हैं। एक बार जब ऊपर हैं और आगे बढ़ रहे हैं आपको दिशा में कुछ समंजन लाने पड़ सकते हैं। परन्तु, यदि आपकी योजनाए गति में नहीं जाती तब तो आप कहीं नहीं जा रहे हैं।

10. लक्ष्य प्राप्त करना।

परिवर्तन तब ही वैध है जब यह वांछित परिणाम लाता है।

कुछ परिवर्तन हम पर थोपे जाते हैं और हमारे पास उनका विरोध करने या उन्हें रोकने की शक्ति नहीं होती। परन्तु, हम यहाँ उन परिवर्तनों की बात कर रहे हैं जिन्हें हम ने आरम्भ किया है। ऐसे परिवर्तन तब ही बढ़ाने चाहिए यदि वे सकारात्मक परिणाम लाते और एक उत्पादक उद्देश्य प्राप्त करते हैं। परिवर्तन के लिए परिवर्तन या भिन्न होने के लिए परिवर्तन हानिकारक होना।

जिसकी मैं सिफारिश कर रहा हूँ वह हैं दूरदर्शिता, पहल-शक्ति और साहस, जो परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक और फलदायक हैं। हम कुछ चीजें अच्छे, उचित कारणों से करना चाहते हैं। हम अधिक प्रभावशाली बनना चाहते हैं। हम अधिक फल लाना चाहते हैं। हम अपने समाज में अधिक संबद्ध होना चाहते हैं। हम परमेश्वर द्वारा अधिक उपयोग होना चाहते हैं। हम उसे प्राप्त करना चाहते हैं जिसे परमेश्वर ने हमारे जीवन के लिए तय किया है।

सच्चाई यह है कि यदि यह सब अभी नहीं हो रहा तो कुछ चीजों को बदलना होगा। हम में से अधिकाँश लोगों को बदलन होगा ताकि हम वह व्यक्ति बन जाएं जिसकी परमेश्वर ने योजना बनाई है, परन्तु हम सब परिवर्तन के लिए बंद हैं तो यह कभी नहीं हो सकेगा। चीजों को उसी प्रकार करते रहने में कोई मूल्य नहीं है क्योंकि "हम ने सदा ऐसे ही किया है"। न ही हमें यथापूर्व स्थिति बनाए रखने में संतुष्ट होना है। हमें बड़ी-बड़ी चीजों के लिए बनाया और उद्धार किया गया है। आओ हम परिवर्तन की प्रक्रियाओं में से गुज़रें जो हमें उन चीजों में ले जाएंगी।

राज्य के परिवर्तन

राज्य के शासन के आने और स्थापना से विश्व के इतिहास में किसी भी घटना से अधिक परिवर्तन और रूपान्तरण होगा।

यह भी सत्य है कि उस सबसे महत्त्वपूर्ण घटना के घटित होने तक मानव इतिहास में कभी भी अनुभव किए परिवर्तनों से अधिक परिवर्तन होंगे। सारे संसार भर में एक हिलाना हो रहा है जैसा परमेश्वर ने कहा था।

"एक बार फिर मैं न केवल पृथ्वी को वरन् आकाश को भी हिला दूँगा...इस बात को प्रकट करता है कि जो वस्तुएँ हिलाई जाती हैं, वे सृजी हुई वस्तुएँ होने के कारण टल जाएँगी; ताकि जो वस्तुएँ हिलाई नहीं जातीं, वे अटल बनी रहें...इस कारण हम इस राज्य को पाकर जो हिलने का नहीं...।" (इब्रानियों 12:25-28)।

जिस हिलने की परमेश्वर ने बात की है अभी भी हो रहा है और जैसे प्रभु का दिन नजदीक आएगा अधित तीव्र होती जाएगा। पृथ्वी का सबकुछ और स्वर्ग का भी हिलाया जाएगा। इस हिलाने के संदर्भ में, परमेश्वर का आत्मा पृथ्वी पर अधिक मात्रा में कार्य करेगा

और परमेश्वर उसके लोगों के जीवनों में अनोखे और महान कार्य करेगा। हमें अपना ध्यान उन चीजों की ओर नहीं जाने देना है जिन्हें प्रभु हिला रहा है बल्कि प्रभु पर लगाना है। जो परिवर्तन कलीसिया और उसके लोगों में होने हैं उनका स्रोत और उत्तेजक प्रभु ही है। जैसे हम अपनी आँखें, अपना ध्यान और अपना विश्वास उसके ऊपर लगाते हैं, वह हमें उसके विशेष लोग होने के लिए रुपान्तरित कर देगा।
"परन्तु जब हम सब के उघाड़े चेहरे से प्रभु का प्रताप इस प्रकार प्रगट होता है, जिस प्रकार दर्पण में, तो प्रभु के द्वारा जो आत्मा है, हम उसी तेजस्वी रूप में अंश अंश करके बदलते जाते हैं।" (2 कुरिन्थियों 3:18)
इस समय में भी वे सब जो परमेश्वर और उनके जीवनों के लिए उसके उद्देश्य की ओर समर्पित हैं, प्रभु के आत्मा द्वारा उसके स्वरूप में परिवर्तित हो रहे हैं। परिवर्तन की यह प्रक्रिया अंश अंश करके घटित होती है, जैसे हम निरन्तर प्रभु के चेहरे को ताकते रहते हैं। इस क्रमिक परिवर्तन का चरम तब होगा जब हम प्रभु को आमने-सामने देखेंगे।
"जब वह प्रगट होगा तो हम उसके समान होंगे, क्योंकि उसको वैसा ही देखेंगे जैसा वह है।" 1 यूहन्ना 3:2
यूनानी नए नियम में कई शब्द हैं जिनको "नया" अनुवाद किया गया है। दो सबसे बारंबार उपयोग किए गए शब्द हैं 'neos' और 'kainos'। हालाँकि दोनों "नया" अनुवाद किए गए हैं, दोनों के अर्थ काफी भिन्न हैं।

'Neos' का अर्थ है: नया यानि हाल में आरम्भ हुआ। कोई चीज जो प्रारंभिक अवस्था में है, कभी उपयोग नहीं की गई। इसका एक उदाहरण एक कार है जो सीधे फैक्टरी से निकली है। किसी ने अभी इसे चलाया नहीं है। कोई अभी इसके अन्दर बैठा नहीं है। यह बिलकुल नई है।

'Kainos' है: यह शब्द उस चीज का वर्णन करता है जो इसकी नई स्थिति में लाई गई है। इसका उदाहरण है एक पुरानी कार जिसे बड़े प्रेम और ध्यान के साथ पुनःस्थापित किया गया है कि यह नई जैसी दिखती है। यह नई लगती है। यह नई के समान काम करती है। परन्तु, इसे तो इस अवस्था में लाया गया है।

यह शब्द नए नियम में बारंबार उपयोग किया गया है। उदाहरणार्थ, पतरस कहता है, "पर उसकी प्रतिज्ञा के अनुसार हम एक नए आकाश और नई पृथ्वी की आस देखते हैं जिनमें धार्मिकता वास करेगी।" (2 पतरस 3:13)। यहाँ उपयोग किया गया शब्द 'kainos' है, जो संकेत देता है कि जिस स्वर्ग और पृथ्वी की बात परमेश्वर कर रहा है, इसलिए नया नहीं क्योंकि अलग है, भिन्न स्वर्ग और पृथ्वी। यह वही, प्रारंभिक स्वर्ग और पृथ्वी हैं जिन्हें शाप से मुक्त करके प्रेमपूर्वक उनकी "नई जैसी" अवस्था में स्थापित किया गया है।
फिर भी, जब यह होगा तब अत्यधिक परिवर्तन होंगे। सबसे नाटकीय और आश्चर्यजनक परिवर्तन जो मानवजाति ने कभी देखे हैं। सनसनीखेज परिवर्तन होंगे जो मनुष्य की कल्पना को चौंका देंगे, जैसा प्रभु ने कहा है, "देख, मैं सबकुछ नया कर देता हूँ।" (प्रकाशित. 21:5)
मेरे मित्रो, अत्यधिक परिवर्तन हमारे सामने होने वाले हैं, जिनमें से कुछ स्वीकार करने में कठिन होंगे। परन्तु दूसरे कई परिवर्तन हमारे प्रभु के हाथों से लाए जाएँगे। ऐसे परिवर्तन जो इस ग्रह को एक वास्तविक स्वर्ग में परिवर्तित कर देंगे जिस पर परमेश्वर प्रभु यीशु मसीह के द्वारा राज्य करेगा। इसलिए हमें अपनी कमरें कस लेनी हैं और बदलते हुए भविष्य का सामना करना है, क्योंकि इन पृथ्वी को हिलाने वाली घटनाओं में से हमारे परमेश्वर और उसके मसीहा का राज्य उदय होगा।

बदलने के लिए देर नहीं हुई है।

हालाँकि कई अगुवे विभिन्न कारणों से परिवर्तन का विरोध करते रहे हैं, परन्तु अभी भी देर नहीं हुई है।
- परिवर्तन अनिवार्य है।
- परिवतन संसार में हर जगह हो रहे हैं।
- अधिकाँश परिवर्तन अच्छे और उत्पादन बढ़ाते हैं।
- परिवर्तन का विरोध अकसर घमण्ड से निकलता है।
- परिवर्तन की कमी कभी-कभी मृत्यु का उपस्थिति का संकेत होता है।
- परिवर्तन के बिना प्रगति और सुधार बिरले ही होते हैं।

परिवर्तन अगुआई द्वारा आरम्भ किए जाने चाहिए।
उठो और परिवर्तन की चुनौती का सामना करो!

परिवर्तन के लिए जाँच की सूची

- परिवर्तन कब वांछनीय होता है ?

  जब सच्ची जाँच-पड़ताल से प्रभावकारिता के क्षेत्रों का पता चलता है जिनमें सुधार किया जा सकता है।

- परिवर्तन कब आवश्यक होता है ?

  जब कुछ भी असली बढ़त या प्रगति नहीं हो रही है और कुछ मूल चीजों में परिवर्तन करना आवश्यक है।

- क्या परिवर्तन सदा आवश्यक होते है ?

  परिवर्तन अकसर नियमित अन्तराल के बाद होते रहने चाहिए क्योंकि हम एक परिवर्तित हो रहे संसार में रहते हैं जिसके साथ हमें चलना है। लोग कुछ चीजों के अनुकूल बन गए होते हैं और तब ही हमारी सुनेंगे जब हम उचित भाषा और तरीके से बताएँगे।

- कब परिवर्तन अविवेकी होगा ?

  यदि कोई चीज अपनी सम्भावना के चरम में कार्य कर रही है और सच्ची जाँच-पड़ताल से प्रकट होता है कि ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें सुधार लाने की आवश्यकता है, तब परिवर्तन अनुचित होगा।

- किस प्रकार के परिवर्तन उचित हैं ?

  - जो परिवर्तन प्रभावकारिता और कार्यकुशलता बढ़ाते हैं।
  - जो परिवर्तन हमारे कार्यों को हमारे वातावरण के अनुकूल करते हैं।
  - जो परिवर्तन व्यवस्थित सम्बंध सुधारते हैं।
  - जो परिवर्तन बढ़त और उत्पादन बढ़ाते हैं।

- परिवर्तन की प्रक्रिया क्या है ?

  परिवर्तन की प्रक्रिया में अकसर कुछ मूल तत्त्व सम्मिलित होते हैं:

  - वर्तमान स्थिति की सच्चाई से जाँच करो।
  - कोई भी पहलू जिन्हें सुधारा जा सकता है उन्हें पहचानों और मान लो।
  - सम्भावित सुधारों पर प्रार्थनापूर्वक और सकारात्मक विचार करो।
  - रचनात्मक सोचने के नमूने आरम्भ करो।
  - प्रभावशाली और उत्पादक परिवर्तनों के लिए उत्साह डालो।
  - सकारात्मक परिवर्तन आरम्भ करो।
  - नई दिशा की पुष्टि करो और दृढ़ करो।

- क्या परिवर्तन सदा दर्दनाक होता है ?

  - परिवर्तन निरन्तर, पर अनिवार्य रूप से दर्दनाक नहीं होता। अधिकाँश लोग ज्ञात और परिचित की सुरक्षा पसन्द करते हैं।
  - परिवर्तन हमें अज्ञात और अपरीक्षित में धकेलता है।
  - परिवर्तन हमें लोगों पर निर्भर करता है।
  - परिवर्तन जोखिम के तत्त्व लाता है।
  - सकारात्मक परिवर्तन अकसर हमारे काम को बढ़ा देते हैं।

- हम परिवर्तन के दर्द को कम कैसे कर सकते हैं ?

  - यह निश्चित करके कि सब लोग जो सम्मिलित हैं परिवर्तन के लाभों को समझते हैं।
  - सोच-विचार और योजना के चरणों के द्वारा, सब लोग जो प्रभावित हुए हैं उनसे बातचीत करके।

- "अपनी उछाल पर ध्यान देकर"। सम्भावित प्रभावों पर जिम्मेवारी के साथ विचार करो।
- सबकी अनुभव कराने में कि वे परिवर्तन का अंश हैं मदद करने का प्रयत्न करके।
- दूसरे जिम्मेवार लोगों के साथ मिलकर परिवर्तन लाकर।
- ध्यानपूर्वक विश्वास के साथ परिवर्तन लाकर।
- सम्भावित परिवर्तन को मानीटर करके।
- परिवर्तन के फलस्वरूप सुधरे परिवर्तन की जानकारी सबको देकर।

==

यह कुल 16 पुस्तकों के एक सेट की पुस्तक क्र. 13 है

इसका अध्ययन मिनिस्ट्री और ट्रेनिंग कोर्स में होना है, जो "केवल एक बार" का कोर्स है - Project of M.L.T.C. Ministries.

(केवल निजि वितरण के लिए!! - बिक्री के लिए नहीं!! - "केवल एक बार" प्राजक्ट का एक अंश)

दॅ डायरेक्टर आफ एमएलटीसी,
पी. ओ. बॉक्स 19106,
वरली,
मुम्बई - 400 030

+ या ईमेल करें : **mltc_ministries@yahoo.com**